प्रबंध आवधारणाएँ एवं संगठनात्मक व्यवहार

एम. कॉम. (पूर्वार्द्ध)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक-124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

अध्याय 1	प्रबन्ध की विचारधाराएँ या स्कूल	5
अध्याय 2	प्रबन्धकीय कार्य	18
अध्याय 3	संगठन	25
अध्याय 4	अधिकार	46
अध्याय 5	स्टाफिंग	65
अध्याय 6	निर्देशन या संचालन	72
अध्याय 7	समन्वय	76
अध्याय 8	नियंत्रण	85
अध्याय 9	संगठनात्मक व्यवहार	102
अध्याय 10	अभिव त्तियाँ	110
अध्याय 11	अवबोध	122
अध्याय 12	व्यक्तित्व	129
अध्याय 13	अभिप्रेरण	154
अध्याय 14	समूह गत्यात्मकताँ	179
अध्याय 15	नेत्त त्व	191
अध्याय 16	संगठनात्मक संघर्ष	206
अध्याय 17	अन्तर्वैयक्तिक एवं संगठनात्मक सम्प्रेषण	217
अध्याय 18	संगठन विकास	235
अध्याय 19	व्यवहारीय विश्लेषण	250

M.Com (Previous)

Paper-II MC-1.2 Management Concepts and Organisational Behaviour

Max. Marks : 100
Time : 3 Hours

Note : There will be three sections of the question paper. In section A there will be 10 short answer questions of 2 marks each. All questions of this section are compulsory. Section B will comprise of 10 questions of 5 marks each, out of which condidates are required to attempt any seven questions. Section C will be having 5 questions of 15 marks each, out of which candidates are required to attempt any three questions. The examiner will set the questions in all the three sections by covering the entire syllabus of the concerned subject.

Course Inputs :

Unit-1: **Schools of Management Thought:** Scientific Process, Human Behaviour and Social System School, Decisions Theory School, Quantitative and System School, Contingency Theory of Mangement, Managerial Skills, Managerial Functions, Planning Concept Significance, Types; Organising Concept, Principles, Theories, Types of Organisations, Authority, Responsibility, Power, Delegation, Decentralisation, Staffing, Directing, Coordinating, Control Nature, Process and Techniques.

Unit-2 : **Organisational Behaviour:** Organisational Behaviour Concept and Significance, Relationship between Management and Organisational Behaviour, Emergence and Ethical Perspective, Attitudes, Perception, Learning Personality, Transactional Analysis.

Unit-3 **Motivation:** Process of Motivation, Theories of motivation-need Hierarchy Theory, Theory X and Theory Y, Two Factor Theory, Alderfer's ERG Theory, McClelland's Learned need Theory, Victor Vroom's Expectancy Theory, Stacy Adams Equity Theory.

Group Dynamics and Team Development: Group Dynamics-Definition and Importance, Types of Groups, Group Formation, Group Composition, Group Performance Factors, Principle-centered Approach to Team Development.

Unit-4 **Leadership:** Leadership Styles; Theories- Trait Theory, Behavioral Theory, Fiedler's Contigency Theory, Harsey and Blanchard's Situtational Theory; Managerial Grid; Likert's Four System of Leadership.

Organisational Conflict: Dynamics and Management, Sources, Patterns, Levels and Types of Conflict, Traditional and Modern Approaches to Conflict, Functional and Dysfunctional Organisational Conflicts, Resolution of Conflict.

Unit-5 **Interpersonal and Organisational Communication:** Concept of Two-way Communication , Communication Process, Barriers to Effective Communication Types of Organisational Communication, Improving Communication, Transactional Analysis in Communication, Organisational Development, Concept: Need for Change, Resistance to Change; Theories of Planned Change, Organisational Diagnosis, OD intervention.

अध्याय–1
प्रबन्ध की विचारधाराएँ या स्कूल
(School of Management Thought)

परिचय
(Introduction)

प्रबन्ध की विचारधारा उतनी ही पुरानी है जितनी की मानव सभ्यता। प्रबन्ध का जो स्वरूप आज विद्यमान है उसके पीछे अनके मतों, वादों, विचारधाराओं, द ष्टिकोणों एवं स्कूलों की प ष्ठभूमि रही है। पिछली एक सदी में प्रबन्ध को अनेक मत-मतान्तरों से समझने का प्रयास किया गया है। अनेक विचारधाराओं की भूल-भूलैया में फँस जाने के कारण ही प्रो॰ कूण्ट्ज (Koontz) को यह कहना पड़ा कि "प्रबन्ध में विचारधाराओं का एक जंगल खड़ा हो गया है।" वे एक अन्य स्थल पर लिखते है कि "प्रबन्ध ज्ञान की विभिन्न विचारधाराओं ने एक भ्रमित एवं विनाशकारी युद्ध स्थिति (warfare) उत्पन्न कर दी है।" यहाँ विचारधारा का तात्पर्य "ज्ञान, विचारों तथा कार्य पद्धतियों के समूह" से है जिनका उपयोग प्रबन्धकीय कार्यो के निष्पादन में किया जाता है। पिछले कुछ दशकों में प्रबन्ध विचारधाराओं की बाढ़ सी आने के कई कारण हैं क्योंकि प्रत्येक विचारक भिन्न परिवेश, भिन्न प ष्ठभूमि से जुड़ा होता है जैसे कोई समाजशास्त्री है तो कोई मनोवैज्ञानिक जिससे उनके द ष्टिकोण एवं विचारधाराएँ भी भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त प्रबन्ध के मूलभूत सिद्धान्तों को समझने में भी गलती करने के कारण अनेक द ष्टिकोण सामने आये।

प्रबन्ध विचारधाराएँ अथवा स्कूल
Management Approaches or School

प्रबन्ध के क्षेत्र में पिछले कुछ दशकों में विकसित हुई प्रमुख विचारधाराएँ निम्नलिखित हैं :-

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा
2. मानव व्यवहार विचारधारा
3. सामाजिक प्रणाली विचारधारा
4. निर्णयन सिद्धान्त विचारधारा
5. प्रणाली विचारधारा
6. संभाव्यता या परिस्थितिगण/आकस्मिक विचारधारा
7. अनुभववादी विचारधारा
8. आपसी व्यवहार विचारधारा
9. सामाजिक तकनीकी तन्त्र विचारधारा
10. गणितीय अथवा प्रबन्ध विज्ञान विचारधारा
11. प्रबन्धकीय भूमिका विचारधारा
12. क्रियात्मक अनुसंधान विचारधारा

उपरोक्त सभी विचारधाराओं का विस्तार से वर्णन सम्भव नहीं है, इनमें से कुछ महत्वपूर्ण विचारधाराओं का वर्णन इस प्रकार है:-

वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा
(Scientific Management Approach)

वैज्ञानिक प्रबन्ध की विचारधारा का विकास औद्योगिक क्रान्ति के दौरान हुआ था। बहुत पुरानी होते हुए भी, यह विचारधारा क्लॉड जॉर्ज (Claude George) के अनुसार "अपने समय से 20 से 30 वर्ष आगे थी।" इसे उत्पादकता या दक्षता विचारधारा (Productivity or Efficiency Approach) भी कहा जाता है। टेलर इस विचारधारा के प्रतिपादक रहे हैं।

यह विचारधारा संसाधनों की उत्पादकता बढ़ाने पर ध्यान देती है। अतः यह कार्यो, समय, गतियों (Speeds), कार्यविधियों, सामग्री, यंत्रों, किस्म आदि के प्रमाणीकरण पर जोर देती है। यह श्रमिकों का वैज्ञानिक ढंग से चयन करने, उन्हें प्रशिक्षित करने, कार्य का वैज्ञानिक वितरण करने तथा उनसे सर्वश्रेष्ठ विधि से कार्य करवाने पर बल देती है। यह विचारधारा श्रमिकों से अधिकतम कार्य कराने के लिए प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियों को भी लागू करती है।

विशेषताएँ एवं मान्यताएँ
(Characteristics and Assumptions)

वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा की प्रमुख मान्यताएँ एवं विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :

1. यह विचारधारा प्रत्येक कार्य करने के लिए एक "सर्वश्रेष्ठ विधि" (One Best way) खोजने पर बल देती है।
2. यह कार्य में रूढ़ियों, अनुमान, "भूल एवं सुधार" विधियों के स्थान पर प्रयोग, परीक्षण व विश्लेषण पर बल देती है।
3. यह प्रत्येक कार्य के लिए समय, सामग्री व कार्यविधि का प्रमाणीकरण करती है।
4. यह प्रत्येक श्रमिक के प्रत्येक दिन के उचित कार्य तथा मजदूरी (Fair day's work and wages) का निर्धारण करती है।
5. यह समस्त कार्यो एवं संगठन संरचना में विशिष्टीकरण को महत्त्व देती है।
6. यह विचारधारा कर्मचारियों के चुनाव, प्रशिक्षण, कार्य वितरण, कार्य दशाओं के निर्धारण आदि में वैज्ञानिक विधि एवं तर्कयुक्त द ष्टिकोण को अपनाती है।
7. यह विचारधारा श्रमिकों एवं मालिकों के बीच मैत्री, सहकारिता, सद्भाव को उत्पादकता व द्धि की पूर्व शर्त मानती है।
8 यह श्रमिकों व मिल मालिकों में परस्पर सहयोग के लिए दोनों में मानसिक क्रान्ति लाने पर जोर देती है। यह अधिकतम उत्पादकता व आधिक्य का स जन करके दोनों पक्षों में हित-संघर्ष, टकराव व हित-हड़पने की प्रव त्ति को दूर करने पर जोर देती है।
9. यह सीमित उत्पादन के स्थान पर अधिकतम उत्पादन का लक्ष्य स्वीकार करती है। यह उत्पादन अवरोध को "सामाजिक अपराध" मानती है।
10. यह उत्पादन व द्धि के लिए प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियों, श्रम-प्रबन्ध हित सामंजस्य तथा विज्ञान के विकास पर जोर देती है।

मूल्यांकन
(Evaluation)

वैज्ञानिक प्रबन्ध की विचारधारा को सार्वभौमिक मानकर इसका प्रयोग अनेक संगठनों में किया जा रहा है। इसके पक्ष में प्रमुख तर्क निम्न प्रकार हैं :

(i) वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

(ii) यह व्यर्थ बर्बादी को रोकने में समर्थ है।

(iii) यह तर्क, विश्लेषण व वैज्ञानिक अध्ययन पर जोर देती है।

(iv) 'मानसिक क्रान्ति' से अनावश्यक हित टकराव व संघर्ष समाप्त हो जाते हैं।

(v) इससे श्रमिकों की आय, सम्पन्नता व संतुष्टि में व द्धि होती है।

(vi) इसमें प्रमापित वस्तुओं का उत्पादन होता है।

(vii) इसको अपनाने से विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं।

कुछ लोगों द्वारा वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा की आलोचनाएँ भी की गई हैं। ये निम्न प्रकार हैं :-

(i) यह उत्पादकता-प्रधान विचारधारा है जो केवल अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य को ही ध्यान में रखती है। यह कर्मचारियों के जीवन को यांत्रिकता में बदल देती हैं।

(ii) यह मानवीय पहलू की उपेक्षा करती है। इसमें श्रमिकों की भावनाओं व आकांक्षाओं का कोई स्थान नहीं होता है।

(iii) यह कर्मचारी को केवल "आर्थिक-विवेकशील मनुष्य" (Economic-rational man) के रूप में ही देखती है। यह केवल आर्थिक प्रेरणाएँ प्रदान करती है।

(iv) यह केवल उपयोगितावादी द ष्टिकोण (Utilitarian view) ही प्रस्तुत करती है, व्यवहारवादी नहीं।

(v) यह विचारधारा "कार्यशाला प्रबन्ध" (Shop management) पर ही सम्पूर्ण ध्यान देती है। यह प्रबन्ध की सम्पूर्ण विचारधारा नहीं है।

(vi) कुछ आलोचकों के अनुसार यह "निरंकुश प्रबन्ध" को बढ़ावा देती है।

(vii) यह कठोर श्रम, कट्टरता व हठधर्मिता का सहारा लेती है। यह प्रत्येक स्थिति में विशिष्टिकरण,प्रमापीकरण पर ध्यान देती है, जबकि व्यवहार में ऐसा करना संभव नहीं होता है।

(viii) इस विचारधारा को लागू करना बहुत कठिन व खर्चीला है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बाद भी वैज्ञानिक प्रबन्ध की विचारधारा का उपयोग कारखानों एवं गैर-व्यावसायिक संगठनों में तेजी से किया जा सकता है। इस विचारधारा के फलस्वरूप ही आज "प्रबन्ध विज्ञान" की बात होने लगी है।

प्रक्रिया विचारधारा
(The Process Approach)

प्रक्रिया विचारधारा प्रबन्ध को एक प्रक्रिया मानती है जो विभिन्न उप-क्रियाओं अथवा कार्यो में बँटी होती है। इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध "कुछ प्रक्रियाओं का समूह" (A Set of Processes) अथवा "कुछ कार्यो की श ंखला (A Sequence of Functions) है। यह विचारधारा मानती है कि प्रबन्ध सार्वभौमिक प्रक्रिया है जिसके सिद्धान्तों को सर्वत्र लागू किया जा सकता है। इसलिए कुछ विद्वान इसे "प्रबन्ध की सार्वभौमिक विचारधारा" (Universal Approach) भी कहते हैं।

यह विचारधारा प्रबन्ध के आधारभूत कार्यो का निर्धारण करती है। इसलिए इसे "कार्यात्मक विचारधारा" (Functional Approach) भी कहा जाता है। प्राचीन तथा अधिक प्रचलित होने के कारण इसे "परम्परागत विचारधारा" (Classical or Traditional School) के नाम से भी पुकारा जाता है।

प्रबन्ध प्रक्रिया विचारधारा के जनक हेनरी फेयोल (Henry Fayol) माने जाते हैं। किन्तु इसके विकास एवं संशोधन में न्यूमैन, हैरोल्ड, कूण्ट्ज, जार्ज हेरी, लूथर गुलिक, उर्विक, ब्रैच आदि विद्वानों ने भी योगदान दिया है।

विशेषताएँ
(Characteristics)

1. यह विचारधारा प्रबन्ध कार्य को एक प्रक्रिया मानती है, नियोजन, संगठन, निर्देशन, नियंत्रण आदि इसके तत्त्व हैं।
2. यह विचारधारा मानती है कि "प्रबन्ध का कार्य अन्य लोगों से कार्य करवाना है।" (Management does not do; it gets others to do)।

3. प्रबन्ध प्रक्रिया का जन्म अन्य लोगों से कार्य करवाने के लिए होता है। इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध प्रक्रिया के कुछ आधारभूत तत्त्व या कार्य हैं। इन कार्यों में नियोजन, संगठन, निर्देशन एवं नियंत्रण आदि शामिल हैं।
4. इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध प्रक्रिया प्रबन्धकों के कार्यों का कारण तथा परिणाम है।
5. प्रबन्ध प्रक्रिया के तत्त्व-नियोजन, संगठन, निर्देशन, नियंत्रण आदि अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।
6. यह प्रक्रिया सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार संचालित की जाती है। इन सिद्धान्तों के निर्माण की प्रक्रिया निरन्तर रूप में चलती रहती है।
7. इस विचारधारा के समर्थक मानते हैं कि प्रबन्ध के सिद्धान्त प्रबन्ध कार्यों को करने तथा उनमें सुधार करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
8. इन प्रबन्ध सिद्धान्तों का निर्माण अनुभव, अन्तर्ज्ञान एवं व्यवहार के विश्लेषण के आधार पर किया जाता है।
9. यह विचारधारा प्रबन्ध को एक कला एवं कौशल मानती है।
10. इसके अनुसार प्रबन्ध सर्वत्र प्रयुक्त एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है।
11. इसके कार्यों एवं सिद्धान्तों का प्रयोग सभी स्तरों पर कार्यरत प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है।
12. यह विचारधारा अनुभव एवं व्यवहार दोनों को ही प्रबन्ध की सफलता का आधार मानती है।
13. यह विचारधारा प्रबन्ध पद्धतियों एवं स्थितियों को वैसे ही बनाये रखने पर जोर देती है जैसी कि विरासत में मिली होती है। यह विचारधारा यथास्थिति (Status Quo) बनाये रखती है।
14. यह विचारधारा ज्ञान के अन्य क्षेत्रों को अपने में समाविष्ट नहीं करती है।
15. इस विचारधारा का मुख्य उद्देश्य प्रक्रियाओं का विश्लेषण करना, वैचारिक ढाँचे की स्थापना करना तथा मूलभूत सिद्धान्तों का निर्धारण करना है।
16. इसके अनुसार प्रबन्ध की प्रक्रिया निरन्तर रूप से चलती रहती है।
17. यह विचारधारा परम्पराओं में परिवर्तन करने, प्रबन्ध कार्यों पर शोध करने, सिद्धान्तों का परीक्षण करने तथा प्रबन्ध सिद्धान्तों के शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था करने पर बल देती है।

इस विचारधारा को 'प्रशासनिक विचारधारा' (Administrative Approach) भी कहते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'वैज्ञानिक प्रबन्ध' (टेलर) 'द ष्टिकोण' तथा 'प्रशासनिक द ष्टिकोण' (फेयोल) को संयुक्त रूप से 'प्रतिष्ठित प्रबन्ध विचारधारा' (Classical Management School) के नाम से भी पुकारा जाता है। इसे निम्न चार्ट के द्वारा समझा जा सकता है:

प्रतिष्ठित प्रबन्धक विचारधारा

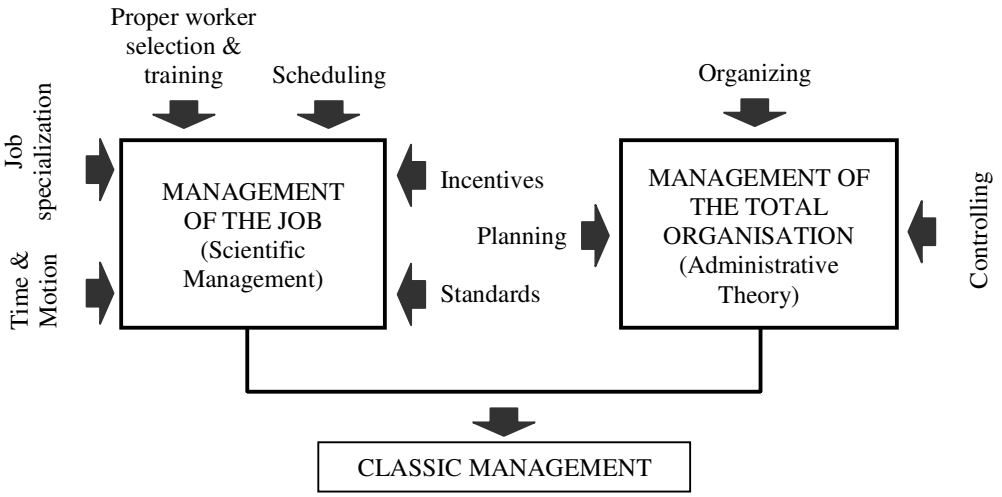

प्रक्रिया विचारधारा का मूल्यांकन
(Evaluation)

प्रक्रिया विचारधारा को प्रयोग में लाने के पक्ष में निम्न तर्क महत्त्वपूर्ण हैं:

(i) इस विचारधारा ने प्रबन्ध के कार्यो व सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके प्रबन्ध कार्य को सरल बना दिया है।

(ii) यह विचारधारा प्रबन्ध को एक "विशिष्ट क्रिया" मानती है। इससे प्रबन्ध ज्ञान की एक शाखा के रूप में विकसित हुआ है।

(iii) निश्चित सिद्धान्तों के फलस्वरूप प्रबन्धकीय शिक्षण एवं प्रशिक्षण आसान हो गया है।

(iv) प्रतिपादित सिद्धान्तों के कारण प्रबन्धकीय व्यवहार (Practice) में समरूपता लायी जा सकती है।

(v) इस विचारधारा ने प्रबन्ध की अन्य विचारधाराओं के लिए एक उचित आधार निर्मित किया है।

(vi) यह विचारधारा प्रबन्धकों को बाह्य वातावरण के प्रति भी सजग करती है।

(vii) यह स्थैतिक एवं कठोर होते हुए भी लोच, नवप्रवर्तन तथा प्रगति को प्रोत्साहित करती है।

(viii) यह प्रबन्ध कला को मान्यता देती है तथा यह प्रबन्ध दर्शन के निर्माण में भी सहायक होती है।

(ix) यह प्रबन्ध सिद्धान्तों को व्यवहार में लागू करने तथा उनकी निरन्तर जाँच करने पर बल देती हैं।

इस विचारधारा की कुछ कमियाँ भी हैं। ये निम्न प्रकार हैं:

(i) यह विचारधारा तेजी से बदलते हुए वातावरण में धीरे-धीरे लुप्त अथवा संशोधित होती जा रही है। इसका स्थान "प्रबन्धकीय भूमिका" (Managerial roles) अथवा "प्रबन्धकीय कार्य क्रियाएँ" (Managerial work activities) अवधारणा लेती जा रही है।

(ii) कुछ विद्वानों के अनुसार यह विचारधारा स्थैतिक (Static) है जो कि गतिशील वातावरण में अनुपयुक्त है।

(iii) यह विचारधारा "विवेकशील मानव" की कल्पना पर आधारित है। किन्तु व्यवहार में मनुष्य का व्यवहार सदैव तर्कयुक्त नहीं होता है।

(iv) यह विचारधारा प्रबन्ध के सिद्धान्तों को सार्वभौमिक मानती है। किन्तु प्रबन्ध के सभी सिद्धान्त सार्वभौमिक नहीं होते हैं।

(v) इस विचारधारा में अनेक विचारकों ने प्रबन्ध के भिन्न-भिन्न कार्य बताये हैं तथा उनका नामकरण भी समान नहीं है।

इन सभी आलोचनाओं के बाद भी प्रक्रिया विचारधारा को प्रबन्धकों द्वारा व्यवहार में व्यापक रूप से अपनाया गया है। इसके पीछे तीन प्रमुख कारण रहें हैं - प्रथम, यह विचारधारा प्रबन्ध कार्य में प्रबन्धक की भूमिका को केन्द्र बिन्दु मानती है। द्वितीय, यह उन सभी पहलुओं पर विचार करती है जिनसे प्रबन्धक प्रभावित होता है। त तीय, यह एक व्यावहारिक विचारधारा है।

इस विचारधारा के विभिन्न पहलुओं में अब परिवर्तन किया जा रहा है। अब इसके संशोधित रूप को स्वीकार किया जा रहा है जिसमें प्रबन्ध के चार आधारभूत कार्यो-नियोजन, संगठन, निर्देशन व नियंत्रण पर बल दिया गया है। समन्वय को समस्त प्रबन्ध प्रक्रिया का सार माना गया है। इसके नये स्वरूप को 'संक्रिया विचारधारा' (Operational Theory) के नाम से जाना जाता है।

मानव व्यवहार विचारधारा
(Human Behaviour School)

मानव व्यवहार विचारधारा कर्मचारियों अर्थात् मनुष्यों को प्रबन्धकीय सफलता का केन्द्र बिन्दु मानती है। इस विचारधारा के अनुसार "प्रबन्ध मानव व्यवहार का अध्ययन है (Management is a study of human behaviour)"। इस विचारधारा में मानव व्यवहार के अध्ययन हेतु मनोविज्ञान, मानवशास्त्र एवं समाजशास्त्र जैसे व्यावहारिक विज्ञानों का उपयोग किया जाता है। यह विचारधारा प्रबन्ध को मानवीय कौशल एवं मानवीय संवेदना के आधार पर लोगों से कार्य करवाने की कला मानती है।

अब तक मानव व्यवहार के अध्ययन की दो विचारधारायें विकसित हुई हैं :-

(A) मानवीय सम्बन्ध विचारधारा, तथा

(B) समूह व्यवहार विचारधारा।

(A) मानवीय सम्बन्ध विचारधारा
(Human Relations Approach)

यह विचारधारा मानव की सामाजिक एवं मानसिक आवश्यकताओं का अध्ययन करके उनकी सन्तुष्टि करने पर बल देती है।

यह विचारधारा निर्जीव यंत्रों, कार्यो व संसाधनों के स्थान पर कर्मचारियों अर्थात् "मानव" को अपने अध्ययन का केन्द्र बिन्दु मानती है। इसमें अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार का अध्ययन करने के लिए मनोविज्ञान, मानवशास्त्र एवं समाजशास्त्र जैसे व्यावहारिक विज्ञानों के ज्ञान का उपयोग किया जाता है। इस विचारधारा का विकास मनोवैज्ञानिकों एवं मानवशास्त्रियों द्वारा किया गया है। इसके प्रतिपादन का प्रमुख श्रेय इल्टन मायो (Elton Mayo) को दिया जाता है।

विशेषताएँ
(Characteristics)

इस विचारधारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. इस विचारधारा की मान्यता है कि कर्मचारी एक सामाजिक प्राणी है। वह मशीन का एक पुर्जा अवथा उत्पादन का साधन मात्र नहीं है।
2. यह विचारधारा मानती है कि प्रत्येक कर्मचारी की अपनी सामाजिक एवं मानसिक आवश्यकतायें होती हैं जिनकी संत प्ति करना जरूरी होता है।
3. यह मनोविज्ञान पर आधारित है।
4. किसी भी प्रबन्धक द्वारा कर्मचारियों को पशुओं की भाँति हाँककर अथवा उन्हें मनमाने आदेश देकर अथवा मशीनों की भाँति बटन दबाकर उनसे कार्य नहीं लिया जा सकता।
5. यह कर्मचारियों को सजीव भावनाओं वाले 'मानव' के रूप में देखती है।
6. यह विचारधारा मानवी सम्बन्धों एवं अभिप्रेरण को महत्त्व देती है।
7. यह विचारधारा अन्तर-व्यक्तिगत सम्बन्धों पर पर्याप्त बल देती है।
8. यह विचारधारा कर्मचारी को मशीनी पुर्जा नहीं, वरन् "भावपूर्ण मानव" मानती है।
9. यह कुशल नेत त्व द्वारा कार्य का मानवीय वातावरण तैयार करने में विश्वास रखती है।

इस विचारधारा के विकास में अनेक समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों का योगदान रहा है जिनमें इल्टन मायो, मेस्लो तथा रॉथलिसबर्जर जैसे व्यवहारवादियों के नाम प्रमुख हैं।

मूल्यांकन
(Evaluation)

यह विचारधारा कर्मचारी को मानवीय गरिमा प्रदान करती है। उसकी आवश्यकताओं, भावनाओं, अर्न्तव्यवहारों आदि को समझने पर बल देती है। इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्धक कार्य का अभिप्रेरणात्मक वातारण तैायर करके संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित करते हैं।

इस विचारधारा का मूल्यांकन करते हुए पीटर एफ॰ ड्रकर लिखते हैं कि "यद्यपि मानवीक सम्बन्धों की विचारधारा ने प्रबन्ध को गलत विचारों के प्रभुत्व से मुक्त किया है। लेकिन इसने पुरानी विचारधाराओं के स्थान पर कोई नवीन विचारधारा के प्रतिपादन में सफलता प्राप्त नहीं की है।"

इसकी कुछ प्रमुख आलोचनाएँ अग्र प्रकार हैं :

(i) यह विचारधारा प्रबन्ध में "व्यक्ति" को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मान लेती है, जबकि व्यवहार में संगठन में दूसरे संसाधन भी महत्त्वपूर्ण होते हैं।

(ii) यह विचारधारा प्रबन्ध के कला पक्ष को अधिक प्रकट करती है तथा विज्ञान के प्रति उदासीन रहती है।

(iii) कुछ आलोचकों के अनुसार केवल मानव व्यवहार का अध्ययन ही प्रबन्ध में सब कुछ नहीं है।

(iv) इस विचारधारा में मानव संतुष्टि पर अधिक बल दिया गया है, जबकि संतुष्टि केवल क्षणिक होती है।

(v) यह विचारधारा प्रबन्ध के कार्यो को कोई महत्त्व नहीं देती है।

(vi) यह विचारधारा प्रबन्ध के सिद्धान्तों तथा उसकी तकनीकों को भी महत्त्व नहीं देती है।

(B) समूह-व्यवहार विचारधारा
(Group Behaviour Approach)

यह विचारधारा अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार विचारधारा का ही विस्तार है। अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार विचारधारा व्यक्ति के वैयक्तिक व्यवहार पर आधारित है जबकि समूह-व्यवहार विचारधारा समूह के व्यवहार पर केन्द्रित है। इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध "समूह व्यवहार प्रारूपों" का अध्ययन (A study of group behaviour patterns) है। इसके प्रवर्तकों का मत है कि प्रबन्धकीय कुशलता के लिए समूह या संगठन में ही मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाना चाहिए। इस विचारधारा की यह भी मान्यता है कि अधिकांश प्रबन्धकीय समस्याएँ समूह की प्रव त्तियों, परिवेश, इच्छाओं, दबाव एवं व्यवहार के कारण उत्पन्न होती है। समूह में व्यक्ति का व्यवहार कई घटकों से प्रभावित होता है। समूह की अनौपचारिक क्रियाएँ भी प्रबन्ध प्रक्रिया पर प्रभाव ड़ालती है। अतः प्रबन्ध का अध्ययन संगठन या समूह व्यवहार पर केन्द्रित होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, इस विचारधारा के अनुसार "समूह में मानव व्यवहार का अध्ययन ही प्रबन्ध है (Management is a study of group behaviour)"।

इस विचारधारा के प्रमुख प्रवर्तक गौल्डनर, अमिताई एटजियोनि आदि हैं। इन्होंने समूहों में मानव व्यवहार का अध्ययन किया है। इनके अनुसार प्रबन्ध का अध्ययन समूह में मानव व्यवहार पर केन्द्रित होता है।

मान्यताएँ
(Assumptions)

इस विचारधारा की प्रमुख मान्यताएँ निम्न प्रकार हैं :

1. यह विचारधारा सामाजिक प्रणालियों (समूह, संगठन, उपक्रम आदि) में सामाजिक एवं समूह व्यवहार के विश्लेषण से सम्बन्धित है।
2. यह विचारधारा व्यवहारवादी समाजशास्त्र (Behavioural sociology) पर आधारित है।
3. यह औपचारिक संगठनों के साथ-साथ अनौपचारिक समूहों के व्यवहार पर भी ध्यान देती है।
4. इस विचारधारा की मान्यता है कि समूह में व्यक्ति का व्यवहार बदल जाता है, अतः प्रबन्धक को समूह व्यवहार पर अधिक ध्यान देना चाहिए।
5. यह विचारधारा संगठन को एक "सामाजिक जीव" (Social organism) के रूप में देखती है।
6. यह मानती है कि प्रत्येक संगठन एक सामाजिक संगठन है जिसमें अनेक सामाजिक इकाइयाँ होती हैं।
7. संगठन में सांस्क तिक परिवेश के कारण अनेक प्रकार की प्रव त्तियों, संघर्षो, दबावों आदि का जन्म होता है। इनके अध्ययन से ही प्रबन्ध को समझा जा सकता है।
8. अधिकांश प्रबन्धकीय समस्याओं का जन्म समूह के व्यवहार, प्रव त्तियों तथा इच्छाओं के कारण होता है।

मूल्यांकन
(Evaluation)

यह विचारधारा समूह व्यवहार को ही प्रबन्धक का अन्तिम लक्ष्य मानती है। किन्तु समूह व्यवहार अनेक घटकों से संचालित होता है। कई दशाओं में समूह में व्यक्ति की अभिव्यक्ति, क्रियाएँ, सोच आदि वास्तविक नहीं होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार समूह व्यवहार प्रदर्शन, झूठे आचरण एवं सतही प्रभवों का मिश्रण होता है कुछ विचारक इसे "भीड़ मनोविज्ञान" (Mob Psychology) से अधिक नहीं मानते हैं। इस विचारधारा की प्रमुख आलोचनायें निम्न प्रकार है-

(i) यह विचारधारा समूह व्यवहार पर अत्याधिक बल देती है तथा व्यवसाय के अन्य तत्त्वों की उपेक्षा करती है।

(ii) यह विचारधारा प्रबन्ध के विज्ञान पक्ष को कमजोर बना देती है।

(iii) 'समूह व्यवहार' प्रबन्ध का एक भाग हो सकता है, सम्पूर्ण प्रबन्ध नहीं। प्रो॰ कूण्ट्ज ठीक ही लिखते हैं कि "प्रबन्ध को मानव व्यवहार के अध्ययन का क्षेत्र मानना ठीक उसी प्रकार है जैसे हृदय विज्ञान के अध्ययन को ही मानव शरीर का अध्ययन मान लेना।"

(iv) यह विचारधारा मानव सन्तुष्टि पर आधारित है जबकि मानव संत प्ति अल्पकालिक होती है।

(v) यह विचारधारा संगठनों में "विरोधी की स्थिति" पर ध्यान नहीं देती है। यह सामान्य स्थिति में व्यक्ति को सन्तुष्ट करने का रास्ता बताती है।

(vi) इसमें प्रबन्ध के कार्यो जैसे नियोजन, संगठन, अभिप्रेरण, नियंत्रण आदि पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। अतः यह विचारधारा अधूरी है।

(vii) यह विचारधारा प्रबन्ध के सिद्धान्तों और उसकी तकनीकों को महत्त्व नहीं देती है।

इस प्रकार यह विचारधारा अनेक कमियों से ग्रसित है। प्रो॰ मालकोलम तथा मैकनेयर ने यहाँ तक लिखा है कि "यह विचारधारा लोगों के प्रति खेद प्रकट करने, उत्तरदायित्वों से बचने, असफलताओं व भूलों के लिए क्षमा माँगने तक ही सीमित है।"

सामाजिक प्रणाली विचारधारा
(Social System Approach)

यह विचारधारा "मानवीय व्यवहार" की विचारधारा से काफी मिलती-जुलती है। कुछ विचारकों का मत रहा है कि कर्मचारियों के वैयक्तिक अथवा सामूहिक व्यवहार से प्रबन्ध-कार्य का अध्ययन करना संभव नहीं है वरन् इसके लिए सम्पूर्ण संगठन का अध्ययन किया जाना चाहिए। वस्तुतः यह विचारधारा "प्रणाली विश्लेषण" (System Analysis) पर आधारित है। इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध एक सामाजिक प्रणाली है (Management is a Social System) तथा यह प्रणाली सामाजिक एवं सांस्क तिक सम्बन्धों (Socio-Cultural interrelationship) से मिलकर बनती है।

इस विचाधारा के समर्थकों में प्रमुख रूप से चेस्टर बर्नार्ड, तथा रेन्सिस लिकर्ट, कुर्त, लेविन, हर्जबर्ग आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। बर्नार्ड का मत है कि व्यक्ति अपनी संस्था के उद्देश्यों के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत उद्देश्यों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी कार्य करते हैं। अतः कुशल सहकारी तंत्र के माध्यम से ही प्रबन्धक व्यक्तिगत, सामूहिक एवं सम्पूर्ण समाज के उद्देश्यों की पूर्ति में सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं। बर्नार्ड की मान्यता है कि सहकारी तंत्र या प्रणाली औपचारिक रूप से बनने के साथ-साथ अनौपचारिक रूप से भी बनती है। अनौपचारिक सहकारी प्रणाली से न केवल व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति संभव होती है वरन् इनसे लोगों में सहकारिता की भावना का भी विकास होता है जिससे संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति में सहायता मिलती है। इस विचार के अनुसार 'प्रबन्ध' संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के आपसी व्यक्तिगत एवं सामूहिक-सांस्क तिक सम्बन्धों का अध्ययन है।

विशेषताएँ एवं मान्यताएँ
(Assumptions)

निष्कर्ष रूप में इस विचारधारा की प्रमुख विशेषताएँ एवं मान्यताएँ निम्नलिखित हैं :

1. इस विचारधारा के अनुसार "संगठन एक सहकारी सामाजिक प्रणाली है।"
2. यह प्रबन्ध के अध्ययन के लिए समग्र संगठन (Total Organisation) के अध्ययन को आवश्यक मानती है।
3. यह विचारधारा "प्रणाली द ष्टिकोण" पर आधारित है।
4. इसके अनुसार प्रबन्धकों को कार्य करवाने के लिए एक संगठन अर्थात् सामाजिक तंत्र का निर्माण करना पड़ता है। तंत्र की सफलता इसमें कार्यरत व्यक्तियों के आपसी व्यक्तिगत एवं सामूहिक सांस्क तिक संबंधों (Interpersonal and group cultural relation) पर निर्भर करती है।
5. यह प्रबन्ध को एक 'सहकारी प्रणाली' (Cooperative System) के रूप में देखती है जिससे जुड़े व्यक्तियों की इच्छाएँ, धारणाएँ, विचार, द ष्टिकोण, व त्तियाँ आदि सभी एक दूसरे से पारस्परिक रूप में प्रभावित होती हैं।
6. यह विचारधारा प्रबन्ध में व्यवहारवादी विज्ञानों जैसे मनोविज्ञान, समाज विज्ञान आदि के उपयोग पर बल देती है।
7. यह प्रबन्धकीय समस्याओं का निराकरण सहकारिता के आधार पर करती है।
8. यह मानती है कि प्रबन्ध के समुचित अध्ययन एवं व्यवहार के लिए संस्था के भीतरी एवं बाहर कार्यरत "सामाजिक समूहों" के आपसी सांस्क तिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाना चाहिए।
9. यह विचारधारा मानती है कि सामाजिक प्रणाली में व्यक्तिगत एवं सामूहिक हितों के बीच समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।
10. यह मानती है कि पारस्परिक सहयोग स्थापित करने के लिए लोग एक सामाजिक इकाई का निर्माण करते हैं।
11. इस संगठनात्मक प्रणाली में लोग सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संदेशों का आदान-प्रदान करते हैं तथा सहर्ष रूप से योगदान करते हैं।
12. इस विचारधारा के अनुसार सभी सामाजिक समूहों में परस्पर संघर्ष, विरोध, अन्तक्रिया एवं सम्बद्धता के प्रयास चलते रहते हैं।
13. यह विचारधारा प्रबन्धकीय अध्ययन के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों ही प्रकार के संगठनों को अनिवार्य मानती है।

मूल्यांकन
(Evaluation)

यह विचारधारा प्रबन्ध एवं संगठन की यांत्रिकता पर चोट करती है तथा सम्पूर्ण संगठन को मानवीय संबंधों की एक जैविक प्रणाली के रूप में देखकर अध्ययन करती है। यह प्रणाली के रूप में कर्मचारियों के अन्तर्व्यवहारों, अन्तर्सम्बन्धों तथा पारस्परिक सहयोग पर बल देती है। इस प्रकार यह विचारधारा संगठन की सजीवता को दर्शाती है।

इस विचारधारा के आधार पर संगठन के विस्त त स्वरूप को तथा व्यक्तिगत एवं सामूहिक उद्देश्यों के आपसी तालमेल को भली प्रकार समझा जा सकता है। इस विचारधारा के द्वारा प्रबन्धक संस्था तथा इसके बाह्य वातावरण में सफलतापूर्ण समन्वय कर सकते हैं तथा संगठन के बाह्य दबावों को आसानी से समझ सकते हैं।

सामाजिक-तकनीकी प्रणाली विचारधारा
(Socio-technical System Approach)

यह प्रबन्ध की विचारधारा है जिसको विकसित करने का श्रेय इंग्लैड के प्रो॰ ट्रिस्ट (E.L. Trist) को जाता है। इस विचारधारा के अनुसार सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए केवल सहकारी सामाजिक प्रणाली का अध्ययन करना ही पर्याप्त नहीं है वरन् यह देखना भी आवश्यक है कि तकनीकी प्रणाली-यंत्र, कार्यविधियाँ आदि की स्थिति क्या है। दूसरे शब्दों में इस विचारधारा की यह मान्यता है कि किसी भी संगठन में वैयक्तिक अभिव र्तियों तथा समूह व्यवहार पर उस तकनीकी प्रणाली का प्रभाव भी पड़ता है जिसमें व्यक्ति कार्य करते हैं। अतः कुशल प्रबन्ध के लिए सामाजिक एवं तकनीकी प्रणालियों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए। यदि इसमें किसी कारण से समन्वय न हो सके तो तकनीकी वातावरण में सुधार किया जाना चाहिए।

मान्यताएँ
(Assumptions)

इस विचारधारा की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैं :

1. प्रबन्ध को केवल सामाजिक वातावरण ही प्रभावित नहीं करता है बल्कि कार्य का तकनीकी वातावरण भी प्रबन्ध को प्रभावित करता है।
2. संगठन में लोगों की प्रव त्तियों तथा उनके व्यवहार पर उनकी तकनीकी प्रणाली अर्थात् यंत्र, उपकरण, कार्यविधियों आदि का गहरा एवं प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।
3. यह विचारधारा मानव व्यवहार पर तकनीक एवं यंत्रों आदि के प्रभाव का अध्ययन करती है।
4. यह विचारधारा तकनीकी एवं सामाजिक वातावरण में समन्वय कर प्रबन्ध करने पर बल देती है। समन्वय हेतु यह तकनीकी वातावरण में संशोधन करने पर भी जोर देती है।

मूल्यांकन
(Evaluation)

इस विचारधारा से भी प्रबन्धकीय व्यवहार सम द्ध हुआ है। इसने परिवहन तथा संयोजन उद्योगों के प्रबन्ध में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। किन्तु इनकी प्रमुख आलोचनाएं भी की जाती हैं। इनमें कुछ इस प्रकार हैं :

(i) तकनीकी वातावरण केवल पर्यवेक्षीय या परिचालन (Supervisory and Operative) स्तर के प्रबन्ध को ही अधिक प्रभावित करता है, यह उच्च प्रबन्ध को बहुत अधिक प्रभावित नहीं करता।

(ii) प्रबन्ध समन्वय हेतु तकनीकी वातावरण में परिवर्तन करना बहुत कठिन होता है।

(iii) यह आवश्यक नहीं है कि तकनीकी वातावरण सदैव मानव व्यवहार को प्रभावित ही करे।

(iv) केवल तकनीकी व सामाजिक वातावरण का अध्ययन व समन्वय ही प्रबन्ध नहीं है अतः इसे प्रबन्ध की सम्पूर्ण विचारधारा नहीं कहा जा सकता।

निर्णयन सिद्धान्त विचारधारा
(The DecisionTheory Approach)

प्रबन्ध की यह विचारधारा प्रबन्ध को एक "निर्णयन प्रक्रिया" के रूप में देखती है। इसके अनुसार निर्णय लेना प्रबन्ध का एक आधारभूत कार्य है तथा "निर्णयन प्रबन्ध का केन्द्रीय भाग है। (Decision making is the core of management)।" दूसरे शब्दों में, इस विचारधारा के अनुसार "प्रबन्ध निर्णयन प्रक्रियाओं का एक जटिल जाल है (Management is a complex network of decisional processes)।"

इस विचारधारा के कुछ समर्थकों द्वारा केवल "निर्णयों" (Decisions) का अध्ययन किया जाता है; कुछ समर्थक "निर्णयन प्रक्रिया"

(Decision-making process) का अध्ययन करते हैं। किन्तु कुछ समर्थक निर्णय प्रक्रिया को विस्त त रूप में देखते हैं तथा उन परिस्थितियों एवं व्यावहारिक पहलुओं का अध्ययन भी करते हैं जो निर्णयन प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इन पहलुओं में संस्था के लक्ष्य, संचार व्यवस्था, कर्मचारी अभिप्रेरणायें, कर्मचारियों के आपसी संबंध, सामाजिक मूल्य आदि सम्मिलित हैं। इनसे संस्था के निर्णय प्रभावित होते हैं।

इस विचारधारा को विकसित करने में कुछ प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अलावा हर्बर्ट साइमन (Herbert Simon), चेस्टर बर्नार्ड, जेम्स जी॰ मार्च, डब्ल्यू॰ फॉरेस्टर, रिचर्ड कैरेट आदि विद्वान प्रमुख हैं। इस विचारधारा में निर्णय मॉडलों तथा परिमाणात्मक विधियों पर अधिक बल दिया जाता है।

विशेषताएँ
(Characteristics)

इस विचारधारा की प्रमुख विशेषताएँ अग्रांकित हैं :

1. इस विचारधारा के अनुसार "निर्णय करना ही प्रबन्ध का मूल कार्य है।" निर्णयन प्रबन्ध की आत्मा है।
2. यह विचारधारा "निर्णयन" को प्रबन्ध के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु मानती है।
3. इसके अनुसार निर्णयन प्रक्रिया तथा इसको प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों का अध्ययन ही प्रबन्ध है।
4. यह विचारधारा निर्णयन का अर्थ उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ के चयन से लेती है।
5. यह विचारधारा विवेकपूर्ण द ष्टिकोण, औचित्य (Rationality), एवं तर्कयुक्त व्यवहार पर आधारित है।
6. यह निर्णयन में परिमाणात्मक विधियों पर बल देती है।
7. यह विचारधारा 'निर्णयों' को ही प्रबन्ध की सफलता या विफलता का कारण मानती है।
8. यह 'निर्णयन प्रक्रिया' में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं व्यावहारिक पहलुओं पर भी विचार करने पर बल देती है।
9. यह 'संचार व्यवस्था' को निर्णयन एवं प्रबन्ध का एक अपरिहार्य भाग मानती है।
10. यह प्रबन्धकों को 'समस्या निवारक' (Problem solver) के रूप में देखती है।

मूल्यांकन
(Evaluation)

यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि प्रबन्ध का प्रत्येक कार्य निर्णयन की प्रक्रिया के माध्यम से ही निष्पादित होता है। निर्णयन प्रबन्ध का ह्रदय होता है। किन्तु इस विचारधारा की कुछ प्रमुख आलोचनाएं निम्न प्रकार हैं :

(i) यह विचारधारा एकांगी है क्योंकि यह निर्णयन को ही प्रबन्ध का एक मात्र कार्य मानकर दूसरे कार्यो की उपेक्षा करती है।

(ii) निर्णयन अनेक घटकों से प्रभावित होने वाली क्रिया है। व्यवहार में इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखकर निर्णय लेना संभव नहीं होता है।

(iii) व्यवहार में निर्णयन प्रक्रिया के सभी पहलुओं का सही-सही मूल्यांकन करना भी संभव नहीं होता है।

(iv) ड्रकर के अनुसार यह विचारधारा केवल निर्णयों के विवेकपूर्ण विश्लेषण की तकनीकें उपलब्ध कराती है। यह किसी समस्या के लिए सर्वोत्तम निर्णय उपलब्ध करने में असमर्थ है।

(v) निर्णयन एक व्यावहारिक प्रक्रिया है जबकि यह विचारधारा निर्णयन प्रक्रिया को केवल परिमाणात्मक सूत्रों के माध्यम से स्पष्ट करती है।

(vi) निर्णयन प्रक्रिया गैर-परिमाणात्मक तत्त्वों, अनुभव, अन्तर्ज्ञान आदि से भी प्रभावित होती है जिनका व्यवहार में अनुमान लगाना एवं मूल्यांकन करना कठिन होता है।

अध्याय–2
प्रबन्धकीय कार्य
(Managerial Functions)

नियोजन
(Planning)

नियोजन या योजना बनाना प्रबन्ध का आधारभूत प्राथमिक एवं महत्वपूर्ण कार्य है, जिस पर प्रबन्ध के अन्य सभी कार्य निर्भर करते हैं। नियोजन से अभिप्राय वर्तमान में यह निश्चित करने से है कि भविष्य में क्या किया जाना है। प्रत्येक प्रबन्धक र्काय प्रारम्भ करने से पहले यह सोचता है कि क्या कार्य करना है, क्यों करना है, कहाँ करना है, कब करना है, कौन करेगा, किस विधि से किया जाएगा तथा किन साधनों से किया जाएगा आदि। अतः नियोजन कोई सरल कार्य नहीं है, इसके लिए पर्याप्त अध्ययन, चिन्तन व मनन की आवश्यकता होती है।

हेयन्स तथा मैसी ने ठीक ही कहा है कि "नियोजन एक बौद्धिक प्रक्रिया है जिसके लिए स जनात्मक विचारधारा तथा कल्पना की आवश्यकता होती है।" नियोजन का प्रयोग संगठन के सभी स्तरों पर प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है। संगठन की स्थापना के समय, नियुक्तियाँ करते समय, निर्देश देते समय तथा नियंत्रण करते समय नियोजन को ध्यान में रखना पड़ता है नियोजन एक व्यापक व निरंतर प्रक्रिया है। प्रबन्ध की सफलता कुशल एवं उचित नियोजन पर निर्भर है।

शील्ड के अनुसार "योजना विभाग प्रबन्ध का ह्रदय है जिसका एकमात्र कार्य उत्पादन के विभिन्न पहलुओं में कार्यरत कर्मचारियों की आवश्कताओं को पूरा करना है।" अतः नियोजन का अर्थ है संस्था के व्यापक उद्देश्यों को निश्चित करके योजना की अवधि के लिए व्यावसायिक पूर्वानुमान करना, लक्ष्य निर्धारित करना और एक समय बाधित कार्यक्रम तैयार करना जो लक्ष्यों को निम्न लागत और उच्च कुशलता के साथ प्राप्त करने में सहायता करे।

नियोजन का अर्थ एवं परिभाषाः–

Koontz O'Donell, "नियोजन का अर्थ पहले से ही यह तय करना है कि क्या करना है, कैसे करना है, कब करना है और किससे करना है। नियोजन हम जहाँ हैं से लेकर हमे जहाँ जाना है, के बीच की दूरी को पाटता है। यह उन बातों को सम्भव बनाता है जो अन्यथा नहीं होती।"

George R.Terry," नियोजन भविष्य में देखने की कला है इसमें भविष्य की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाया जाता है जिसमें निर्धारित लक्ष्यों की द ष्टि से किये जाने वाले वर्तमान प्रयासों को उनके अनुरूप बनाया जा सके।"

Henry Fayol, "कार्य की योजना से अभिप्राय उन परिणामों से है जिनको प्राप्त करना है, कार्य की उस रूप रेखा से है जिसका पालन करना है उन अवस्थाओं से है जिनसे होकर कार्य को गुजरना है तथा उन विधियों से है जिनका प्रयोग किया जाना है।

M.E. Hurley, "क्या करना चाहिए इसका पहले से ही निर्णय करना नियोजन कहलाता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न वैकल्पिक उद्देश्यों, नीतियों,विधियों और कार्यक्रमों में से सर्वोतम का चुनाव किया जाता है।"

अतः उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह यह सकते कि पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उपलब्ध साधनों

की सहायता से भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में किए जाने वाले कार्यो में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव करने का निर्णय लेना ही नियोजन है।

नियोजन की विशेषताएँ
(Characteristics of Planning)

1. **निश्चित लक्ष्य** (Definite Goal) - प्रत्येक कार्य करने के कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य होते हैं इसलिए नियोजन करने का भी निश्चित लक्ष्य होता है। प्रत्येक नियोजन का उपक्रम के प्रत्येक विभाग एवं कार्यरत कर्मचारियों के लक्ष्यों से गहरा कार्यरत सम्बन्ध होता है। प्रत्येक नियोजन इन्हीं लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए इन्हीं के अनुरूप अपनी योजनाएँ बनाता है। जिस प्रकार प्रस्ताव और स्वीकृति के बिना प्रसंविदे (Contract) की उत्पत्ति नही हो सकती, ठीक उसी प्रकार निश्चित लक्ष्यों या उद्देश्यों के बिना नियोजन नहीं किया जा सकता। बिली ई॰ गोट्ज (Billy E. Goetz) के अनुसार, "योजनाएँ उद्देश्यों पर ध्यान केन्द्रित कर सकती है। ये उन क्रियाओं के बारे में भविष्यवाणी कर सकती है जो अन्तिम उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक होगी। प्रबन्धकीय नियोजन इच्छित लक्ष्यो पर ध्यान केन्द्रित करते हुए एक द ढ समन्वित प्रक्रियाओं के ढाँचे की प्राप्ति करना चाहता है।"

2. **पूर्वानुमान** (Frecasting):- प्रत्येक नियोजन चाहे वह अल्पकालीन हो या दीर्घकालीन पूर्वानुमान पर आधारित होता है परन्तु पूर्वानुमान स्वयं में नियोजन नहीं होते, यह तो नियोजन के आधार होते हैं।

   पूर्वानुमान से आशय भविष्य के गर्भ मे झाँकने से होता है जबकि नियोजन से तात्पर्य भविष्य को ध्यान में रखते हुए वर्तमान मे भविष्य के लिए निर्णय लेना होता है। हेनरी फेयोल (Henry Fayol) ने पूर्वानुमान एवं नियोजन दोनों के लिए Prevoyance शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है आगे देखना। फेयोल का मत है की "नियोजन द्वारा बनाई जाने वाली योजनाएँ विभिन्न प्रकार के पूर्वानुमानों-दीर्घकालीन व अल्पकालीन विशेष या सामान्य का संश्लेषण होती है।

3. **सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव** (Selection of the best among alternatives):- नियोजन में विभिन्न वैकल्पिक क्रियाओं में से सर्वश्रेष्ठ का चुनाव शामिल है। प्रत्येक प्रबन्धक के सामने विभिन्न वैकल्पिक उद्देश्य, नीतियाँ कार्यक्रम व कार्य-पद्धतियाँ होती है और उसे इन सभी में से संस्था के पूर्वनिर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ का चुनाव करना होता है।

4. **सर्वव्यापकता** (Pervasiveness) :- नियोजन समस्त प्रबन्धकीय क्रियाओं में व्याप्त है। योजना बनाना प्रत्येक प्रबन्धक का अनिवार्य कार्य है, चाहे वह प्रबन्धक कम्पनी का प्रबन्ध संचालक हो या कारखाने में काम करने वाला फोरमैन। प्रबन्धक का प्रत्येक कार्य योजना बनाने से आरम्भ होता है। परन्तु योजना के कार्य की प्रकृति प्रेत्येक कार्य और स्तर पर अलग-अलग होती है। किसी सीमा तक यह इस बात पर निर्भर करता है कि उच्च अधिकारियों ने उस प्रबन्धक को कितने अधिकार दिए हुए हैं और नियोजन के सम्बन्ध मे उसकी क्या नीति है। अगर कोई प्रबन्धक योजना बना कर काम नहीं करता है तो वह प्रबन्धक कहलाने का अधिकारी नहीं है।

5 **प्राथमिक कार्य** (Primary function) :- नियोजन प्रबन्ध का प्राथमिक कार्य है। एक प्रबन्धक को अपने किसी भी प्रबन्धकीय कार्य को बुद्धिपूर्वक करने से पहले योजना अवश्य बनानी चाहिए। योजना बनाने के बाद ही एक प्रबन्धक संगठन करने, निर्देश करने और नियन्त्रण करने के कार्यो को कर सकता है। एक प्रबन्धक पहले अपनी योजनाओं को बनाए बिना ही बाद के कार्य कर सके, यह असम्भव एवं कठिन प्रतीत होता है। अतः योजना सभी प्रबन्धकीय कार्यो का मूल है।

6. **लोचता एवं निरंतरता** (Flexibility and continuity) :- नियोजन का कार्य सुद ढ क्रियाशील प्रकृति का है। योजना के कार्य को लगातार चलने वाले कार्य के रूप में देखना ही उचित होगा। यह सही कहा गया है कि वह योजना, जिसे बदला ही न जा सके, एक अच्छी योजना नहीं होगी। योजना की आव ति निरंतर चलते रहने की है। योजना में लचीलापन अवश्य रखना चाहिए। योजना जितनी लचीली होगी, उतना ही उसका क्रियात्मक मूल्य बढेगा। उसके अन्दर इतना लचीलापन रहना चाहिए कि किसी भी अवसर या घटना के अनुसार उसमें परिवर्तन किया जा सके।

7. **एकता** (Unity) :- फेयोल के अनुसार एकता नियोजन की महत्वपूर्ण विशेषता है। उनका मत है कि एक समय में

केवल एक ही योजना कार्यान्वित की जा सकती है। एक से अधिक योजना के होने से भ्रान्ति हो सकती है। आवश्यकता पड़ने पर एक ही योजना को कई उप-योजनाओं में विभक्त किया जा सकता है। क्रियाओं में निरन्तरता स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि एक के बाद एक योजना लागू की जाए।

नियोजन के तत्व अथवा अंग अथवा क्षेत्र
(Elements or Components or Scope of Planning)

नियोजन के तत्व इस प्रकार हैः-

1. उद्देश्य (Objectives)
2. नीतियाँ (Policies)
3. कार्यनीति या मोर्चाबन्दी (Strategy)
4. कार्यविधियां (Procedures)
5. नियम (Rules)
6. विधियाँ (Methods)
7. बजट (Budgets)
8. कार्यक्रम (Programmes)

1. **उद्देश्य** (Objectives):- नियोजन का प्रथम कार्य उद्देश्य निर्धारित करना होता है। उद्देश्य परिणाम होते हैं जिनकी प्राप्ति के लिए क्रियाएँ की जाती हैं। ये न केवल नियोजन के अन्तिम बिन्दु को ही स्पष्ट करते हैं, अपितु प्रबन्धकीय क्रियाओं जैसे संगठन, कर्मचारियों की नियुक्ति, निर्देशन, समन्वय, अभिप्रेरणा व नियन्त्रण आदि के भी अन्तिम बिन्दु होते हैं। इस प्रकार संस्था के उद्देश्यों का निर्धारण करना नियोजन का प्रथम चरण है। आजकल उद्देश्यानुसार प्रबन्ध किया जाता है। बिना पूर्व नियोजन उद्देश्यों के एक संस्था की ठीक वही स्थिति होती है जैसे कि एक नौका - वाहक बिना यह सोचे उड़ान भर ले की, उसे लन्दन जाना है या हांगकांग। इसलिए उद्देश्य सभी प्रकार के नियोजन एवं प्रबन्धकीय कार्यो के प्रारम्भिक बिन्दु होते हैं।

2. **नीतियाँ** (Policies):- वर्तमान युग बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा व्यापार का युग है। जैसे-जैसे व्यापार एवं उद्योग बढ़ता है तो प्रबन्धकों की जिम्मेदारियाँ भी बढ़ती हैं। उच्च प्रबन्ध अपने सभी निर्णय तो ले सकते हैं लेकिन उन सभी को कार्यान्वित नहीं कर सकते। ऐसी दशा में उन्हें अपने सहायक अधिकारियों की सहायता लेनी पड़ती है, लेकिन सहायक अधिकारी किस आधार पर कार्य करें, उनके मार्गदर्शक तत्व क्या होंगे, यह समस्या उत्पन्न हो जाती है, अतः यह आवश्यक है कि उच्च प्रबन्धकों के विचार, उद्देश्य तथा निर्देश कुछ संक्षिप्त, स्पष्ट मार्गदर्शक सूत्रों को कार्य-सिद्धान्तों में बदल दिया जाए। यही मार्गदर्शक सूत्र या सिद्धान्त नीतियां कहलाते हैं। कूण्टज ओ॰ डोनेल ने कहा है, "नीतियाँ सामान्य कथन अथवा समझने वाली बाते हैं जो निर्णय लेने के विचार-तत्व और कार्य का पथ-प्रदर्शन करती हैं।"

   शार्विन के अनुसार, "नीतियाँ एक सदैव चलने वाले निर्णय निर्देश हैं, जो बड़े प्रबन्धकों द्वारा मध्य स्तर एवं लघु-स्तर के प्रबन्धकों की सहायता के लिए प्रारम्भ में ही निश्चित कर दिए जाते हैं।"

   नीतियाँ एक सामान्य कथन या समझने वाली बातें हैं जो कि एक संगठन के सदस्यों को अपने कार्य करने के दौरान मार्गदर्शन प्रदान करती हैं।

3. **कार्यनीति या मोर्चाबन्दी** (Strategy):- अंग्रेजी का 'Strategy' शब्द मूलतः ग्रीक भाषा का है जिसका अर्थ है युद्ध में शत्रु की व्यूह रचना के उत्तर में अपनी व्यूह रचना तथा सेना को एक विशिष्ट ढंग से खड़े करने की रणनीति। आज मोर्चाबन्दी का उद्देश्य प्रतिस्पर्धा करने वाले व्यवसायों को ध्यान में रखकर कुछ इस प्रकार की कार्य योजना को तैयार किया जाना है जिससे कि व्यापार में किसी प्रकार की असुविधा का सामना न करना पड़े जिससे व्यापक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उचित साधनों को जुटाया जा सके। मोर्चाबन्दी को एक ऐसी विशेष प्रकार की योजना माना जाता है जिसमें विरोधी पक्ष की धारणा भी शामिल की जाती है इसमें सम्बद्ध कार्य और निर्णय होते हैं जो नीतियों तथा उद्देश्यों

को क्रियान्वित करने में सहायता प्रदान करते हैं।

4. **कार्यविधि** (Procedure):- कार्यविधियाँ हमारा मार्गदर्शन करने में सहायक होती हैं। नियोजन के अन्तर्गत केवल नीतियाँ ही निर्धारित नही की जा सकती बल्कि उन कार्यविधियों का भी निर्धारण किया जाता है जिनके द्वारा हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचना है। कार्यविधियाँ आवश्यकता और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर बनाई जाती है और उनमें इस बात की गुन्जाइश छोड़ी जाती हे कि भविष्य में आवश्यक होने पर उसमें परिवर्तन किया जा सके अर्थात कार्यविधियाँ लोचपूर्ण होनी चाहिएँ। एक कार्यविधि में अनेक बातें शामिल है जैसे इसका क्या उद्देश्य है इसमें क्या-क्या क्रियाएँ की जायेंगी, वे क्रियाएँ कब और कैसे पूरी की जायेगी और उनके लिए कौन व्यक्ति उत्तरदायी होगा।कार्यविधि की व्यारव्या नीति से अधिक स्पष्ट शब्दों में की जाती है क्योंकि इसमें उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले कार्य की विधि तथा समय क्रम भी निर्धारित किया जाता है।

   गौज के शब्दों मे, "नीति सदैव या तो उद्देश्य तय करती है, या कार्यवाही के क्षेत्र की सीमा बताती है, जबकि कार्यविधि इस उद्देश्य को प्राप्त करने के मार्ग या क्षेत्र मे चलने की विधि तय करती है।"

5. **नियम** (Rules):- नियम भी नियोजन के आवश्यक तत्व होते हैं। एक नियम यह स्पष्ट करता है कि एक विशिष्ट परिस्थिति मे एक विशिष्ट कार्य को कैसे किया जाए। Koontz O'Donell के अनुसार "नियम योजना है जो कि आवश्यक क्रियाओं का मार्गदर्शन करते है और इनका चयन अन्य योजनाओं की भांति विभिन विकल्पों मे से होता है। सामान्यतः नियम योजना के सरलतम रूप हैं। नियम सामान्यतः अपने ऊपर स्वयं लागू किए गए कार्य के सिद्धान्त हैं। नियमों में कोई छूट या ढील की लोचशीलता नही होती। उनमें स्वाधिकार या निर्णय लेने का कोई स्थान नहीं होता। किसी एक कार्य पद्धति का अनुसरण करते हुए उससे इधर-उधर होने की भी इसमें लोचशीलता नहीं होती। "धूम्रपान न करो" यह नियम का उदाहरण है। नियम सदा कठोर होते हैं व उनका सख्ती से पालन होता है। नियम का पालन न करने पर दण्ड की व्यवस्था होती है।

6. **विधियाँ** (Methods) :- निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति का आधार विधियाँ हो सकती हैं अतः विधियों को भी नियोजन का एक तत्त्व माना गया है। George R. Terry के अनुसार "विधि उद्देश्यों, उपलब्ध सुविधाओं और समय, धन एवं प्रयासों के कुल व्यय पर पर्याप्त ध्यान देते हुए किसी कार्य के निष्पादन ढंग को निर्धारित करने का परिणाम है।" विधि एक निरन्तर उपयोग की योजना होती है जो कार्यविधि की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और विस्त त होती है। कार्यविधि पगों (Steps) के क्रमों को दर्शाती है जबकि विधि केवल एक अकेले पग के कार्य को दर्शाती है तथा यह बताती है कि वह पग कैसे किया जाएगा। विधियाँ उत्पादन, टूलरूम, कार्यशाला इत्यादि में पुनराव ति तथा दैनिक कार्यो को पूरा करने का प्रमापित ढंग होता है। प्रमाप विधियाँ दिए हुए कार्य के लिए सर्वोतम ढंग निर्धारित करती है जिससे नियोजन के कार्य मे सहायता मिलती है तथा कार्य संचालन को नियोजित योजना के अनुसार भी रखती है।

7. **बजट** (Budget):- बजट मे निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समय सामग्री, धन तथ अन्य साधनों से उपयोग की एक ठोस योजना बनाई जाती है अतः बजट एक ऐसी योजना है जिनमें विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति के समयबद्ध लक्ष्य निश्चित और मापनीय इकाइयों में तय किए जाते है और इन्हें प्राप्त करने के लिए समय, धन और अन्य साधनों के व्यय के अनुमान निश्चित आँकड़ो में दिए जाते है कून्टज ओ'डोनेल के अनुसार "एक योजना के रूप में बजट अपेक्षित परिणामों की गणनात्मक शब्दों में विवेचना है।"

8. **कार्यक्रम** (Programme) कार्यक्रम भी नियोजन का एक आवश्यक अंग है। Koontz O' Donell के अनुसार "कार्यक्रम नीतियों, कार्यविधियों, विधियों, नियमों, सौपे गए कार्य और क्रिया-समूह का संचालन करने के लिए आवश्यक तत्वों का एक सम्मिश्रण है जिन्हें सामान्यतः आवश्यक पूँजी और क्रियान्वित बजटों का समर्थन प्राप्त होता है। "कार्यक्रम एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक प्रयासों की श्रेणी है जो प्राथमिकता के क्रम में व्यवस्थित होते हैं।कार्यक्रम किसी संस्था में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु किए जाने वाले कार्यो के क्रम का निर्धारण करते हैं। ये किसी कार्य की संक्षिप्त योजना है जिसे निर्धारित क्रम में लक्ष्यों के अनुरूप, नीतियों के आधार पर, कार्यवाहियों के अनुसार तैयार किया जाता है।

नियोजन का महत्व
(Importance of Planning)

व्यवसाय की सफलता के लिए नियोजन का विशेष महत्व माना जाता है। जार्ज॰ आर॰ टेरी के शब्दों में "नियोजन एक उपक्रम के सफलतापूर्वक कार्यो की आधारशिला है।" प्रतिस्पर्धा बाजार में माँग के उतार-चढ़ाव, नई-नई वस्तुओं व उनके नए-नए उपयोगों की खोज तथा उत्पादन के साधनों की बढती हुई कमी ने व्यापारी के लिए ऐसी परिस्थितयाँ पैदा कर दी हैं कि वह अपने साधनों का सर्वश्रेष्ठ उपयोग किए बिना बाजार में एक दिन भी नहीं ठहर सकता। एक विद्वान के अनुसार, उस प्रबन्धक को जो बिना योजना के कार्य करना चाहे लाभ के बिना जीवित रहने की आदत डाल लेनी चाहिए।

नियोजन के बिना प्रबन्धक का कार्य उद्देश्यहीन होता है जिससे समय, साधन और सामग्री सभी का अपव्यय होने की सम्भावना रहती है और भविष्य के बारे में सदैव अनिश्चितता का वातावरण बना रहता है। नियोजन प्रबन्ध के कार्यो में व्यवस्था को जन्म देता है। प्रबन्धक इसके द्वारा उद्देश्यपूर्ण प्रयत्न कर सकते है जिससे साधनों का उपयोग होता है व्यवसाय की कुशलता बढती है और भविष्य के बारे में विश्वास पैदा होता है। व्यवसाय में योजना बनाने का निम्नलिखित महत्व हैः-

1. **उद्देश्य प्राप्ति में सहायक** (Helps in achieving objectives): - सभी व्यवासायिक संस्थाओं के पूर्व-निर्धारित उद्देश्य होते हैं। नियोजन इन उद्देश्यों के लक्ष्यों पर प्रबन्धकों का ध्यान केन्द्रित करने और उन्हें उचित समय में उचित साधनों से प्राप्त करने में सहायक होता है। इतना ही नहीं नियोजन उपक्रम के लक्ष्यों के प्रति जागरूक रहता है तथा उन्हे प्राप्त करने का निरन्तर प्रयास करता रहता है। प्रत्येक विभागाध्यक्ष अपने विभाग की नीतियों, विधियों, उपक्रमों तथा मोर्चाबन्दी आदि को अन्य विभागों का प्रतिबन्दी न बनाकर पूरक बनाने का प्रयत्न करता है जिससे लक्ष्यों को प्राप्त करना अपेक्षाकृत सरल हो जाता है

2. **अनिश्चितताओं एवं परिवर्तनों को कम करने में सहायक** (Helps in offsetting uncertainties and changes) :- भविष्य तो सदा ही अनिश्चित एवं परिवर्तनशील रहा है। इस अनिश्चितता का सामना करने के लिए नियोजन की आवश्यकता पड़ती है। व्यवसाय सम्बन्धी कोई भी तत्त्व जैसे- प्रतिस्पर्धा रोकड़ की स्थिति, उत्पादन की माँग, उत्पादन क्षमता लागत-व्यय, राजकीय नीति, हड़ताल एवं तालाबन्दी आदि निश्चित नहीं होता। इसके अतिरिक्त अन्य भौतिक जोखिमों की भी आशंका रहती है, जैसे बाढ का आना, भूकम्प का आना तथा तूफान आना आदि। अतः प्रत्येक प्रबन्धक इन अनिश्चितताओं एवं परिवर्तनों का पहले से अनुमान लगाकर योजना बना लेता है।

3. **एकता एवं समन्वय** (Unity and co-ordination) :- उपक्रम द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। इन क्रियाओं के मध्य जब तक समन्वय स्थापित नहीं किया जाएगा तब तक उद्देश्यों की प्राप्ति कठिन होगी। विभिन्न क्रियाओं के मध्य प्रभावी एकता एवं समन्वय स्थापित करने का यह कार्य नियोजन द्वारा सम्पन्न किया जाता है। योजना एक चुना हुआ मार्ग है, जिसके द्वारा प्रबन्धक सामूहिक कार्यो में समन्वय करता है। नियोजन प्रथक-प्रथक विभागों के मध्य होने वाले व्यर्थ के संघर्ष को बचाता है क्योंकि समन्वय द्वारा सभी विभाग समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मिलकर कार्य करते हैं।

4. **संगठन की प्रभावशीलता** (Effectiveness of Organisation) :- नियोजन संगठन को प्रभावी बनाता है और वांछित परिणामों की प्राप्ति में लगने वाली अनावश्यक देरी तथा लालफीताशाही को समाप्त करके प्रबन्धकीय कार्यो को गति प्रदान करता है। यह अव्यवस्थित अर्थहीन तथा अनावश्यक क्रियाओं के स्थान पर सुव्यवस्थित, अर्थपूर्ण एवं आवश्यक क्रियाओं को जन्म देता है। यह दोहरी क्रियाओं की समाप्ति करके संगठन में होने वाले अपव्यय पर रोक लगाता है जिससे संगठन प्रभावी बनता है तथा उसकी गति तीव्र हो जाती है।

5. **प्रभावपूर्ण नियन्त्रण** (Effective Control) :- नियोजन के अन्तर्गत प्रत्येक प्रबन्धक अपने अधीनस्थों की क्रियाओं पर सर्वोत्तम ढंग से नियन्त्रण करने का प्रयत्न करता है। यह नियन्त्रण तब तक प्रभावी नहीं हो सकता, जब तक कि उनकी क्रियाओं को सही ढंग से माप न लिया जाए। नियोजन नियन्त्रण का प्राण है। नियोजन यह निश्चित कर देता है कि किस विभाग में और किन व्यक्तियों ने, एक निर्धारित समय में और निर्धारित लागत से क्या-क्या लक्ष्य प्राप्त करने हैं। अतः नियोजन से नियन्त्रण प्रभावपूर्ण हो जाता है क्योंकि अब नियन्त्रण करने वाले प्रबन्धक को प्रत्येक

सम्बन्धित विभाग और व्यक्ति की वास्तविक प्रगति को, नियोजित प्रगति की तुलना में, मापने का अवसर मिल जाता है। यदि वास्तविक प्रगति नियोजित प्रगति की तुलना में कम होती है तो प्रबन्धक न केवल इसकी जिम्मेदारी निर्धारित कर सकते हैं बल्कि इसके कारणों का विश्लेषण भी कर सकते हैं।

6. **कार्यो में मितव्ययता** (Economy in operations) नियोजन के माध्यम से एक व्यवसायी सरलतापूर्वक आर्थिक मितव्ययता प्राप्त कर सकता है। सुविचरित नियोजन से संचालन एवं लागत व्यय में कमी आ जाती है क्योंकि नियोजन के द्वारा उपलब्ध वैकल्पिक विधियों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन किया जाता है और तत्पश्चात् उसी का अनुकरण किया जाता है एवं समन्वय स्थापित किया जाता है जिससे उत्पादन लागत स्वतः कम हो जाती है।

7. **निर्णय लेने में सुविधा** (Helps in decision making) :- प्रबन्ध एक लगातार निर्णय लेने की प्रक्रिया है। निर्णय लेना योजना की धुरी है निर्णय लेने का अर्थ है, उपलब्ध कार्यविधियों में सबसे अधिक उपयुक्त कार्यविधि का चयन करना। योजना निर्णय लेने की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाती है। यह विषय-सामग्री के निरन्तर संग्रह करने, मूल्यांकन करने और चयन करने से सम्बन्ध रखती है। सर्वोत्तम उपलब्ध कार्यविधि ही हमारी योजना बन जाती है। वास्तव में योजना सभी प्रकार के निर्णयों की पूर्वगामिनी होती है।

योजनाओं के प्रकार
(Types of Plans)

1. **प्रकृति के आधार पर** (On the basis of its nature):-

   (अ) **रणनीति सम्बन्धी योजनाएँ** (Strategic Plan) दीर्घकालीन उद्देश्यों, संस्था की व्यापक रणनीति और इसके आधारभूत निर्णयों पर आधारित योजनाएं जो व्यवसाय के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं को प्रभावित करती हैं, रणनीति या कार्यनीति सम्बन्धी योजनाएँ कहलाती हैं।

   (ब) **कार्य-संचालन सम्बन्धी योजनाएँ** (Operational Plans):- जो संस्था की रणनीति सम्बन्धी योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए चालू व्यावसायिक कार्यवाहियों को अल्पकालीन व्यवहारिक योजनाओं के ताने बाने मे बनने के लिए बनाई जाती हैं, कार्य संचालन सम्बन्धी योजनाएं कहलाती है।

2. **प्रबन्ध के स्तर के आधार पर** (On the basis of Level of Management):-

   (अ) **उच्चस्तरीय योजना** (Top Level Plans) -यह योजना उच्च प्रबन्धकों द्वारा तैयार की जाती हैं और इसके अन्दर सम्पूर्ण उपक्रम की सामान्य नीति, उद्देश्य, लक्ष्य, बजट आदि तैयार किए जाते हैं।

   (ब) **मध्यस्तरीय योजना** (Middle Level Plans)- यह मध्यस्तरीय प्रबन्धकों द्वारा तैयार की जाती है। ये योजनाएं युक्तियों के रूप में तैयार की जाती हैं, जिनके द्वारा उपक्रम के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति करना सम्भव होता है।

   (स) **निम्नस्तरीय योजना** (Lower Level Plans)- यह योजना पर्यवेक्षकों द्वारा तैयार की जाती हैं तथा उपक्रम के कर्मचारियों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं से सम्बन्ध रखती हैं।

3. **जार्ज. आर. टेरी के अनुसार** (According to George R.Terry) :-

   (अ) **भौतिक नियोजन** (Physical Plans) यह किसी उपक्रम में भवन व उपकरणों की व्यवस्था से सम्बन्ध रखता है।

   (ब) **क्रियात्मक नियोजन** (Functional Plans) यह किसी समस्या के एक पहलू के एक विशिष्ट कार्य से सम्बन्धित होता हैं।

   (स) **व्यापक नियोजन** (Detailed Plans) यह किसी उपक्रम की सभी समस्याओं से सम्बन्धित है।

   (द) **सामान्य-मिश्रित नियोजन** (Comprehensive Plans) इसके अन्तर्गत भौतिक, क्रियात्मक व विस्त त तीनों प्रकार के नियोजन के तत्व सम्मिलित होते है।

4. **व्यापकता के आधार पर** (On the basis of General Combination Plans) :-

(अ) **समामेलित योजनाएँ** (Corporate Plans) :-जो किसी कम्पनी के सभी विभागों के विकास एवं विस्तार के लिए, उद्यमियों व उच्च प्रबन्धकों द्वारा स्वयं दीर्घकालीन रणनीति को ध्यान में रखकर बनाई जाती है।

(ब) **विभागीय योजनाएँ** (Departmental Plans) :- जो भिन्न-भिन्न विभागों द्वारा अपने तत्कालीन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बनाई जाती है।

5. **समय के आधार पर** (On the basis of term):-

(अ) **दीर्घकालीन योजनाएँ** (Long term Plans) पीटर एफ ड्रकर के अनुसार, "दीर्घकालीन योजनाएँ व्यवस्थित ढंग से वर्तमान व्यावसायिक निर्णयों को उनकी भविष्य के सम्बन्ध में सर्वश्रेष्ठ ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों द्वारा लेने, इन निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक प्रयासों को व्यवस्थित ढंग से संगठित करने एवं इन निर्णयों के परिणामों की तुलना में व्यवस्थित सम्प्रेषन व्यवस्था द्वारा मापन करने की एक गतिशील प्रक्रिया है।"दीर्घकालीन योजनाएँ प्रायः इन उद्देश्यों के लिए बनाई जाती हैं:-

(i) पूंजीगत सम्पत्तियों की व्यवस्था के लिए;

(ii) किसी नवीन पूंजीगत योजना को कार्यान्वित करने के लिए;

(iii) वैज्ञानिक प्रबन्ध की किसी योजना के लिए;

(iv) कुशल कर्मचारियों की व्यवस्था के लिए।

(ब) **अल्पकालीन योजनाएँ** (Short term Plans) :- ये योजनाएँ एक वर्ष या इससे कम अवधि के लिए तत्कालीन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मध्यस्तरीय तथा निम्नस्तरीय प्रबन्धकों के द्वारा स्वयं बनाई जाती हैं। लेकिन इन योजनाओं का भी दीर्घकालीन योजनाओं के अनुसार होना आवश्यक है। एक वर्ष से तीन वर्ष तक की अवधि वाली योजनाओं को प्रायः मध्यावधि योजनाएँ कहते है।

अध्याय–3
संगठन
(Organisation)

हमारे जीवन का मार्ग निर्धारित करने में संगठन एक मुख्य शक्ति होता है। मानव कोई भी कार्य बिना संगठनों के नहीं कर सकता है संगठन सहकारी प्रयासों का एक ढ़ंग है। मनुष्य के लक्ष्यों की प्राप्ति का आधार संगठन ही है।

संगठन सम्पूर्ण प्रबन्ध के संचालन का केन्द्र है जिसके द्वारा मानवीय प्रयासों को समन्वित करके उन्हें सहक्रियाशील (synergetic) बनाया जाता है। संगठन कार्यों, साधानों व सम्बन्धों की एक औपचारिक अवस्था है जिसके माध्यम से प्रबन्ध अपना कार्य सम्पन्न करता है। जिस प्रकार एक खेल का कप्तान स्वयं खेल नहीं जीत सकता, विजय प्राप्त करने के लिए उसे अपने सभी खिलाड़ियों को एक टीम में संगठित करना होगा, ठीक उसी प्रकार व्यवसाय भी एक खेल की भांति है जिसमें सफलता प्राप्त करने के लिए सभी कर्मचारियों को संगठित करने की जरूरत पडती है अतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह खेल का मैदान हो या चुनाव का क्षेत्र, मन्दिर हो या मस्जिद, विद्यालय हो या धर्मार्थ संस्था, व्यापार छोटा हो या बड़ा, सफलता प्राप्त करने के लिए संगठन करना अनिवार्य है। केनेथ सी॰ टोव का कथन है कि "एक सुद ढ़ संगठन व्यवसाय की प्रत्येक समस्या का उत्तर है।"

अंग्रेजी भाषा के 'organisation' शब्द की उत्पत्ति 'organ' से हुई है जिनका आशय किसी ऐसी इकाई से है जिसके विभिन्न विभागों का परस्पर तथा सम्पूर्ण इकाई के साथ एक जटिल सम्बन्ध होता है। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए कार्य करते हैं तो उनके बीच स्थापित सम्बन्धों एवं अन्तर्क्रियाओं की संरचना को 'संगठन' कहा जाता है। संगठन की तुलना मानव शरीर की संरचना से की जा सकती है जिसके विभिन्न अंग अन्तर्सम्बन्धित होते हैं तथा एक सामान्य लक्ष्य की पूर्ति के लिए क्रियाशील होते है। उत्पत्ति के विभिन्न साधनों का व्यवस्थीकरण एवं समन्वय करना ही संगठन का मुख्य उद्देश्य होता है। अधिकांश विचारक संगठन को व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों का ढाँचा मानते हैं। इस प्रकार संगठन संस्था के विभिन्न अंगों के कार्यो, भूमिकाओं, स्थितियों व सम्बन्धों का औपचारिक संगठन है।

विभिन्न विद्वानों ने संगठन की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैः-

(अ) संगठन - व्यापक रूप में

(i) हेनरी फेयोल के अनुसार, "संगठन बनाने का अर्थ है, संस्था के भौतिक तथा मानवीय साधनों का दोहरा ढाँचा बनाना, अर्थात व्यवसाय संस्था की आवश्यकताओं के अनुसार कच्चा माल, यन्त्र, पूँजी और कर्मचारी प्राप्त करना और उन्हें जगह-जगह आवश्यकता के अनुसार उपलब्ध करवाना।"

(ii) हेमैन के शब्दों में, "संगठन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा उद्यम के कार्यो को परिभाषित व वर्गीक त किया जाता है और उन्हें विभिन्न व्यक्तियों को सौंपकर उनके अधिकार-सम्बन्धों को निश्चित किया जाता है।"

(ब) संगठन - समूह के रूप में

(iii) मैकफारलैंड के अनुसार, "संगठन से आशय व्यक्तियों के एक विशेष समूह से है जो एक निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मिलकर कार्य करता है।"

(iv) आर॰ सी॰ डेविस के शब्दों में, "संगठन मूलतः व्यक्तियों का एक समूह है जो एक नेता के निर्देशन में सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु सहयोग करते है।"

(स) संगठन - एक प्रक्रिया के रूप में

(v) उर्विक के अनुसार, "किसी कार्य को करने के लिए किन-किन क्रियाओं को किया जाए इसका निर्धारण करना एवं उन क्रियाओं को व्यक्तियों के बीच वितरित करना ही 'संगठन' कहलाता है।"

(vi) ऐलन के अनुसार, "उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में संलग्न व्यक्तियों को अपना अपना काम अधिक से अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से मिलकर करने में सहायता देने के लिए, सम्पन्न किए जाने वाले आवश्यक कामों को तय करके श्रेणीबद्ध करने, दायित्वों व अधिकारों को परिभाषित करने व सौंपने तथा आपसी सम्बन्धों की व्याख्या करने की प्रक्रिया को संगठन कहते है।"

(द) संगठन - एक संरचना के रूप में

(vii) कून्टज ओ डोनेल के अनुसार , "संगठन पारस्परिक सम्बन्धों का एक ऐसा ढाँचा है जिसके द्वारा व्यवसाय को एकरूपता प्रदान की जाती है और व्यक्तियों के प्रयास को समन्वित किया जाता है।"

व्यापक द ष्टि से संगठन को इस तरह परिभाषित कर सकते हैं "संगठन एक तरफ तो विभिन्न कार्यो एवं क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया है तथा दूसरी तरफ कार्य में लगे हुए विभिन्न व्यक्तियों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करने की कला है जिससे उनके बीच बिना बाधा के विचारों का आदान-प्रदान हो सके।

संगठन के लक्षण या प्रक ति
(Characteristics or Nature of Organisation)

1. संगठन व्यक्तियों का समूह है।
2. यह समूह एक कार्यकारी नेत त्व के अन्तर्गत कार्य करता है।
3. यह प्रबन्ध का साधन कार्य एवं शरीर रचना है।
4. इसमें श्रम, कार्यो, दायित्वों व अधिकारों का विभाजन किया जाता है।
5. इसमें सदस्यों के कार्यकारी सम्बन्ध निश्चित होते हैं।
6. इसमें सदस्यों के अधिकारों व कार्य क्षेत्र की सीमा स्पष्ट होती है।
7. यह एक गतिशील क्रियात्मक प्रक्रिया है।
8. यह सहकारी प्रयासों की एक व्यवस्था है।
9. यह एक प्रबन्धकीय क्रिया है जो चक्रीय है, न कि एक दैनिक घटित होने वाली क्रिया।
10. संगठन एक मानवीय एवं जैविक व्यवस्था है।

संगठन के तत्व
(Elements of Organisation)

1. **कार्य-विभाजन** (Division of labour)- जब कोई कार्य कुछ व्यक्तियों द्वारा मिलकर किया जाता है तब यह आवश्यक हो जाता है कि उसे प्रभावशाली ढंग से पूरा करने के लिए निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार उनमें कार्य का विभाजन करने के लिए निश्चित योजना तैयार की जाए और उनमें उस योजना के आधार पर कार्य का विभाजन किया जाए। इसके लिए पहले उपकार्य निश्चित किए जाते हैं और फिर उपकार्यो को करने के योग्य व्यक्तियों का चयन कर उनके सुपुर्द किया जाता है। उदाहरण के लिए, एक उत्पादक संस्था में उत्पादक विभाग, धन-प्रबन्ध विभाग, विपणन विभाग और कर्मचारी विभाग बनाए जा सकते हैं और इन्हें पुनः आवश्यकतानुसार अनेक उपविभागों में भी विभक्त किया जा सकता है। विशिष्टीकरण से उत्पादन की मात्रा और गुण दोनों में वुद्धि होती है और इसके साथ साथ समय की भी बचत होती है जबकि कोई अतिरिक्त पूँजी लगानी पड़ती है।
2. **उद्देश्य** (Objectives)- संस्था के उद्देश्य निश्चित होने चाहिए और सभी के सभी विभागों के उद्देश्य इस प्रकार निश्चित किए जाने चाहिए ताकि वे मुख्य रूप से संस्था के मूल उद्दश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकें। एक योग्य प्रबन्धक

विभागीय उद्देश्य को संस्था के उद्देश्यों में परिवर्तित कर सकता है।

3. **समन्वय** (Co-ordination)- संस्था के विभिन्न विभाग कार्य की सुविधा के लिए बनाए जाते हैं जबकि सबका उद्देश्य एक ही होता है, इसलिए सभी विभागों के कार्यो में पूर्ण ताल-मेल होना आवश्यक है। जहाँ तक सम्भव हो सके प्रत्येक स्तर पर समन्वय का होना आवश्यक होता है जैसे- (i) एक कर्मचारी और उसका कार्य, (ii) एक कर्मचारी और दूसरे कर्मचारियों के कार्य, और (iii) एक विभाग एवं दूसरे विभाग के कार्य।

4. **अधिकार एवं दायित्व का ढाँचा** (Authority and responsibility)- सभी अधिकारियों के अधिकार उनके पद के अनुसार होने चाहिए अर्थात् समान पदों पर कार्यरत अधिकारियों के अधिकारों में अन्तर नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए सभी विभागीय प्रबन्धकों के अधिकार एक-समान होने चाहिए और वे सब केन्द्रीय प्रबन्धक के अधीन होने चाहिएं।

5. **संदेशवाहन** (Communication)- प्रबन्धक का कार्य व्यक्तियों से कार्य करवाना है, इसके लिए उन्हें समय-समय पर आवश्यक आदेश एवं निर्देश देने पड़ते हैं और उनके कार्य पर नियन्त्रण रखना पड़ता है, इसलिए संस्था में प्रभावी संदेशवाहन की व्यवस्था का होना आवश्यक नहीं वरन् अनिवार्य है।

संगठन के आवश्यक कदम या संगठन प्रक्रिया
(Essential Steps in Organisation Process)

एक स्वस्थ संगठन के निर्माण के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाना आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है-

1. **उद्देश्य निश्चित करना** (Determination of Objectives)- सर्वप्रथम संस्था के उद्देश्य निर्धारित किए जाने चाहिए। संस्था के उद्देश्य तर्कसंगत एवं न्यायपूर्ण होने चाहिए और इसके साथ-साथ इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि उन उद्देश्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सके। उदाहरण के लिए, एक यातायात कम्पनी की व्यवस्था एक प्रकाशक अथवा कागज बनाने वाली कम्पनी से भिन्न होगी और इसी प्रकार डेरी उद्योग की सरंचना रेडियो व टेलीविजन उद्योग से भिन्न होगी।

2. **आवश्यक क्रियाएँ निर्धारित करना** (Determining the Essential Activities)- किसी संस्था के उद्देश्य निर्धारित करने के बाद सबसे आवश्यक कार्य उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए की जाने वाली क्रियाओं के निर्धारण करने का है। प्रत्येक कार्य के उद्देश्य, आकार, प्रक ति और उत्तरदायित्व के आधार पर उप-विभाजन कर उनके विभिन्न वर्ग बनाए जाने चाहिए।

3. **क्रियाओं को श्रेणीबद्ध करना** (Grading the Activities)- श्रेणीबन्धन का अर्थ एक विभाग से सम्बन्धित क्रियाओं को प थक-प थक विभागों में विभक्त करना है। वर्गीकरण के प्रारम्भिक आधारों में उत्पादन, क्रय-विक्रय, वित्तीय साधन और कर्मचारी प्रबन्ध आदि उल्लेखनीय है।

4. **उत्तरदायित्व सौंपना** (Assignment of Responsibility)- क्रियाओं का श्रेणीकरण करने के बाद उन्हें कर्मचारियों के सुपुर्द किया जाता है। किसी कर्मचारी को काम देते समय उसकी कार्य के प्रति रूचि और योग्यता का ध्यान रखना चाहिए और यदि वह इसके योग्य नहीं है तो उसे आवश्यक प्रशिक्षण देना चाहिए। इसके बाद सभी कर्मचारियों का उत्तरदायित्व निर्धारित कर देना चाहिए।

5. **अधिकार अन्तरण** (Delegation of Authority)- जिन कर्मचारियों को कर्त्तव्य दिए जाते हैं उन्हे उनसे सम्बन्धित आवश्यक अधिकार भी दिये जाने चाहिए जिससे वे अपने कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन कर सकें और जिन व्यक्तियों से उन्हें काम कराना है उनसे काम करा सकें।

6. **समन्वय** (Co-ordination)- एक सफल संगठन के लिए यह आवश्यक है कि संस्था के सभी विभाग एवं उपविभागों में समन्वय किया जाए।

7. **उचित कार्य के लिए उचित व्यक्ति का चुनाव** (Selection of right man of the right job)- संगठन प्रक्रिया में प्रबन्धकों को यह देखना चाहिए कि सभी कार्यो पर योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति नियुक्त किए जाए। इसके लिए यह

आवश्यक है कि कर्मचारियों का चुनाव निष्पक्ष होना चाहिए और किसी व्यक्ति विशेष को वही कार्य दिया जाना चाहिए जिसे वह अच्छी तरह से पूरा कर सके। इसके लिए कर्मचारियों की तकनीकी योग्यता, रूचि और रूझान पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। (Manager have to find, retain and develop a staff of the people who are highly competent to the jobs assigned to them.)

(8)- कार्य के लिए उचित वातावरण की सुविधा (Providing Right Environment)- प्रबन्धकों को कार्य का उचित वातावरण तैयार करना पड़ता है जैसे उचित एवं सुविधाजनक स्थान पर फैक्टरी लगाना, कर्मचारियों के लिए आवश्यक कच्चा माल, साजो-सामान एवं उपकरणों की व्यवस्था करना और समय-समय पर उनका मनोबल बढ़ाना आदि।

संगठन के सिद्धान्त
(Principles of Organisation)

एक सफल संगठन के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो और जो संगठन अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नही हो पाता उसे असफल संगठन कहते हैं। क्योंकि उसमें कहीं, कोई न कोई दोष अवश्य होता है। संगठन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि संगठन के अपने कुछ निश्चित और स्पष्ट सिद्धान्त होने चाहिए। इस सम्बन्ध में एल॰ उर्विक का कथन उल्लेखनीय है कि "यदि संगठन संरचना सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है तो संगठन का निर्देशन करने वाले व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का निर्माण ही कर सकते है। सिद्धान्तहीन संगठनकर्त्ता संगठन से अपने व्यक्तिगत लाभों की पूर्ति ही करते रहते हैं।

कर्नल लिण्डाल उर्विक (Col. Lyndol Urwick) ने संगठन के निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जो सर्वमान्य एवं सार्वभौमिक माने जाते हैं-

1. **व्याख्या** (Priniciple of Definition or Explanation)- कर्मचारियों के सुचारू रूप से कार्य-संचालन के लिए आवश्यक है कि उनके कर्त्तव्य, दायित्व और अधिकार स्पष्ट होने चाहिए जिससे उन्हें अपने कार्यक्षेत्र का पूरा-पूरा ज्ञान हो जाए। अतः इन सबकी स्पष्ट व्याख्या होना आवश्यक है।

2. **उद्देश्य का सिद्धान्त** (Principle of Objective)- संगठन के निश्चित उद्देश्य होने चाहिए और उनकी सभी क्रियाएँ इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ही की जानी चाहिए। अतः कर्मचारियों को अपने उद्देश्यों के विषय में लेशमात्र भी सन्देह नहीं होना चाहिए अर्थात कर्मचारियों को उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट कर दिए जाने चाहिए।

3. **नियन्त्रण के क्षेत्र का सिद्धान्त** (Principle of Span of Control)- एक बड़े अधिकारी के नियन्त्रण का क्षेत्र उतना ही होना चाहिए जितने क्षेत्र पर वह कुशलापूर्वक एवं प्रभावपूर्ण तरीके से नियन्त्रण कर सके। अतः एक अधिकारी के अधीन इतने अधिक कर्मचारी नहीं होने चाहिए, जिन पर वह अच्छी तरह नियन्त्रण न कर सके अर्थात् नियन्त्रण का क्षेत्र सीमित होना चाहिएं।

4. **अधिकार का सिद्धान्त** (Principle of Authority)- जब किसी व्यक्ति को कोई उत्तरदायित्व दिया जाए तो उसे पूरा करने के लिए उस व्यक्ति को कुछ अधिकार भी दिए जाने चाहिएं। अधिकार और दायित्व एक-दूसरे पर निर्भर हैं और दोनों साथ-साथ चलते हैं, अतः दायित्वों को पूरा करने के लिए अधिकार आवश्यक हैं। (Authority must go together with responsibility)

5. **विशिष्टीकरण का सिद्धान्त** (Principle of Specialisation)- संगठन में विशिष्टीकरण का सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के आधार पर जो व्यक्ति जिस काम को करने के लिए सबसे अधिक योग्य होता है उसे वही काम सुपुर्द किया जाता है। यह सिद्धान्त समय, साधन और माल की बरबादी को रोकने में सहायक सिद्ध होता है।

6. **लोच का सिद्धान्त** (Principle of Flexibility)- संगठन लोचपूर्ण होना चाहिए जिससे उसे आवश्यकता के समय बिना कठिनाई के घटाया-बढ़ाया जा सके, संगठन को कागजी नियन्त्रण और लालफीताशाही से बचने का पूरा-पूरा प्रबन्ध करना चाहिए।

7. **आदेश का सौपानिक सिद्धान्त** (The Scaler Principle)- संगठन की द ष्टि से संस्था के सभी अधिकारी ऊपर से नीचे की ओर एक-दूसरे से सम्बन्धित होने चाहिए। सभी कर्मचारी एवं छोटे अधिकारियों को अपने बड़े अधिकारियों की आज्ञा का पालन करना चाहिए।

8. **उत्तरदायित्व** (Principle of Responsibility or Unity of Command)- सभी बड़े अधिकारियों को अपने अधीन काम करने वाले कर्मचारियों के कार्य के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए।

9. **निरन्तरता का सिद्धान्त** (Principle of Continuity)- संगठन की विधि को व्यवसाय में निरन्तर चालू रखना आवश्यक है। संगठन की क्रियाओं का निर्धारण करते समय हमें वर्तमान आवश्यकताओं के साथ-साथ भविष्य की आवश्यकताओं का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए।

10. **सन्तुलन का सिद्धान्त** (Principle of Balance)- विभिन्न अधिकारी एवं कर्मचारियों के सिद्धान्त सन्तुलित होने चाहिएं, जिससे किसी भी समय उनके कार्यो में टकराव होने की स्थिति पैदा न हो जाए और साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कार्य का दोहरीकरण भी न हो जाए।

11. **समन्वय का सिद्धान्त** (Principle of Co-ordination)- किसी व्यावसायिक संस्था के विभिन्न कार्यो, साधनों और व्यक्तियों की क्रियाओं में समन्वय करना संगठन की क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य है।

कुछ प्रबन्ध शास्त्री एल॰ उर्विक के सिद्धान्तों को परम्परागत सिद्धान्त मानते है, यद्यपि ये सिद्धान्त सार्वभौमिक सिद्धान्त है। आधुनिक प्रबन्ध शास्त्रियों ने संगठन के निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है-

1. सहभागिता का सिद्धान्त (Principle of Joint Decision)- व्यावसायिक संस्था से सम्बन्धित सभी समस्याओं का समाधान करने के लिए सभी प्रबन्धकों को आपस में बैठकर विचार-विमर्श करना चाहिए और उनका हल ढूँढना चाहिए।

2. कार्य क्षमता का सिद्धान्त (Principle of Efficiency)- संगठन का उद्देश्य न्यूनतम साधनों से अधिकतम सन्तुष्टि एवं कार्यकुशलता प्राप्त करना होना चाहिए, अतः सभी साधनों का पूर्ण, सार्थक और मितव्ययतापूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए।

संगठन की विचारधाराएँ
(Organisation Theories)

प्रारम्भ से ही समाज में संगठन का अस्तित्व रहा है लेकिन स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है संगठन का निर्माण किस प्रकार होता है, इसके विकास के क्या क्रम है? संगठन के सदस्य विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार व्यवहार एवं आचरण करते हैं, संगठन तथा उनके सदस्यों का व्यवहार किन-किन बातों से प्रभावित होता है, आदि ऐसी बातें है जिनकी ओर विभिन्न विद्वानों का ध्यान गत दशकों में गया है। इन विद्वानों ने इन परिस्थितियों का तर्कसंगत एवं मान्य उत्तर खोजने का प्रयास किया है। विद्वानों द्वारा दिए गए विभिन्न विचार ही संगठन की विचारधाराएँ कहलाती हैं। संगठन की अनेक विचारधाराएँ विकसित हुई हैं। प्रमुख विचारधाराएँ निम्न प्रकार हैं-

1. परम्परावादी या प्रतिष्ठित विचारधारा (Classical Theory)
2. नव-प्रतिष्ठित विचारधारा (Neo-Classical Theory)
3. आधुनिक विचारधारा (Modern Theory)
4. अन्य विचारधाराएं (Other Theories)

इन विचारधाराओं का संक्षिप्त विवेचन निम्न प्रकार है-

परम्परावादी या प्रतिष्ठित विचारधारा
(Classical Theory)

किसी भी विचारधारा के उद्‌गम और विकास में उसके प्रवर्त्तकों एवं अनुयायियों का द ष्टिकोण महत्वपूर्ण होता है। इस विचारधारा का जन्म एडम स्मिथ के श्रम विभाजन सिद्धान्त से माना जाता है। लेकिन इस विचारधारा को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत

करने वाले विद्वान मूने एवं रैले माने जाते है। जिन्होंने 1931 में अपनी पुस्तक "ऑनवर्ड इण्डस्ट्री" का प्रकाशन किया था। इस विचारधारा को समुन्नत करने का श्रेय टेलर, फेयोल, उर्विक, ऐलन, ई॰ एफ॰ एल॰ ब्रेच आदि को भी दिया जाता है। इस विचारधारा के समर्थकों के अनुसार किसी भी संगठन की नींव चार स्तम्भों पर निर्भर रहती है-

1. **श्रम-विभाजन** (Division of Labour)
2. **सौपानिक एवं क्रियात्मक प्रक्रिया** (Scaler & Functional Process)
3. **संरचना** (Structure)
4. **नियन्त्रण का विस्तार** (Span of Control)

परम्परावादी विचारधारा के समर्थक औपचारिक संगठन को मान्यता प्रदान करते हैं, जिसमें श्रम-विभाजन को उसका सबसे बड़ा महत्वपूर्ण आधार माना जाता है। संगठन की क्रियाओं को इस प्रकार से विभाजित किया जाता है कि इसका अध्ययन शीर्ष से प्रारम्भ होता है। लेकिन विभागीकरण करते समय क्रियात्मक पहलू का भी ध्यान रखा जाता है। टेलर इस विचारधारा के जन्मदाता माने जाते है। परम्परावादी विचारधारा के समर्थक केवल दो ही संरचनाएँ प्रमुख मानते हैं-रेखा संगठन तथा रेखा एवं कर्मचारी संगठन। लेकिन अन्य संगठन संरचनाओं को भी इसमें शामिल कर लिया जाता है। इस विचारधारा में इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि एक प्रबन्धक कितने अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य का प्रभावशाली ढंग से निरीक्षण कर सकता है। उपरोक्त चार बातें इस विचारधारा का स्तम्भ या आधार मानी जाती हैं। इस विचारधारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

परम्परावादी संगठन विचारधारा में औपचारिक संगठन को मान्यता दी जाती है। यह विचारधारा श्रम-विभाजन, उद्देश्य एवं क्रिया तथा उनके मानवीय प्रयासों पर आधारित है। केन्द्रीकरण पर इस विचारधारा में विशेष बल दिया जाता है। इस विचारधारा में कार्य निष्पादन के लिए उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही को माना जाता है। इस विचारधारा की संगठन संरचना व्यक्ति की तुलना में कार्य पर अधिक बल देती है।

इस विचारधारा के समर्थकों ने विभिन्न सिद्धान्तों का भी विकास किया है। प्रमुख सिद्धान्तों की गणना अनेंट डेल ने निम्न प्रकार की है-

1. **उद्देश्य का सिद्धान्त** (Principle of Objective)
2. **समन्वय का सिद्धान्त** (Principle of Co-ordination)
3. **विशिष्टीकरण का सिद्धान्त** (Principle of Specialisation)
4. **निर्देशन की एकता का सिद्धान्त** (Principle of Unity of Direction)
5. **आदेश की एकता का सिद्धान्त** (Principle of Unity of Command)
6. **अधिकार एवं दायित्व का सिद्धान्त** (Principle of Authority and Responsibility)
7. **प्रत्यायोजन का सिद्धान्त** (Principle of Delegation)
8. **नियन्त्रण के विस्तार का सिद्धान्त** (Principle of Span of Control)
9. **सन्तुलन का सिद्धान्त** (Principle of Balance)

आलोचना (Criticism)- प्रतिष्ठित विचारधारा की अनेक आलोचनाएँ भी की जाती है। इस विचारधारा के आलोचकों द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि इस विचारधारा में मात्र औपचारिक संगठन पर ही बल दिया गया है। अनौपचारिक संगठन को कोई महत्व प्रदान नहीं किया गया है। जबकि समाजशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकां ने प्रबन्ध के क्षेत्र में अनौपचारिक संगठन को भी मान्यता प्रदान की है, कुछ विद्वानों का कहना है कि इस विचारधारा में मैकग्रेगर के "एक्स" (X) सिद्धान्तों को लागू किया गया है जबकि उनके "वाई" (Y) सिद्धान्त की मान्यता भी बहुत महत्वपूर्ण है। इस विचारधारा के संगठन में शुद्ध नौकरशाही (bureaucracy) का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, लेकिन इन सब आलोचनाओं के पश्चात भी यह विचारधारा संगठन की प्रक ति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है।

नव-प्रतिष्ठित विचारधारा
(Neo-Classical Theory)

परम्परावादी विचारधारा की आलोचना करने वाले विभिन्न विद्वानों ने अपनी नई विचारधारा प्रस्तुत की, जिसे नव-प्रतिष्ठित या नवीन-परम्परावादी विचारधारा कहा जाता है। इस विचारधारा के अन्तर्गत मानवीय उत्तरदायित्व पर विशेष बल दिया गया है। एल्टन मायो ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर "वेस्टर्न इलैक्ट्रिक कम्पनी" की "हॉथोर्न प्रयोगशाला" में अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षण किए थे, जिनके आधार पर मानवीय तत्व को प्रकाश में लाकर उन्होंने संगठन को एक नया द ष्टिकोण प्रदान किया। एल्टन मायो के अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी इस विचारधारा के विकास में योगदान दिया है जिनमें से आर्गीनिस, बके, लिकर्ट, मैकग्रेगर आदि विद्वानों का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। इस विचारधारा ने जो प्रमुख योगदान दिया, उसमें एक है मानवीय पहलुओं का महत्व तथा दूसरा है अनौपचारिक संगठन की ओर ध्यान। इस विचारधारा के विद्वानों ने श्रम-विभाजन, अभिप्रेरण, समन्वय, नेत त्व आदि के क्षेत्र में मानवीय समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया।

रेखा अधिकारी तथा कर्मचारियों के बीच होने वाले संघर्ष को दूर करने की द ष्टि से नये विचार प्रस्तुत किए तथा यह स्पष्ट किया कि अनौपचारिक संगठन भी व्यावसायिक संगठन की कुशलता एवं उत्पादकता को प्रभावित करता है। इस विचारधारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. व्यक्ति ही समस्त संगठन का आधार है तथा संगठन एक सामाजिक प्रणाली है।
2. कोई भी कर्मचारी पहले मानव है बाद में श्रमिक या प्रबन्धक, अतः उसके साथ मानवीय व्यवहार किया जाना चाहिए।
3 इसने अनौपचारिक संगठन को मान्यता दी।
4. इसके अनुसार प्रबन्ध में संचार प्रक्रिया द्विमार्गीय होनी चाहिए।
5. योजना के निर्माण व निर्णयन में कर्मचारियों की साझेदारी को प्रोत्साहित किया गया।
6. व्यक्तिगत एवं संस्था के लक्ष्यों में समन्वय होना चाहिए, संघर्ष नहीं।
7. प्रत्येक कर्मचारी औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार के संगठनों से प्रभावित होता है।
8. इसने स्थिति एवं भूमिका (Status & role) की संकल्पना को मान्यता दी।
9. यह विचारधारा व्यापक द ष्टिकोण (macro approach) प्रस्तुत करती है।

आलोचना (Criticism) - इस विचारधारा की भी अनेक व्यक्तियों द्वारा कटु आलोचना की गई। इसके आलोचकों का कहना है कि इसमें कोई नई बात प्रस्तुत नहीं की है। जहाँ तक मानवीय सम्बन्धों की बात है उनको अनौपचारिक वर्णात्मक सूचनाओं के अतिरिक्त कोई महत्व नहीं दिया गया है। वास्तव में देखा जाए तो परम्परावादी तथा नवीन-परम्परावादी दोनों ही विचारधाराओं का द ष्टिकोण अपूर्ण एवं संकीर्ण है।

आधुनिक विचारधारा
(Modern Theory of Organisation)

संगठन की आधुनिक विचारधारा का महत्वपूर्ण आधार सैद्धान्तिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण है। इस विचारधारा की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. इसका सैद्धान्तिक विश्लेषणात्मक आधार है।
2. यह परिमाणात्मक विज्ञानों पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है।
3. यह संगठन को प्रणाली मानकर उसके विविध अंगों को विकसित करने का प्रयास करती है।
4. यह संगठन को सम्पूर्ण इकाई मानती है तथा सूक्ष्म द ष्टि (micro approach) से उसका अध्ययन करती है।
5. यह संगठन की भीतरी व बाहरी सभी समस्याओं का अध्ययन करने का प्रयास करती है।
6. यह व्यावहारिक अनुसन्धान के निष्कर्षो को अपना आधार मानती है।

संगठन की आधुनिक एवं परम्परावादी विचारधारा में अन्तर
(Difference between Modern Theory and Classical Theory of Organisation)

1. **क्षेत्र**- संगठन की आधुनिक विचारधारा का क्षेत्र अधिक व्यापक है क्योंकि यह संगठन की आन्तरिक एवं बाहरी समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करती है जबकि परम्परावादी विचारधारा का क्षेत्र संकुचित है क्योंकि यह संगठन की केवल आन्तरिक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करती है।
2. **द ष्टिकोण**- आधुनिक विचारधारा का समष्टि द ष्टिकोण (Macro View) होता है जबकि परम्परावादी विचारधारा का व्यष्टि द ष्टिकोण (Micro-View) होता है।
3. **आधार**- आधुनिक विचारधारा का आधार वैज्ञानिक प्रयोग, अनुसंधान एवं आंकड़े हैं जबकि परम्परावादी विचारधारा का आधार सामान्य सूझबूझ एवं विवेक ही है।
4. **विवरणात्मक**- आधुनिक विचारधारा विवरणात्मक है। इससे इस बात का ज्ञान होता है कि प्रबन्धकों को क्या करना चाहिए जबकि परम्परावादी विचारधारा विवरणात्मक नहीं है इससे इस बात का ज्ञान नहीं होता कि प्रबन्धकों को क्या करना चाहिए?
5. **स्पष्टता**- आधुनिक विचारधारा आधुनिक मान्यताओं के सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट है जबकि परम्परावादी विचारधारा के प्रतिपादक आधारभूत मान्यताओं को परीक्षण तथा निर्देशानुसार निष्कर्ष पर पहुंचाने में अक्षम रहे अतः इसकी मान्यताएँ अस्पष्ट हैं।
6. **परीक्षण**- आधुनिक विचारधारा अधिक तर्कसंगत होने के कारण बड़ी सफलता से तर्क की कसौटी पर परीक्षण योग्य है जबकि परम्परावादी विचारधारा में तर्क के अभाव के कारण परीक्षण करना कठिन होता है।
7. **विचारक या प्रतिपादक**- आधुनिक विचारधारा के प्रतिपादक मुख्य रूप से समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक एवं गणितज्ञ हैं जबकि परम्परावादी विचारधारा के प्रतिपादक मुख्य रूप से प्राचीन अर्थशास्त्री, व्यवसायी, मनोवैज्ञानिक एवं इंजीनियर आदि हैं।

आलोचना (Criticism) - संगठन की आधुनिक विचारधारा ने कोई निश्चित एकीक त सिद्धान्त विकसित नहीं किए हैं। इसके अतिरिक्त यह विचारधारा भी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुई लेकिन यह कहा जा सकता है कि आधुनिक विचारधारा ने वैज्ञानिक विश्लेषण को मान्यता प्रदान की है।

अन्य विचारधाराएँ
(Other Theories):-

1. **व्यवहारवादी विचारधारा** (Behavioural Theory) :- यह विचारधारा इस तथ्य पर आधारित है कि अन्य व्यक्तियों के साथ और उनके द्वारा काम कराना ही प्रबन्ध है। अतः प्रबन्ध में परस्पर व्यक्तिगत सम्बन्धों का केन्द्रीय स्थान होना चाहिए। इस द ष्टि को "मानवीय सम्बन्ध" अथवा "व्यवहारिक विज्ञान" द ष्टिकोण कहा गया है। इस विचारधारा के समर्थक समाजशास्त्री व मनोवैज्ञानिक ज्यादा होते है।
2. **निर्णयन विचारधारा** (Decision Theory) :- इसका प्रतिपादन हरबर्ट साइमन ने किया। उनके अनुसार निर्णय करने वाले व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों को ही संगठन कहते है। यह विचारधारा अत्यन्त संकुचित है, क्योंकि यह संगठन के समस्त दर्शन पर प्रकाश न डालकर केवल उसके एक अंग (निर्णय-प्रक्रिया) पर ही प्रकाश डालती है।

संगठनात्मक संरचना का निर्माण
(Designing the Organisational Structure)

संगठन संरचना का अर्थ
(Meaning of Organisation Structure)

संगठन संरचना अथवा संगठन ढाँचे का अभिप्राय एक संस्था में कार्यरत सभी व्यक्तियों के मध्य संबंधों की स्थापना करने से

है। संगठन संरचना के अन्तर्गत संस्था के उद्देश्य की पूर्ति हेतु की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं के लिए अनेक पदों का निर्माण किया जाता है। और क्योंकि प्रत्येक पद पर व्यक्ति ही कार्य करते हैं इसलिए इसके अन्तर्गत व्यक्तियों के मध्य संबंधों को निश्चित किया जाता है। पदों अथवा व्यक्तियों के मध्य संबंध स्थापित करने का अर्थ यह स्पष्ट करने से है कि संस्था में कार्यरत सभी व्यक्तियों में से कौन किसका अधिकारी अथवा वरिष्ठ है और कौन किसका अधीनस्थ। इस प्रकार कहा जा सकता है कि संस्था के विभिन्न अंगों में संबंध स्थापित करने को ही संगठन संरचना कहा जाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या सभी संस्थाओं में संगठन संरचना का स्वरूप एक जैसा हो सकता है। इसका उत्तर नहीं में ही दिया जाएगा क्योंकि प्रत्येक संस्था में कार्य की प्रक ति एवं उसका आकार अलग-अलग होता है। इसलिए संस्था की इन विशेषताओं के अनुरूप ही संगठन संरचना के डिजाइन अथवा प्रारूप का निर्माण किया जाता है। अतः संगठन संरचना के अनेक प्रारूप हो सकते हैं और एक संस्था में एक बार निर्धारित संगठनात्मक ढाँचे में बदलती परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संगठन संरचना का कोई एक ऐसा प्रमापित प्रारूप नहीं है जिसे सभी संस्थाओं में समान रूप से लागू किया जा सके। इसके अनेक प्रारूप हो सकते हैं। जिनका उल्लेख इस अध्याय में आगे किया गया है।

संगठन संरचना की परिभाषाएँ
(Definitions of Organisation Structure)

1. हर्ले के अनुसार "संगठन ढाँचे एक संस्था में काम करने वाले व्यक्तियों के मध्य संबंधों के स्वरूप होते हैं।"
2. विलियम एच॰ न्यूमैन के अनुसार "संगठन संरचना एक उपक्रम की समस्त संगठनात्मक व्यवस्था से व्यवहार करती है।" उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि संगठन संरचना के अन्तर्गत एक संस्था में पदों को निश्चित किया जाता है और उनके मध्य संबंधों की व्याख्या की जाती है। इस प्रक्रिया में अधिकारों व दायित्वों को विभिन्न पदों के मध्य वितरित कर दिया जाता है।

संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले तत्व
(Factors Affecting Organisation Structure)

संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले घटक निम्नलिखित हैं।

1. **संगठन का आकार** (Size of Organisation)- संगठन संरचना के निर्माण में संगठन के आकार की मुख्य भूमिका रहती है। आकार का अभिप्राय संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या से है। यदि कर्मचारियों की संख्या कम है तो केन्द्रित संगठन अपनाया जा सकता है अर्थात् अधिकारों को एक ही अधिकारी के पास केन्द्रित करके काम चल सकता है। इसके विपरीत, यदि कर्मचारियों की संख्या अधिक है तो विकेन्द्रित संगठन को अपनाना पडेगा अर्थात् ऐसी स्थिति में अधिकारों को एक ही अधिकारी के पास केन्द्रित करके काम नही चल सकता।
2. **नियंत्रण का विस्तार** (Span of Control)- नियंत्रण के विस्तार से अभिप्राय एक अधिकारी के साथ अधीनस्थों की पर्याप्त संख्या से है। कार्य की प्रक ति एवं अधिकारियों की योग्यता को देखते हुए नियंत्रण के विस्तार का निर्धारण किया जाता है और नियंत्रण के विस्तार के आधार पर ही संगठन संरचना का निर्धारण होता है। यदि नियंत्रण का विस्तार कम होगा तो लम्बवत् संगठन ढाँचे का निर्माण किया जाएगा और यदि नियंत्रण का विस्तार अधिक होगा तो समतल संगठन ढाँचे का निर्माण होगा।
3. **संगठन के उद्देश्य** (Objectives of Organisation)- संगठन संरचना पर संगठन के उद्देश्यों का गहरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि संगठन संरचना का निर्माण संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ही किया जाता है।
4. **प्रबंधकीय विशेषताएं** (Managerial Characteristics) - संगठन संरचना प्रबंधकीय द ष्टिकोण से भी प्रभावित होती है यदि उच्च प्रबंधक यह समझते है कि उनके कर्मचारी सुस्त व कामचोर है तो संगठन संरचना ऐसी बनाई जाएगी जिसमें पर्याप्त नियंत्रण व्यवस्था हो। इसके विपरीत यदि उच्च प्रबंधक समझते है कि उनके कर्मचारी लगन से काम करने वाले हैं तो एक स्वतंत्र वातावरण स्थापित किया जाएगा।
5. **मुख्य दीर्घकालीन उद्देश्य** (Main Long-term Goal)- यदि संस्था का दीर्घकालीन उद्देश्य विस्तार करने का है तो केन्द्रीय संगठन ढाँचा अप्रभावी एवं अव्यवहारिक होगा तथा अधिकारियों का विकेन्द्रीयकरण करना ही होगा।

6. **वातावरण** (Environment)- संगठन संरचना पर वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। वातावरण के अन्तर्गत ग्राहकों की रूचि में परिवर्तन प्रतियोगिता का बाजार में प्रवेश करना, कानून एवं राजनैतिक परिवर्तन, आर्थिक परिवर्तन आदि को सम्मिलित किया जाता है। यदि वातावरण अधिक अनिश्चित है तो संगठन में विशेषज्ञ व्यक्तियों की आवश्यकता होगी जो वातावरण का पूर्वानुमान लगा सकें। इसके विपरीत, निश्चित वातावरण में साधारण संगठन संरचना से काम चल सकता है।

7. **प्रयोग की जाने वाली तकनीक** (Technology Used)- यदि संस्था में आधुनिक तकनीक के प्रयोग द्वारा उत्पादन किया जाता है तो अधिक विशिष्टीकरण की आवश्यकता होगी। इसी आधार पर संगठन संरचना का निर्माण किया जाएगा।

8. **कार्य की प्रक ति** (Nature of Work)- संस्था के कार्य की प्रक ति की संगठन संरचना के निर्धारण में मुख्य भूमिका होती है। कार्य की प्रक ति के आधार पर संगठन चार प्रकार के हो सकते हैं।

   (i) सामूहिक लाभ संगठन (Common Benefit Organisation) जैसे- श्रम संघ, व्यापार संघ आदि।

   (ii) व्यावसायिक संस्थाएं (Business Concerns) जैसे- उत्पादन करने वाली कम्पनियाँ, तैयार माल में व्यापार करने वाली कम्पनियाँ, बैंक आदि।

   (iii) सेवा संस्थाएं (Service Organisation) जैसे- बीमा कम्पनी, प्राईवेट अस्पताल, विश्वविद्यालय आदि।

   (iv) सामूहिक कल्याण संस्थाएं (Common Welfare Organisation) जैसे- डाक घर, सरकारी अस्पताल आदि।

उपरोक्त चार प्रकार के कार्यो के लिए संगठन संरचना अलग-अलग होगी। क्योंकि सभी में अधिकार सत्ता के बंटवारे एवं नियंत्रण की अलग-अलग आवश्यकता होती है।

संगठन संरचना के प्रारूप
(Design/ Forms/ Types of Organisation Structure)

संस्था में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों को कुछ कार्य सौंपे जाते हैं और कार्य निष्पादन के लिये आवश्यक अधिकार प्रदान किए जाते हैं। विभिन्न व्यक्तियों को ये अधिकार एवं दायित्व किस प्रकार दिए जाएं, यह प्रत्येक संस्था की कार्य की प्रक ति पर निर्भर करता है। विभिन्न संस्थाओं की कार्य की प्रक ति में अंतर हो सकता है। अतः कार्य की प्रक ति अलग होने के कारण अधिकार एवं दायित्वों को विभक्त करने के ढंग भी अलग होते हैं। अर्थात विभिन्न व्यवसायों की संगठन संरचना अलग-अलग होती है। संगठन संरचना के मुख्य प्रारूप निम्नलिखित है।

1. रेखा संगठन (Line Organisation)
2. रेखा एवं स्टॉफ संगठन (Line & Staff Organisation)
3. क्रियात्मक संगठन (Functional Organisation)
4. समिति संगठन (Committee Organisation)

रेखा संगठन
(Line Organisation)

यह संगठन सबसे प्राचीन व सरल विधि है। जिसे आधुनिक प्रबंध विशेषज्ञों ने कई नामों से पुकारा है। जैसे- सैनिक संगठन, लम्बवत् संगठन, क्रम संगठन, विभागीय संगठन तथा आदर्श संगठन।

इस संगठन को रेखा संगठन इसलिए कहा जाता है। क्योंकि इसमें अधिकार एवं दायित्व ऊपर से नीचे तक एक सीधी रेखा में चलते है। सर्वोच्च अधिकारी मुख्य प्रबंधक होता है जो विभागीय प्रबंधकों को आदेश देता है, विभागीय प्रबंधक अपने-अपने विभाग के सुपरिटैन्डैट को आदेश देते हैं, सुपरिटैन्डैन्ट अपने नीचे काम करने वाले फोरमैन को, और फोरमैन श्रमिकों को आदेश देता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने निकटतम अधिकारी से आदेश प्राप्त करता है और अपने निकटतम अधीनस्थ को आदेश देता है। संस्था में काम करने वाले सभी व्यक्तियों का कोई अधिकारी होता है तो कोई अधीनस्थ, केवल सर्वोच्च एवं निम्नतम पद को छोड़कर। क्योंकि सर्वोच्च पद पर काम करने वाले व्यक्ति का कोई अधिकारी नहीं होता और न ही निम्नतम पद पर

काम करने वाले व्यक्ति का कोई अधीनस्थ। इसको सैनिक संगठन इसलिए कहते हैं क्योंकि सेना में संगठन संरचना का निर्माण इसी आधार पर होता है। सेना के उच्चाधिकारी जनरल द्वारा दिया गया कोई भी आदेश कर्नल, मेजर, कैप्टन, लेफ्टिनेंट द्वारा होता हुआ सैनिकों तक पहुँचता है।

रेखा संगठन की मुख्य विशेषताएँ
(Characteristics of Line Organisation)

रेखा संगठन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

1. आदेश ऊपर से नीचे सीधी रेखा में चलते हैं।
2. शिकायत एवं सुझाव नीचे से ऊपर की ओर सीधी रेखा में चलते हैं।
3. प्रत्येक कर्मचारी को आदेश अपने निकटतम अधिकारी से प्राप्त होते हैं।
4. प्रत्येक कर्मचारी केवल अपने निकटतम अधिकारी के प्रति ही उत्तरदायी होता है।
5. प्रत्येक अधिकारी के अधीनस्थों की संख्या सीमित होती है।
6. अधिकारी सत्ता सर्वोच्च अधिकारी के पास केन्द्रित होती है। संगठन की सफलता अथवा असफलता का पूरा उत्तरदायित्व सर्वोच्च अधिकारी का होता है।

रेखा संगठन के प्रकार
(Types of Line Organisation)

1. शुद्ध रेखा संगठन Pure Line Organisation
2. विभागीय रेखा संगठन Departmental Line Organisation

1. **शुद्ध रेखा संगठन** (Pure Line Organisation) - संरचना के इस प्रारूप की आवश्यकता केवल वहीं पड़ती है जहाँ एक स्तर पर कार्य करने वाले सभी कर्मचारियों की क्रियाएं समान हों। उदाहरण के लिए, एक संस्था में किसी एक विशेष वस्तु का उत्पादन किया जाता है तो सर्वोच्च अधिकारी मुख्य प्रबंधक होगा, इसके नीचे के स्तर पर उत्पादन के उद्देश्य से केवल एक ही प्रबंधक होगा जिसे उत्पादन प्रबंधक कहेंगे अर्थात् विभागीय स्तर पर केवल एक ही विभाग की जरूरत है क्योंकि अन्य सभी क्रियाएं कम महत्वपूर्ण हैं और उनके लिए अलग विभाग बनाने की जरूरत नहीं है। उत्पादन प्रबंधक के नीचे के स्तर पर फोरमैन होगा और उसके नीचे श्रमिक। कार्य की मात्रा अधिक होने पर नियंत्रण की सुविधा के लिए एक से अधिक फोरमैन नियुक्त किए जा सकते हैं जिनके नीचे अलग-अलग श्रमिक समूह कार्य करेंगे। व्यवहार में शुद्ध रेखा संगठन बहुत कम मिलते हैं क्योंकि ऐसे व्यवसाय ही नहीं होते जहाँ सभी क्रियाएँ केवल एक जैसी ही हो।
2. **विभागीय रेखा संगठन** (Departmental Line Organisation) - विभागीय रेखा संगठन में मुख्य प्रबंधक संस्था के सर्वोच्च पद पर होता है और उसके नीचे अनेक विभाग स्थापित किए जाते हैं। विभागों की स्थापना के लिए संस्था के सभी कार्यो को आवश्यक समूहों में विभाजित कर दिया जाता है। जैसे- माल के क्रय एवं उत्पादन का काम उत्पादन विभाग को, लेखांकन एवं वित्त व्यवस्था आदि का काम वित्तीय विभाग को, विक्रय एवं विज्ञापन का काम विपणन विभाग को तथा इसी प्रकार कर्मचारियों को उपलब्ध कराने का काम सेविवर्गीय विभाग को सौंप दिया जाता है। प्रत्येक विभाग का एक मुखिया नियुक्त कर दिया जाता है जिसे विभागीय प्रबंधक कहते हैं प्रत्येक विभाग का कार्य संचालन विभागीय प्रबंधक की देख-रेख में होता है।

रेखा संगठन के गुण एवं दोष
(Evaluation of Line Organisation)

रेखा संगठन के गुण एवं दोष निम्नलिखित है-

रेखा संगठन के गुण
(Merits of Line Organisation)

1. **निर्माण में आसानी**- रेखा संगठन की स्थापना आसानी से की जा सकती है और यह इतना सरल है कि श्रमिक भी इसे आसानी से समझ लेते हैं।
2. **आदेश की एकता**- प्रत्येक अधीनस्थ को एक ही अधिकारी से आदेश प्राप्त होने के कारण सभी काम शीघ्रता एवं कुशलता से पूरे होते हैं।
3. **अधिकारों एवं दायित्वों का स्पष्ट विभाजन**- प्रत्येक कर्मचारी को अपना अधिकारी क्षेत्र स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है और उसे यह भी पता होता है कि अपने कार्य निष्पादन के बारे में वह किसके प्रति उत्तरदायी है।
4. **शीघ्र कार्यवाही**- इस संगठन ढाँचे में सभी निर्णय आसानी से लिए जा सकते हैं। क्योंकि निर्णय लेने वाला प्रायः एक ही व्यक्ति होता है और उसे अपने अधिकार एवं दायित्व का पूरा ज्ञान होता है।
5. **समन्वय**- एक विभाग अथवा एक क्रिया पर एक ही व्यक्ति का अधिकार होने के कारण समन्वय रहता है।
6. **दोषी का पता लगाने में आसानी**- अधिकारी एवं दायित्व स्पष्ट होने के कारण दोषी व्यक्ति का पता लगाकर उसे दण्ड़ दिया जा सकता है।
7. **लोचशीलता**- व्यवसाय का विस्तार होने अथवा अन्य परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर संगठन ढाँचे को आसानी से बदला जा सकता है।
8. **कम खर्चीला प्रारूप**- संगठन के अन्य प्रारूपों की अपेक्षा इसमें प्रशासनिक खर्चे बहुत कम पड़ते हैं।
9. **विकास के अधिक अवसर**- प्रत्येक कर्मचारी को दायित्व के साथ-साथ अधिकार भी सौंपे जाते हैं और वे अपने कार्य के प्रति पूरी तरह जिम्मेदार होते है। अतः वे पूर्ण लगन एवं परिश्रम से अपने कार्य को करते हैं। निर्णय लेने में स्वतन्त्रता होने के कारण अपनी योग्यता को दिखाने एवं विकसित करने का पूरा अवसर मिलता है।
10. **समस्याओं का शीघ्र समाधान**- इस संगठन व्यवस्था में प्रत्येक कर्मचारी का अपने अधिकारी से सीधा संबंध होता है। अतः कोई भी समस्या उत्पन्न होने पर उनसे संपर्क करके तुरंत समस्या को हल किया जा सकता है।

रेखा संगठन के दोष
(Demerits of Line Organisation)

1. **मुख्य व्यक्तियों पर अत्याधिक कार्यभार**- इस संगठन में मुख्य प्रबंधक पर और यदि अनेक विभाग है तो विभागीय प्रबंधको पर ही निर्णय लेने एवं उन्हें लागू करवाने का सारा दायित्व होता है। वे अपने दैनिक कार्यो में इतने अधिक व्यस्त रहते हैं कि उन्हें भविष्य के बारे में सोंचने का मौका ही नहीं मिलता। कार्यभार अधिक होने के कारण कई बार निर्णय भी गलत हो जाते है।
2. **विशिष्टीकरण का अभाव**- प्रत्येक विभागीय प्रबंधक को अपने विभाग के लिए योजनाएं भी बनानी होती है और उन्हें लागू भी करवाना होता है। इसके अतिरिक्त भी व्यवसाय में अनेक जटिलताएं होती है जिनका ध्यान रखना होता है। एक व्यक्ति का ध्यान चारो ओर बंट जाने पर वह किसी भी कार्य का विशेषज्ञ नहीं बन पाता।
3. **अपर्याप्त संदेशवाहन**- इस तरह के संगठन में प्रायः संदेशवाहन ऊपर से नीचे केवल एक ही ओर चलता है। इसका कारण यह है कि अधीनस्थ अपने अधिकारियों को कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं रखते। यदि अधिकारी उन पर गलत निर्णय भी थोंपते हैं तो वे उसे सहर्ष स्वीकार लेते है। इस प्रकार अपर्याप्त संदेशवाहन के कारण संस्था को हानि उठानी पड़ती है।

4. **पहल-क्षमता का अभाव**- इस प्रणाली में अधीनस्थों को अपने अधिकारियों के आदेशों का पालन करना पड़ता है। आदेशों का सख्ती से पालन किए जाने के कारण अधीनस्थ अपने सुझाव नहीं दे पाते और परिणामतः उनमें पहल-क्षमता की कमी आ जाती है।

5. **पक्षपात की संभावना**- जो व्यक्ति अधिकारियों की बात का विरोध नहीं करते, अधिकारी उनको पदोन्नति में प्राथमिक देते है। दूसरी ओर, जो व्यक्ति संस्था के हित में अधिकारियों की बात का विरोध करते है उन्हें अनदेखा कर दिया जाता है। इस प्रकार इस संगठन में पक्षपात की पूरी संभावना रहती है।

6. **अधिक निर्भरता**- इस संगठन की सफलता केवल कुछ ही अधिकारियों पर निर्भर होती है। जब तक ये व्यक्ति संस्था में काम करते रहते है तो काम ठीक चलता रहता है और यदि ये संस्था को छोड देते है तो सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जाता है और संगठन पूरी तरह फेल हो जाता है।

7. **निर्णयों पर एकाधिकार**- संस्था में सभी मुख्य निर्णयों पर कुछ ही व्यक्तियों का एकाधिकार होता है और वे किसी का सुझाव सुनने के लिये तैयार नहीं होते। इस तरह के निर्णयों को लागू करने में कठिनाई आती है।

उपयुक्तता- रेखा संगठन के गुण एवं दोषों का अध्ययन करने के बाद हम कह सकते है कि यह संगठन पद्धति छोटे व्यवसायों के लिए एक वरदान है। बडे व्यवसायों में भी चाहे संगठन के किसी भी विस्त त स्वरूप को अपनाया जाए लेकिन रेखा संगठन किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। यह प्रणाली मुख्यतः निम्न परिस्थितियों में उपयोगी रहती है।

1. जहाँ व्यवसाय का आकार छोटा हो।
2. जहाँ कर्मचारियों की संख्या कम हो।
3. जहाँ व्यवसाय एक ही प्रकार का हो अर्थात् एक ही वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय किया जाता हो।

रेखा एवं स्टॉफ संगठन
(Line & Staff Organisation)

रेखा संगठन का प्रथम प्रारूप 'शुद्ध रेखा संगठन' व्यवहार में बहुत कम देखने को मिलता है जबकि इसके दूसरे प्रारूप 'विभागीय रेखा संगठन' का प्रयोग प्रायः छोटे आकार वाले व्यवसायों में किया जाता है। इस प्रारूप का मुख्य दोष यह है कि इसके अन्तर्गत सोचने एवं वास्तविक कार्य करने का काम एक ही व्यक्ति को करना पड़ता है जिसकी वजह से उसका कार्यभार बढ़ जाता हैं। यही कारण है कि इस संगठन का प्रयोग बड़े आकार वाले व्यवसायों में नहीं किया जाता। इस संगठन की कमियों को दूर करने के लिए ही इसके संशोधित प्रारूप का जन्म हुआ जिसे 'रेखा एवं स्टॉफ संगठन' कहते हैं।

रेखा एवं स्टॉफ संगठन का अर्थ
(Meaning of Line & Staff Organisation)

रेखा एवं स्टॉफ संगठन में रेखा का कार्य तो रेखा संगठन की भांति ही चलता है लेकिन रेखा अधिकारियों के सलाहकार के रूप में स्टॉफ अथवा विशेषज्ञों को भी नियुक्त कर दिया जाता है। रेखा अधिकारियों का कार्य निर्णय लेना होता है और स्टॉफ का कार्य रेखा अधिकारियों को सलाह देना। स्टॉफ अधिकारी अपने-अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं और रेखा अधिकारियों द्वारा अपनी समस्या प्रस्तुत करने पर समस्या का विश्लेषण करके अपनी उपयोगी सलाह देते हैं। इस प्रकार सोचने और वास्तविक कार्य करने का काम अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा करने से रेखा संगठन का मुख्य दोष दूर हो जाता है और फिर संगठन को बड़े व्यवसायों में आसानी से प्रयोग किया जा सकता है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि रेखा अधिकारी स्टॉफ की सलाह को मानने के लिए बाह्य नहीं होते क्योंकि वास्तविक परिणामों के प्रति अंतिम उत्तरदायित्व रेखा अधिकारियों का ही होता है।

रेखा एवं स्टॉफ संगठन की परिभाषाएँ
(Definitions of Line & Staff Organisation)

1. लुईस ए॰ एलेन के अनुसार, "स्टॉफ अथवा कर्मचारी से आशय संगठन के उन अंगों अथवा व्यक्तियों से है जो रेखा अधिकारियों को सलाह एवं सेवा प्रदान किया जाता है।"

2. न्यूमैन के अनुसार, "स्टॉफ कार्य प्रबंधकीय कार्य का वह भाग है जो एक अधिकारी द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को निर्देशों की श्रंखला के बाहर प्रदान करते है।"
3. अर्नेस्ट डेल के अनुसार, "लाइन अधिकारी वे होते है जो व्यवसाय के मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति में प्रत्यक्ष रूप से योगदान देने वाले कार्यो को देखते हैं जबकि स्टॉफ अधिकारी वे होते है जो लाइन अधिकारियों को सलाह तथा विशिष्ट सेवाएं प्रदान करते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि रेखा अधिकारी एक श्रंखला में रहते हुए वास्तविक कार्य निष्पादन के संबंध में अंतिम निर्णय लेते है और स्टॉफ अधिकारी श्रंखला से बाहर रहते हुए उन्हें निर्णय लेने के लिए आधार प्रस्तुत करते हैं।

रेखा एवं स्टॉफ संगठन की विशेषताएँ

1. 'सोचने' व करने का कार्य दो भागों में विभक्त हो जाता हैं। स्टॉफ अधिकारी सोचने का काम करते है और रेखा अधिकारी विचारों को वास्तविकता में बदलने का।
2. रेखा संगठन वाली रेखा ज्यों की त्यों बनी रहती है और विशेषज्ञों की सलाह भी प्राप्त होती रहती है
3. विशेषज्ञों को केवल परामर्श देने का अधिकार होता है और उनके परामर्श को मानना या न मानना रेखा अधिकारियो का काम है।
4. रेखा अधिकारी का अधीनस्थ केवल रेखा अधिकारी का ही अधीनस्थ रहता है उसे स्टॉफ अधिकारी का अधीनस्थ नहीं माना जा सकता है।
5. 'आदेश की एकता' का सिद्धान्त लागू रहता है क्योंकि आदेश केवल एक ही अधिकारी से प्राप्त होते हैं।
6. अधिकारों का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर रहता है।
7. सुझाव एवं शिकायतों का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर होता है।

रेखा एवं स्टॉफ संगठन का मूल्यांकन
(Evaluation of Line and staff Organisation)

रेखा एवं स्टॉफ संगठन के गुण एवं दोष निम्नलिखित हैं-

रेखा एवं स्टॉफ संगठन गुण
(Merit of Line and staff Organisation)

संगठन के इस प्रारूप के मुख्य लाभ निम्नलिखित है-

1. **सुद ढ निर्णय**- इस संगठन में रेखा अधिकारियों द्वारा लिए गए सभी निर्णय श्रेष्ठ होते है क्योंकि सभी निर्णयों का आधार विशेषज्ञों की सलाह होती है।
2. **कुशलता में व द्धि**- रेखा अधिकारियों के कार्यभार का बंटवारा हो जाने के कारण उनकी कुशलता में व द्धि होती है। परिणामस्वरूप वे शीघ्र एवं अच्छे निर्णय लेने लगते हैं।
3. **विशिष्टीकरण सम्भव**- सोंचने और करने के काम दो भागों में बांट देने के कारण स्टॉफ अधिकारी व रेखा अधिकारी दोनो ही अपने-अपने क्षेत्र में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेते हैं।
4. **रेखा संगठन के लाभ**- यह संगठन पद्धति रेखा संगठन पद्धति का ही एक सुधरा हुआ रूप है इसलिए इसमें रेखा संगठन के सभी लाभ उपलब्ध रहते हैं।
5. **अनुसंधान सुविधाएं**- स्टॉफ अधिकारियों को दैनिक कार्यो में व्यस्त नहीं रहना पड़ता बल्कि उनसे रेखा अधिकारी विशेष परिस्थितियों में ही सलाह मांगते है। अतः स्टॉफ अधिकारियों के पास अनुसंधान करने के लिए पर्याप्त समय बच जाता हैं। इस समय में वह नई-नई कार्यविधियों की खोज करके संस्था को लाभ पहुँचाते हैं।

6. **विस्तार की अधिक सम्भावनाएं**- आधुनिक व्यवसाय में कानूनी एवं अन्य जटिलताएं बढ़ती जा रही है। ऐसी परिस्थितियों में व्यवसाय का विस्तार करना कठिन होता है। लेकिन जब किसी संस्था में विशेषज्ञों की सेवाएं उपलब्ध हो तो व्यवसाय का विस्तार करने में कोई कठिनाई नहीं आती।

(7). **उत्पादन लागतों में कमी**- विशेषज्ञ उत्पादन की नई-नई विधियों की खोज करते हैं जिनके द्वारा अच्छा वह अधिक उत्पादन कम से कम लागतों पर किया जा सकता है।

(8). अनुशासन- इस संगठन में आदेश की एकता के कारण अनुशासन में कोई कठिनाई नहीं आती।

रेखा एवं स्टॉफ संगठन के दोष
(Demerits of Line and Staff Organisation)

रेखा एवं स्टॉफ संगठन के मुख्य दोष निम्नलिखित है-

(1). **अधिक प्रशासनिक लागतें**- संगठन के इस प्रारूप में रेखा अधिकारी के साथ प्रायः एक से अधिक विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती है और कई बार तो इनकी सलाह व्यावहारिक न होने के कारण अनुपयोगी सिद्ध होती है। ऐसी स्थिति में इनको रखा जाना बहुत महंगा पड़ता है।

(2). **विशेषज्ञों का उत्तरदायित्व न होना**- विशेषज्ञों के निर्णय की सफलता एवं असफलता से कोई संबंध नहीं होता। इसी बात के प्रभाव में आकर कई बार वे ठोस सलाह नहीं देते।

(3). **रेखा एवं स्टॉफ अधिकारियों में संघर्ष**- एक ओर रेखा अधिकारी यह दावा करते हैं कि संस्था के उद्देश्य प्राप्ति में उनकी मुख्य भूमिका है और विपरीत परिणाम आने पर उत्तरदेयता भी उन्हीं की है। अतः वे संस्था के महत्वपूर्ण अंग है। इसी बात के प्रभाव में आकर रेखा अधिकारी विशेषज्ञों को अपने से छोटे स्तर का कर्मचारी मानने लगते हैं और उनकी सलाह की ओर कोई ध्यान नहीं देते। दूसरी ओर, स्टॉफ अधिकारियों की सलाह को लगातार अनदेखा किए जाने के कारण उनमें पहल-क्षमता में कमी आ जाती है और वे रेखा अधिकारियों की समस्याओं की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं देते। इस प्रकार दोनों वर्ग एक-दूसरे के विरोधी बन जाते है। इस तरह का वातावरण संस्था को विनाश की ओर ले जाता है।

(4). **केवल सैद्धान्तिक परामर्श**- स्टॉफ अधिकारियों का ज्ञान एवं अनुभव सैद्धान्तिक अधिक और व्यावहारिक कम होता है। इस प्रकार वे अपने किताबी ज्ञान के आधार पर ही परामर्श देते है और संस्था की वास्तविक आवश्यकताओं की ओर कोई ध्यान नहीं होता।

(5). **लम्बी निर्णयन प्रक्रिया**- इस संगठन पद्धति में निर्णय प्रक्रिया अनावश्यक रूप से लम्बी हो जाती है। पहले रेखा अधिकारियों के सामने समस्या उत्पन्न होती है, फिर वे समस्या को स्टॉफ अधिकारियों के सामने रखते है और स्टॉफ अधिकारी उस पर विचार-विमर्श करके परामर्श देते हैं। इस प्रक्रिया में काफी समय लग जाता है और कोई बार तो लाभ के अच्छे अवसर हाथ से निकाल जाते हैं।

(6). **अधिकारों की अस्पष्टता**- रेखा एवं स्टॉफ संबंधों में अस्पष्टता बनी रहती है। प्रायः रेखा अधिकारी अपने को वरिष्ठ समझते है और स्टॉफ अधिकारी इस बात का विरोध करते है।

(7). **विशेषज्ञों पर निर्भरता**- कभी-कभी ऐसा भी होता है कि रेखा अधिकारी प्रत्येक कार्य विशेषज्ञों की सलाह से करने के अभयस्त हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि विशेषज्ञों की अनुपस्थिति में रेखा अधिकारी अपने-आप को अपंग महसूस करने लगते है और इस प्रकार उनकी कार्यकुशलता में कमी आ जाती है।

उपयुक्तता- रेखा एवं स्टॉफ संगठन बड़े व्यवसायों के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। कानूनी एवं अन्य जटिलताएं बढ़ जाने के कारण विशेषज्ञों के अभाव में आज व्यवसाय की सफलता की कामना करना मात्र एक स्वप्न ही है। इस संगठन का मुख्य दोष है दोनों प्रकार के अधिकारियों में आपसी संघर्ष। दोनों पक्षों के मध्य संबंधों की स्पष्ट व्याख्या करके इनके आपसी झगड़ों को निपटाया जा सकता है।

क्रियात्मक संगठन
(Functional Organisation)

संगठन के इस प्रारूप के जन्मदाता फ्रेडरिक डब्ल्यू टेलर है। यह प्रारूप पूरी तरह से विशिष्टीकरण के सिद्धांत पर आधारित है और इसके अन्तर्गत विशेषज्ञों की योग्यता का पूरा लाभ उठाया जाता है। रेखा एवं स्टॉफ संगठन में विशेषज्ञों का काम सलाह देना होता है परन्तु संगठन के इस प्रारूप में विशेषज्ञ परामर्श भी देते हैं और निर्णय भी लेते हैं। क्रियात्म्क संगठन में कार्य को छोटे-छोटे भागों मे विभक्त करके प्रत्येक काम एक विशेषज्ञ को सौंप दिया जाता है। इस प्रकार विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त किए जाते हैं।

टेलर ने क्रियात्मक संगठन को इस प्रकार परिभाषित किया है - "क्रियात्मक संगठन में प्रबंध को इस प्रकार विभाजित किया जाता है जिससे सहायक अधीक्षक से लेकर नीचे तक के व्यक्तियों को इतने कम कार्य दिए जाए जितने कि वे आसानी से पूरे कर सकें। यदि संभव हो तो प्रबंध के प्रत्येक व्यक्ति को केवल एक ही महत्वपूर्ण कार्य दिया जाना चाहिए।"

टेलर ने कारखाना प्रबंधक के कार्य को दो उप-विभागों में बांटने का सुझाव दिया है - (i) नियोजन विभाग तथा (ii) उत्पादन विभाग। दोनो विभागों में चार-चार विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाता है। नियोजन विभाग के विशेषज्ञ नियोजन का काम करते हैं और उत्पादन विभाग के विशेषज्ञ उत्पादन कार्यो में सहायता करते हैं।

नियोजन विभाग के विशेषज्ञों के कार्य

1. **कार्यमार्ग लिपिक** :- यह लिपिक निश्चित करता है कि किसी विशेष कार्य को पूरा करने का क्रम क्या होगा अर्थात् किस-किस मार्ग से होकर कार्य को अंतिम रूप दिया जाएगा। इसके द्वारा यह भी निश्चित किया जाता है कि आज क्या करना है और कहाँ करना है।
2. **संकेत कार्ड लिपिक** :- यह लिपिक श्रमिकों के लिए संकेत कार्य तैयार करके उन्हें टोली नायको को सौंप देता है। इन कार्डो में कार्य की प्रक ति, कार्य को करने की विधि, प्रयोग होने वाली सामग्री एवं मशीनों के बारे में सूचनाएँ दी जाती हैं।
3. **समय एवं लागत लिपिक** :- यह लिपिक निश्चित करता है कि एक विशेष कार्य कब प्रारम्भ किया जाएगा और कब समाप्त होगा अर्थात् उसे पूरा करने में कितना समय लगेगा। इसके साथ ही यह भी निश्चित कर दिया जाता है कि उत्पादित वस्तुओं की लागत कितनी आएगी।
4. **अनुशासन अधिकारी** :- अनुशासन अधिकारी यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक कार्य व्यस्थित ढंग से हो रहा है।

उत्पादन विभाग के विशेषज्ञों के कार्य

1. **टोली नायक** :- नियंत्रण के उद्देश्य से श्रमिकों को अनेक समूहों अथवा टोलियों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक टोली का एक नेता नियुक्त किया जाता है। जिसे टोली नायक कहते हैं। इसका मुख्य कार्य यह सुनिश्चित करना है कि श्रमिक एवं मशीनें दोनो उत्पादन करने की स्थिति में है और उनके प्रयोग में आने वाली आवश्यक सामग्री उनको उपलब्ध करा दी गई है।
2. **गति नायक** :- गति नायक का काम यह देखना है कि सभी श्रमिक अपना-अपना काम निर्धारित गति से कर रहे है अथवा नहीं, यदि कार्य धीमी गति से हो रहा है, तो गति नायक धीमी गति के कारण जानकर उनकी समस्या का समाधान करता है।
3. **मरम्मत नायक** :- मरम्मत नायक का काम मशीनों तथा औजारों को काम करने योग्य हालत में बनाए रखना होता है।
4. **निरीक्षक** :- यह उत्पादित वस्तुओं की किस्म की जाँच करता है और प्रमापित किस्म से मिलाप करके अंतर का पता लगाता है। विपरीत अंतर आने पर सुधारात्मक कार्यवाही करता है।

क्रियात्मक संगठन की विशेषताएँ
(Characteristics of Functional Organisation)

क्रियात्मक संगठन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है-

1. इस संगठन की प्रथम विशेषता विशेषज्ञों को परामर्श के साथ-साथ आदेश देने के अधिकारों का होना है।
2. कार्य का विभाजन आठ समूहों में कर दिया जाता है जिससे विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं।
3. इस संगठन में कारखाने के संपूर्ण कार्य को नियोजन एवं उत्पादन दो भागों में बांट दिया जाता है।
4. इस संगठन में 'आदेश की एकता' के सिद्धांत की अवहेलना की जाती है।

क्रियात्मक संगठन के गुण एवं दोष
(Evaluation of Functional Organisation)

क्रियात्मक संगठन के गुण एवं दोष हैं:-

क्रियात्मक संगठन के गुणः-
(Merits of Functional Organisation)

1. **विशेषज्ञों के ज्ञान का पूरा प्रयोग** :- प्रत्येक कार्य को उस कार्य के विशेषज्ञ व्यक्तियों को सौंपा जाता है। वह अपना पूरा ज्ञान एवं अनुभव दाव पर लगा देता है क्योंकि उसको पता है कि उसका निर्णय लागू किया जाएगा। इस प्रकार विशेषज्ञों का पूरा प्रयोग संभव होता है।
2. **कार्यकुशलता में व द्धि** :- श्रमिकों को अनेक विशेषज्ञों से आदेश मिलने के कारण कुछ भी सोचना नहीं पड़ता। इस प्रकार कार्यभार में कमी आती है और परिणामतः उनकी कुशलता में व द्धि होती है।
3. **अधिक उत्पादन संभव** :- क्रियात्मक संगठन में विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होने के कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव होता है, जिससे बड़े पैमाने पर उत्पादन के लाभ प्राप्त होते हैं।
4. **श्रेष्ठ संगठन** :- एक फोरमैन की जगह अनेक विशेषज्ञ कर्मचारियों को नियुक्त करने और उनको भी मानसिक एवं कार्यकारी कार्य के आधार पर अलग-अलग करने से काम को ज्यादा अच्छी तरह किया जा सकता है।
5. **अधिक लचीलापन** :- व्यवसाय का विस्तार अथवा संकुचन होने पर संगठन के ढाँचे को कारोबार की प्रक ति के अनुसार सरलता से घटाया अथवा बढ़ाया जा सकता है।
6. **प्रशिक्षण में आसानी** :- संस्था में कार्य करने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रायः एक की कार्य करता है इसलिए उसे प्रशिक्षण देने में आसानी रहती है।

क्रियात्मक संगठन के दोषः-
(Demerits of Functional Organisation)

1. **आदेश की एकता के सिद्धान्त का उल्लंघन** :- इस संगठन में प्रबंध के एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त का उल्लंघन किया जाता है। एक ही श्रमिक को एक समय पर अनेक अधिकारियों से आदेश प्राप्त होते है जिसके कारण वह यह नहीं समझ पाता कि किसके आदेश को प्राथमिकता दे। इसी उलझन के कारण उसकी कार्यक्षमता कम हो जाती है।
2. **समन्वय का अभाव** :- अनेक कार्यात्मक विशेषज्ञों की सहायता लिए जाने के कारण समन्वय में कठिनाई रहती है।
3. **उत्तरदायित्व निश्चित करने में कठिनाई** :- विपरीत परिणाम आने पर उच्च प्रबंध के लिए उत्तरदायित्व निश्चित करना कठिन हो जाता है। प्रत्येक विशेषज्ञ अपनी कमजोरी को अन्य लोगों पर डाल कर उत्तरदायित्व से बचने का प्रयास करता है।

4. **पेचीदा प्रक्रिया** :- कार्य को अनेक भागों एवं उप-विभागों में बांटना अपने-आप में एक बहुत कठिन प्रक्रिया है।
5. **विशेषज्ञों में संघर्ष** :- एक ही स्तर के अनेक कर्मचारी होने के कारण उनमें अक्सर झगड़े रहते है। सभी अपने-आप को दूसरे से श्रेष्ठ मानते है और कोई किसी की नहीं मानता।
6. **खर्चीली पद्धति** :- अनेक नायकों की नियुक्ति किए जाने के कारण प्रशासनिक खर्चे बढ जाते है जबकि उनका प्रतिलल इतना नही मिल पाता। विशेषकर छोटे व्यवसायों के लिए यह पद्धति बिल्कुल अनुपयुक्त है।
7. **अनुशासन ढीला पड़ जाता है** :- एक ही कार्य पर अनेक व्यक्तियों का नियंत्रण होने के कारण जिम्मेदारी में कमी आ जाती है। जिम्मेदार कर्मचारियों की कमी के कारण अनुशासनहीनता बढ़ती है।

उपयुक्तता :- यह संगठन बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाली व्यावसायिक संस्थाओं के लिए जहाँ विशेषज्ञों की सेवाएं आवश्यक हो तथा उच्च-स्तरीय प्रबंध कार्य के विभाजन के लिए उपयोगी है।

समिति संगठन
(Committee Organisation)

समिति संगठन संगठनात्मक ढाँचे का कोई ऐसा प्रारूप नहीं है जिसको स्वंतत्र रूप से लागू किया जा सके अर्थात् इसको एक नियमित एवं स्वतंत्र संगठन के प्रारूप की तरह लागू नहीं किया जा सकता। इसका प्रयोग तो संगठन के अन्य नियमित प्रारूपों को सहयोग प्रदान करने के उद्देश्य से किया जाता है।

न्यूमैन के अनुसार, "समिति व्यक्तियों का एक समूह होती है, जो किसी प्रशासनिक कार्य को करने के लिए विशेष रूप में बनाई जाती है।"

टैरी के अनुसार, "समिति चुने हुए या नियुक्त किए गए व्यक्तियों की एक इकाई है जो अपने सामने आने वाली समस्याओं पर संगठित रूप से विचार-विमर्श करने के लिए मिलती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि समिति कुछ व्यक्तियों का समूह है जो प्रशासनिक कार्यो में उपस्थिति होने वाली समस्याओं को आपसी विचार-विमर्श के आधार पर सुलझाते हैं।

समितियों के प्रकार
(Type of Committees)

व्यावसायिक संगठन में मुख्यतः चार प्रकार की समितियों का गठन किया जाता है।

1. **परामर्शदाता समिति** :- जब समिति के पास केवल स्टॉफ अथवा विशेषज्ञों के अधिकार हो तो इसे परामर्शदाता समिति कहते हैं। इस समिति में विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है और वे आपसी विचार-विमर्श के बाद निर्णय लेते हैं। इनको निर्णय लागू करवाने का अधिकार नहीं होता।
2. **कार्यकारी समिति** :- जिस समिति के पास निर्णय लेने व उसे लागू करवाने के अधिकार होते है उसे कार्यकारी समिति कहते हैं। कम्पनी संगठन में संचालक मण्डल कार्यकारी समिति का एक उदाहरण है। संचालक मण्डल के सदस्य जो भी निर्णय लेते हैं वे उन्हें मुख्य प्रबंधक के माध्यम से लागू करवाते हैं।
3. **संयुक्त सलाहकार समिति** :- इस समिति में श्रमिकों एवं प्रबंधकों के प्रतिनिधि मिलकर पारस्परिक हित के मामलों में विचार-विमर्श करके आपसी संबंधों को मधुर बनाते है।
4. **विशेष उद्देश्य समितियां** :- जो समितियां विशेष उद्देश्यों के लिए स्थापित की जाती हैं उन्हे विशेष उद्देश्य समितियां कहते है। जैसे- बजट समिति, वेतन समिति, वित्तीय सलाहकार समिति आदि।

समिति संगठन का मूल्यांकन
(Evaluation of Committee Organisation)

इस समिति के गुण व दोष निम्नलिखित हैं-

समिति संगठन के गुणः-
(Merits of Committee Organisation)

1. **सुद ढ़ निर्णय** :- समिति के सदस्यो द्वारा पूर्ण विचार-विमर्श के साथ निर्णय लिए जाते हैं। अतः सभी निर्णय संतुलित, विवेकपूर्ण एवं न्यायसंगत होते हैं।
2. **समन्वय** :- समितियां संस्था की सभी गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखती है और उनमें समन्वय स्थापित करने में सहायक होती हैं।
3. **संदेशवाहन में आसानी** :- समिति संगठन में सभी व्यक्ति एक जगह इकट्ठे होकर विचार-विमर्श करते हैं इसलिए वे एक-दूसरे के विचारों की जानकारी शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं।
4. **अधिकारों का विकेंद्रीयकरण** :- समिति संगठन में अधिकार किसी एक व्यक्ति के पास न होकर अनेक व्यक्तियों के पास होते है। इसलिए समिति का कोई भी सदस्य हितों की उपेक्षा नहीं कर सकता।
5. **अनेक नए विचारों का विकास** :- जब अनेक व्यक्ति इकट्ठे बैठकर विचार-विमर्श करते है तो अनेक नई बातें सामने आती हैं। अधिक अनुभवी सदस्य नए विचारों में संशोधन करके उनको व्यावहारिक बनाने में सहायता करते हैं।
6. **जोखिम भरे निर्णय** :- कुछ निर्णय अधिक जोखिम वाले होते हैं और कोई भी अकेला व्यक्ति उनको लेने में घबराता है जबकि संयुक्त दायित्व होने के कारण समिति में इस तरह के निर्णय आसानी से ले लिए जाते हैं।
7. **प्रशिक्षण में सुविधा** :- समितियों में नए एवं पुराने सभी सदस्य भाग लेते है। पुराने सदस्यों के तर्क-वितर्क को सुनकर नए सदस्यों के ज्ञान में व द्धि होती है और कुछ समय के बाद वे भी अपने ठोस विचार प्रस्तुत करने लगते है। इस प्रकार समितियां नए सदस्यों को प्रशिक्षण देने का एक अच्छा माध्यम हैं।
8. **स्थिरता** :- समिति के किसी सदस्य के रिटायर होने या अन्य कारण से सदस्यता छोड देने पर समिति का अस्तित्व ज्यों का त्यों बना रहता है। एक सदस्य के जाने पर किसी अन्य सदस्य को मिलाकर समिति के सदस्यों की संख्या पूरी कर ली जाती है।
9. **निर्णयों को लागू करने में सुविधा** :- निर्णय लेने में उन सभी सदस्यों की राय भी ली जाती है जिनके द्वारा उन्हें लागू किया जाना है। इसलिए निर्णयों को लागू करने में कोई कठिनाई नहीं आती।
10. **सामूहिक हितों का प्रतिनिधित्व** :- समितियों में प्रायः सभी विभागों के सदस्य भाग लेते हैं इसलिए किसी विशेष विभाग की ओर कोई ध्यान न देकर, सामूहिक हितों को महत्व दिया जाता है।

समिति संगठन के दोषः-
(Demerits of Committee Organisation)

1. **निर्णयों में देरी** :- यह ठीक है कि समिति में अनेक व्यक्तियों की राय से ठोस निर्णय लिए जाते हैं लेकिन कई बार एक ही बात को लेकर अनावश्यक वाद-विवाद होता रहता है जिसके कारण निर्णय लेने में देरी हो जाती है। कई बार निर्णय लेते-लेते लाभ के अच्छे अवसर हाथ से निकल जाते हैं।
2. **खर्चीला संगठन** :- समिति संगठन सबसे खर्चीली पद्धति है। समिति में अनेक ऐसे सदस्य होते हैं जिनका पारिश्रमिक बहुत अधिक होता है लेकिन उनका कोई भी दैनिक कार्य नहीं होता। इसके अतिरिक्त सदस्यों को एक स्थान पर एकत्रित करने और किसी विषय पर अंतिम निर्णय न होने पर बार-बार सभाए बुलाने में काफी व्यय होता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि समिति संगठन द्वारा लिए गए निर्णय बहुत महंगे पड़ते है।

3. **उत्तरदायित्व निश्चित करने में कठिनाई** :- समिति द्वारा लिए गए किसी निर्णय के विपरीत परिणाम आने पर किसी भी व्यक्ति को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। सभी व्यक्ति एक-दूसरे का दोष निकालने का प्रयास करते है।

4. **गोपनीयता का अभाव** :- समिति में अनेक सदस्यों का हस्तक्षेप होने के कारण निर्णयों में गोपनीयता का अभाव रहता है। कई बार महत्वपूर्ण निर्णयों की जानकारी बाहरी संस्थाओं को हो जाने पर संस्था को हानि उठानी पड़ती है।

5. **लोकतंत्रता का अभाव** :- प्रायः समिति संगठन के बारे में यह धारणा होती है कि यह एक लोकतांत्रिक संगठन है। लेकिन इनमें कुछ ही वरिष्ठ सदस्यों का प्रभुत्व होने के कारण हर बात उन्हीं की मानी जाती है। अन्य सदस्य केवल मूक दर्शक बन कर ही बैठे रहते हैं और यदि वे कुछ बोलते हैं तो उनके विचारो को अनदेखा कर दिया जाता है। इस प्रकार समितियों में लोकतंत्रता का अभाव रहता है।

6. **पहल-भावना की कमी** :- प्रायः समिति के कुछ ही सदस्य प्रभावपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता रखते हैं जबकि उनके द्वारा लिए गए निर्णयों के अच्छे परिणाम आने पर श्रेय सभी सदस्यों को जाता है। ऐसी स्थिति में श्रेय अन्य सदस्यों को जाने के कारण वे भी निर्णय लापरवाही से लेने लगते हैं। इस प्रकार सभी सदस्यों में पहल-भावना की कमी आ जाती है।

7. **प्रबंधकीय विकास के विरूद्ध :-** समितियां स्थापित किए जाने से प्रबंधकों का विकास रूक जाता है। क्योंकि वे हर छोटे-बड़े निर्णयों के लिए समिति पर निर्भर हो जाते हैं और स्वयं कुछ भी सोच-विचार नहीं करते। इसके फलस्वरूप विपरीत परिणाम आने पर प्रबंधक अपनी कमजोरियों पर पर्दा डालते हुए सारी जिम्मेदारी समिति पर डालने का प्रयास करते हैं।

8. **दैनिक कार्यों पर कम ध्यान :-** प्रायः समितियों के सदस्य विभागीय प्रबंधक ही होते हैं और यदि एक प्रबंधक को एक ही समय पर अनेक समितियों का सदस्य बना दिया जाए तो वह अपने विभाग के दैनिक कार्यों की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सकेंगे।

समिति संगठन के गुण एवं दोषों का अध्ययन करने पर हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यदि समितियों में अनावश्यक वाद-विवाद को समाप्त कर दिया जाए और प्रत्येक सदस्य को अपने विचार प्रकट करने का मौका दिया जाए तो ये उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

समिति संगठन को प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यक सुझावः-

1. **न्यूनतम सदस्य** :- समिति की सदस्य संख्या बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए। यद्यपि सदस्य संख्या की कोई निश्चित सीमा नहीं है फिर भी 3 या 4 सदस्यों का अधिक होना प्रभावी होता है। अधिक सदस्य अनावश्यक वाद-विवाद में समय व्यर्थ करते हैं। जिससे निर्णय लेने में देरी होती है अतः समिति की सदस्यता को न्यूनतम रखने का प्रयास करना चाहिए।

2. **सदस्यों का सही चयन** :- समिति की सफलता सदस्यों के सही चयन पर निर्भर करती है। सदस्यों का चयन सिफारिश के आधार पर न करके योग्यता के आधार पर करना चाहिए। सदस्यों में विचार-विमर्श करने की क्षमता होनी चाहिए।

3. **स्पष्टतः परिभाषित अधिकार** :- समिति के अधिकार स्पष्ट रूप में परिभाषित कर देने चाहिएं। ताकि सदस्य अपने अधिकारों का उचित प्रयोग कर सकें।

4. **कुशल अध्यक्ष** :- वैसे तो समिति के सभी सदस्य कुशल होने चाहिएं लेकिन अध्यक्ष का कुशल होना अधिक जरूरी है। एक कुशल अध्यक्ष वार्तालाप को अनावश्यक लम्बा खींचने से रोकता है और सभा को व्यवस्थित ढंग से चलाता है।

5. **एक स्तर के सदस्य** :- समिति के सभी सदस्य एक ही स्तर के होने चाहिएं ताकि सभी खुलकर विचार-विमर्श कर सकें।

6. **संस्थागत हितो को अधिक महत्व** :- सदस्यों को चाहिए कि एक विभाग को अधिक महत्व न देकर पूरी संस्था के हित को देखें।

7. **पूर्ण सह-भागिता** :- एक अच्छी समिति में पूर्ण सहभागिता का गुण पाया जाता है। अर्थात् सभी सदस्यों को बोलने का पूरा अधिकार होना चाहिए और किसी सदस्य के विचारो को अनदेखा नहीं करना चाहिए।

8. **पर्याप्त तैयारी** :- सभा की सूचना सभी सदस्यों को कुछ समय पूर्व मिल जानी चाहिए। सूचना में यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि सभा में किन विषयों पर विचार किया जाएगा ताकि सदस्य संबंधित विषय पर पहले से ही तैयारी करके आएं।

उपयुक्तता:- समिति संगठन एक स्वतंत्र संगठन ढाँचे का काम नहीं कर सकता बल्कि किसी स्वतंत्र संगठन ढाँचे की सहायता करने के लिए इसकी स्थापना की जाती है। बड़े व्यवसायों में नियोजन करनें नियंत्रण करने एवं विभागीय समस्याओं को सुलझाने के लिए इस संगठन का प्रयोग करना अधिक उपयोगी रहता है।

अध्याय–4
अधिकार
(Authority)

प्रबन्धकों का मुख्य काम वास्तव में स्वयं कार्य न करके दूसरों से कार्य कराना है। यह तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि प्रबन्धकों को दूसरों से कार्य कराने के लिए पर्याप्त अधिकार प्रदान न किए जाएँ। पर्याप्त अधिकारों के अभाव में कोई भी प्रबन्धक अपने अधीनस्थों से सफलतापूर्वक कार्यो का निष्पादन नहीं करा सकता।

प्रबन्ध के क्षेत्र में अधिकार (सत्ता) से आशय संगठन के लक्ष्यों के निष्पादन हेतु अपने अधीनस्थों को आदेश देने तथा उनके पालन करवाने के अधिकार से है। विभिन्न विद्वानों ने अधिकार को निम्न प्रकार परिभाषित किया है :-

हेनरी फेयोल के अनुसार, "आदेश प्रदान करने का अधिकार तथा आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य करने की शक्ति को अधिकार कहते हैं।"

जार्ज आर॰ टैरी के अनुसार, "वह शक्ति जो अन्य व्यक्तियों को पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त समझे जाने वाले कार्यो को करने के लिए बाध्य करती है।"

हरबर्ट ए॰ साइमन के अनुसार, "अधिकार निर्णय लेने एवं अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं को मार्गदर्शित करने की शक्ति है। यह दो व्यक्तियों के मध्य उच्चाधिकारी एवं अधीनस्थ का संबंध है। उच्चाधिकारी निर्णय लेते है एवं इस आशा व विश्वास के साथ उनका संवहन करते हैं कि अधीनस्थ उनका पालन करेंगे। अधीनस्थों के क्रियाकलाप ऐसे निर्णयों से ही निर्धारित होते हैं।"

अधिकार के लक्षण
(Features of Authority)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर अधिकार (सत्ता) के निम्न लक्षण प्रतीत होते हैं :-

1. अधिकार से आशय है अपने अधीनस्थों को आदेश देने, उनकी क्रियाओं को निर्देशित करने एवं उनसे आज्ञा पालन करने का अधिकार।
2. अधिकार में निर्णय लेने का अधिकार शामिल है क्योंकि एक प्रबन्धक तभी आदेश दे सकता है जब वह यह निर्णय ले कि उसके अधीनस्थों ने क्या करना है और क्या नहीं करना है।
3. इसमें अधीनस्थों को निश्चित विधि से कार्य करने के लिए बाध्य किया जा सकता है।
4. अधिकार का प्रयोग संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है।
5. अधिकार वैध शक्ति (Legitimate Power) है जो संगठन के नियमों, विधियों एवं व्यवहारों (Practices) से प्राप्त होती है।
6. अधिकार व्यक्ति के पद एवं संगठन में उसकी स्थिति से जुड़ा हुआ होता है।
7. अधिकार में दण्ड देने अथवा पुरस्कार देने का अधिकार भी सम्मिलित है ताकि अधीनस्थ से सौंपे गए कार्य को पूरा कराया जा सके।
8. अधिकार का लागू होना उच्चाधिकारी एवं अधीनस्थ के व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करता है।

अधिकार और शक्ति में अन्तर
(Distinction between Authority and Power)

कभी-कभी ये दोनों शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त किए जाते हैं परन्तु इन दोनों में पर्याप्त अंतर है। अधिकार (Authority) से आशय दूसरे को आदेश देने के अधिकार (Right) से है। जबकि शक्ति (Power) से आशय आदेश देने की योग्यता अथवा क्षमता से है। आदेश देने के अधिकार का अर्थ यह नहीं है कि आदेश देने वाले में आदेश देने की क्षमता भी अवश्य ही हो। इसी प्रकार बहुत से व्यक्तियों में आदेश देने वाले में आदेश देने व मनवाने की क्षमता तो होती है परन्तु उन्हें आदेश देने के अधिकार नहीं होते। इन दोनों में अन्तर को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :-

	अंतर का आधार	अधिकार (Authority)	शक्ति (Power)
1.	अर्थ (Meaning)	अधिकार से आशय दूसरे व्यक्तियों को आदेश देने के अधिकार से है।	शक्ति से आशय दूसरे व्यक्तियों को आदेश देने की योग्यता या क्षमता (Capacity) से है।
2.	क्षेत्र (Scope)	इसका क्षेत्र शक्ति की तुलना में संकुचित है क्योंकि यह अन्य व्यक्तियों की स्वीक ति पर निर्भर है।	इसका क्षेत्र व्यापक है क्यों इसमें दूसरे व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार बदला जा सकता है।
3.	प्रक ति (Nature)	यह संगठनात्मक संबंधों से उत्पन्न होते हैं।	यह व्यक्ति द्वारा स्वयं अर्जित की जाती है।
4.	वैधानिकता (Legitimacy)	यह वैध अधिकार है जो संस्था के नियमों, नीतियों, सिद्धांतों, प्रक्रियाओं, आदि से उत्पन्न होते हैं।	यह वैध होनी आवश्यक नहीं है।
5.	औपचारिक एवं अनौपचारिक (Formal and Informal)	यह संस्था के औपचारिक ढाँचे का अंग होते हैं और इसके बाहर विद्यमान नहीं होते।	यह संस्था के औपचारिक ढाँचे के बाहर भी विद्यमान हो सकती है।
6.	विद्यमानता (Existence)	यह पद (Position) में स्थित होते हैं।	यह व्यक्ति में स्थित होती है।
7.	भारार्पण (Delegation)	इसका भारार्पण किया जा सकता है क्योंकि इनकी उत्पत्ति पद से होती है व यह अव्यक्तिगत होते हैं।	इसका भारार्पण नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह व्यक्तिगत है।
8.	संगठन चार्ट (Organisation Chart)	इन्हें संगठन चार्ट के द्वारा जाना जा सकता है।	इसे पाए जाने का स्थान निश्चित नहीं है क्योंकि यह किसी भी व्यक्ति में पाई जा सकती है।
9.	परिभाषित किया जाना आसान (Easy to Define)	इसे परिभाषित किया जाना एवं समझना आसान है क्योंकि यह गतिशील नहीं है।	इसे परिभाषित किया जाना एवं समझना कठिन है क्योंकि यह गतिशील, लोचशील एवं मापन के अयोग्य है।
10.	उत्तरदायित्व के साथ पाया जाना (Co-existence with Responsibility)	अधिकार व उत्तरदायित्व साथ-साथ विद्यमान रहते हैं।	शक्ति तथा उत्तरदायित्व का सह-विद्यमान रहना आवश्यक नहीं है।

अधिकार के स्त्रोत
(Sources of Authority)

अधिकार कहाँ से प्राप्त होते हैं एवं इनका उद्‌गम स्त्रोत क्या है इसके विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। इस संबंध में निम्न विचारधाराएँ प्रचलित हैं :-

(i) **औपचारिक अधिकार की विचारधारा** (Formal Authority Theory) - इस विचारधारा के अनुसार अधिकार संस्था के सर्वोच्च शिखर से प्रवाहित होते हुए निम्न स्तर तक पहुँचते हैं। किसी भी संस्था में सर्वोच्च अधिकारों का निवास इसके अंशधारियों में होता है। अंशधारियों से यह अधिकार संचालक मंडल को प्राप्त होते हैं, संचालक मंडल से मुख्य प्रबंधक को, मुख्य प्रबंधक से विभागीय प्रबंधकों को प्राप्त होते हैं जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है :-

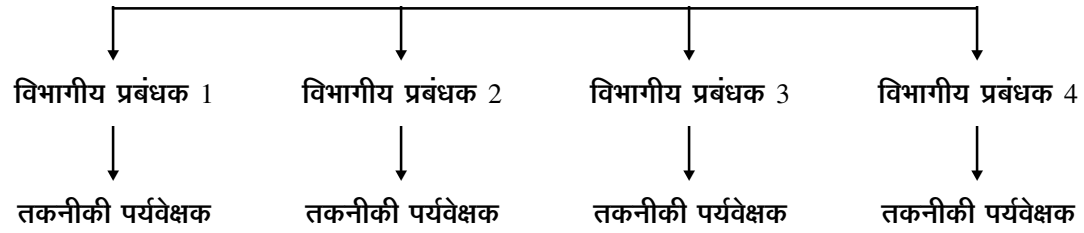

अधिकारों के उपरोक्त प्रवाह को शीर्ष-निम्न अधिकार (Top-down authority) कहते हैं। इस विचारधारा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने पद के अनुसार अपने से उच्चाधिकारी से अधिकार प्राप्त होते हैं। वास्तविक अधिकार के सर्वोच्च शिखर पर होते हैं जहाँ से यह नीचे की तरफ प्रवाहित होते हैं। अधिकारों के प्रवाहित होने का कारण यह है कि विभिन्न स्तर पर प्रबंधक उन्हें दिए गए कार्य को करवाने के लिए उत्तरदायी होते हैं जिसके लिए उन्हें अधिकारों की आवश्यकता होती है। अतः इस विचारधारा में अधिकार तथा उत्तरदायित्व साथ-साथ चलते हैं।

(ii) **अधिकारों की स्वीकार्य विचारधारा** (Acceptance Theory of Authority) - व्यवहारवादी विचारक, जिनमें रॉबर्ट टैननबॉम तथा चेस्टर बर्नार्ड प्रमुख हैं औपचारिक अधिकारों की विचारधारा को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार औपचारिक अधिकार केवल नाम-मात्र के होते हैं, वास्तविक नहीं। औपचारिक अधिकार वास्तविक तो उसी समय बन जाते हैं जब अधीनस्थ उसे स्वीकार करें। अतः अधिकारों का वास्तविक स्त्रोत आदेश देने वाला अधिकारी नहीं बल्कि आदेश पालन करने वाला अधीनस्थ होता है।

टैननबाम के अनुसार, "किसी व्यक्ति के पास औपचारिक अधिकार हो सकते हैं, लेकिन यह अधिकार उस समय तक व्यर्थ ही होंगे जब तक कि उनका प्रभावशाली ढंग से प्रयोग न किया जा सके तथा अधिकारों के प्रभावशाली प्रयोग के लिए अधीनस्थों की स्वीक ति आवश्यक होती है।"

बर्नार्ड के अनुसार भी अधिकारों की स्थापना के लिए अधीनस्थों की स्वीक ति आवश्यक होती है। उनके अनुसार "जब कोई आदेश जो एक व्यक्ति को दिया गया है, उसके द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो इस आदेश की सत्ता उसके ऊपर स्थापित हो जाती है।" (If an order is accepted by one to whom it is addressed, its authority for him is confirmed or established)।

बर्नार्ड के मतानुसार अधीनस्थ आदेशों को तभी स्वीकार करेगा जबकि (i) वह उस आदेश को समझता हो, (ii) जब उसे विश्वास हो कि आदेश संस्था के लक्ष्यों के अनुरूप है, (iii) जब वह आदेश को पूरा करने में सक्षम हो। टैननबॉम के अनुसार, "अधीनस्थों द्वारा आदेशों का पालन उसी स्थिति में किया जाएगा जबकि उन्हें 'स्वीकार' करने से उत्पन्न लाभ और 'अस्वीकार' करने से उत्पन्न हानियों का कुल योग स्वीकार करने से उत्पन्न हानियों और 'अस्वीकार' करने से उत्पन्न लाभों के कुल योग से अधिक हो। विपरीत स्थिति में आदेशों को अस्वीकार कर दिया जाता है।"

अतः इस विचारधारा के अनुसार अधिकार अधीनस्थों पर निर्भर करते हैं क्योंकि वे प्रबंधकों के आदेशों को अस्वीकार

कर सकते हैं। अन्य शब्दों में, अधिकार इसे धारण करने वाले व्यक्तियों में निहित नहीं होते हैं। वरन् इसे स्वीकार करने में निहित होते हैं। अतः अधिकारों का जन्म अधीनस्थों द्वारा दी गई स्वीक ति से होता है।

(iii) **अधिकारों की सक्षमता विचारधारा** (Competence Theory of Authority) - इस विचारधारा के अनुसार योग्य एवं सक्षम व्यक्ति स्वयं ही नेत त्व संभाल लेते हैं और अधिकार उत्पन्न कर लेते हैं, चाहे उन्हें संस्था में कोई पद प्राप्त है या नहीं। यह विचारधारा अधिकारों को व्यक्ति की योग्यता, विशिष्ट ज्ञान, तकनीकी क्षमता, सामर्थ्य, दक्षता एवं आकर्षक व्यक्तित्व से जोड़ती है। इस प्रकार यह व्यक्ति के गुणों को ही अधिकार का स्त्रोत मानती है। किसी व्यक्ति के गुणों के कारण अधिकार उत्पन्न होते हैं व अन्य व्यक्ति उसकी सत्ता को स्वतः ही स्वीकार कर लेते हैं।

उत्तरदायित्व
(Responsibility)

प्रबन्ध साहित्य के क्षेत्र में उत्तरदायित्व शब्द बहुत भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि विभिन्न प्रबन्धकों द्वारा इसे अलग-अलग अर्थो में प्रयोग किया गया है। उत्तरदायित्व शब्द को कर्त्तव्य कार्य तथा अधिकार के रूप में प्रयोग किया जाता है। कर्त्तव्य या कार्य के रूप में मोरिस हर्ले ने इसे इस तरह व्यक्त किया है :-

"उत्तरदायित्व वह कर्त्तव्य है जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति अपनी स्थिति या कार्य के कारण से बाध्य है। कुछ उत्तरदायित्वों में उस व्यक्ति के निर्देश का पालन गर्भित होता है जो कि भारार्पण करते है।" कुछ व्यक्ति उत्तरदायित्व शब्द को एक आबन्धन (Obligation) या दायित्व के रूप में परिभाषित करते हैं जैसा की जार्ज आर॰ टेरी के अनुसार, "उत्तरदायित्व एक ऐसा दायित्व है, जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति सौंपे गए कर्त्तव्य को अपनी सर्वश्रेष्ठ क्षमता से सम्पन्न करता है।" कून्टज एवं ओ'डोनेल के शब्दों में, "उत्तरदायित्व को एक अधीनस्थ कर्मचारी के ऐसे दायित्व के रूप में परिभाषित किया गया है जिसको कोई कार्य सौंपा गया है और वह उसे पूरा करता है।"

अतः यह स्पष्ट है कि उत्तरदायित्व का आशय अपने उच्च अधिकारी के आदेशानुसार कार्य करने के दायित्व से है। कभी-कभी उत्तरदायित्व का आशय उस कार्य से है जो कार्य किसी व्यक्ति को सुपुर्द किया जाता है। उदाहरण के लिए एक प्रबन्धक अपने किसी अधीनस्थ कर्मचारी से यह कहता है कि तुम्हारा उत्तरदायित्व यह है कि काई भी व्यक्ति बिना टिकट के हाल के अन्दर न जाए। यह उत्तरदायित्व एक कार्य के रूप में प्रयोग किया गया है। लेकिन यदि वह व्यक्ति उस कार्य को पूरा करने में असफल रहता है तो उस कार्य के असफल होने का दायित्व उसी व्यक्ति से सम्बन्धित होगा। इस प्रकार से वह भी उत्तरदायी कहलाएगा। अधिकार तथा उत्तरदायित्व वास्तव में एक ही सिक्के के दो पहलू है क्योकि यदि हम किसी व्यक्ति को केवल उत्तरदायित्व सौंपे और उसे अधिकार प्रदान न करें तो वह व्यक्ति अपने कार्य को पूरा नहीं कर पाएगा और केवल अधिकार प्रदान करने की बात भी उचित नहीं लगती। अतः उत्तरदायित्व या जवाबदेही या उत्तरदेयता का इन स्थितियों में प्रायः एक ही अर्थ लगाया जाता है।

उत्तरदेयता या जवाबदेही तथा उत्तरदायित्व, इन दोनों शब्दों में में कुछ विद्वानों के द्वारा अन्तर किया जाता है। ऐलन के अनुसार, "उत्तरदायित्व से अभिप्राय किसी काम में शामिल तरह-तरह की जिम्मेदारियों से है जबकि उत्तरदेयता अपने उचित अधिकार के सामने स्पष्टीकरण देने में दिए गए जवाबदेह से है। यदि इस अर्थ को ध्यान में रखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि एक अधिकारी अपने दायित्व को नीचे बाँट सकता है लेकिन वह अपनी उत्तरदेयता को नीचे नहीं सौंप सकता। क्योंकि उच्च अधिकारी के सामने तो वह व्यक्ति जवाब देगा, जिसे मूल के रूप में वह कार्य सौंपा गया था। अतः एक अधिकारी अपने अधिकारों का अन्तरण तो कर सकता है लेकिन अपने उत्तरदायित्व का अन्तरण नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए एक सिनेमा हाल का प्रबन्धक अपने सहायक प्रबन्धक को यह उत्तरदायित्व सौंपता है कि हाल में बैठे सभी दर्शकों की टिकट चैक की जाये। सहायक प्रबन्धक अपने अधीन किसी अन्य कर्मचारी को यह कार्य सौंप देता है। यदि यह कार्य पूरा नहीं होता है तो प्रबन्धक के समक्ष सहायक प्रबन्धक को जवाब देना पड़ेगा न कि उसके अधीनस्थ कर्मचारी को और सहायक प्रबन्धक अधीनस्थ कर्मचारी के ऊपर बहाना डालकर अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकता। उत्तरदेयता का आधार आदेश तथा अधीनस्थ बहुत सम्बन्धित माने जाते हैं। उच्च अधिकारी वह व्यक्ति होता है जिसे अधिकार सौंपे गए हैं। इस द ष्टि से कोई और अधिकारी कार्य के लिए उससे जवाब नहीं मांग सकता। उत्तरदेयता में यह बात भी महत्वपूर्ण होती है कि एक उच्च अधिकारी अपने

सहायक अधिकारी को अपने कुछ अधिकार एवं दायित्व देकर स्वयं इन दायित्वों की उत्तरदेयता से मुक्त नहीं हो सकता जैसा की मोरिस हर्ले ने कहा है, "उत्तरदेयता अधिकारों को प्रत्यायोजन द्वारा प्राप्त उत्तरदायित्वों को पूरा करने का अधिकार है।"

भारार्पण या अधिकारों को सौंपना
(Delegation of Authority)

"अधिकार सौंपने के साहस का अभाव अथवा अधिकार सौंपने की कला की अनभिज्ञता, संगठनों की असफलता का प्रमुख कारण है।" - उर्विक (Urwick) "यदि कोई व्यक्ति प्रबंध के उत्तरोत्तर पदों पर चढ़ना चाहता है तो उसे अधिकार सौंपने की कला सीखनी चाहिए।" - विलियम न्यूमैन (William Newman)

साधारण शब्दों में भारार्पण से आशय कार्य भार सौंपने से है। एक उच्च अधिकारी के पास कार्यभार अधिक होने के कारण वह उस सारे कार्य को स्वयं नहीं संभाल सकता। अतः वह अपने कुछ कार्य को अपने अधीनस्थों में बाँट देता है। जिससे कार्य कुशलतापूर्वक और शीघ्रता से संपन्न हो जाए। उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों को कार्य सौंपने के साथ-साथ उन कार्यो को करने के लिए आवश्यक अधिकार भी प्रदान करता है। वास्तव में प्रबंध में भारार्पण शब्द का प्रयोग केवल तभी होता है जब उच्च अधिकारी अपने अधिकार का हस्तांतरण अपने अधीनस्थ को करता है। अतः भारार्पण का अर्थ है 'अधिकार सौंपना'।

आज के बड़े-बड़े जटिल व्यावसायिक संगठनों में भारार्पण अनिवार्य सा हो गया है। एक सफल प्रबंधक कुछ महत्वपूर्ण कार्य अपने पास सुरक्षित रखकर शेष समस्त कार्यो को बड़ी चतुराई से अपने अधीनस्थ अधिकारियों को बाँट देता है। उन्हें कार्य करने के लिए उचित अधिकार दे देता है तथा स्वयं उनके कार्यो की देखभाल करता है। वास्तव में तो 'दूसरे व्यक्तियों से कार्य कराने की कला' को ही प्रबंध कहा जाता है। कीथ डेविस ने तो अपनी पुस्तक 'Human behaviour at work' में यहाँ तक लिखा है कि 'यदि भारार्पण नहीं किया गया है तो फिर प्रबंध किसका किया जाना है'?

भारार्पण की विभिन्न विद्धानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी है जिनमें से कुछ मुख्य निम्न प्रकार से हैं -

1. प्रोफेसर थियो हैमन के अनुसार, "भारार्पण से सिर्फ इतना ही आशय है कि अपने अधीन कार्य करने वालों को निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत कार्य करने का अधिकार प्रदान किया जाए।"
2. एफ॰ जी॰ मूरे के अनुसार, "भारार्पण से अभिप्राय है दूसरे लोगों को कार्य सौंपना तथा उसे करने के लिए अधिकार प्रदान करना।"
3. लुईस ए॰ ऐलन के अनुसार, "भारार्पण प्रबंध की शक्ति है, यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे अपनाकर प्रबंधक अपने कार्यो को इस तरह विभाजित करता है जिससे कि वह सम्पूर्ण कार्य के केवल उस भाग का निष्पादन करे जिसे केवल वह स्वयं ही, संगठन में अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण, प्रभावशाली ढंग से कर सकता है, और इस प्रकार वह शेष कार्य को पूरा कराने के लिए अन्य लोगों की सहायता प्राप्त कर सकता है। "

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि भारार्पण से आशय अधीनस्थों को निर्दिष्ट सीमाओं के अन्तर्गत कार्य करने का अधिकार प्रदान करना है।

भारार्पण के तत्व अथवा भारार्पण की प्रक्रिया
(Elements of Delegation or Process of Delegation)

विलियम न्यूमैन के अनुसार भारार्पण की प्रक्रिया में तीन तत्व सम्मिलित रहते हैं -

(1) कार्यभार सौंपा जाना

(2) उन कार्यो को करने के लिए अधिकार प्रदान करना, तथा

(3) उत्तरदायित्व अथवा जवाबदेही निर्धारित करना।

1. **कार्यभार सौंपा जाना** (Assignment of Duty or Task) - क्योंकि कोई भी प्रबंधक संगठन के सभी कार्यो को स्वयं नहीं कर सकता। अतः उसे कुछ कार्य अपने अधीनस्थों को सौंप देने चाहिए। इसके लिए प्रबंधक सबसे पहले अपने

संपूर्ण कर्यो का विभाजन करता है और फिर यह निश्चय करता है कि कौन-कौन से कार्य उसे स्वयं करने है और कौन-कौन से कार्य अपने अधीनस्थों को सौंपने हैं। प्रायः जो कार्य अधिक महत्वपूर्ण है अथवा गोपनीय प्रकृति के है उनको उच्च अधिकारी अपने पास रखता है तथा शेष कार्यो का भारार्पण कर देता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी संस्था का एक प्रमुख कार्यालय है और कई शाखएँ हैं तो ऐसी स्थिति में उच्च अधिकारी स्वयं तो मुख्य कार्यालय का कार्यभार संभाल लेगा और शाखाओं का कार्यभार अन्य अधीनस्थों को सौंप देगा।

2. **अधिकार प्रदान करना** (Granting of Authority) - अधिकार प्रबन्धकीय कार्यो की कुँजी है। अधीनस्थ को जितने तथा जितने प्रकार के कार्य सौंपे जाते हैं उनके अनुसार ही उसे अधिकार प्रदान भी किए जाते है। यदि अधीनस्थों को कार्य-भार को पूरा करने के लिए उचित अधिकार प्रदान न किए जाएँ तो वह अपना कार्य पूर्ण नहीं कर सकेंगे। वास्तव में जिस प्रकार के अधिकारों की आवश्यकता स्वयं प्रबंधक को उन कार्यो को करने के लिए पड़ती, ठीक वैसे ही अधिकार वह अधीनस्थों को सौंपेगा जिससे कि कार्य ठीक ढंग से पूरा हो सके। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति को किसी ब्रांच का कार्यभार सौंपा जाता है तो उसे ब्रांच कर्मचारियों मे कार्य बाँटने, माल खरीदने-बेचने, रूपया खर्च करने आदि के सभी अधिकार देने होंगे।

3. **उत्तरदायित्व अथवा जवाबदेही निर्धारित करना** (Creation of obligation or account-ability) - भारार्पण की प्रक्रिया में तीसरा महत्वपूर्ण तत्व अधीनस्थ को ढंग से कार्य करने के लिए जिम्मेदार ठहराना है। ऐलन के शब्दों में, "जवाबदेही, पूर्व स्थापित कार्य करने के मापदंडों के अनुसार जिम्मेदारियाँ निभाने तथा अधिकार प्रयोग करने का उत्तरदायित्व है" (Accountability is the obligation to carry out responsibility and exercise authority in terms of performance standards established" - Allen)। अधीनस्थ अपने कार्य की सफलता व असफलता के लिए कार्य सौंपने वाले अधिकारी के सम्मुख जवाबदेह होता है। अन्य कोई व्यक्ति चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, अधीनस्थ से जवाबदेही नहीं मांग सकता। वास्तव में भारार्पण की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि जिसे कार्य सौंपा जाए, वे कार्य सौंपने वाले के निर्देश व नियंत्रण में उसी प्रकार कार्य करे जैसा कि आदेश दिया जाए। यदि वह सही कार्य नहीं करता तो कार्य सौंपने वाले को उससे स्पष्टीकरण मांगने का अधिकार होना चाहिए।

जवाबदेही के विषय में एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि उच्च अधिकारी अधिकार सौंप कर स्वंय जवाबदेही से मुक्त नहीं हो जाते। अर्थात् यदि 'एक्स' ने 'वाई' को अधिकार सौंपे हैं तो वाई तो अपने कार्यो के लिए एक्स के सम्मुख उत्तरदायी है और एक्स वाई की लापरवाहियों व त्रुटियों आदि के लिए अपने से उच्च अधिकारियों के समक्ष उत्तरदायी है अर्थात् अंतिम उत्तरदेयता को अधीनस्थ कर्मचारी पर नहीं छोड़ा जा सकता, यह तो उच्च अधिकारी की ही रहेगी। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि "अधिकारों का भारार्पण किया जा सकता है उत्तरदेयता (जवाबदेही) का नहीं।"

भारार्पण के प्रकार अथवा प्रारूप
(Types or Forms of Delegation)

व्यवहार में भारार्पण कई रूपों में पाया जाता है जिनमें से प्रमुख रूप निम्नलिखित हैं :-

1. **सामान्य या निश्चित भारार्पण** (General or specific delegation) - सामान्य भारार्पण के अन्तर्गत किसी विभाग की समस्त क्रियाओं का भार एक व्यक्ति को सौंप दिया जाता है, जबकि निश्चित भारार्पण के अंतर्गत केवल निश्चित क्रियाओं का भार सौंपा जाता है सभी क्रियाओं का नहीं।

2. **लिखित अथवा मौखिक भारार्पण** (Written or verbal delegation) - जब अधिकार लिखित रूप में सौंपे जाते हैं तो इसे 'लिखित भारार्पण' कहते हैं। इसके विपरीत, जब उच्च प्रबंधक मौखिक रूप से अधीनस्थ को अधिकार सौंपता है तो भारार्पण मौखिक होता है। लिखित भारार्पण मौखिक की तुलना में अधिक निश्चित होता है।

3. **औपचारिक तथा अनौपचारिक भारार्पण** (Formal or informal delegation) - जब भारार्पण संगठन द्वारा निश्चित की गई अधिकार रेखाओं के आधार पर किया जाता है तो यह औपचारिक भारार्पण कहलाता है। जैसे कि विपणन प्रबंधक को विपणन के संबंध में सभी अधिकार सौंपना औपचारिक भारार्पण कहलाएगा परन्तु अनौपचारिक भारार्पण में अधीनस्थ उच्च अधिकारियों की आज्ञा की प्रतीक्षा न करके स्वंय की प्रेरणा (Self initiative) से कार्य करते हैं जिससे

कि कार्य शीघ्रतापूर्वक संपन्न हो सके। सरकारी उद्योगों व कार्यालयों में केवल औपचारिक तरीकों से ही भारार्पण होता है। इसी से वहाँ सब कार्यों में समय अधिक लगता है और लालफीताशाही का बोलबाला होता है, जबकि निजी उद्योगों में औपचारिक व अनौपचारिक दोनों ही प्रकार का भारार्पण पाया जाता है जिसके कारण कार्य शीघ्रतापूर्वक होते हैं।

4. **पार्श्विक भारार्पण** (Lateral delegation) - जिस व्यक्ति को भारार्पण किया गया है यदि वह सौंपे गए कार्य को पूरा करने के लिए अपने समस्तरीय अधिकारियों का सहयोग प्राप्त करना चाहता है तो पार्श्विक भारार्पण की आवश्यकता उत्पन्न होती है। आजकल कार्य की जटिलताओं के कारण बहुत कम कार्य ऐसे हैं जो स्वतंत्रतापूर्वक बिना अन्य व्यक्तियों के सहयोग से पूरे किए जा सकते हों। अतः पार्श्विक भारार्पण का महत्व लगातार बढ़ता जा रहा है।

5. **कोमल अथवा कठिन भारार्पण** (Soft or hard delegation) - जब उच्च स्तर के अधिकारी मध्य स्तर के अधिकारियों को भारार्पण करते हैं तो इसे कोमल भारार्पण कहा जाता है क्योंकि मध्य स्तर के अधिकारी कार्य को करने में अन्य व्यक्तियों का सहारा ले सकते हैं परन्तु जब नीचे के स्तर पर भारार्पण किया जाता है तो इसे कठिन भारार्पण कहते हैं क्योंकि नीचे के स्तर के व्यक्तियों को सारा कार्य स्वयं ही करना होता है।

6. **सुस्त भारार्पण** (Lazy delegation) - जब उच्च अधिकारी अयोग्य होता है, किसी समस्या का हल ढूँढने में असमर्थ होता है अथवा स्वयं कोई अप्रिय निर्णय लेने से बचना चाहता है अथवा संस्था में कोई गड़बड़-घोटाला है तो ऐसी दशा में वह भारार्पण करके सारा दोष अधीनस्थ पर डाल देता है। ऐसे भारार्पण को सुस्त भारार्पण कहा जाता है।

भारार्पण के सिद्धांत
(Principles of Delegation)

भारार्पण एक कला है जो कि अनुभव व व्यवहार से सीखी जाती है। फिर भी सफल प्रबंधकों के अनुभवों के आधार पर सफल भारार्पण के निम्नलिखित सिद्धांत प्रमुख हैं :-

1. **अधिकार एवं उत्तरदायित्व में समता का सिद्धांत** (Principle of parity and authority and responsibility) - जिस व्यक्ति को कोई कार्य सौंपा जाए उसे उस कार्य को करने के लिए उचित अधिकार भी दिए जाने चाहिए। उदाहरण के लिए यदि बिक्री प्रबंधक को बिक्री दुगुनी करने का कार्य सौंपा जाए तो इसके लिए उसे आवश्यक विज्ञापन करने, सेल्समैन नियुक्त करने, वितरण के माध्यमों का चुनाव करने, विक्रय पर कटौती तय करने व आवश्यक बिक्री व्यय करने के अधिकार प्रदान करने होंगे। अधिकार व दायित्व में समता का यह अर्थ नहीं कि यदि बिक्री दुगुनी करनी हो तो बिक्री के खर्चे भी दुगुने करने चाहिए, बल्कि अधिकार उचित व जरूरत के अनुसार होने चाहिए। यदि अधिकार दायित्व से अधिक होंगे तब भी उचित नहीं होता क्योंकि ऐसी दशा में अधिकारों का दुरूपयोग होगा।

2. **उत्तरदायित्व नहीं सौपा जा सकता** (Responsibilities can not be delegated) - कार्य के सौंप देने से ही कार्य सौंपने वाला अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो जाता, बल्कि अंतिम उत्तरदायित्व कार्य सौंपने वाले का ही रहता है। उत्तरदायित्व नीचे से ऊपर की ओर प्रवाहित होता है अर्थात् जिसे कार्य सौंपा गया है वह कार्य सौंपने वाले के प्रति और कार्य सौंपने वाला अधीनस्थ की त्र टियों व लापरवाहियों आदि के लिए अपने से ऊपर के अधिकारी के प्रति जवाबदेह होता है अर्थात् अधीनस्थों की त्र टियों के लिए उच्च अधिकारी कार्य सौंपने वाले को ही जिम्मेदार ठहराएंगे।

3. **अधिकार एवं उत्तरदायित्व की स्पष्टता का सिद्धांत** (Principle of clarity of rights and responsibilities) - भारार्पण को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सौंपे गए कार्यों व अधिकारों की स्पष्ट व विस्त त व्याख्या कर दी जाए तथा अधीनस्थ को इस बात की पूरी जानकारी करा देनी चाहिए कि उसे क्या-क्या कार्य करने हैं और उन्हें करने के लिए उसे क्या अधिकार प्रदान किए गए हैं। जिससे कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में किसी कार्य व उसकी जिम्मेदारियों के बारे में विवाद उत्पन्न न हो।

4. **निष्पादन के स्तर के निर्धारण का सिद्धांत** (Principle of standard of performance) - अधीनस्थ से सौंपे गए कार्य की सफलता या असफलता के लिए जवाब तभी माँगा जा सकता है जब उसके कार्य को मापने के मापदंड पहले से ही स्थापित हों और कार्य सौंपते समय अधीनस्थ को ये मापदंड समझा दिए जाएँ कि उससे किस प्रकार के कार्य

की आशा की जाती है और उसे क्या परिणाम दिखाने हैं। नियंत्रणहीन भारार्पण, बिना लगाम के घोड़े की तरह है। निष्पादन के स्तर निर्धारित कर देने से अधीनस्थ अपने दायित्व के प्रति सजग व सतर्क रहता है।

5. **आदेश की एकता का सिद्धांत** (Principle of Unity of command) - अर्नेस्ठ डेल के अनुसार, "प्रत्येक व्यक्ति को केवल एक ही अधिकारी से आदेश प्राप्त होने चाहिए और उसे उसी के प्रति ही उत्तरदायी होना चाहिए।" यदि एक कर्मचारी को कई व्यक्तियों से आदेश प्राप्त होते हैं तो वह भ्रम में पड़ जाएगा कि किसके आदेश माने व कार्य की रिपोर्ट किसे दे? भारार्पण के संबंध में भी यह सिद्धांत महत्वपूर्ण है। अतः अधीनस्थ को कार्य व अधिकार एक ही उच्च अधिकारी से मिलने चाहिए और वह केवल उसी उच्च अधिकारी के सामने जिम्मेदार होना चाहिए।

6. **अधिकार स्तर का सिद्धांत** (Authority level principle) - इस सिद्धांत का अर्थ यह है कि जिस स्तर या पद पर जो अधीनस्थ कार्य कर रहा है उस स्तर या पद से संबंधित सभी निर्णय उस अधीनस्थ द्वारा स्वयं ही लिए जाने चाहिएं। यदि अधीनस्थ को सभी छोटे-छोटे निर्णयों का अनुमोदन भी उच्च अधिकारियों से कराना पड़ता है तो कार्य के कुशल संचालन में बाधा पहुँचेगी।

7. **सोपान श्रंखला सिद्धांत** (Scalar principle) - यह सिद्धांत बताता है कि अधिकार एवं दायित्व उच्चाधिकारी से अधीनस्थों को सीधी रेखा में चलने चाहिए। भारार्पण करते समय इस सिद्धांत को भी ध्यान में रखना चाहिए। यदि भारार्पण करते समय उच्च अधिकारी अपने निकटतम अधीनस्थ को छोड़कर उससे नीचे के क्रम के व्यक्ति को भारार्पण कर देता है तो जिस अधीनस्थ को छोड़ दिया गया है उसके मन में हीन भावना उत्पन्न हो जाएगी और वह पूर्ण सहयोग नहीं देगा।

भारार्पण की आवश्यकता एवं महत्व
(Need and Importance of Delegation)

अथवा

भारार्पण के लाभ
(Advantages of Delegation)

प्रबंध की सफलता अथवा असफलता, भारार्पण की सफलता अथवा असफलता पर निर्भर करती है। प्रसिद्ध प्रबंध विद्वान उर्विक (Urwick) - के अनुसार, "अधिकार सौंपने के साहस का अभाव अथवा अधिकार सौंपने की कला की अनभिज्ञता, संगठनों की असफलता का प्रमुख कारण है।"

लुईस ऐलन की शब्दों में "जितनी अच्छी तरह कोई अधिकार सौंपता है उतनी ही अच्छी तरह वह प्रबंध कर पायेगा।"

अधिकार सौंपना संगठन की क्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि अधीनस्थों को कार्य व अधिकार सौंपकर ही हम उनसे कार्य ले सकते हैं।

कीथ डैविस ने तो यहाँ तक कह दिया है कि, "यदि भारार्पण नहीं किया गया है तो फिर प्रबंध किसका किया जाना है?"

कूंट्ज व ओ' डोनेले के अनुसार, "जिस प्रकार अधिकार प्रबंध के कार्य की कुंजी है, उसी प्रकार अधिकार सौंपना संगठन की कुंजी है।"

भारार्पण निम्नलिखित लाभों को प्राप्त करने में सहायता करता है :-

1. **प्रशासनिक भार में कमी** (Reduction of executive burden) - उच्च अधिकारी ऐसे कार्यों को जो कम महत्व के हैं, अधीनस्थों को सौंपकर भार से मुक्त हो जाते हैं और अपना समय अधिक महत्वपूर्ण कार्यों को करने में लगा सकते हैं। इससे उनकी कार्यक्षमता में व द्धि होती है। छोटे-छोटे कार्य करने में उनके समय व शक्ति का जो अपव्यय होता था वह बच जाता है और अब वे संस्था के नियोजन, संगठन, समन्वय आदि कार्यों की तरफ अधिक ध्यान दे सकते हैं। ब्रेच (Brech) के शब्दों में, "An individual is only one man power. The only way he can achieve more is

delegation, through dividing his load and sharing his responsibilities with others".

2. **अधीनस्थों का विकास** (Development of subordinates) - प्रशिक्षण की कोई भी योजना अधीनस्थों को इतना नहीं सिखा सकती जितना की भारार्पण से उन्हें कार्य करने का व्यावहारिक ज्ञान मिलता है, वे अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने में अधिक समर्थ व अनुभवी बन जाते हैं। उन्हें अपने से उच्च पदों के दायित्व समझने व महत्वपूर्ण निर्णय लेने का मौका मिलता है।"

3. **अधीनस्थों के नैतिक स्तर में सुधार** (Improvement in the moral of subordinates) - भारार्पण में अधीनस्थ को अपने पद से उच्च पदों के दायित्वों को निभाने का अवसर मिलता है जिससे पदोन्नति की आशा में वे अपना कार्य अधिक उत्साह से करते हैं। भारार्पण से अधीनस्थों को अपनी योग्यता व कुशलता प्रदर्शन का सुअवसर प्राप्त होता है। अपने पद से उच्च पदों के दायित्व निभाने से उन्हें अपने कार्य से संतोष मिलता है। इससे उनका नैतिक स्तर व मनोबल ऊँचा उठता है।

4. **प्रबंधकों की प्रतिस्थापना में सुविधा** (It facilitates the replacement of managers) - अधिकार सौंपने से अधीनस्थ को उच्च प्रबंधकों के कार्य को समझने व करने का मौका मिलता है। अतः भविष्य में जब उच्च प्रबंधक रिटायर होते हैं अथवा पदोन्नति से और ऊँचे पदों पर चले जाते हैं तो अधीनस्थों को उनका कार्यभार सँभालने में कठिनाई नहीं आती। जिससे कि संगठन में निरंतरता व स्थायित्व आता है। जार्ज टैरी के अनुसार, "भारार्पण से संगठन में गइराई (Depth in organisation) आती है तथा उच्च प्रबंधकों के अचानक इधर-उधर हो जाने पर संगठन निराश्रित या अपंग नहीं बनता।"

5. **व्यवसाय के विस्तार में सुविधा** (It facilitates the expansion of business) - भारार्पण के फलस्वरूप उच्च अधिकारी छोटे-छोटे कार्यो को करने से मुक्त हो जाते हैं तथा अपना ध्यान व्यवसाय के विस्तार की तरफ लगा सकते हैं। इसके अतिरिक्त अधीनस्थों के विकास से संगठन का ढाँचा सशक्त बनता है जिससे कि संस्था के विस्तार में सहायता मिलती है।

6. **समन्वय में सुविधा** (It facilitates co-ordination) - अधिकार सौंपने से उच्च अधिकारियों व अधीनस्थों को एक-दूसरे के सम्पर्क में आने व एक-दूसरे के द ष्टिकोणों को समझने का अधिक अवसर मिलता है जिससे कि अच्छे संबंधों की स्थापना होती है और समन्वय स्थापित करने में सुविधा रहती है।

7. **शीर्घ निर्णय संभव होना** (Quick decisions possible) - अधिकार सौंपने से निर्णय केवल उच्च स्तर पर ही नहीं बल्कि संगठन के सभी स्तरों पर लिए जाते हैं जिससे कि निर्णय शीघ्रतापूर्वक लिए जाते हैं।

भारार्पण के मार्ग में कठिनाइयाँ अथवा बाधाएँ
(Difficulties, Obstacles or Hinderances in Delegation)

अथवा

भारार्पण में अरूचि के कारण
(Reasons for Reductance to Delegation)

भारार्पण के इतने अधिक लाभ हैं कि बिना भारार्पण के संगठन की कल्पना नहीं की जा सकती, परन्तु व्यवहार में इसे लागू करने में अनेक कठिनाइयाँ सामने आती हैं जो कि निम्नलिखित हैं :-

1. **अधिकार सौंपने वाले उच्च अधिकारियों के द्वारा प्रस्तुत बाधाएँ** (Difficulties due to Executives)

   (i) **शासन व नियंत्रण करने की इच्छा** (Desire to administer and control) - कुछ व्यक्तियों में डिक्टेटर बनने की प्रबल इच्छा होती है। वे चाहते हैं कि उनके सहायक उनकी अधीनता को पूर्णतः स्वीकार कर लें। वे सभी निर्णय स्वयं लेते हैं और दूसरों को केवल उन निर्णयों को अमल में लाने का काम देते हैं। वे सोचते हैं कि यदि उन्होंने अपने अधीनस्थों में सारे अधिकारों का वितरण कर दिया तो उनका नियंत्रण कम हो जाएगा तथा उनकी

हाजिरी देने वाले व खुशामद करने वाले व्यक्ति न रहेंगे।

(ii) **अधिकार सौंपने की कला से अनभिज्ञता** (Unfamiliarity with the art of delegation) - भारार्पण एक कला है जिसका ज्ञान प्रत्येक अधिकारी को नहीं होता। इन अधिकारियों को यह समझ ही नहीं होती कि क्या कार्य सौंपा जाए और क्या अधिकार दिए जाएँ? अतः वे या तो अधिकार सौंपते ही नहीं और सौंपते भी हैं तो अधीनस्थों के कार्य में इतना अधिक हस्तक्षेप करते हैं कि अधीनस्थ हतोत्साहित हो जाते हैं तथा भारार्पण असफल हो जाता है। फलस्वरूप ऐसे अधिकारी स्वयं ही रातों-रात कार्यालय में कार्य करने में जुटे रहते हैं।

(iii) **अधीनस्थों में विश्वास का अभाव** (Lack of confidence in subordinates) - कई बार उच्च प्रबंधक अपने अधीनस्थों को अयोग्य तथा निकम्मे मानकर चलता है और वह उन्हें कार्य सौंपकर जोखिम नहीं उठाना चाहता। परन्तु उच्च अधिकारियों की यह भावना उचित नहीं है। क्योंकि जब तक उन्हें कार्य सौंपा नहीं जाएगा तब तक वे कार्य करने में कुशलता कैसे प्राप्त करेंगे। उसे अधीनस्थों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए व उनमें उत्तरदायित्व ग्रहण करने की भावना जाग त करनी चाहिए।

(iv) **अपनी स्थिति के बारे में डर** (Fear about his own position) - कुछ उच्चाधिकारी अधीनस्थों को अधिकार इसलिए भी नहीं सौंपते कि इससे अधीनस्थों की योग्यता प्रकाश में आ जाएगी और उनकी अपनी योग्यता का पर्दाफाश हो जाएगा। हो सकता है कि फिर अधीनस्थ को पदोन्नति देकर उसकी छुट्टी कर दी जाए। इसके अलावा उच्च अधिकारी इसलिए भी डरते हैं कि भारार्पण से उनके अपने पास कम काम रह जाएगा और वे व्यवसाय के स्वामियों की निगाह में कामचोर कहलाएंगे।

(v) **मनोवैज्ञानिक अवरोध** (Psychological barrier) - कई उच्च अधिकारी यह समझ बैठते हैं कि संस्था उनके बिना चल ही नहीं सकती। उन्हें यह भ्रम होता है कि "केवल मैं ही कार्य अच्छी तरह कर सकता हूँ।" इससे अधिकार सौंपने में बाधा पहुँचती है। इस बाधा को दूर करने के लिए जान राकफैलर अपने संगठन के प्रबंधकों को लगातार यह कहते रहते थे कि 'प्रबंधक की सफलता दूसरे प्रबंधक तैयार करने में है न कि सारा काम स्वयं करने में।'

(vi) **सभी कार्यों का श्रेय प्राप्त करने की इच्छा** (Desire to get credit for all the work) - कई व्यक्ति संस्था के सभी कार्यों का श्रेय स्वंय ही लेना चाहते हैं अतः सभी कार्य स्वंय करते हैं। परिणामस्वरूप भारार्पण नहीं हो पाता है।

(vii) **प्रथाएँ एवं परम्पराएँ** (Customs and traditions) - कुछ व्यक्ति लकीर के फकीर होते हैं। वे भारार्पण इसलिए नहीं करते क्योंकि उनकी संस्था में पहले से ही भारार्पण करने की कोई परम्परा नहीं है।

(viii) **जोखिम स्वीकार करने को तैयार न होना** (Unwilling to take risk) - भारार्पण में उत्तरदायित्व हमेशा भारार्पण करने वाले का ही रहता है अतः बहुत से प्रबंधकों को यह डर होता है कि अधीनस्थ द्वारा कार्य गलत कर देने पर उसका उच्चाधिकारी उसे ही उत्तरदायी ठहराएगा न कि अधीनस्थ को। इस तरह प्रबंधक कार्य के गलत होने का जोखिम नहीं उठाना चाहते।

(ix) **योग्य कर्मचारी के हस्तांतरण का भय** (Fear of transfer of competent subordinate) - कई बार प्रबंधक इस भय के कारण भारार्पण नहीं करते कि भारार्पण से उनके अधीनस्थ की योग्यता प्रकाश में आ जाएगी और उन्हें पदोन्नति देकर अन्य विभागों में हस्तांतरण कर दिया जाएगा और इस प्रकार एक योग्य अधीनस्थ उनके हाथ से निकल जाएगा।

(x) **कड़ा निरीक्षण** (Close supervision) - बहुत से उच्च अधिकारी भारार्पण के बाद भी अपने अधीनस्थों के दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं तथा उन पर कड़ा नियंत्रण रखते हैं जिससे अधीनस्थ हतोत्साहित हो जाते हैं और भारार्पण असफल हो जाता है।

(2) **अधीनस्थों की ओर से बाधाएँ** (Defficulties due to subordinates)

(i) **अधीनस्थों में योग्यता का अभाव** (Lack of abilities in subordinates) - कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें करने

के लिए अधीनस्थों के पास उचित तकनीकी ज्ञान व निपुणता नहीं होती। ऐसी दशा में भारार्पण करना उचित नहीं रहता।

(ii) **अधीनस्थों का असहयोग** (Non co-operation by subordinates) - कई बार अधीनस्थ कोई भी अतिरिक्त कार्य-भार व जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं होते। फलस्वरूप ऐसे अनिच्छुक अधीनस्थों को भारार्पण नहीं किया जा सकता।

(iii) **प्रेरणा का अभाव** (Lack of motivation) - यदि अधीनस्थों को अतिरिक्त कार्यभार सौंपा जाए परन्तु उन्हें उसके लिए उचित पुरस्कार व प्रेरणाएँ न दी जाएँ तब भी वे भारार्पण का विरोध करने लगते हैं।

(iv) **आत्मविश्वास और पहल क्षमता की कमी** (Lack of self-confidence and initiative) - कई बार अधीनस्थों को अपने ऊपर यह विश्वास नहीं होता कि वह सौंपे गए कार्य को ठीक से कर भी पाएँगे या नहीं। अतः वह नई जिम्मेदारियाँ लेने में झिझकते हैं।

(v) **आलोचना का डर** (Fear of criticism) - कई बार अधीनस्थ यह सोचते हैं कि कहीं अच्छा करते-करते बुरा न हो जाए और उन्हें डर रहता है कि नई-नई जिम्मेदारियों को पूरा करने में असफल रहने पर उनकी आलोचना की जाएगी। अतः वे आराम का रास्ता अपनाते हैं और स्वयं निर्णय लेने की अपेक्षा उच्चाधिकारियों द्वारा लिए गए निर्णयों पर अमल करना ज्यादा पसंद करते हैं।

भारार्पण की कठिनाईयों को पार करने के लिए सुझाव
(Suggestions to Overcome the Difficulties of Delegation)

अथवा

भारार्पण को प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यक बातें
(Essential Requirements of Make Delegation More Effective)

भारार्पण को सफल बनाने के लिए इसके मार्ग में आने वाली कठिनाईयों को दूर करना अति आवश्यक है। सफल भारार्पण के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए :-

1. **अधिकारों व दायित्वों की स्पष्ट व्याख्या** (Authority and responsibility should be clearly defined) - भारार्पण को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि अधीनस्थों को यह स्पष्ट मालूम हो कि उनको क्या अधिकार सौंपे गए हैं और उनके अधिकारों की क्या सीमा है? उनके क्या दायित्व हैं? वे किसके प्रति उत्तरदायी हैं और कौन उनके प्रति उत्तरदायी है? उनके कार्य को किस प्रकार मापा जाएगा?

2. **दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं** (No interference in daily work) - अधिकार सौंपने के बाद प्रबंधकों को अधीनस्थों के दैनिक कार्यो में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए नहीं तो अधीनस्थ हतोत्साहित हो जाते हैं और उनका विश्वास कायम नहीं रहता।

3. **योग्य अधीनस्थों का चुनाव** (Selection of competent subordinates) - कार्य सौंपने से पहले प्रबंधक को सौंपे जाने वाले कार्य की प्रक ति के अनुसार ही योग्य व विश्वसनीय कर्मचारी का चुनाव करना चाहिए, तभी भारार्पण सफल हो सकता है।

4. **प्रशिक्षण** (Training) - सहायक अधिकारी सौंपे गए कार्य को ठीक ढंग से पूरा कर सके इसके लिए उचित प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।

5. **अभिप्रेरणा** (Motivation) - कोई भी अधीनस्थ सौंपे गए कार्य को तभी कुशलता व उत्साह के साथ पूरा करता है जब उसे कुछ प्रेरणा मिले। प्रेरणा अधिक वेतन के रूप में व उसके कार्य की भरपूर प्रशंसा व सराहना के रूप में हो सकती है।

6. **द्विमार्गीय संचार व्यवस्था** (Two-way communication) - सौंपे गए कार्य को पूरा करने में अधीनस्थ के सामने अनेक कठिनाइयाँ आ सकती हैं अतः प्रधान व अधीनस्थ के बीच विचारों व सुझावों के स्वतंत्र आदान-प्रदान की द्विमार्गीय व्यवस्था होनी चाहिए। अधीनस्थों को आदेश व निर्देश स्पष्ट शब्दों में दिए जाएँ तथा अधीनस्थ को यह इजाजत हो कि वह जब भी चाहे उच्च अधिकारी के सामने अपनी कठिनाइयाँ रखकर मार्गदर्शन माँग सकता है।

7. **भय से मुक्त वातावरण तैयार करना** (Atmosphere should be free from fear) - अधिकार सौंपने के लिए यह आवश्यक है कि प्रबंधकों में नेत त्व प्रदान करने की क्षमता हो तथा वे अपने अधीनस्थों के साथ विश्वास, प्रेम तथा सद्भावना का वातावरण बनाएँ। अधीनस्थों द्वारा त्र टि होने पर उन्हें सजा नहीं दी जानी चाहिए बल्कि उच्च अधिकारियों में अपने अधीनस्थों की त्र टियों को सहन करने की क्षमता होनी चाहिए।

8. **भारार्पण कला का ज्ञान** (Knowledge of the art of delegation) - सभी उच्च अधिकारियों को भारार्पण की कला के बारे में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि उन्हें क्या भारार्पण करना है? कैसे करना है? किसे करना है?

9. **प्रभावशाली नियंत्रण** (Effective control) - भारार्पण कर देने से उच्च अधिकारी अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त नहीं हो जाते अतः उन्हें समय-समय पर अधीनस्थों के कार्यों की जाँच करते रहना चाहिए और कोई त्रुटि नजर आने पर आवश्यक निर्देश देने चाहिए।

उपरोक्त के अतिरिक्त, भारार्पण को सफल बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि भारार्पण के सिद्धांतों का पूर्णतया पालन किया जाए।

विकेन्द्रीयकरण
(Decentralisation)

विकेन्द्रीयकरण भारार्पण का ही एक विकसित रूप है। जब किसी उच्चाधिकारी द्वारा अधीनस्थ कर्मचारी को अपेक्षाक त अधिक मात्रा में अधिकारों का भारार्पण किया जाता है, तो वह विकेन्द्रीयकरण कहलाता है। प्रशासन की शब्दावली में विकेन्द्रीयकरण वह स्थिति है जब प्रशासन से सम्बन्धित अधिकांश निर्णय उन्हीं लोगों द्वारा लिए जाएं जो उन निर्णयों से संबंध रखते हों और उस स्तर पर लिए जाएं जो उन निर्णयों से सम्बन्ध रखते हों और उस स्तर पर लिए जाएँ जिस स्तर पर निर्णय को लागू किया जाएगा। विकेन्द्रीयकरण की स्थिति में केवल उन थोड़े-से अधिकारों को छोड़कर, जो केन्द्रीय अधि ाकारियों के लिए सुरक्षित रखने आवश्यक हैं, शेष सभी अधिकार उन अधिकारियों को व्यवस्थित ढंग से सौंप दिये जाते हैं, जो विभिन्न कार्यो को करने के लिए उत्तरदायी हों।

कूण्टज एवं ओ'डोनेल के शब्दों में, "अधिकार का विकेन्द्रीयकरण भारार्पण का प्रथम पहलू है तथा जिस सीमा तक अधिकारों का भारार्पण नहीं होता, वे केन्द्रित हो जाते हैं।"

हेनरी फेयोल के शब्दों में, "वह प्रत्येक कार्य जिससे अधीनस्थ की भूमिका के महत्व में व द्धि होती है, विकेन्द्रीयकरण कहलाता है।"

ई॰ एफ॰ एल॰ ब्रेच, "विकेन्द्रीयकरण भारार्पण से उत्पन्न होने वाला दायित्वों का प्रतिमान है।"

लुइस ए॰ ऐलन, "विकेन्द्रीयकरण से तात्पर्य केवल केन्द्रीय बिन्दुओं पर ही प्रयोग किए जाने वाले अधिकारों के अतिरिक्त सभी अधिकारों को व्यवस्थित रूप से निम्न स्तरों को सौंपने से है। विकेन्द्रीयकरण का सम्बन्ध उत्तरदायित्व के सन्दर्भ में अधिकार प्रदान करने से है।"

मैसी, "विकेन्द्रीयकरण, संगठन संरचना के रूप में, निर्णयन क्रिया को संगठन के निम्न स्तर तक ले जाने की प्रक्रिया को कहते हैं।"

कीथ डेविस, "संगठन की छोटी-से छोटी इकाई तक, जहाँ तक कि व्यावहारिक हो, सत्ता एवं दायित्व का वितरण विकेन्द्रीयकरण कहलाता है।

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विकेन्द्रीयकरण अधिकारों को सौंपने की एक ऐसी व्यवस्थित विधि है, जिसके अन्तर्गत उच्च अधिकारियों द्वारा निम्न स्तरों के अधीनस्थों के दायित्वों के अनुरूप अधिकार सौंपे जाते हैं। एक द ष्टि से देखा जाए तो विकेन्द्रीयकरण अधिकार सौंपने की प्रक्रिया के नियमित व व्यापक प्रयोग का परिणाम है।

विकेन्द्रीयकरण के लक्षण
(Characteristics of Decentralisation)

विकेन्द्रीयकरण के लक्षण इस प्रकार हैं :-

1. यह अधीनस्थों की भूमिका को महत्वपूर्ण बनाता है।
2. यह संगठन में ऊपर से नीचे तक लागू होने वाली प्रक्रिया होती है।
3. यह स्वयं भारार्पण नहीं होता, वरन् उसका प्राथमिक पहलू होने के नाते भारार्पण का विस्तार कहा जा सकता है।
4. यह उत्तरदायित्वों के सन्दर्भ में अधिकार सौंपने से सम्बन्धित होता है।
5. जितने निम्न स्तर पर व्यक्तियों से परामर्श करना आवश्यक हो विकेन्द्रीयकरण उतना ही अधिक माना जायेगा।

विकेन्द्रीयकरण के कारण
(Reasons for Decentralisation)

यह भी एक महत्वपूर्ण विषय है कि विकेन्द्रीयकरण क्यों आवश्यक है, ऐसे कौन-से कारण हैं जो ऐसा करने के लिए विवश करते हैं अथवा ऐसी कौन-सी मजबूरी हैं कि विकेन्द्रीयकरण होना ही चाहिए, केन्द्रीयकरण से क्यों कार्य नहीं चल सकता इत्यादि। इन सभी प्रश्नों का उत्तर देने के लिए कुछ ऐसे कारण निर्धारित किये गये हैं जो कि विकेन्द्रीयकरण की प्रव ति को बढ़ावा देने के लिए बाध्य करते हैं। निम्नलिखित कारणों के आधार पर हमें अधिकारों व क्रियाओं का विकेन्द्रीयकरण करना ही पड़ता है :-

1. जब किसी संगठन का विकास होता है या उसका आकार दीर्घ होता है तो इसका आशय है कि सम्बन्धित इकाईयों की क्रियायँ बढ़ी हैं तथा विभिन्न विभागों की संख्या में व द्धि हुई हैं। विभिन्न क्रियाओं पर कार्यभार बढ़ता है। विभिन्न निर्माणी इकाईयां अनेक स्थानों पर स्थापित कर दी जाती हैं। अतः इन सभी क्रियाओं को सुसम्पन्न करने के लिए विभिन्न अधिकारों व क्रियाओं का विकेन्द्रीयकरण करना पड़ता है।
2. बाहरी, आर्थिक, राजनीतिक, तकनीकी वातावरण, तीव्रगति से परिवर्तन, इत्यादि के कारण कार्य क्षेत्र काफी कम हो जाता है, अतः इस पर नियन्त्रण करने के लिए विकेन्द्रीयकरण अति आवश्यक है।
3. उच्च प्रबन्ध के लिए यह भी सम्भव नहीं है कि वह आर्थिक, राजनीतिक, तकनीकी सभी तत्वों का प्रबन्ध स्वयं कर सकें तथा यह भी आवश्यक नहीं कि उसे सभी का पूरा ज्ञान हो, अतः यह सब कार्य विकेन्द्रीयकरण के माध्यम से ही सम्भव है।

उदाहरण के रूप में यदि कोई उपक्रम विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन करता है जैसे - स्टील, स्पंज आयरन, नमक, साबुन, सिगरेट, चाय, टैक्सटाईल्स इत्यादि तो उसे विभिन्न क्षेत्रों से गुजरना पड़ता है, उनसे सम्बन्ध रखना पड़ता है तथा विभिन्न प्रकार की विपणन दशाओं को ध्यान में रखना पड़ता है। अतः किसी भी एक या दो व्यक्तियों के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह सभी क्रियाओं पर उचित नियन्त्रण कर सके। इस दशा में आवश्यक हो जाता है कि विकेन्द्रीयकरण का सहारा लिया जाये।

विकेन्द्रीयकरण के माध्यम से ही विभिन्न चुनौतियों का सामना सरलता से किया जा सकता है। इसी से संगठन को एक सहारा मिलता है, लोचता प्राप्त होती है।

विकेन्द्रीयकरण का उद्देश्य
(Objectives of Decentralisation)

विकेन्द्रीयकरण की तकनीक का प्रयोग निम्न उद्देश्यों से किया जाता है :-

1. प्रधान कार्यकारिणी का भार हल्का करने के लिए,
2. विविधीकरण की सुविधा के लिए - विभागीक त संरचना से उत्पाद या बाजारों के विविधीकरण में सुविधा मिलती है। विकेन्द्रीयकरण इसमें और भी सहायता पहुँचता है क्योंकि उच्चाधिकारियों को केवल महत्वपूर्ण समस्याओं पर ही ध्यान देना पड़ता है,
3. उत्पादन एवं बाजार को अनुकूल रखने के लिए,
4. यदि उपयुक्त व्यक्तियों को प्रबन्ध कार्य सौंपा जाए, तो कालान्तर में वे योग्य मैनेजर बन सकते हैं। एक विकेन्द्रित संगठन ही भावी मैनेजरों की त्रुटियों के द्वारा कम्पनियों को भारी हानियां पहुँचाये बिना विकास के अवसर प्रदान कर सकता है तथा
5. यह प्रेरणा को द ढ़ करता है - अनुसन्धानों से यह पता चलता है कि एक विकेन्द्रित संगठन अपने मैनेजर को अधिक उत्पादकता के लिये समुचित प्रोत्साहन देता है।

(Process of Decentralisation)

1. **उपयुक्त केन्द्रीयकरण की स्थापना** :- यह विकेन्द्रीयकरण की दिशा में पहला कदम है। एक छोटा केन्द्रीक त प्रधान कार्यालय उपक्रम में नाड़ी-केन्द्र का कार्य करता है। यहाँ योजनाएँ बनायी जाती हैं और कम्पनी के प्रत्येक विभाग में मार्गदर्शन के लिए सूचित कर दी जाती है। वह एक समुचित संगठन-संरचना बनायेगा जिसके अन्दर अलग-अलग कार्यकारी अंगों को कार्य सम्बन्धी पर्याप्त स्वतन्त्रता होगी। ऐसे व्यवस्थात्मक अंकुश के बिना कम्पनी में यह हो सकता है कि टीम के अलग-अलग सदस्य अपनी खिचड़ी अलग पकायें। इससे उपक्रम के हितों को हानि पहुँचेगी।
2. **प्रबन्धकों का विकास** :- विकेन्द्रित संस्थाओं में अनेक स्तरों पर महत्वपूर्ण निर्णय लिये जाते हैं। इसके लिए ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जो प्रबन्ध की तकनीक में पारंगत हो गये हैं, केवल सुपरवीजन में ही दक्ष नहीं है। इससे यह समस्या उठती है कि प्रबन्धकों का विकास कैसे किया जाए? इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि मैनेजर भारार्पण में कुशल एवं तत्पर होना चाहिए। दूसरे, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रबन्ध एक कला है जिसके अन्तर्गत अनेक प्रकार की कुशलताओं का समावेश होता है। अतः कक्षाओं में ट्रेनिंग देने के साथ-साथ उन्हें जाँच सौंपकर निर्णय करने की आदत डाली जाए। कुछ त्रुटियाँ करके वे सही कदम उठाना सीख लेंगे।
3. **आदान-प्रदान एवं सहकारिता के लिए आयोजन** :- विकेन्द्रीयकरण के अन्तर्गत स्वतन्त्रता की प्रव ति पायी जाती है। अतः एक्जीक्यूटिव अधिकारियों व समितियों के कार्यो में समन्वय स्थापित करके आदान-प्रदान एवं सहकारिता की व्यवस्था करनी चाहिए।
4. **पर्याप्त निर्णय प्राप्त करना** :- प्रबन्ध के हाथों में बागडोर उसी सीमा तक सौंपी जा सकती है जहाँ तक सम्पूर्ण संस्था के उद्देश्य व ऐक्य स्वभाव हो हानि न पहुँचे, अतः विकेन्द्रीयकरण की मुख्य समस्या प्रभावपूर्ण नियंत्रण स्थापित करने की है।

(Degree of Decentralisation)

सामान्यतः प्रबन्धक विकेन्द्रीयकरण के विरूद्ध होते हैं, कोरा भ्रम मात्र ही है। हाँ इतना अवश्य है कि प्रबन्धकों में विकेन्द्रीयकरण की मात्रा की सीमा और इसे कब करें, के सम्बन्ध में अवश्य कुछ मतभेद पाया जाता है। अर्नेस्ट डेल (Earnest Dale) विकेन्द्रीयकरण की अधिक या कम सीमा जानने के लिए इसी प्रकार के चार अन्य मापदंडों का सुझाव देते हैं। ये मापदण्ड हैं - (1) निम्न स्तर पर लिए जाने वाले निर्णयों की अपेक्षाक त संख्या, (2) इन निर्णयों का महत्व और मूल्य, (3) निम्न स्तर पर लिए जाने वाले निर्णयों का अधिकाधिक कार्यो पर प्रभाव, तथा (4) इन निर्णयों पर उच्च अधिकारियों के नियन्त्रण की सीमा।

उनके अनुसार यदि किसी कम्पनी में अधिकांश निर्णय, जो महत्वपूर्ण और मूल्यवान भूमिका निभाते हैं और लगभग सभी कार्यो को प्रभावित करते हैं, नीचे के स्तर पर लिए जाएं तथा उच्च अधिकारी इन निर्णयों में कम-से-कम हस्तक्षेप करें, तो इसे कम्पनी में विकेन्द्रीयकरण का स्तर ऊंचा समझा जाना चाहिए।

किसी संगठन में कितना विकेन्द्रीयकरण है, इसका उत्तर निम्न प्रश्नों के उत्तर से जाना जा सकता है :-

1. **सौंपे गए अधिकारों की प्रक ति** :- वहाँ किस प्रकार के अधिकारों को आगे सौंपा जाता है? अर्थात् क्या वे सौंपे गए अधिकार नियोजन व नियंत्रण दोनों से सम्बन्ध रखते हैं या नहीं और क्या अधीनस्थ कर्मचारी को अधिक महत्वपूर्ण व निर्णायक निर्णय लेने के लिए भी अधिक त किया जाता है या नहीं? यदि हाँ, तो उस संगठन में विकेन्द्रीयकरण बहुत अधिक ऊँचे स्तर पर माना जाएगा।
2. **नियमितता** :- अधिकार सौंपने का यह कार्य नियमित रूप से किया जाता है या कभी-कभी? यदि प्रबन्धक कभी काम बढ़ जाने पर अपना कुछ कार्य और अधिकार अपने अधीनस्थों के साथ बाँट ले तो इसे विकेन्द्रीयकरण नहीं कहते हैं। इसके विपरीत, यदि अधिकार सौंपना एक नियमित व स्थायी नीति के रूप में अपनाया जाए तो इसे विकेन्द्रीयकरण कहेंगे।
3. **संगठन का स्तर** :- अधिकारों को सौंपने का यह कार्य संगठन में किस स्तर तक किया जाता है, अर्थात् क्या फोरमैन व सुपरवाइजर को भी अपने-अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार दिए जाते हैं या नहीं? यदि इन लोगों को भी निर्णय सम्बन्धी अधिकार दिए जायें तो इसका अर्थ है कि अधिकार सौंपने का काम अत्याधिक व्यापक ढंग से किया गया है। अतः यह संगठन अधिक विकेन्द्रित कहलाएगा।

(Factors Affecting the Degree of Decentralisation)

विकेन्द्रीयकरण की मात्रा किसी भी संस्था में कितनी होनी चाहिए, यह विभिन्न तत्वों पर निर्भर करता है। विकेन्द्रीयकरण की मात्रा को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्व निम्न प्रकार हैं :-

1. **संस्था का आकार** (size of organisation) :- यह सर्वविदित तथ्य है कि संस्था का आकार जितना बड़ा होगा उसमें विकेन्द्रीयकरण की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी क्योंकि एक व्यक्ति, न तो प्रत्येक स्थान पर उपलब्ध हो सकता है और न ही प्रत्येक निर्णय स्वयं ले सकता है। यदि संस्था का आकार बड़ा है तथा उसमें विभिन्न विभागों की स्थापना की जाती है तो वहाँ दक्षता में व द्धि करने के लिए विकेन्द्रीयकरण को अपनाना होगा। इसके विपरीत छोटी संस्था में विकेन्द्रीयकरण की उतनी आवश्यकता नहीं है।
2. **प्रबन्धकीय नीतियाँ** (Managerial policies) :- जिन प्रबन्धकों का द ष्टिकोण व्यापक एवं आधुनिक होता है, वे सहर्ष विकेन्द्रीयकरण का स्वागत करते हैं एवं उसे अपनाते हैं। इसके विपरीत, परम्परागत प्रबन्धकीय द ष्टिकोण वाले प्रबन्धक केन्द्रीयकरण को अधिक पसन्द करते हैं। जहाँ सम्पूर्ण उपक्रम में समान नीतियों का पालन करने पर बल दिया जाता है, वहाँ पर विकेन्द्रीयकरण को कम अपनाया जाता है। इसके विपरीत, जहाँ नीतियों में विविधता पाई जाती है, वहाँ विकेन्द्रीयकरण किया जाना आवश्यक होता है।
3. **योग्य अधीनस्थों की उपलब्धता** (Availability of able subordinates) :- विकेन्द्रीयकरण के लिए योग्य अधीनस्थ प्रबन्धकों की आवश्यकता पड़ती है। अतः इसका प्रसार इस बात पर निर्भर करेगा कि कम्पनी में काम करने वाले अधीनस्थ कर्मचारी योग्य प्रबन्धक है या नहीं। यदि संस्था में योग्य प्रबन्धक है अथवा अधीनस्थ कर्मचारी उनके द्वारा योग्य बनाए जा सकते हैं तो उच्च अधिकारी उन्हें महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार देने में कोई हिचकिचाहट अनुभव नहीं करेंगे।
4. **संगठन का विकास** (Development of organisation) :- जो संस्था छोटे पैमाने पर स्थापित की जाती है और धीरे-धीरे विकसित होकर बड़ी होती है, उसमें केन्द्रीयकरण की मात्रा अधिक होगी। लेकिन वे कम्पनियाँ जो प्रारम्भ से ही बड़े पैमाने पर अनेक व्यक्तियों के सहयोग से स्थापित की जाती है, अधिक विकेन्द्रित कम्पनियाँ होती हैं क्योंकि इन कम्पनियों में प्रारम्भ से ही स्वामियों के बीच काम बांट दिया जाता है। साथ ही, वे कम्पनियाँ जो समामेलन, विलयन

या संघनन के द्वारा स्थापित की जाती हैं, अधिक विकेन्द्रीयकरण की नीति अपनाती हैं।

5. **व्यवसाय की प्रक ति** (Nature of business) :- व्यवसाय भिन्न-भिन्न प्रक ति के होते हैं। कुछ व्यवसायों में अधिकांश निर्णय विशिष्ट निपुणता तथा सतर्कता की मांग करते हैं जैसे वित्तीय निगम। अतः इन निर्णयों को निम्नस्तरीय प्रबंधकों के विवेक पर नहीं छोड़ा जा सकता। इसके विपरीत, अन्य संस्थाओं में अनेक निर्णय दैनिक प्रक ति के होते हैं, जिन्हें निम्न स्तर के प्रबन्धक भी समान कुशलता के साथ ले सकते हैं। अतः उनमें विकेन्द्रीयकरण लाभदायक रहता है।

6. **स्थायित्व** (Stability) :- यदि संस्था तथा उसके व्यवसाय दोनों में स्थायित्व हैं तो इसमें विकेन्द्रीयकरण को बढ़ावा मिलेगा। इसके विपरीत, जहाँ संस्था और व्यवसाय दोनों में भारी अस्थिरता विद्यमान है वहाँ पर विकेन्द्रीयकरण की कम आवश्यकता होती है तथा इसकी गति मन्द पड़ जाती है।

7. **निर्णयों की लागत** (Cost of decisions) :- इसका उल्लेख कूण्टज एवं ओ'डोनेल ने किया है। निर्णयों की लागत भी विकेन्द्रीयकरण की मात्रा को प्रभावित करती हैं। सस्ते निर्णय विकेन्द्रीयकरण की प्रव ति को प्रोत्साहित करते हैं जबकि मंहगे निर्णय केन्द्रीयकरण की प्रव ति को प्रोत्साहित करते हैं।

8. **व्यावसायिक क्रियाओं का छितराव** (Despersion of business activities) :- यदि किसी व्यावसायिक संस्था का व्यवसाय अनेक क्षेत्रों में फैला हो और इन क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याएं सुलझानी पड़ती हों, तब इसमें प्रबन्ध का विकेन्द्रीयकरण अपने आप में आवश्यक हो जाता है। इसका कारण यह है कि इन क्षेत्रों के प्रबन्ध से सम्बन्धित प्रत्येक निर्णय प्रबन्धकों के द्वारा नहीं लिए जा सकते। इसमें न केवल अधिक समय लगेगा, बल्कि निर्णय भी तर्कपूर्ण नहीं होगे। इसी प्रकार यदि एक ही संस्था में विभिन्न प्रकार का व्यवसाय किया जाता हो या कई प्रकार की वस्तुओं का निर्माण किया जाता हो तो वहाँ विकेन्द्रीयकरण अधिक पाया जाएगा।

(Effective Decentralisation)

विकेन्द्रीयकरण की आवश्यकता का अनुभव करने के पश्चात् विकेन्द्रीयकरण कैसे किया जाए यह जानना आवश्यक है। सर्वप्रथम यह स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि पूर्ण विकेन्द्रीयकरण किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं है। कभी-कभी कुछ प्रबन्धक ऐसा सोचकर कि विकेन्द्रीयकरण संगठन बनाने का सर्वाधिक प्रभावपूर्ण सिद्धान्त है, प्रबन्ध से सम्बन्धित सभी या अधिकांश अधिकार निम्नतर स्तर तक के प्रबन्धकों को बिना सोचे-समझे दे ड़ालते हैं। लेकिन यह गलत है। प्रभावपूर्ण विकेन्द्रीयकरण के महत्वपूर्ण सिद्धान्त निम्नलिखित है :-

1. **उपयुक्त केन्द्रीयकरण की सथापना** (Establishment of appropriate decentralisation) :- प्रभावपूर्ण केन्द्रीयकरण स्थापित करने के लिए सबसे पहले कम्पनी में एक केन्द्रीय इकाई बनाना आवश्यक होता है जो सम्पर्ण कम्पनी में प्रबन्ध के लिए स्नायु केन्द्र का कार्य दे, और भिन्न-भिन्न प्रभागों तथा विभागों के लिए व हत योजनायें (Broad plans) बनाए, मूल नीतियां निर्धारित करे, इनके कार्यो में आवश्यक तालमेल बिठाये तथा सफलता के स्पष्ट मापदण्ड स्थापित करके उनकी प्रगति पर नियन्त्रण करे।

   ऐलन (Allen) के शब्दों में, "अत्यन्त विकेन्द्रित कम्पनियों में भी कम्पनी के सर्वोच्च उद्देश्य, नीतियां, कार्यक्रम, कार्यविधियां तथा बजट केन्द्रीयक त होने चाहिये।" इससे इनमें निरन्तरता, समानुरूपता, एकरूपता व तुल्यता आती है। अमेरिका में विकेन्द्रीयकरण द्वारा सफलता प्राप्त करने वाली अत्यन्त सफल, जनरल मोटर कम्पनी स्वयं इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा उदाहरण है।

2. **अधिकार भारार्पण की कला** (Art of delegation) :- यदि कम्पनी प्रबन्धक अधिकार सौंपने की कला का सही प्रयोग नहीं करते हैं या इसके आधारभूत सिद्धान्तों की अवहेलना करते हैं तो विकेन्द्रीयकरण की सम्पूर्ण योजना मिट्टी में मिल जायेगी। वे प्रबन्धक जिन्हें महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार दिए जाएं, पूर्णयता योग्य तथा तत्पर होने चाहिएं। योग्यता के बारे में आश्वस्त होने के लिए आवश्यक है कि अधीनस्थ प्रबन्धकों का प्रत्येक स्तर पर बड़े सोच-विचार कर चुनाव किया जाए तथा उन्हें कम्पनी की आवश्यकताओं के अनुसार पूरा प्रशिक्षण दिया जाए। इस सम्बन्ध में निम्न बातें महत्वपूर्ण हैं :-

(अ) वे प्रबन्धक जिन्हें महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार दिए जाएं, पूर्ण रूप से योग्य तथा तत्पर होने चाहिएं। योग्यता के बारे में आश्वस्त होने के लिए आवश्यक है कि अधीनस्थ प्रबन्धकों का प्रत्येक स्तर पर बड़े सोच-विचार कर चुनाव किया जाए तथा उन्हें कम्पनी की आवश्यकताओं के अनुसार पूरा प्रशिक्षण दिया जाए।

(ब) यदि उच्च अधिकारी अधीनस्थ कर्मचारियों को अपने काम में से कुछ काम तो दे दें लेकिन उसके अनुरूप अधिकार न दें, या अधिकार तो दें लेकिन यह शर्त लगा दें कि प्रत्येक निर्णय का उनसे अनुमोदन अवश्य कराया जाए, तो यह वास्तविक विकेन्द्रीयकरण में कठिनाई पैदा कर देगा।

(स) इन अधिकारियों में समयानुसार उत्तरदायित्व उठाने की तत्परता का विकास करने के लिए, इन्हें सही ढ़ग से प्रेरित व प्रोत्साहित करना भी आवश्यक है। जब इन प्रबन्धकों को यह विश्वास हो जाता हैं कि उच्च अधिकारी उन्हें बराबर योग्य समझते हैं और उन्हें उक्त अधिकार वास्तविक रूप में प्रदान करना चाहते हैं, तब वे अधिक रूचि, उत्साह तथा तत्परता से काम करते है।

3. **उपयुक्त सम्प्रेषण एवं समन्वय** (Proper communication and co-ordination) - संवहन का अर्थ है कि भिन्न-भिन्न विभागों में दिए जाने वाले विभिन्न निर्णयों का सही विभागों में प्रचार, जिससे प्रत्येक निर्णयकर्त्ता को यह ज्ञात रहे कि दूसरे विभाग उस परिस्थिति में क्या निर्णय लेते हैं। साथ ही, केन्द्रीय एजेन्सी द्वारा बनायी गई व्यापक नीतियों का पूरा प्रचार, जिससे निर्णयकर्त्ता को इन्हें ध्यान में रखने में सुविधा हो। अनेक बार कम्पनी की एक इकाई के कार्य का दूसरी कम्पनी की इकाई के कार्य से निकट सम्बन्ध होता है। ऐसी परिस्थितियों में इन दोनों इकाइयों के बीच नियमित सम्पर्क रहना आवश्यक है। विकेन्द्रीयकरण समन्वय की समस्या को जटिल से जटिलतर बनाता हैं।स्वायत्तता को पूर्ण स्वतन्त्रता में बदलना एकीकृत व्यवसाय की द ष्टि में घातक सिद्ध हो सकता है। अतः विभिन्न स्वायत्तशासी विकेन्द्रित इकाइयों में समन्वय की आवश्यकता होती है।

4. **पर्याप्त नियन्त्रण** (Adequate control) - यह कहा जाता है कि अत्याधिक विकेन्द्रीयकरण स्वायत्तता तथा प थक्करण की भावना को प्रोत्साहित करता है, अतः विकेन्द्रीयकरण को सफल एवं प्रभावी बनाने के लिए यह परम आवश्यक हैं कि संस्था मे प्रभावी नियन्त्रण की स्थापना की जाए। विकेन्द्रीयकरण का अर्थ यह नहीं होता कि उच्च प्रबन्धक निम्न स्तरीय प्रबन्धकों को अपने-अपने क्षेत्र में निर्णय लेने का अधिकार देकर स्वयं प थक हो जाए और ये व्यक्ति मनमानी करें। एक विकेन्द्रित कम्पनी में अलग-अलग प्रभाव स्वतंत्र अस्तित्व नहीं बन जातें हैं बल्कि मूल अस्तित्व के रूप में काम करते हैं।

5. **स्पष्ट एवं ऊँचे मापदण्ड** (Clear and high standard) - प्रबन्धकों की सफलता को मापने के लिए स्पष्ट तथा उच्च श्रेणी के मापदंड स्थापित करना आवश्यक हैं। जब अधीनस्थ प्रबन्धकों को यह ज्ञात होता हैं कि उन्हें ऊँचे दर्जे का काम करके दिखलाना आवश्यक है तब वे अपनी जिम्मेदारी को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं और पूरे उत्साह और जोश से काम करते हैं।

6. **उचित प्रेरणा** (Proper motivation) - विकेन्द्रीयकरण की सफलता के लिए उचित प्रेरणा भी आवश्यक होती हैं। प्रभागीय प्रबन्धक और उसके सहयोगी जब पूरे जोश और उत्साह से काम करेंगे तब उन्हें अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने में मदद मिलेगी। उनकी ये आकांक्षायें वित्तीय लाभ से और मान-सम्मान व कम्पनी में प्रतिष्ठा से भी सम्बन्ध रख सकती हैं।

7. **अधिकारियों में स्वस्थ प्रतियोगिता** (Healthy competition among managers) :- विकेन्द्रीयकरण को प्रभावी एवं सफल बनाने के लिए अधिकारियों में सफलता के लिए स्वस्थ प्रतियोगिता भी आवश्यक होती है। जनरल मोटर्स तथा अन्य विकेन्द्रित कम्पनियों में इस होड़ को पैदा करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रभागों को स्वतंत्र लाभ बिन्दु (Independent profit centre) के रूप में विकसित किया जाता है। प्रत्येक विभाग का अपना लाभ-हानि खाता होता है जिससे यह पता चलता है कि उस प्रभाग ने कम्पनी के लाभ में कितना भाग प्रदान किया है। स्पष्ट है कि ऐसी व्यवस्था में प्रत्येक प्रभाग के अधिकारी अपनी ओर से पूरा प्रयास करते हैं कि वे लाभ के अवसरों का अधिकाधिक प्रयोग करें, अपनी लागत पर पूरा नियन्त्रण रखें तथा संस्था के विकास में अपनी पटुता, प्रखर बुद्धि और पहल क्षमता का पूरा परिचय दें।

(Functions and Role of Top-management in a Decentralised Setting)

विभिन्न उद्देश्यों को पूरा करने में, नीतियों के निर्धारण करने में, नियंत्रण प्रणालियों के निर्माण में, उच्च स्तरीय प्रबन्ध को अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है। वास्तव में यदि देखा जाए तो अधिकारों को विकेन्द्रित करना इतना महत्वपूर्ण विषय नहीं है परन्तु उचित मनुष्य को उचित कार्य, अधिकार का दिया जाना वास्तव में एक महत्वपूर्ण विषय है। यदि तकनीकी मनुष्य को वाणिज्यिक कार्य तथा इसके विपरीत कार्य सौंप दिया जाये तो पूरा संगठनात्मक ढांचा ही चरमरा उठेगा तथा आशाजनक परिणाम प्राप्त करना एक जटिल समस्या हो जायेगी। उच्च स्तरीय प्रबंध को विकेन्द्रीयकरण करने के लिए पूरे अधिकार होने चाहिए तथा सोचने समझने की पूर्ण योग्यता होनी चाहिए।

उच्च स्तरीय प्रबन्ध पर निर्णयों के लिए कुछ विषय विपरीत हो जाते हैं जैसे - बढ़ती हुई दर का निर्धारण, नये उत्पादों के लिए विस्तार करना, नये विनियोग के अवसर, किसी वस्तु का नया उत्पादन तथा अन्य। इसके अतिरिक्त उच्च स्तरीय प्रबंध के पास संगठन में हुए भारी परिवर्तनों के सम्बन्ध में निर्णय लेने की सत्ता होनी चाहिए। ये भारी परिवर्तन हो सकते हैं - श्रम संघों के साथ अनुबन्ध, संचालित की जाने वाली इकाईयों की अधिकता के सम्बन्ध में निर्णय, क्रय के भारी अनुबन्ध इत्यादि।

उच्च स्तरीय प्रबन्ध को वित्तीय तथा अन्य वाणिज्यिक विषयों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं। अनेक कमियों को दूर करने के प्रयास सुझाने पड़ते हैं। यही नहीं, आन्तरिक इकाईयों के आपसी मतभेद भी उच्च स्तर के पास समाधान के लिए आते हैं। इसके अतिरिक्त सभी क्रियाओं का नियन्त्रण उच्च स्तरीय प्रबन्ध द्वारा किया जाता है। ये क्रियाएँ - वित्तीय, वैयक्तिक, लेखांकन, अन्वेषण व विकास, क्रय, विक्रय इत्यादि होती हैं। यह अनुभव किया जाता है कि उपरोक्त सभी क्रियाओं का विकेन्द्रीयकरण करना एक जटिल कार्य है परन्तु इन सभी क्रियाओं का विकेन्द्रीयकरण करके ही संस्था के उद्देश्यों में सफलता मिल सकती है।

यदि किसी कारणवश हमारी विकेन्द्रीयकरण व्यवस्था दूषित रही तो पूरी सत्ता एक ही स्थान पर केन्द्रित होकर रह जायेगी तथा संस्था के विभिन्न लक्ष्यों व आशाओं से भी हाथ धोना पड़ेगा।

विकेन्द्रीयकरण के लाभ

(Advantages of Decentralisation)

1. विकेन्द्रीयकरण के शीर्षस्थ-अधिकारियों के कार्य-भार में कमी आने से वे अपना ध्यान अन्य महत्वपूर्ण बातों की ओर दे सकता है जैसे - नीति निर्धारण में लगा सकते हैं।
2. इससे अधीनस्थों की प्रबन्धकीय क्षमता का विकास होता है।
3. विकेन्द्रीयकरण प थक-प थक कार्यो के लिए प थक-प थक अधिकारियों की नियुक्ति को सम्भव बनाकर विविधीकरण को सम्भव बनाता है।
4. इससे प्रबन्धकों के प्रशिक्षण एवं विकास में सहायता मिलती है।।
5. विकेन्द्रीयकरण अधीनस्थों को स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने तथा कार्य करने का अवसर प्रदान करके उनके मनोबल को सदैव ऊंचा रखता है।
6. चूंकि विकेन्द्रीयकरण में क्रिया के निकटतम निर्णय लेने का ही अधिकार प्रदान किया गया है, अतः निर्णय लेने में सरलता रहती है। इसमें लालफीताशाही नहीं पनपती ऐसे निर्णय अपेक्षाक त अधिक प्रभावी होते हैं।
7. प्रभावशाली निरीक्षण की संभावना बढ़ जाती है।
8. इससे संगठन में लोकतान्त्रिक एवं अनौपचारिक सम्बन्धों का वातावरण विकसित होता है।
9. इससे श्रेष्ठ निर्णय की प्रेरणा मिलती है।
10. उद्देश्यानुसार प्रबन्ध प्रणाली (M.B.O.) को आसानी से क्रियान्वित किया जा सकता है।

11. नवीन विचारों, पद्धतियों एवं सुझावों को कार्यान्वित किया जा सकता है।
12. कार्य निष्पादन अधिक शीघ्रता व कुशलता के साथ किया जा सकता है।

(Disadvantages of Decentralisation)

1. संकटकालीन परिस्थितियों में शीघ्र निर्णय लेना सम्भव नहीं होता।
2. विशिष्ट सेवाओं के लिए यह पूर्णतया अनुपयुक्त है।
3. प्रबन्ध में एकरूपता का अभाव होता है क्योंकि प्रत्येक विकेन्द्रित इकाई तथा प्रबन्धक को अपनी विधियों से कार्य करने की स्वतन्त्रता होती है।
4. प्रबन्ध एवं प्रशासन के व्ययों में व द्धि होती है।
5. परिवर्तित आर्थिक परिस्थितियों में समायोजन करना कठिन हो जाता है।
6. द्विराव ति (Duplication) तथा अतिव्यापन (Overlapping) की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं।
7. विकेन्द्रित इकाइयों एवं प्रबन्धकों में साम्राज्य निर्माण की भावना पनप सकती है जो संस्था के अस्तित्व में भी बाधक हो सकती है।
8. अत्याधिक विकेन्द्रीयकरण करने के उपरान्त जब वांछित सफलता की प्राप्ति नहीं होती तो पुनर्केन्द्रीयकरण की प्रव ति को बढ़ावा मिल सकता है।
9. कभी-कभी भिन्न-भिन्न प्रभागों में परस्पर प्रतिस्पर्धा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वे एक-दूसरे के साथ सहयोग के स्थान पर विरोध करने लगते हैं परिणामस्वरूप संघर्ष एवं वैमनस्य को बढ़ावा मिलता है।
10. बड़े आकार की व्यावसायिक संस्था में नियन्त्रण रखना बहुत कठिन होता है।

अध्याय–5
स्टाफिंग
(Staffing)

'स्टाफिंग' प्रबन्ध का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। क्योंकि बिना स्टॉफ के संगठन-संरचना ही नहीं की जा सकती। संस्था की सफलता योग्य प्रबन्धकों की पूर्ति पर निर्भर करती है। समस्त प्रबन्धकों, पदाधिकारियों को स्तर के अनुसार तीन वर्गो में विभक्त किया जा सकता है। (i) वरिष्ठ प्रबन्ध अधिकारी (ii) कनिष्ठ प्रबन्ध अधिकारी (iii) पर्यवेक्षीय या फोरमैन के स्तर के अधिकारी। इन विभिन्न प्रबन्ध स्तरों पर काम करने के लिए उपयुक्त व्यक्तियों के चयन व भर्ती उनके प्रशिक्षण, पदोन्नति, स्थानान्तरण, पदावनति, पद-विमुक्ति, सेवा-निव त्ति आदि से सम्बन्धित सिद्धांत व समस्याएं 'स्टाफिंग' के अन्तर्गत आती हैं। दूसरे शब्दों में, फोरमैन से लेकर विभागीय अध्यक्षों तथा जनरल मैंनेजर तक की नियुक्ति, उनके प्रशिक्षण, पदोन्नति आदि से सम्बन्धित क्रियाओं का समावेश 'स्टाफिंग' के अन्तर्गत किया जाता है। पद एवं व्यक्ति में सामंजस्य स्थापित करना स्टाफिंग का प्रमुख दायित्व है। विलियम॰ बी॰ शिवन के मतानुसार 'व्यावसायिक संस्था का भविष्य उसमें कार्यरत प्रबन्ध पदाधिकारियों पर जितना निर्भर करता है, उतना अन्य किसी घटक पर नहीं।' एक कुशल स्टाफिंग बैंक में रूपया रखने से भी अधिक महत्वपूर्ण है।

'स्टाफिंग' का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Staffing)

अर्थ-'स्टाफिंग' से हमारा आशय प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों के क्रियान्वयन हेतु योग्य एवं कर्मठ व्यक्तियों की नियुक्ति से है। स्टाफिंग प्रबन्ध पदाधिकारियों का चयन, उनकी भर्ती, मूल्यांकन एवं प्रशिक्षण का कार्य है जिससे कि कार्य-शक्ति संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग दे सके एवं कार्य-निष्पादन के दौरान अधिकतम सन्तोष प्राप्त हो सके।

परिभाषाएँ-स्टाफिंग की कुछ मुख्य परिभाषाएँ इस प्रकार है -

1. **Koontz and O'Donnell** - "स्टाफिंग से आशय उस प्रंबधकीय प्रकार्य से है जो कर्मचारियों के उपयुक्त एवं प्रभावी चयन, मूल्यांकन तथा विकास के द्वारा सगंठन संरचना को कर्मचारी उपलब्ध करने से सम्बन्ध रखता है ताकि संरचना में अभिकल्पित भूमिकाएँ निभाई जा सकें।"
2. **Theo Haimann** - "स्टाफिंग प्रबन्धकों की भर्ती, उनके चयन, विकास एवं क्षतिपूर्ति से संबंध रखने वाला कार्य है।"
3. **George Terry** - "स्टाफिंग सन्तोषजनक एवं सन्तुष्ट मानव-शक्ति को प्राप्त करने तथा उसे बनाये रखने से सम्बन्ध रखता हैं।"
4. **Patrick E. Connor** - "स्टाफिंग प्रबन्धकों का वह कार्य व उत्तरदायित्व है जो सस्ंथा के कार्य संचालन के लिए प्रबन्धकीय तथा अन्य कर्मचारियों को उपलब्ध करने, उनका विकास करने तथा उन्हें संस्था में बनाये रखने से सम्बन्ध रखता है।

निष्कर्ष - संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि स्टाफिंग या कर्मचारी नियुक्ति के अन्तर्गत प्रबंधकों एवं कर्मचारियों का चयन, उन्हें काम पर लगाना, उनका मूल्यांकन, प्रशिक्षण एवं विकास आदि का समावेश किया जाता है।

स्टाफिंग का क्षेत्र व प्रकृति
(Scope and Nature of Staffing)

क्षेत्र-स्टाफिंग के अन्तर्गत प्रायः निम्नलिखित कार्यो का समावेश किया जाता है। 1. प्रबन्धकों की आवश्यकताओं का अनुमान लगाना। 2. प्रबन्धकों का चयन करना। 3. प्रबन्धकों को योग्यतानुसार काम पर लगाना। 4. प्रबन्धकों को प्रशिक्षित करना। 5. प्रबन्धकों का मूल्यांकन करना। 6. प्रबन्धकों का वर्गीकरण करना एवं उनके लिए वेतन योजना बनाना। 7. प्रबन्धकों के विकास की उपयुक्त व्यवस्था करना। 8. प्रबन्धकों की पदोन्नति एवं स्थानान्तरण की व्यवस्था करना। 9. उनकी सेवा निव त्ति हेतु उचित प्रावधान करना। 10. प्रबन्धकों एवं अन्य कर्मचारियों के मध्य मधुर सम्बन्धों की स्थापना करना।

स्टाफिंग की प्रकृति
(Nature of Staffing)

स्टाफिंग की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित बिन्दु स्मरणीय हैं -

1. **स्टाफिंग सम्पूर्ण प्रबन्ध प्रणाली की एक उप-प्रणाली है** (Staffing is a Sub-System of Managing System) - कुण्टज एवं ओ' डोनेल के मतानुसार 'स्टाफिंग स्वयं एक प्रणाली है एवं यह सम्पूर्ण प्रबन्ध प्रणाली की एक उप-प्रणाली है। स्टाफिंग के क्षेत्र में मानव शक्ति का नियोजन, मूल्यांकन व विकास आता है। और ये कृत्य स्टाफिंग को एक प्रणाली का रूप प्रदान करते हैं क्योंकि इनकी विशिष्ट तकनीक होती है। इसको प्रबन्ध प्रणाली की उप-प्रणाली इसलिए कहते है क्योंकि स्टाफिंग संगठन संरचना का महत्वपूर्ण अंग है और संगठन संरचना नियोजन पर आधारित होती है।
2. **स्टाफिंग व्यक्तियों के साथ व्यवहार करता है** (Staffing deals with People) - नेत त्व, निर्देशन एवं अभिप्रेरणा की भाँति स्टाफिंग पूर्णतः व्यक्तियों के साथ व्यवहार करता है। इसके लिए खुली प्रणाली द ष्टिकोण को अपनाया जाता है क्योंकि स्टाफिंग पर देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व क्षैणिक वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ता है।
3. **स्टाफिंग एक सतत् कार्य है** (Staffing is a Continuous Function) - प्रबन्ध के अन्य कार्यो की भाँति स्टाफिंग भी एक निरन्तर जारी रहने वाला कार्य है। इस कार्य को संस्था की सफलता, प्रबन्ध शैली, सेविवर्गीय प्रशासन का दर्शन, पारिश्रमिक आदि अनेक घटक प्रभावित करते हैं।
4. **सभी प्रबन्धक स्टाफिंग का दायित्व रखते हैं** (All Managers have a Responsibility for Staffing) - स्टाफिंग को सभी प्रबन्धकों का दायित्व माना जाता है क्योंकि कम अथवा अधिक मात्रा में यह कार्य प्रबन्ध के प्रत्येक स्तर पर किया जाता है।
5. **स्टाफिंग वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है** (Staffing Fulfil the Present and the Future needs)- स्टाफिंग द्वारा न केवल वर्तमान में ही पदों की पूर्ति की जाती है, वरन् भावी पदों की पूर्ति भी की जाती है।
6. **स्टाफिंग दूरगामी परिणामों वाला कार्य है** (Staffing is a function of Far-Reaching Consequences) - स्टाफिंग का कार्य सद श्य प्रकृति का है जिसके दूरगामी परिणाम होते है।
7. स्टाफिंग के निष्पादन में प्रबन्धक का सामाजिक दायित्व वाला पहलू बहुत महत्वपूर्ण होता है। (Staffing Involves Social Responsibility)

स्टाफिंग का महत्व
(Importance of Staffing)

स्टाफिंग के महत्व के विषय में जो कुछ भी कहा जाये कम ही होगा। जिस प्रकार बिना कुशल ड्राइवर के कोई वाहन ढंग से नहीं चल सकता उसी प्रकार बिना कुशल प्रबन्ध पदाधिकारियों के व्यावसायिक उपक्रम रूपी वाहन भी सफलतापूर्वक नहीं चल सकता। यदि स्टाफिंग का कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया जाता है तो संस्था के लिए यह एक वरदान सिद्ध होगा।

अच्छे मानवीय सम्बन्धों का विकास, अनुरक्षण एवं उपयोग स्टाफिंग कार्य की महत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार करता है। व्यवसाय के सामाजिक दायित्व की अवधारणा भी स्टाफिंग की महत्ता की पुष्टि करती है। डगलस मेकग्रेगर के 'वाई सिद्धान्त' ने भी स्टाफिंग के कार्य को नूतन आयामों एवं द ष्टिकोणों से सम्पन्न करने की आवश्यकता को प्रकट किया है। स्टाफिंग का महत्व अग्रलिखित बिन्दुओं से और भी स्पष्ट हो जाता है -

1. **उत्पादकता में व द्धि** (Increase in Productivity) - अनुपयुक्त नियुक्ति से उत्पादकता घटती है तथा कर्मचारियों में निराशा पैदा होती है। इसके विपरीत, वैज्ञानिक ढंग से की गयी नियुक्ति से समस्त संस्था में कुशलतापूर्वक कार्य होता है उत्पादकता बढती हैं, प्रशिक्षण का व्यय कम होता है एवं सर्वत्र उच्च मनोबल का वातावरण द ष्टिगत होता है।

2. **प्रत्येक क्रिया में मनुष्यों की महत्ता** (Importance of men in every activity) - समस्त व्यावसायिक क्रियाएँ (जैसे कच्चे माल का क्रय, उत्पादन, विपणन आदि) मनुष्यों द्वारा ही सम्पन्न की जाती हैं, अतः उनके कुशल संचालन के लिए मशीनों, तकनीकों व पद्धतियों से अधिक महत्व मनुष्यों का होता है जो यन्त्रों को संचालित करते हैं, तकनीकों का प्रयोग करते हैं तथा पद्धतियों का विकास करते हैं। इससे भी स्टाफिंग का महत्व प्रतिबिम्बित होता है।

3. **विविध समस्याओं के समाधान में मदद** (Aid in Solving all types of Problems) - एक व्यावसायिक उपक्रम की समस्याएँ, चाहे वे उत्पादन में व द्धि लागत में कमी, शोध अथवा विकास से सम्बन्धित हो, मानवीय पक्ष पर बल देती है जिसमें स्टाफिंग का महत्व गर्भित है।

4. **व्यावसायिक सफलता का आधार है स्टाफिंग** (Staffing is the basis of Success in Business) - जिस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में प्रजातन्त्र की सफलता मनुष्यों के विवेक, विकास एवं अनुशासन पर निर्भर करती है, उसी प्रकार व्यवसाय में सफलता के मूल आधार प्रबन्धक ही होते हैं। अतः कुशल प्रबन्धकों की नियुक्ति या स्टाफिंग व्यावसायिक सफलता की नींव है।

स्टाफिंग प्रक्रिया
(Staffing Process)

अर्थ - स्टाफिंग प्रक्रिया से हमारा आशय उन विभिन्न पगों की श्र खंला से है जो कि किसी संगठन में सही समय पर, सही पदों पर तथा सक्षम व योग्य प्रबन्धकों की निरन्तर पूर्ति करने के लिये उठाये जाते हैं।

प्रक्रिया - स्टाफिंग प्रक्रिया के अन्तर्गत निम्नलिखित पगों का समावेश किया जाता है -

1. **प्रबन्ध-कर्मचारियों विषयक नियोजन** (Planning of Managerial Personnel) - थियो हेमैन के अनुसार इस शीर्षक के अर्न्तगत दो बातें आती हैं (i) विभिन्न प्रकार के प्रबन्धकों की आवश्यकता का निर्धारण करना और (ii) प्रबन्धकों की वांछित संख्या का निर्धारण करना।

   आवश्यकता, निर्धारण हेतु विद्यमान संगठन संरचना, आदर्श संगठन संरचना, लिखित क त्य विवरणों इत्यादि का विस्त त अध्ययन करना चाहिए। अध्ययन से प्राप्त जानकारी इस बात के निर्धारण में सहायक होती है कि संगठन में कब, कितने व कैसे प्रबन्धकों की आवश्यकता होती है। कूण्टज एवं ओ डोनेल के शब्दों में, "किसी उपक्रम में वांछित प्रबन्धकों की संख्या न केवल उसके आकार पर निर्भर करती है, वरन् संगठन संरचना की जटिलता, उसकी विस्तार योजनाओं और प्रबन्ध कर्मचारियों के टर्नओवर की दर पर भी निर्भर करती है। कर्मचारियों की संख्या और प्रबन्धकों की संख्या के बीच का अनुपात किसी अनुपात कानून का पालन नहीं करता है।" यह भी उल्लेखनीय है कि प्रत्येक प्रबन्ध-स्तर की प्रबन्धकीय अपेक्षाएँ अलग-अलग होती हैं जिनको ध्यान में रखना आवश्यक है। प्रबन्ध कर्मचारियों विषयक नियोजन की अवधि छः माह से पाँच वर्ष तक की ही हो सकती है।

2. **प्रबन्धकों की भरती** (Recruitment) - भर्ती हेतु प्रत्याशियों का पता लगाने के लिए विभिन्न समाचार-पत्रों में विज्ञापन निकाला जा सकता है तथा रोजगार कार्यालय के माध्यम से आवश्यक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। महाविद्यालयों व तकनीकी संस्थानों में जाकर भी रोजगार के इच्छुक व्यक्तियों से सम्पर्क साधा जा सकता है।

3. **प्रबन्धकों का चयन** (Selection of managers) - चयन प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रत्याशियों से आवेदन पत्र आमन्त्रित

किये जाते हैं, उनका साक्षात्कार लिया जाता है, सन्दर्भो की जाँच की जाती है तथा रोजगार-विषयक परीक्षण लिये जाते हैं।

4. **आगमन तथा अभिस्थापन** (Induction and Orientation) - इस प्रक्रिया के अन्तर्गत चयनित व्यक्ति का उसके सहयोगी प्रबन्धकों से परिचय कराया जाता है, उसे अधिकार एवं दायित्व की जानकारी दी जाती है तथा संगठन के लक्ष्यों व नीतियों के विषय में सूचना प्रदान की जाती है।

5. **प्रशिक्षण एवं विकास की व्यवस्था करना** (Arrange for Training & Development) - तत्पश्चात् बाहरी स्त्रोतों से प्राप्त युवा प्रबन्धकों एवं अन्य आन्तरिक प्रबन्धकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य कर्मचारियों की व्यक्तिगत एवं सामूहिक योग्यता में व द्धि करना होता है।

6. **निष्पादन मूल्यांकन** (Performance Appraisal) - निष्पादन का मूल्यांकन पद के अनुसार निर्धारित प्रमापों के सन्दर्भ में किया जाता है। उच्च कोटि के निष्पादन की दशा में कर्मचारियों को पुरस्कृत किया जाता है। (जैसे पदोन्नति करना, बोनस देना इत्यादि) और घटते हुए निष्पादन की स्थिति में पद अवनयन किया जा सकता है अथवा अतिरिक्त प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है।

7. **स्थानान्तरण** (Transfers) - स्थानान्तरण तीन प्रकार से हो सकता है। - (i) समान स्तर पर एक पद से दूसरे पद पर (ii) पदोन्नति करके और (iii) पदावनयन करके।

8. **प थक् किया जाना** (Separation) - निम्न दशाओं में कर्मचारियों को प थक किया जा सकता है। (i) स्वेच्छा और त्यागपत्र देने पर (ii) सेवा निव त्ति होने पर, अथवा (iii) असन्तोषजनक कार्य निष्पादन पर।

9. **पारिश्रमिक भुगतान हेतु नियोजन** (Planning for Compensation) - स्टाफिंग क्रिया के इस चरण के अन्तर्गत प्रबन्धकों के पारिश्रमिक भुगतान हेतु श्रेष्ठ योजनाएँ बनायी जाती हैं जिससे कि विकसित प्रबन्धक संस्था में बने रहें एवं कर्मठ व्यक्तियों को संस्था की ओर आकर्षित किया जा सकता है।

स्टाफिंग के प्रमुख पहलू
(Major Aspects of Staffing)

एक ब हत व्यावसायिक उपक्रम मे स्टाफिंग हेतु अपनायी जाने वाली नियुक्ति विधि (Staffing Procedure to be Followed in a Large Sized Business) - एक ब हत व्यावसायिक उपक्रम में प्रबन्ध कर्मचारियों के स्टाफिंग हेतु एक प थक विभाग होता है जिसका प्रमुख कार्य योग्य प्रबन्धकों की पूर्ति बनाये रखना होता है। इसके लिए निम्नलिखित विधि अपनाई जाती है। (i) प्रबन्धकीय मानव शक्ति का निर्धारण (ii) प्रबन्धक पदाधिकारियों के स्त्रोतों का निर्धारण (iii) साक्षात्कार करना (iv) प्रबन्धकीय श्रम-शक्ति का नियोजन (v) प्रशिक्षण की व्यवस्था करना, तथा (vi) कार्यरत प्रबन्धकों का मूल्यांकन करना। इनके विस्त त विवरण नीचे प्रस्तुत हैं -

1. **प्रबन्धकीय मानव शक्ति का निर्धारण** (Determination of Managerial Man Power) - प्रबन्धकीय मानव शक्ति का निर्धारण संस्था की भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर किया जाता है। इस समस्या के दो प्रमुख पहलू हैं। (i) गुणात्मक, और (ii) संख्यात्मक। गुणात्मक पहलू (Qualitative aspect) इस बात से संबंध रखता है कि कैसे प्रबन्धक चाहिए अर्थात् शिक्षा, कौशल, चार्तुर्य आदि की द ष्टि से उनमें क्या गुण होने चाहिएं। दूसरी और संख्यात्मक पहलू (Quantitative aspect) इस बात से संबंध रखता है कि 'कितने प्रबन्धक चाहिए'।

   (1) **गुणात्मक पहलू** (Qualitative Aspect) - स्टाफिंग के लिए सबसे पहले 'व्यक्ति विशेषताओं का निर्धारण करना चाहिए, अमुक प्रबन्ध पद के लिये चुने जाने वाले व्यक्ति में वांछित शैक्षणिक योग्यता, कौशल, चार्तुर्य, अनुभव एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों की सूची का निर्धारण ही 'व्यक्ति विशेषताओं' की तैयारी कहलाती है। किसी भी पद के लिये प्रार्थना-पत्रों में दिये जाने वाले विज्ञापनों में प्रायः इन व्यक्ति विशेषताओं का उल्लेख होता है। व्यक्ति विशेषताओं की सूची तैयार करने में कार्य विश्लेषण, कार्य विवरण तथा कार्य विशिष्ट विवरण की सहायता ली जाती है।

(अ) **कार्य विश्लेषण** (Job Analysis)-कार्य विश्लेषण सम्बन्धी अध्ययन यह बतलाता है कि प्रबन्धक को क्या काम करना है। कार्य विश्लेषण द्वारा प्रबन्धकीय कार्यो की प्रकृति का निर्धारण किया जाता है जिससे कि उनकी अपेक्षाओं को पूरा करने की क्षमता रखने वाले प्रबन्धकों का आसानी से चयन किया जा सके। यह कार्य विवरण की आधारशिला है।

(ब) **कार्य विवरण** (Job Description)-कार्य विवरण, कार्य विश्लेषण के निष्कर्षो का लिखित रूप होता है। कार्य विवरण में सामान्यतः निम्नलिखित बातों का समावेश किया जाता है। (i) कार्य का नाम (ii) किये जाने वाले कार्यो का संक्षिप्त विवरण, (iii) अपेक्षित कर्त्तव्य, दायित्व एवं परिणाम (iv) पर्यवेक्षण (v) अन्य कार्यो से संबंध (vi) प्रबंधकों के अधिकार, सत्ता एवं उनका दायित्व (vii) पारिश्रमिक व्यवस्था (viii) पदोन्नति एवं प्रगति के अवसर (ix) मशीनो, उपकरण, सामग्री एवं कार्य दशाएँ आदि। संक्षेप में, क्या करना है, कैसे करना है तथा क्यों करना है का विधिवत विवरण ही 'कार्य विवरण' कहलाता है।

(स) **कार्य विशिष्ट विवरण** (Job Specification)-कार्य विशिष्ट विवरण प्रबंधकों के उन गुणों और योग्यताओं का लिखित विवरण होता है जो कि प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यो को भली प्रकार सम्पन्न करने के लिए आवश्यक हैं। कार्य विशिष्ट विवरण, कार्य विवरण के आधार पर तैयार किया जाता है। इसमें प्रायः निम्नलिखित बातों का समावेश किया जाता है।

(i) शारीरिक, अर्थात् आयु, ऊँचाई, वजन तथा सामान्य स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्य विवरण, (ii) मानसिक अर्थात् शिक्षा, विवेक, मानसिक सन्तुलन, निर्णय लेने की क्षमता, विश्लेषण योग्यता आदि (iii) वातावरण अर्थात् सामाजिक एवं पारिवारिक स्थिति, अभिप्रेषण आदि (iv) व्यक्तित्व अर्थात् स्वभाव, पहल शक्ति, वाक् चार्तुर्य, दायित्व ग्रहण करने की क्षमता आदि। संक्षेप में, कार्य विशिष्ट विवरण उन न्यूनतम मानवीय आवश्यकताओं का विवरण हैं जो कार्य विवरण में वर्णित कार्य में निष्पादन के लिए आवश्यक है। इसे 'कार्य विनिर्देश' भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत केवल कार्य के लिए आवश्यक न्यूनतम गुणों व योग्यताओं का उल्लेख होना चाहिए, अधिकतम का नहीं। इसमें कार्य दशा, वर्तमान, पदोन्नति के ढंग आदि का भी उल्लेख हो सकता है।

योग्य कर्मचारियों का चयन करने से पहले नियुक्ति कर्त्ता को प्रबन्ध पदाधिकारियों की व्यक्तिगत विशेषताओं से भी परिचित होना चाहिए, जिससे कि सही व्यक्ति का चुनाव हो सके। एक स्मरणीय बात यह है कि प्रबन्ध पद जितना ही ऊँचा हो जाता है, तकनीकी योगदान का महत्व क्रमशः घटता जाता है तथा प्रशासकीय योग्यताओं एवं व्यक्तिगत विशेषताओं का महत्व बढ़ता जाता है। सामान्यतः प्रबन्ध कार्य के लिये निम्न व्यक्तित्व-विशेषताएँ आवश्यक समझी जाती है।: (i) पर्याप्त ज्ञान-पद एवं व्यक्ति में सामंजस्य स्थापित करने के लिए वांछनीय विशिष्ट ज्ञान की रूपरेखा निश्चित करना आवश्यक है। विभिन्न पदाधिकारियों के लिए आवश्यक विशिष्ट ज्ञान की गहनता में भी अन्तर हो सकता है। उदाहरण के लिए, उत्पादन अधिकारियों के लिए उत्पादन-कला का विशिष्ट ज्ञान आवश्यक है जबकि संस्था के मुख्य प्रबन्धक के लिए केवल सामान्य ज्ञान ही पर्याप्त होगा। (ii) निर्णय शक्ति-प्रबंध पदाधिकारियों में शीघ्र निर्णय लेने की भी क्षमता होनी चाहिए। निर्णय-क्षमता निम्न बातों पर आधारित होती है - (अ) विश्लेषण योग्यता (ब) निर्णय शक्ति (स) व्यापक द ष्टिकोण (iii) आत्मविश्वास-अपने निर्णयों को सफलतापूर्वक क्रियांवित करने के लिए उत्साह, महत्वकांक्षा तथा प्रेरणा की आवश्यकता होती है। (iv) दूसरों का ध्यान रखने का गुण-प्रबन्धक में अन्य लोगों का ध्यान रखने की क्षमता तथा सामाजिक भावना भी होनी चाहिए। अधीनस्थों का ध्यान रखकर ही वह अपने उद्देश्यों में सफल हो सकते हैं। (v) भावनात्मक स्थिरता-प्रबन्धक को कभी भावावेश में नही आना चाहिए। बाधाएँ उपस्थित होने पर-उनकी ओर से ना तो आँखें बंद करना, न धबराना और न ही अपनी असमर्थता को छिपाने का प्रयत्न करना चाहिए वरन् शक्तिपूर्ण ढंग से पूर्व-निश्चित विवेक के मार्ग का अनुसरण करते हुए अपने लक्ष्य प्राप्ति में लगे रहना चाहिए।

(2) **संख्यात्मक पहलू** (Quantitative Aspect)-कितने प्रबंधक कब चाहिये इसका निर्धारण करने के लिए सबसे पहले प्रबंधक शक्ति तालिका का पुनरीक्षण करना चाहिए जिसमें कि यह ज्ञात हो सके कि अमुक प्रबंध-पद कब खाली हो सकता है। प्रबंध-पदों के रिक्त होने की संभावनाओं पर विचार करते समय अवकाश-ग्रहण करने

की तिथियों को ध्यान में रखना चाहिए। कभी-कभी रिटायरमेण्ट के पूर्व भी लोग संस्था को छोड़ देते हैं अथवा त्यागपत्र, बिमारी, म त्यु, लम्बा अवकाश आदि घटकों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। प्रबंध तालिका के पुनरीक्षण के बाद संगठन संरचना, विकास व विस्तार की भावी योजनाओं, तकनीकी परिवर्ती आदि का गहन अध्ययन करना चाहिए जिससे कि वांछित प्रबन्धकों की संख्या व समय का सही अनुमान लगाया जा सके। पदोन्नति तथा प्रबन्धकीय शक्ति का निष्पादन मूल्यांकन बहुत जरूरी है। जिससे यह बात ज्ञात हो सके कि संस्था के भीतर आवश्यकता के समय कितने प्रबन्धक उपलब्ध हो सकेंगे, कितने प्रबन्धकों को पदोन्नति हेतु प्रशिक्षित करना होगा एवं कितने प्रबन्धक बाहरी क्षेत्रों से प्राप्त करने होंगे।

2. **प्रबन्ध पदाधिकारियों के स्त्रोतों का निर्धारण करना** (Determining the Sources of Managerial Man Power) - प्रबन्ध पदाधिकारियों के स्त्रोतों को दो भागों में बांटा जा सकता है -

(i) **आन्तरिक स्त्रोत** - इस साधन के अन्तर्गत निम्न स्त्रोतो का समावेश किया जा सकता है। (i) एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानांतरण, (ii) विद्यमान कर्मचारियों की पदोन्नति, (iii) पुराने कर्मचारियों द्वारा अपने मित्रों एवं रिश्तेदारों के लिए सिफारिश करना और (iv) पुराने कर्मचारीयों, जो संस्था से अच्छे सम्बन्ध होते हुए भी किसी विशिष्ट कारणवंश संस्था को छोड़ गये हैं। प्रबंध पदाधिकारियों के स्त्रोत का यह साधन अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ समझा जाता है क्योंकि फर्म के पुराने कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा होता है तथा उनमें अधिक श्रेष्ठ काम करने की प्रेरणा बनी रहती है। दूसरे, इस विधि द्वारा एक उपक्रम अपने कर्मचारियों में से प्रतिभाशाली प्रबन्धकों की उपस्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है। परन्तु प्रबन्ध पदाधिकारियों के चयन के इस साधन को अपनाने में बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है, अन्यथा भाई-भतीजावाद साम्प्रदायिकता आदि दोष इसमें प्रवेश पा जाते हैं, जो कर्मचारियों के मनोबल को नीचा करते हैं।

(ii) **बाहरी स्त्रोत** - इस साधन के अन्तर्गत कर्मचारियों के चयन में निम्न स्त्रोतों का समावेश किया जा सकता है (i) व्यक्तिगत रूप से अथवा डाक द्वारा भेजे गये प्रार्थना पत्र (ii) रोजगार की एजेन्सियाँ जैसे - सरकारी एजेन्सी, निजी एजेन्सी, सेवायोजकों का संघ, इत्यादि (iii)अन्य स्थानों से सम्पर्क जैसे - रोजगार दफ्तर, श्रम-विभाग की रिपोर्ट, समाचार-पत्रों में प्रकाशित विज्ञापन (iv) विशिष्ट शिक्षण संस्थाएँ, जैसे-प्रबंध व प्रशासन की शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थान, अर्थ एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इत्यादि (v) व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं, समाचार पत्रों आदि में विज्ञापन देकर। कभी-कभी समान स्तर पर काम करने वाले दो व्यक्तियों में से किसी एक व्यक्ति को ही उच्च पद के लिये चुनने से अन्य व्यक्तियों में निराशा, ईर्ष्या, मनमुटाव की भावना पैदा हो सकती है। अतः ऐसी परिस्थिति में बाहरी स्त्रोतों पर निर्भर रहना अधिक श्रेष्ठ होगा। नियुक्ति करने से पूर्व उपयुक्त साधनों में से अधिक से अधिक का उपयोग करने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे योग्य व्यक्ति का चुनाव करने के लिये कुशल व्यक्तियों का एक बहुत बड़ा समूह उपलब्ध हो सके।

3. **साक्षात्कार करना (Interviewing)**

आशय (Meaning) प्रबधंको के स्त्रोतों तथा उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं पर विचार करने के बाद उपयुक्त प्रार्थियों से प्रत्यक्ष साक्षात्कार करना चाहिए। 'साक्षात्कार' से आशय है प्रार्थियों को बुलाकर उनसे बातचीत करना तथा संस्था के लिये उनकी उपयुक्तता के विषय मे निर्णय लेना। इसका एकमात्र उद्देश्य अनेक व्यक्तियों में से सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति का चयन करना होता है। 'साक्षात्कार' लेने का कार्य स्वयं नियोक्ता द्वारा अथवा उसकी ओर से सेविवर्गीय प्रशासन विभाग के उच्च अधिकारियों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। संस्था के अधिकारियों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। संस्था के अधिकारियों के अतिरिक्त साक्षात्कार लेने के लिये बाहरी विशेषज्ञों को भी आमन्त्रित किया जा सकता है। साक्षात्कार के समय प्रार्थी अपनी योग्यता व अनुभव विषयक सभी प्रमाण पत्रों को साथ लाता है। इस प्रकार साक्षात्कार के अवसर पर प्रमाण पत्रों की जाँच भी होती है जिससे यह ज्ञात हो जाता है कि अमुक प्रार्थी संस्था के लिये उपयुक्त है या नहीं।

साक्षात्कार की सफलता के तत्व - साक्षात्कार एक कला है जिसकी सफलता निम्न तत्वों पर निर्भर करती है। (i) साक्षात्कार के पूर्व प्रार्थी के आवेदन पत्र में उल्लिखित तथ्यों व संलग्न प्रमाणपत्रों का अध्ययन करना चाहिए जिससे कि उसके विषय

में अधिक से अधिक जानकारी मिल सके। (ii) प्रार्थियों से पूछने के लिये पद के कार्य के संबंध में पहले से ही प्रश्नसूची तैयार कर लेनी चाहिए। (iii) प्रत्येक प्रार्थी को साक्षात्कार की पूर्व सूचना होनी चाहिए। (iv) साक्षात्कार एकांत स्थान में किया जाना चाहिए। (v) प्रार्थी के द ष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक विषय में व्यापक द ष्टिकोण अपनाना चाहिए तथा किसी पूर्व धारण से ग्रसित नहीं होना चाहिए। (vi) प्रार्थी पर विश्वास रखने तथा रूचि लेने से उसका विश्वासपात्र बना जा सकता है। वह आराम से बात कर सके इसका उसे अनुभव करना चाहिए। (vii) प्रार्थी की बात को धैर्यपूर्वक सुनना चाहिए। उसे गुमराह करने की कोशिश नही करनी चाहिए। सारी बात सीधी व स्पष्ट होनी चाहिए। (viii) साक्षात्कार का सम्पूर्ण विवरण तत्काल अथवा शीघ्राशीघ्र लिख देना चाहिए। (ix) प्रत्येक प्रार्थी को साक्षात्कार के लिये पर्याप्त समय दीजिए। मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी करना चाहिए। साक्षात्कार से प्रार्थी की मानसिक चेतना, सांस्कृतिक स्तर, रहन-सहन व बातचीत के ढंग आदि का पता लग जाता है। इस प्रकार व्यक्तिगत योग्यता तथा उपक्रम के लिये उपयोगिता के आधार पर विभिन्न प्रार्थियों का मूल्यांकन करने से उपयुक्त व्यक्तियों का चयन किया जा सकता है।

अध्याय–6
निर्देशन या संचालन
(Direction)

निर्देशन का अर्थ व परिभाषा
(Meaning and Definition of Direction)

अर्थ
(Meaning)

अधीनस्थों से काम लेने के लिए उनका मार्गदर्शन तभा प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण करना ही 'निर्देशन' कहलाता है। यह प्रबन्ध का एक आवश्यक तत्व है जिसकी सहायता से संगठन के उद्देश्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, नियत सिद्धांतों व नीतियों के अनुसार किसी कार्य के क्रियान्वयन की समुचित देखभाल करना ही निर्देशन कहलाता है। निर्देशन संचालन का पर्याय है जिसका आशय है अधीनस्थों का पथ-प्रदर्शन करना। उचित निर्देशन के अभाव में नियोजन, संगठन व स्टाफिंग व्यर्थ हो जाते हैं। कार्य निष्पादन की अवधि में उठने वाली समस्त समस्याओं को निपटाना भी निर्देशन या संचालन के अन्तर्गत सम्मिलित हैं।

परिभाषाएँ
(Definitions)

संचालन की प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं :-

1. Koontz and O'Donnell, "अधीनस्थों के मार्गदर्शन एवं पर्यवेक्षण का प्रबंधकीय कार्य संचालन कहलाता है।"
2. Dimock, "संचालन वास्तव में प्रशासन का ह दय है, जिसके अन्तर्गत क्षेत्र का निर्धारण, आदेशों को देना एवं गतिशील नेत त्व प्रदान करना है।"
3. Theo Haimann, "संचालन के अन्तर्गत उस प्रक्रिया एवं तकनीकों का समावेश किया जाता है जिनका उपयोग आदेशों एवं निर्देशों को निर्गमित करने एवं देखने का समावेश किया जाता है। जिनका उपयोग आदेशों व निर्देशों को निर्गमित करने एवं यह देखने के लिये किया जाता है कि उपक्रम की समस्य क्रियाएँ योजनानुसार हो रही है अथवा नहीं। संचालन के चारों ओर समस्त निष्पादन घूमता है।"

निष्कर्ष

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि काम करने वाले कर्मचारियों का पथ-प्रदर्शन करना, उन्हें आवश्यक आदेश व निर्देश प्रदान करना, उनके कार्यो व कार्य-निष्पादन विधि का पर्यवेक्षण करना तथा निष्पादन अवधि में उठने वाली समस्त समस्याओं को निपटाना निर्देशन व संचालन की विषय सामग्री है।

निर्देशन की प्रक ति या संचालन के लक्षण
(Nature or Characteristics of Direction)

संचालन के प्रमुख लक्षण निम्नांकित है जिनसे इसकी प्रक ति का भी अनुमान लगाया जा सकता है - (1) संचालन प्रबंध का

एक प्राथमिक कार्य है। नियोजन संगठन व स्टाफिंग तो कार्य की प ष्ठभूमि तैयार करते हैं, किन्तु कार्य का वास्तविक शुभारम्भ संचालन से ही प्रारम्भ होता है। (2) उपक्रम चाहे बड़ा हो या छोटा, प्रबंधक वरिष्ठ हो या कनिष्ठ, संचालन की आवश्यकता प्रबंध के प्रत्येक स्तर पर पड़ती है। संचालन निरंतर जारी रहने वाली प्रक्रिया है। (3) संचालन का प्रमुख उद्देश्य अधीनस्थों से काम कराना है। (4) संचालन प्रवाह शीर्षक प्रबंध से निम्न प्रबंध की ओर चलता है। (5) संचालन का कार्य सर्वोच्च या शीर्ष वर्ग के लोगों का होता है। आदेशों व निर्देशों का प्रारम्भिक स्त्रोत संचालन ही होता है। कम्पनी के संगठनात्मक कलेवर में भी अन्य सभी अधिकारी जीने के नीचे वाली सीढ़ियों की भाँति निम्नस्तरीय होते हैं। (6) संचालन के अन्तर्गत केवल आदेशों का निर्गमन ही नहीं होना वरन् वास्तविक निष्पादन का निरीक्षण भी इसका महत्वपूर्ण अंग है। जिस प्रकार युद्धस्थल में कमाण्डर केवल आदेश ही नहीं देता, वरन् यह भी देखता है कि सैनिक उसका वास्तव में पालन भी कर रहें है या नहीं, उसी प्रकार संचालन का स्वरूप निरीक्षण या सुपरवाइजर की भाँति होता है। (7) संचालक निर्वाचक, मार्गदर्शक तथा शिक्षक भी होता है। अपने अधीन काम करने वाले व्यक्तियों को वह निर्गमित आदेशों को समझाता है उनका मार्गदर्शन करके उनके सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करता है। (8) संचालन समन्वय का भी कार्य करता है। विभिन्न विभागों की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना संचालन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

संचालन के कार्य
(Functions of Direction)

संचालन के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :-

1. **आदेश देना** (To order) :- आदेश व निर्देश प्रदान करने से ही संचालन का श्री गणेश होता है। आदेशों का प्रवाह प्रायः ऊपर से नीचे की ओर होता है। शीर्ष प्रबंध, मध्य प्रबंध की ओर मध्य प्रबंध अपने से नीचे वाले स्तर के प्रबंध को आदेश देता है।
2. **निरीक्षण का पर्यवेक्षण करना** (To supervise) :- आदेश देने मात्र से ही निर्देशन का काम समाप्त नहीं होता वरन् प्रबंध संचालकों को यह भी देखना पड़ता है कि उनके द्वारा प्रदान किये गये निर्देशों के अनुसार कार्य हो भी रहा है अथवा नहीं। इस प्रकार निरीक्षण करना ही संचालन का एक महत्वपूर्ण कार्य है।
3. **मार्गदर्शन निर्वचन तथा प्रशिक्षण** (Guidance interpretation and training) :- संचालन का तीसरा कार्य है कर्मचारियों का पथ प्रदर्शन करना, उनको सभी आवश्यक बातें यथा विधि समझाना एवं आवश्यकता पड़ने पर प्रशिक्षण भी देना।
4. **अभिप्रेरित करना** (to motivate) :- कर्मचारियों से रूचि, निष्ठा व लगन के साथ काम करवाने के लिए उन्हें अभिप्रेरित भी करना पड़ता है।
5. **समन्वय** (Co-ordination) :- सभी कर्मचारियों तथा उनके समूहों में समन्वय स्थापित करना निर्देशन का पाँचवा महत्वपूर्ण कार्य है।
6. **निर्देशन के अन्य कार्यों में उल्लेखनीय है** - (i) नीति निर्माण करना (ii) नीतियों को कार्यान्वित करना (iii) नेत त्व प्रदान करना (iv) प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था बनाये रखना (v) प्रभावपूर्ण नियन्त्रण बनाना तथा (vi) सभी अधीनस्थों के मनोबल को ऊँचा बनाये रखना।

संचालन का महत्व
(Importance of Direction)

संचालन के महत्व के विषय में जो कुछ भी कहा जाये कम ही होगा। जिस प्रकार बिना पतवार के नाव आगे नहीं बढ़ सकती अथवा बिना कैप्टन के जहान नहीं चल सकता उसी प्रकार बिना संचालन के नाव अथवा जहाज रूपी कम्पनी भी सफलतापूर्वक एवं कुशलता के साथ अपनी व्यावसायिक क्रियाओं का सम्पादन नहीं कर सकती। Marshall E. Dimock के शब्दों में, "संचालन प्रशासन का ह दय भी होता है। इसी के माध्यम से आदेश व निर्देश प्रदान किये जाते हैं। संचालन ही व्यवसाय में आवश्यक नेत त्व प्रदान करता है। "जिस प्रकार युद्ध छिड़ जाने पर सेनाध्यक्ष अपनी फौजों को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने के लिए युद्ध

का संचालन करता है अर्थात् यह निश्चय करता है कि कहाँ, कब, कैसे युद्ध करना होगा एवं अमुक स्थलों पर कितनी व कैसी सैन्य-शक्ति रखनी होगी। उसी प्रकार संचालकगण भी व्यावसायिक नीतियों के कुशल निष्पादन हेतु संचालन की उपयुक्त व्यवस्था करते हैं। संचालकगण संस्था की नीतियों का निर्धारण करते हैं एवं उनके कार्यान्वन के लिये आवश्यक तन्त्र की भी व्यवस्था करते हैं। यहाँ पर उनके कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं की जाती, वे यह भी देखते हैं कि पूर्वनिश्चित सिद्धांतों व आदेशों के अनुसार ही संस्था के विभिन्न विभागों की क्रियाओं का सम्पादन हो रहा है अथवा नहीं। इस प्रकार समुचित नियन्त्रण की भी व्यवस्था करते हैं। नियन्त्रण के साथ-साथ विभिन्न विभागों की क्रियाओं में आवश्यक समन्वय की देखभाल का काम भी संचालन के अन्तर्गत आता है।

संचालक का महत्व इस बात से भी स्पष्ट है कि कम्पनियों के वास्तविक स्वामी (जिन्हें व्यावसायिक भाषा में अंशधारी कहते हैं।) विकेन्द्रित होते हैं। वे दैनिक कार्यो की देखभाल नहीं कर सकते और नीतियों का निर्धारण करना भी उनके लिये कठिन कार्य होता है। अतः उनके प्रतिनिधि ही उपयुक्त संचालन की व्यवस्था करते हैं। यही कारण है कि कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत संचालकों का होना अनिवार्य रखा गया है। व्यवसाय में संचालन युद्ध की व्यूह-रचना के सद श्य है। Koontz and O'Donnell के शब्दों में, "संचालन का घनिष्ठ सम्बन्ध है कार्य को सम्पन्न करने से। एक व्यक्ति नियोजन करके संगठनात्मक कलेवर का निर्माण व स्टाफिंग कर सकता है। किन्तु उसे तब तक सफल नहीं कहा जा सकता जब तक कि वह अपने अधीनस्थों को यह न सिखाये कि उन्हें क्या करना है तथा कैसे करना है। प्रबंध के अन्य समस्त कार्यो तथा 'संचालन' की तुलना एक मोटरगाडी में केवल बैठने तथा उसके इन्जन को चालू करके उसे गियर में डालने के अन्तर से की जा सकती है। संचालन ही समस्त साधनों को क्रियाशील कर देता है।

संचालन के सिद्धान्त
(Principles of Direction)

हेनरी फेयोल ने एक स्थान पर लिखा है कि कुशल संचालन के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि संचालकों को प्रबंध के सामान्य सिद्धान्तों की पूर्ण जानकारी हो। कोई भी प्रबंधक अथवा संचालक जो आदेश देता है, उसी दशा में सफल हो सकता है यदि उसमें निम्न विशेषताएँ हों - (i) उसे अपने अधीन काम करने वाले समस्त कर्मचारियों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। (ii) कम्पनी तथा उसके कर्मचारियों को बाह्य करने वाले समस्त अनुबंधों की उसे पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। (iii) श्रेष्ठ नेत त्व प्रदान करने के लिये उसे स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। (iv) समय-समय पर उसे संगठनात्मक अंकेक्षण करते रहना चाहिये। (v) सम्मेलन व समितियों की व्यवस्था से उसे संस्था के अन्य प्रमुख अधिकारियों से मिलते रहना चाहिये। (vi) उसे अनावश्यक बातों में नहीं उलझना चाहिये और (vii) कर्मचारियों के मध्य एकता स्थापित करने के लिये सदैव कटिबद्ध रहना चाहिये। संचालन के कुछ सिद्धान्त इस प्रकार हैं :-

1. **उद्देश्यों की एकता** (Harmony of objectives) :- एफ॰ डब्ल्यू॰ टेलर ने अपने एक विख्यात निबन्ध में लिखा है कि सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य सेवायोजक तथा सेवायुक्त के उद्देश्यों में साम्य या एकता स्थापित करना होना चाहिए। इस प्रकार संचालन का भी दायित्व हो जाता है कि वह दोनों पक्षों के उद्देश्यों की एकता का वातावरण पैदा करे। अधिकतम, श्रेष्ठतम, व सस्ता उत्पादन करना ही दोनों का लक्ष्य होना चाहिये। यदि काम करने वाले एक लक्ष्य में विश्वास नहीं करते तो ऐसी संस्था सम द्धशाली नहीं हो सकती।

2. **आदेशों की एकता** (Unity of command) :- आदेशों की एकता से हमारा स्पष्ट आशय यह है कि विभागाधिकारियों को जो आदेश प्रदान किये जाये उनका एक ही स्त्रोत होना चाहिये। जिस प्रकार यदि सेना में अधिक अधिकारी आदेश देने लगेंगे और सभी आदेशों में भिन्नता हो सैनिकों के लिये उनका पालन करना एक जटिल समस्या बन जायेगी। उसी प्रकार व्यावसायिक संगठन के अन्तर्गत भी संचालन की ओर से जो उद्देश्य दिये जाये उनका स्त्रोत एक ही होना चाहिए तथा उद्देश्यों में भी नहीं भिन्नता होनी चाहिए, अन्यथा भ्रम व अनुशासनहीनता उत्पन्न हो सकती है।

3. **प्रत्यक्ष निरीक्षण** (Direct supervision) :- यद्यपि इन व्यक्तियों द्वारा काम कराने के अनेक साधन हो सकते हैं, किन्तु उन समस्त साधनों में सर्वश्रेष्ठ बात यह है कि जहाँ तक निरीक्षण का प्रश्न है, संचालकों को स्वयं ही इसकी देखभाल करनी चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो सके, अपने अधीन काम करने वाले समस्त कर्मचारियों तथा विभागाध्यक्षों के प्रत्यक्ष

सम्पर्क में आते रहना चाहिये। व्यक्तिगत सम्पर्क का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है तथा कर्मचारियों के मध्य उठते-बैठते हैं तो संस्था में अनुशासन व शील का वातावरण पैदा होता है तथा सभी वर्ग संतुष्ट रहते हैं।

4. **जनतन्त्रात्मक नेत त्व** (Democratic leadership) :- संचालन ही व्यावसायिक संस्था में नेत त्व प्रदान करता है। किन्तु औद्योगिक नेता तानाशाह नहीं हो सकते। आधुनिक युग तो जनतन्त्र या लोकतन्त्र का युग है। अतः यह आवश्यक है कि औद्योगिक नेतागण भी संस्था में काम करने वाले अन्य समस्त कर्मचारियों की भावनाओं व इच्छाओं को ध्यान में रखें। उन्हें सदैव यह जानने का प्रयास करते रहना चाहिए कि वे क्या चाहते हैं। श्रमिकों व कर्मचारियों के संघ आजकल बहुत पनप रहें हैं एवं उनके प्रभाव के कारण उनके सदस्यगण भी अपने अधिकारों के प्रति बहुत जागरूक हो गये हैं। संचालकों को चाहिये कि उन संघों द्वारा की गयी माँगों के प्रति सदैव उदार प्रव ति बनाये तथा अत्यन्त सहानुभूति के साथ व्यवहार करें। जहाँ तक सम्भव हो सके, प्रबंधक व श्रमिक एक साथ मिलकर महत्वपूर्ण मामलों को तय करें। इस प्रकार की साझेदारी ही जनतन्त्रात्मक कही जाती है, एवं सफल औद्योगिक नेत त्व प्रदान करने के लिये इस दिशा में प्रयास करना आवश्यक है।

5. **निरन्तर जागरूक रहकर संचालन व्यवस्था करते रहना** (Always conscious direction or follow through) :- यदि सेना में कमाण्डर आदेश देकर आराम करने लगे तो हो सकता है कि सैनिक आदेशों का उल्लंघन करे। अतः कमाण्डर को आदेश देने के उपरान्त उनके कार्यान्वन की भी देखभाल करते रहना चाहिये। इसी प्रकार संचालकों को भी नीति-निर्धारण तक ही अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री नहीं समझनी चाहिये। उन्हें सदैव जागरूक रहकर यह भी देखते रहना चाहिये कि नीतियों के अनुसार ही सारे कार्य हो रहे हैं या नहीं। आदेशों के विपरीत कार्य होने की दशा में गहन छानबीन करनी चाहिए ताकि सुधारात्मक उपाय अपनाये जा सकें।

संचालन की विधि
(Process of Direction)

संचालन का कार्य मुख्यतः तीन स्तरों के माध्यम से किया जाता है - (1) उपयुक्त अधिकारियों की नियुक्ति करके भारार्पण करना, एवं उनके मध्य अधिकारों एवं कर्तव्यों का वितरण करना, जिससे कि वे अपने दायित्व का अनुभव करें एवं उनके मध्य अधिकार क्षेत्र का वितरण करते रहे। (2)संदेशवाहन की उपयुक्त व्यवस्था करना - इससे हमारा आशय यह है कि संदेश या संवादवाहन की प्रभावपूर्ण व्यवस्था होनी चाहिये जिससे आदेश व निर्देश नियत व्यक्ति तक ढंग से पहुँच सके एवं वे उनको समझकर उनके अनुसार कार्य भी करने लगे। प्रबंध व संचालन में संदेश वाहन की विभिन्न पद्धतियों एवं उसके गुण-दोषों की आलोचनात्मक व्याख्या की जा चुकी है। संचालकों की द ष्टि से वे सभी नियम व सिद्धांत स्मरणीय हैं। (3) "आदेश देना" - आदेश से हमारा आशय उन निर्देशों से है जो कि उच्च अधिकारियों द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को दिये जाते हैं जिससे उनका समुचित मार्गदर्शन हो सके एवं उन्हीं निर्देशों के अनुसार वे कार्य करें। कार्य कब प्रारम्भ करें, कैसे करें, एवं कार्य करते समय किन बातों का विशेष ध्यान रखा जाये, आदि बातों के विषय में आदेश स्पष्ट होने चाहियें।

अध्याय–7

समन्वय

(Co-ordination)

समन्वय का अर्थ

(Meaning of Co-ordination)

किसी संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उसकी विभिन्न क्रियाओं में सांमजस्य व तालमेल स्थापित करना 'समन्वय' कहलाता है। यह प्रबन्ध का वह कार्य है जो किसी संस्था के विभिन्न विभागों, कर्मचारियों तथा उसके समूहों में इस प्रकार एकीकरण स्थापित करता है कि न्यूनतम लागत पर वाछिंत उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता मिलती है।

'समन्वय प्रबन्ध का सार है।' सार किसी वस्तु की आन्तरिक प्रक ति अथवा उसके महत्वपूर्ण गुण का नाम है। समन्वय वह महत्वपूर्ण तत्व है जिससे प्रबन्ध प्रक्रिया का निर्माण होता है। यह नियोजन की अवस्था में ही प्रारम्भ हो जाता है तथा संगठन, निर्देशन, नियन्त्रण आदि सभी कार्यो के साथ चलता है। समन्वय से ही प्रबन्ध निम्न वांछित परिणाम उपलब्ध कर पाता है जैसे - (i) न्यूनतम लागत पर अधिकतम व श्रेष्ठ उत्पादन होना, (ii) पारस्परिक हित संघर्षो को रोकना। (iii) प्रबन्ध-प्रक्रिया को कुशल व प्रभावी बनाना। (iv) निर्देशन में एकता स्थापित करना। (v) मानवीय सम्बन्धों को मधुर बनाना। (vi) संस्था के साधनों, प्रयत्नों एवं उद्देश्यों में सन्तुलन स्थापित करना। (vii) साधनों के दुरूपयोग को रोककर सद्पयोग में व द्धि करना। (viii) मानव शक्ति के मनोबल में व द्धि करना। (ix) संचार को प्रभावपूर्ण बनाना। (x) सामाजिक दायित्व के निर्वाह को सम्भव बनाना।

यद्यपि समन्वय स्वयं एक महत्वपूर्ण प्रबन्धकीय कार्य है, किन्तु यह अन्य सभी प्रबन्ध कार्यो की कुंजी है। अन्य कार्यो में इसकी भूमिका इस प्रकार है :-

1. प्रबन्ध प्रक्रिया में समन्वयन का श्रीगणेश नियोजन से ही प्रारम्भ हो जाता है। नियोजन के अन्तर्गत संस्था के उद्देश्यों, नीतियों, बजट, विधियों, प्रमापों, कार्यक्रमों, रीति-नीतियों आदि का निर्धारण किया जाता है और ये कार्य समन्वय के अभाव में नहीं किये जा सकते।
2. समन्वय संगठन को सुद ढ आधार प्रदान करता है। संगठन के अन्तर्गत प्रबन्धक श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण, नियन्त्रण के विस्तार आदि सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर संस्था की समस्य क्रियाओं का निर्धारण करता है। समूहीकरण करता है तथा कार्य-आबंटन करता है। इन कार्यो के निष्पादन में समन्वय की भूमिका महत्वपूर्ण मानी गयी है। अधिकार सत्ता के केन्द्रीयकरण व विकेन्द्रीयकरण का प्रश्न भी समन्वय की सहायता की अपेक्षा रखता है। उपयुक्त एवं गतिशील संगठन संरचना का विकास समन्वित प्रयासों पर ही निर्भर करता है।
3. समन्वय नियन्त्रण को नियमित एवं प्रभावपूर्ण बनाने का कार्य करता है। नियन्त्रण उद्देश्यों एवं साधनों और उत्पादन एवं प्रयासों में सन्तुलन बनाये रखता है। सन्तुलन का यह कार्य समन्वयन द्वारा ही किया जाता है।
4. प्रभावी संचार व्यवस्था भी प्रभावी समन्वय द्वारा ही सम्भव हो सकती है।
5. समन्वय अभिप्रेरणा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
6. निर्णयन को समन्वय के द्वारा ही सहभागी बनाया जा सकता है।
7. निर्देशन के कार्य को समन्वित रूप में करने पर ही वह प्रभावपूर्ण बन जाता है।

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि समन्वयन सभी प्रबन्ध कार्यो का सार तत्व है। यह संस्था के उद्देश्यों, विभागीय, क्रियाओं, साधनों तथा कर्मचारियों के वैयक्तिक व सामूहिक प्रयासों को एकरूपता प्रदान करके वांछित परिणामों को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

समन्वयन की कुछ प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार हैं :-

1. **मूने व रैले** (Moone and Railey) :- "किसी सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करने तथा तालमेल बनाये रखने के उद्देश्य से सामूहिक प्रयत्नों की सुव्यवस्था करने को समन्वयन कहते हैं।"

   "Co-ordination is an orderly arrangement of group effort to provide unity of action in pursuit of common purpose." Ace to Moone and Railey.

2. **मैकफरलैण्ड** (Mc Farland) :- "समन्वयन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक प्रबन्धक अपने अधीनस्थों में सामूहिक प्रयास का एक सुव्यवस्थित स्वरूप विकसित करता है तथा सामूहिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए क्रिया सम्बन्धी एकता स्थापित करता है।"

   "Co-ordination is the process whereby an executive develops an orderly pattern of group effect among his subordinates and secures unity of action in the pursuit of common purpose." Ace to Dalton E. Mcfarland.

3. **कूण्टज व ओ. डोनेल** (Koontz and O'Donnell) :- "समन्वयन सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत प्रयत्नों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रबन्ध करता है।"

   "Co-ordination is the essence of management for the achievement of harmony of individual efforts towards the accomplishment of group goals."

4. **हेनरी फेयोल** (Henry Fayol) :- "किसी संस्था के कार्य संचालन को सुविधाजनक एवं सफल बनाने के लिए उसकी समस्त क्रियाओं में तालमेल स्थापित करना ही समन्वयन कहलाता है।"

   "Co-ordination is to harmonise all the activities of a concern in order to facilitate its working and its success." Ace to Henry Feyol.

5. **जार्ज आर. टेरी** (George R. Terry) :- "समन्वयन प्रबन्ध की वह एकीकरण क्रिया है जो संगठनात्मक दल के सदस्यों को संगठन के लक्ष्य की ओर द ढसंकल्प एवं पूर्ण विश्वास के साथ अग्रसर होने योग्य बनाती है।"

समन्वय की विशेषताएँ
(Characteristic of Co-ordination)

समन्वय की विशेषताएं इस प्रकार हैं :-

1. **प्रबन्धकीय उत्तरदायित्व** (Managerial responsibility) :- समन्वय एक प्रबन्धकीय उत्तरदायित्व है। यह कार्य नियोजन के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। संगठन निर्माण के समय इसे योजनाबद्ध विधि से स्थापित किया जाता है और बदलती हुई परिस्थितियों में प्रबन्धक इसे बनाए रखने का प्रयास करते रहते हैं।

2. **सामूहिक प्रयास** (Group efforts) :- समन्वय की आवश्यकता सामूहिक प्रयासों के सम्बन्ध में ही होती है क्योंकि व्यक्तिगत प्रयास किसी दूसरे के कार्यो को किसी प्रकार प्रभावित नहीं करते।

3. **एक निरन्तर तथा गतिशील प्रक्रिया** (A continuous and dynamic process) :- संगठन में किसी न किसी प्रकार के समन्वय की आवश्यकता निरन्तर बनी रहती है। प्रबन्ध प्रायः उच्च स्तर का समन्वय प्राप्त करने का प्रयास करता है।

4. कार्यवाही की एकता (Unity of efforts) :- समन्वय का उद्देश्य कार्यवाही की एकता उत्पन्न करना है, जिससे कि सभी प्रयास एक ही दिशा में प्रशस्त हों, सन्तुलित हों तथा एक दूसरे की सहपूर्ति करें।

5. **आन्तरिक एवं बाह्य समन्वय** (Internal and external co-ordination) :- आन्तरिक समन्वय के अन्तर्गत संगठन के भिन्न-भिन्न भागों, कार्यो एवं उद्देश्यों में तालमेल करना पड़ता है जबकि बाह्य समन्वय के अन्तर्गत संगठन तथा इसके बाहरी वातावरण का समन्वय शामिल है।

समन्वयन का स्वभाव
(Nature of Co-ordination)

समन्वयन के स्वभाव के विषय में निम्न बातें स्मरणीय हैं :-

1. समन्वयन संस्था के शीर्ष प्रबन्ध का उत्तरदायित्व है। यह उसके नेत त्व सम्बन्धी कार्य का एक महत्वपूर्ण अंग है जिसकी वह अवहेलना नहीं कर सकता है।
2. समन्वयन एक प्रक्रिया है कोई स्थायी व्यक्ति नहीं। प्रत्येक संस्था में कम या अधिक मात्रा में समन्वयन सदा विदयमान रहता है किन्तु प्रबन्धकों को समन्वयन का एक उच्च स्तर प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए।
3. समन्वयन सामूहिक प्रयासों के लिए है, व्यक्तिगत प्रयासों के लिए नहीं।
4. सामूहिक लक्ष्यों की पूर्ति बिना समन्वय के कठिन होती है।
5. प्रयासों में समन्वय बनाये रखने के लिए प्रत्येक कार्यकर्त्ता को संस्था के लक्ष्यों का ज्ञान होना आवश्यक है।

समन्वयन की आवश्यकता
(Need of Co-ordination)

जहाँ भी अलग-अलग व्यक्ति, व्यक्ति समूह, उद्देश्य, क्रिया होगी, वहाँ समन्वय की आवश्यकता होती है। औद्योगिक संगठन के क्षेत्र में इसका विशेष महत्व होता है। क्योंकि यदि समय पर उत्पादन नहीं होता या उसकी किस्म घटिया हो जाती है अथवा उत्पादन लागत अधिक आती है तो संगठन के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लग जाता है। एक अच्छी प्रकार से प्रस्तुत किया गया आर्केस्ट्रा श्रोताओं एवं दर्शकों को बहुत प्रभावित करता है। उसके पीछे सफलता का रहस्य समन्वय होता है। क्योंकि उनका मास्टर विभिन्न कलाकारों की क्रियाओं में समन्वय करता है तभी अच्छा कार्यक्रम प्रस्तुत हो पाता है। यही बात प्रबन्ध के क्षेत्रों में भी लागू होती है। इतना ही नहीं अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा समन्वय प्रबन्ध के क्षेत्र में अधिक महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि इस क्षेत्र में व्यक्तिगत एवं सामूहिक उद्देश्यों, विभिन्न विभागों, अनेक क्रियाओं में समन्वय करना पड़ता है। एक औद्योगिक संगठन में समन्वय की आवश्यकता निम्नलिखित कारणें से होती है।

1. **श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण** (Division of labour and specialisation) :- वर्तमान युग श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण का है, जिसके परिणामस्वरूप एक मुख्य क्रिया को अनेक छोटी-छोटी उपक्रियाओं में विभाजित कर दिया जाता है। और प्रत्येक उपक्रियाओं को अलग-अलग व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों को सौंपा जाता है। जो कि उस क्रिया के विशेषज्ञ होते हैं। जिससे अधिकतम कार्यकुशलता का लाभ उठाया जा सके। जहाँ एक ओर हम श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त करते हैं, वहीं दूसरी ओर समन्वय की कठिनाई का भी सामना करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति उसी कार्य में दक्ष हो जाता है जिसे वह निरन्तर कर रहा है। और वह अपने आप को कुल कार्य के साथ नहीं जोड़ पाता। अतः इस दोष को दूर करने के लिए समन्वय की आवश्यकता होती है।
2. **विभिन्न विभागों का अर्थ स्वतन्त्र अस्तित्व** (Semi-autonomous status of various departments) :- वर्तमान युग बड़े पैमाने के उत्पादन का युग है जहां संगठन का आकार बहुत अधिक बड़ा होता है। एक संगठन में अनेक विभाग होते हैं। विकेन्द्रीयकरण की प्रक्रिया के कारण इन विभागों को अनेक विषयों में स्वतन्त्र निर्णय लेने का अधिकार है। इस स्वतन्त्रता के कारण ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि एक विभाग के द्वारा लिए गए निर्णय, दूसरे विभागों के कार्यो, हितों एवं नीतियों से तथा संगठन के हितों से तालमेल नहीं खाते। अतः समन्वय की आवश्यकता पड़ती है।

3. **संगठन में मानवीय तत्व** (Human factor in the organisation) :- प्रत्येक संगठन में कार्य करने वाले व्यक्ति होते हैं और प्रबन्धकों को इन कर्मचारियों से काम लेना होता है। मानव स्वभाव प्राक तिक रूप से ही बड़ा परिवर्तनशील, चंचल एवं विषम है, जो कि अनेक बार संगठनात्मक उद्देश्यों से हटकर भी कार्य करने लग जाता है। जिसका प्रभाव उसके कार्यो पर पड़ता है। अतः वहाँ समन्वय की आवश्यकता पड़ती है। समन्वय की आवश्यकता का एक अन्य कारण यह है कि समन्वय में विभिन्न स्तरों पर अलग-अलग मात्रा में अधिकार सौंपे जाते हैं। जिन व्यक्तियों को कम अधिकार मिलते हैं, उनका अनेक बार अपने उच्च अधिकारियों से मनमुटाव चलता है। अतः इसे दूर करने के लिए भी समन्वय की आवश्यकता होती है।

समन्वय और सहयोग
(Co-ordination and Co-operation)

कुछ लोग समन्वय तथा सहयोग को एक दूसरे का पर्यायवाची मानते है। लेकिन यहाँ यह स्पष्ट करना बड़ा महत्वपूर्ण है कि समन्वय एक प्रणाली है जबकि सहयोग एक विधि। सहयोग का अर्थ है एक सामान्य उद्देश्य के लिए ऐच्छिक रूप से एक दूसरे के साथ मिल कर कार्य करना, जबकि समन्वय के अन्तर्गत एक अधिकारी विभिन्न व्यक्तियों एवं विभागों के कार्यो में उचित प्रयास करके समन्वय स्थापित करता है जिससे कि निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। सहयोग व्यक्ति की स्वेच्छा से होता है, उसके लिए उन्हे बाध्य नही किया जा सकता, लेकिन समन्वय के अन्तर्गत अधिकारी अनेक प्रयास करके व्यक्तियों तथा विभागों की क्रिया में तालमेल एवं समाजस्य स्थापित करता है। समन्वय अधिकाशतः उचित अधिकारियों द्वारा निश्चित कार्यक्रमों के अनुसार प्रारम्भ से ही स्थापित किया जाता है, जबकि सहयोग भिन्न भिन्न व्यक्तियो द्वारा स्वयं अपनी इच्छा से परस्पर सम्बन्धों के आधार पर किया जाता है। समन्वय एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है, जो कि नियोजन से प्रारम्भ होती है और नियन्त्रण तक चलती है। सहयोग एक अस्थायी प्रक्रिया है जो कि व्यक्तियों के परस्पर विचारों, सम्बन्धों तथा संगठन के वातावरण पर निर्भर करती है। समन्वय के अन्तर्गत केवल व्यक्ति अपने प्रयासो को एक दूसरे के प्रयासों से मिलाने का प्रयत्न करते है। यह बात स्पष्ट हो जाती है कि समन्वय और सहयोग पूर्ण रूप से अलग-अलग नहीं है। समन्वय का एक उद्देश्य सहयोग स्थापित करना भी होता है।

समन्वय - एक प्रबन्ध
(Co-ordination-Essence of Management)

कुछ विद्वान समन्वय को प्रबन्ध का एक प थ्क कार्य मानते है, लेकिन कुछ प्रबन्ध विशेषज्ञ इसे प्रबन्ध का अलग कार्य नहीं मानते। फेयोल तथा ब्रैच समन्वय को प्रबन्ध का एक अलग कार्य मानते है। इसके विपरीत कूंटज तथा ओ-डोनेल जो आधुनिक विद्वान है समन्वय को प्रबन्ध का अलग कार्य नहीं मानते। उनका कहना है कि समन्वय प्रबन्ध की प्रक्रिया से इस प्रकार जुडा हुआ है कि हम इसे अलग क्रिया नहीं कह सकते। विलियम स्प्रीगल ने प्रबन्ध को समन्वय की शक्ति कहा है। प्रो॰ हैमेन का कहना है कि प्रबन्ध का कोई भी कार्य क्यों न हो, चाहे वह नियोजन हो या नियन्त्रण, संगठन करना हो, नियुक्ति करना या आदेश देना सभी में समन्वय की आवश्यकता पड़ती है। यह बात सही भी है। उदाहरण के लिए योजना बनाते समय अलग-अलग विभागों की योजना तथा अन्य उप-योजनाओं को एक दूसरे के साथ इस प्रकार से समन्वित करना पड़ता है कि वह सम्पूर्ण संस्था की योजना का एक अंग बन जाए। योजना को अलग करने के लिए हमें अनेक कार्यक्रम चलाने पड़ते है। इन कार्यक्रमों का समय क्रम एवं समय उपयोग इस प्रकार समन्वित करना पड़ता है, जिससे, कि सम्पूर्ण संस्था के कार्य ठीक प्रकार चलते रहें। प्रबन्धकों को उपलब्ध साधनों तथा संस्था के उद्देश्यों के बीच भी समन्वय स्थापित करना पड़ता है। यदि साधन कम है तो पर्याप्त लक्ष्य निर्धारित नहीं किए जा सकते। योजनाओं को ठीक प्रकास से लागू करने के लिए एक संगठन आवश्यक होता है। वास्तव में, हम विभिन्न व्यक्तियों के कार्यो में समन्वय रखने के लिए ही संगठन बनाते है। इसलिए संगठन समन्वय का आधार है। संगठन बनाने के बाद विभिन्न व्यक्तियो की नियुक्ति करनी पड़ती हैं और नियुक्ति करते समय आवश्यक योग्यता,

कर्मचारी संख्या आदि का ध्यान भी रखना पड़ता है। समन्वय का अर्थ देख-रेख की उस प्रक्रिया से है जो दो या दो से अधिक व्यक्तियो के कार्यो की देख-रेख करते है तथा उनका आपस में तालमेल बिठाते है। यदि कोई कर्मचारी ठीक प्रकार से कार्य नही करता हो, तो अभिप्रेरणा की तकनीक का सहारा लिया जाता है। प्रबन्ध का सबसे अन्तिम कार्य नियन्त्रण भी समन्वय के साथ जुड़ा हुआ है। दूसरे शब्दों में नियन्त्रण की आवश्यकता ही समन्वय करने के लिए पैदा होती है नियन्त्रण में हम यह देखते है कि प्रत्येक विभाग तथा प्रत्येक कर्मचारी निर्धारित कार्यो को पूर्व निश्चित योजना के अनुसार कर रहे है या नहीं। यदि कोई कमी पाई जाती है तो उसे दूर करने का प्रयास किया जाता है। **मेरी पार्कट फोलेट के शब्दो में** "समन्वय प्रबन्धकीय कार्यो की सबसे पहली अवस्था अर्थात् योजना बनाने से आरम्भ होता है और यह सभी कार्यो अर्थात संगठन, निर्देशन, नीति-पालन तथा अभिप्ररेणा तक व्यवस्थित ढ़ग से जुडा रहता है।"

समन्वय के सिद्धान्त
(Principles of Co-ordination)

समन्वय के सिद्धान्त के बारे में मूल विचार मेरी पार्कट के द्वारा दिए गए। उन्होंने समन्वय के चार मूलभूत सिद्धान्त बताए है तथा ये सिद्धान्त समन्वय की तकनीक से अलग है। इन सिद्धान्तों का वर्णन संक्षेप में निम्न प्रकार है-

1. **प्रारम्भ से ही उपयोग** (Early Beginning)- समन्वय का कार्य प्रबन्ध की प्रारम्भिक व्यवस्था से ही आरम्भ कर देना चाहिए। यदि प्रारम्भ से ही हम समन्वय क्रिया को अलग से नहीं करेंगे तो बाद में समन्वय स्थापित करना कठिन होगा और अनुत्पादक भी होगा। उदाहरण के लिए एक संस्था का प्रबन्धक माल खरीदने के लिए आदेश दे देता है लेकिन बाद में वित्तीय प्रबन्धक से पता चलता है कि संस्था में इसके लिए धन की व्यवस्था नहीं है तो समन्वय स्थापित करना बड़ा कठिन होगा। इसी प्रकार से यदि विक्रय प्रबन्धक अपने स्टाक के बारे में बिना जाने ही माल बेचने का आदेश स्वीकार करता है तो किसी भी दशा में माल की पूर्ति समय पर नही की जा सकती। अतः योजना बनाते समय ही और कार्यो को प्रारम्भ करने से पहले ही समन्वय स्थापित हो जाना चाहिए।

2. **प्रत्यक्ष सम्पर्क** (Direct Contact)- समन्वय का दूसरा सिद्धान्त है कि सम्पूर्ण व्यक्तियो के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क होना चाहिए। प्रत्यक्ष सम्पर्क होने से समन्वय शीघ्र स्थापित किया जा सकता है। इससे आपसी समझ एवं सहयोग को बढ़ावा मिलता है और लालफीताशाही जन्म नहीं पाती। वैसे भी समन्वय की सफलता स्पष्ट एवं शीघ्र सवंहन पर निर्भर करती है और इसके लिए प्रत्यक्ष सम्पर्क होना आवश्यक है, जिससे कि दो व्यक्तियों तथा विभागों के बीच में किसी भी प्रकार का भ्रम पैदा न हो।

3. **निरन्तरता** (Continuity)- समन्वय के बारे में यह कहा जाता है कि यह एक निरन्तर चलती रहने वाली प्रक्रिया है। यदि इसे बीच में छोड़ दिया जाएगा तो अनेक समस्याएं पैदा हो सकती है। अतः यह आवश्यक है कि संस्था के उद्देश्यों एवं प्रयत्नों एवं कर्मचारियों, प्रगति एवं लक्ष्यों आदि के बीच निरन्तर समन्वय रहना चाहिए। कभी-कभी कुछ विशेष समन्वय समितियां समन्वय की कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं को हल करने के लिए बनाई जाती है। लेकिन इससे समस्या का समाधान नहीं हो सकता। यह आवश्यक है कि समन्वय का कार्य निरन्तर चलता रहे।

4. **परस्परता** (Reciprocity)- विभिन्न तत्व जब एक साथ प्रयोग किए जाते है तो एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा एक दूसरे से जुड़े रहते है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सभी व्यक्तियो के कार्यो हितो आदि में एकीकरण की आवश्यकता होती है और एकीकरण करने के लिए परस्पर सम्बन्धो को ध्यान में रखकर समन्वय किया जाता है। उदाहरण के लिए विक्रय, उत्पादन, वित्त और कर्मचारी सभी विभाग एक-दूसरे से जुड़े होते है तथा एक-दूसरे पर निर्भर होते है। यदि हम उत्पादन बढ़ाना चाहते है तो अतिरिक्त वित्त एवं कर्मचारी की आवश्यकता होगी और विक्रय प्रबन्ध को अधिक माल बेचना पड़ेगा। यदि हम कुछ कर्मचारियो को निकालते है तो एक और हमें वित्त की कुछ बचत होगी लेकिन दूसरी और उत्पादन कम होने का भय रहेगा। अतः स्पष्ट हो जाता है कि सभी व्यक्ति एवं कार्य एक दूसरे पर निर्भर होते है।

समन्वय की तकनीक एवं ढ़ंग
(Methods or Techniques of Co-Ordination)

समन्वय के प्रमुख ढ़ग निम्न प्रकार है।

1. **आदेश श्र खला द्वारा समन्वयन** (Co-Ordination by orderschain)- संगठन सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक वरिष्ठ अधिकरी को अपने अधीनस्थों को आदेश देने का अधिकार होता है। अतः अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य उनके वरिष्ठो द्वारा समन्वित किये जाते रहे है। इस प्रकार आदेश श्र खला द्वारा समन्वय स्थापित हो जाता है।

2. **वैयक्तिक नेत त्व द्वारा समन्वयन** (Co-Ordination by Personal Leadership)- ब्रैंच के मतानुसार समन्वय एक मानवीय प्रक्रिया होती है और प्रबन्धक अपने वैयक्तिक आचरण द्वारा इसकी स्थापना करता है। सफल नेत त्व के लिए जिन बातों की आवश्यकता होती है, उनकी आवश्यकता सफल समन्वयन के लिए भी पड़ती है।

3. **समितियों द्वारा समन्वयन** (Co-ordination by committees) :- कुछ समितियां केवल अनुशासन करने वाली होती हैं और कुछ निर्णय लेने वाली। अनुशासन अथवा निर्णय बहुमत पर आधारित होता है। उच्चाधिकारी समन्वय की स्थापना के लिए विभिन्न प्रमुखों की एक समिति बना देता है। इससे उसे सभी प्रकार के द ष्टिकोणों से अवगत होने का अवसर मिलता है तथा फलस्वरूप संस्था की स्थापना सुगम हो जाती है।

4. **स्व-समन्वय द्वारा समन्वयन** (Co-ordination by self-co-ordination) :- प्रायः व्यावसायिक संस्थाओं में विभाग प्रमुख और अन्य अधिकारी अपने-अपने क्षेत्र में समन्वय स्थापित करने का कार्य करते हैं। किन्तु इसके सामूहिक उद्देश्यों की पूर्ति होना कठिन है। यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक अधिकारी अपने-अपने कार्यक्षेत्र में समन्वय रखने के अतिरिक्त यह भी देखे कि अन्य अधिकारियों के क्रियाकलापों पर बुरा प्रभाव न पड़े।

5. **सामान्य स्टाफ द्वारा समन्वयन** (Co-ordination by general staff) :- स्व-समन्वयन की दशा में प्रत्येक अधिकारी अपनी योजना में अन्य अधिकारियों की अपेक्षा सुविधाजनक परिवर्तन करने का विरोध करता है और अनुभव करता है कि उसे अमुक अधिकारियों की अपेक्षा कम महत्व दिया जा रहा है। इस दोष को दूर करने हेतु बड़ी संस्थाओं में सामान्य सहायकों का प्रयोग होने लगा है। सामान्य विभाग को संस्था के सभी विभागों द्वारा सूचना मिलती रहती है। अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण यह विभाग यह निश्चित कर सकता है कि किस विभाग की कौन-सी सूचना अन्य विभाग या विभागों के लिए लाभप्रद हो सकती है। इस प्रकार, सामान्य विभाग के द्वारा भी समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

6. **विशिष्ट समन्वयकर्ताओं द्वारा समन्वयन** (Co-ordination by special co-ordination) :- कुछ संस्थाओं में व्यवसाय के विभिन्न पक्षों ने समन्वय स्थापित करने के लिए विशिष्ट समन्वयकर्ताओं की स्थापना की जा सकती है। उदाहरणार्थ, स्पिनिंग एण्ड वीविंग विभागों के बीच समन्वय स्थापित करने के लिए विशिष्ट व्यक्ति हो सकता है जिसका काम केवल स्पिनिंग विभाग की प्रगति को वीविंग विभाग तक पहुंचाना है, जिससे दोनों के क्रियाकलापों में समन्वय बना रहे।

7. **पर्यवेक्षण द्वारा समन्वयन** (Co-ordination by supervisor) :- पर्यवेक्षण प्रारम्भ से ही समन्वयन का एक महत्वपूर्ण साधन समझा जाता है। पर्यवेक्षक का प्रमुख कर्त्तव्य अपने अधीनस्थों की क्रियाओं का पर्यवेक्षण करना एवं उनमें समन्वय स्थापित करना होता है।

8. **व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा समन्वयन** (Co-ordination by personal contact) :- व्यक्तिगत सम्पर्क के माध्यम से संस्था के उद्देश्यों, उसके विधि क्रियाकलापों एवं नियन्त्रण में समन्वय स्थापित किया जा सकता है। भ्रान्तियों के निवारण के लिए व्यक्तिगत सम्पर्क ही एक संजीवनी है।

9. **नियोजन द्वारा समन्वयन** (Co-ordination by planning) :- नियोजन का प्रमुख उद्देश्य लक्ष्यों, नीतियों व साधनों में सामंजस्य स्थापित करना होता है। इस प्रकार नियोजन स्वयं समन्वय की एक महत्वपूर्ण तकनीक है।

10. **लिखित सम्प्रेषण द्वारा समन्वयन** (Co-ordination by written communication) :- इस तकनीक का उपयोग व्यक्तिगत सम्पर्क के पूरक के रूप में किया जाता है। पत्र, बुलेटिन, मैगज़ीन, तार, टेलीफोन, रेडियो, सिनेमा आदि इसके उदाहरण हैं।

11. **बजट द्वारा समन्वयन** (Co-ordination by budgets) :- बजटों के आधार पर ही विभिन्न विभाग अपने क्रियाकलाप संचालित करते हैं। मास्टर बजट सबका नियन्त्रणकर्त्ता व समन्वयक होता है। इस प्रकार नियन्त्रण की युक्तियां वास्तव में समन्वय की तकनीक कही जा सकती है।

12. **संगठन द्वारा समन्वयन** (Co-ordination by organisation) :- Moone के अनुसार संगठन उपक्रम की विभिन्न क्रियाओं में समन्वयन स्थापित करने का श्रेष्ठ साधन है।

13. **अन्य तकनीकें** (Other technique) :- इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्न का समावेश किया जा सकता है। (1) अधिशासी कार्यवाही द्वारा समन्वय और (2) सम्मेलनों, सभाओ व सेमीनारों द्वारा समन्वय।

समन्वय के प्रकार
(Types of co-ordination)

समन्वय के तीन मुख्य भाग है।

1. **आन्तरिक समन्वयन** (Internal co-ordination) :- किसी भी उपक्रम की आन्तरिक संगठनात्मक संरचना में समन्वय स्थापित करना आन्तरिक समन्वयन कहलाता है जैसे कर्मचारियों, विभागों, उपविभागों शाखाओं, अधिकारियों आदि के मध्य समन्वय। आन्तरिक समन्वय को पुनः दो भागो मे बाँटा जा सकता है।

   (1) **क्षैतिक समन्वयन** (Horizontal co-ordination) :- एक उपक्रम में विभिन्न समान-स्तरीय विभागों में स्थापित किया गया समन्वय क्षैतिज या समतल समन्वयन कहलाता है। उदाहरणार्थ, किसी उपक्रम के उत्पादन, वित्त, कर्मचारी, विज्ञापन विक्रय एवं निर्यात संवर्द्धन विभागों के बीच के समन्वय को क्षैतिज समन्वयन कहेंगे। निम्न रेखाचित्र में समतल समन्वयन प्रदर्शित किया गया है।

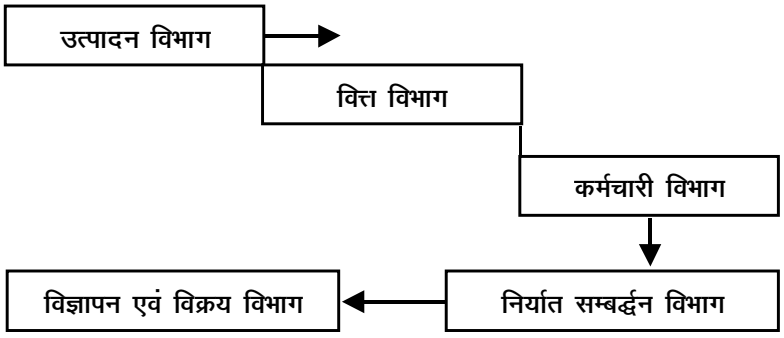

क्षैतिज समन्वयन

   (2) **लम्बवत् समन्वयन** (Vertical co-ordination) :- जैसा कि निम्नांकित रेखाचित्र में प्रकट होता है, किसी उपक्रम में उच्च पदाधिकारियों से अधीनस्थो की क्रियाओं में स्थापित किया गया समन्वय लम्बवत् कहलाता है।

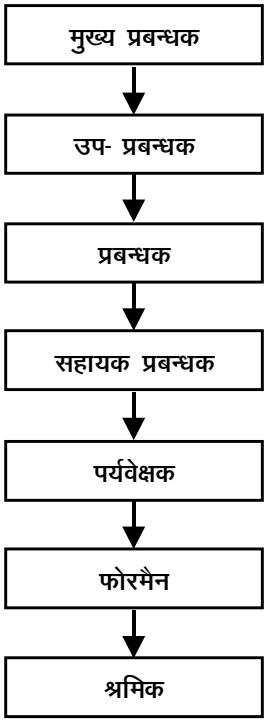

लम्बवत् समन्वयन

2. **बाह्य समन्वयन** (External co-ordination) :- किसी उपक्रम की आन्तरिक संगठनात्मक संरचना का बाह्य सस्थाओं से स्थापित किया गया समन्वय बाह्य समन्वयन कहलाता है। बाह्य संस्थाओं में सरकार, बैंक व बीमा कम्पनियाँ, स्कन्ध विपणिया, प्रतिस्पर्द्धा संस्थाएँ, समाज, सप्लायर्स, इत्यादि को शामिल करते हैं। बाह्य समन्वयन की आवश्यकता निम्नांकित कारणों से हो सकती है :-

(1) हित रखने वाले पक्षकारों की इच्छाओं की पूर्ति के लिए समन्वय जरूरी होता है। हित रखने वाले पक्षकारों में सेवायोजक, कर्मचारी व उपभोक्ता मुख्य है। सेवायोजक अपनी विनियोजित पूंजी पर अधिकतम प्रत्याय या रिटर्न चाहता है, कर्मचारी अधिकतम मजदूरी व मंहगाई भत्ता चाहते हैं और उपभोक्तागण सही समय किस्म की सस्ती व अच्छी वस्तुएं हैं। बाह्य समन्वय ही इन परस्पर विरोधी हितों में समन्वय स्थापित कर सकता है।

(2) चूंकि विभिन्न उपक्रम उपभोक्ता-क्रेता के सम्बन्धों में परस्पर जुड़े रहते हैं अतः प्रत्येक उपक्रम को अन्य उपक्रमों से समन्वय स्थापित करना पड़ता है। ऐसे समन्वय के अभाव में समय पर कच्चा माल, मशीने व शक्ति की पूर्ति नहीं होगी, उत्पादन अवरूद्ध हो जायेगा, विक्रय की मात्रा सीमित रह जायेगी तथा सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था कुप्रभावित हो सकती है।

(3) सरकारी कानूनों, नीतियों व नियमों का यथाविधि पालन करने के लिए भी बाह्य समन्वयन जरूरी होता है।

(4) सामान्य व्यापारिक उतार-चढ़ाव सुरक्षा हेतु भी बाह्य समन्वयन आवश्यक है।

(5) आधुनिक टेक्नोलॉजी के युग में नवीन, आविष्कारों ने प्रबन्धकों के लिए तकनीकी समन्वय के महत्व को बहुत बढ़ा लिया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोध व विकास विभागों की स्थापना की जाती है।

समन्वय की सीमाएँ
(Limitations of Co-ordination)

समन्वय की प्रमुख सीमाएं निम्नलिखित हैं :-

1. समन्वय करने वालों तथा अधीनस्थों की सीमित योग्यताएं समन्वयन में सबसे बड़ी बाधा होती है।
2. प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों में असहयोग की प्रव ति दूसरी बड़ी बाधा है।
3. प्रबन्धक एवं कर्मचारी सामान्य हितों की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत हितों व स्वार्थो को अधिक महत्त्व देते हैं।
4. संस्था में कार्यरत प्रबन्धकों व कर्मचारियों व विद्यमान जाति, धर्म, भाषा, राज्य, राजनीतिक विचारधारा आदि की विशेषताएं गुटबाजी को प्रोत्साहित करती है जिससे समन्वय में बाधा पैदा होती है।
5. अनावश्यक चमचागिरी, फूट डाल कर काम बनाना, गलत विवेचनाएं करना आदि मानवीय दुर्बलताओं के कारण भी समन्वय के मार्ग में कठिनाई आती है।
6. संस्था के भीतर व बाहर का वातावरण भी समन्वय के प्रतिकूल हो सकता है।
7. मानवीय व्यवहार की अनिश्चितता भी बड़ी बाधा है।
8. समन्वयन की अनुपयुक्त तकनीक व दुर्बल संचार व्यवस्था भी बाधा पैदा कर सकती है।

प्रभावपूर्ण समन्वय के प्रमुख तत्व
(Elements of Effective Co-ordination)

प्रभावपूर्ण समन्वय के प्रमुख तत्व निम्नलिखित है :-

1. **अधिकार और उत्तरदायित्व का स्पष्टीकरण** :- व्यावसायिक संगठन का तात्पर्य विभिन्न पदाधिकारियों के मध्य अनौपचारिक तथा औपचारिक सम्बन्धों के अन्तर्जाल से है। इसमें उदग्र रूप से, नीचे से ऊपर की ओर, एक के ऊपर एक, अनेक अधिकार स्तर होते हैं, और क्षैतिज रूप से अनेक कार्यात्मक तथा क्षेत्रात्मक तर्कसम्मत समूह विद्यमान पाये जाते हैं। अतः प्रभावपूर्ण समन्वयन की प्रथम मूलभूत आवश्यकता यह है कि इन उदग्र और क्षैतिज कार्यकलापों में समन्वय स्थापित किया जाए है। इस हेतु अधिकारों और उत्तरदायित्व का स्पष्ट होना बहुत जरूरी है। इसके लिए निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

   (1) एक अधिकारी क्षेत्र स्पष्ट होना चाहिए जिससे कि कार्य की उपेक्षा की जिम्मेदारी निश्चित की जा सके।

   (2) प्रत्येक अधिकारी को अपने अधिकार क्षेत्र की जानकारी के साथ-साथ अन्य अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र का

ज्ञान कराना चाहिए जिससे कि वह उपक्रम की समस्याओं को अधिक गहराई से समझ सके।

(3) परस्पर व्यापी अधिकार न्यूनतम होना चाहिए।

2. **जाँच और निरीक्षण** :- समन्वयन अधिकारी को केवल इस बात का ही ध्यान नहीं रखना है कि समन्वय किस प्रकार रखा जाय वरन् उसे ऐसी व्यवस्था भी करनी चाहिए, जिससे वास्तविक और अवांछित क्रियाकलापों में तुलना की जा सके। ऐसी तुलना के द्वारा विसंगतियों पर प्रकाश पड़ता है। मन-मुटाव के स्त्रोतों और श्रम की आवश्यक दोबारगी का पता चलता है तथा दुर्बलताओं का ज्ञान होने से उन्हें सुगमता से दूर किया जा सकता है।

3. **प्रभावपूर्ण सम्प्रेषण** :- अधिकारों और उत्तरदायित्वों का स्पष्टीकरण तथा वर्तमान समन्वय व्यवस्था का निरीक्षण विभिन्न सम्प्रेषण विधियों द्वारा सम्भव होते हैं। अतः प्रभावपूर्ण समन्वय के लिए प्रभावपूर्ण सम्प्रेषण विधियों का उचित उपयोग भी आवश्यक है जैसे समितियों का गठन, सभाओं और सम्मेलनों द्वारा सामूहिक निर्णय, संलेख, प्रतिवेदन एवं अन्य प्रकार के व्यक्तिगत सम्पर्क। **Demock** के अनुसार - "स्टाक सभाएं उपस्थित व्यक्तियों में संस्था के कार्यो के प्रति एक निष्ठा के भाव जाग्रत करती है उन्हें अपने कार्यो को प्रभावित करने वाली नयी-नयी समस्याओं की जानकारी प्रदान करती है, समस्याओं को सुलझाने के लिए विभिन्न सदस्यों के विचार पता चलते हैं तथा उनका सहयोग प्रगाप्त किया जाता है।"

4. **प्रभावपूर्ण नेत त्व** :- प्रभावपूर्ण समन्वयन के लिए कुशल नेत त्व होना भी नितान्त आवश्यक है। यह भी उल्लेखनीय है कि परमासत्ता के रूप में संस्था में एक नेता का होना ही वांछनीय है और वही संस्था का सर्वोच्च समन्वय अधिकारी होता है। संस्था में एक से अधिक नेता होने पर अनेक प्रकार के श्रम, अनिश्चय तथा कार्य-त्रुटियों की आशंका रहती है।

अध्याय–8
नियंत्रण
(Control)

प्रबंध की प्रक्रिया में नियंत्रण अंतिम चरण है क्योंकि इसकी आवश्यकता अन्य प्रबन्धकीय कदमों जैसे नियोजन, संगठन तथा निर्देशन इत्यादि के बाद पड़ती है। प्राचीन काल से ही नियंत्रण को प्रशासन का एक आवश्यक साधन माना जाता रहा है। इसमें प्रबंधक यह जाँच करता है कि वह अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल रहा है या नही; उसके आदेशों व निर्देशों का पालन किया गया है या नही; यदि वह उद्देश्य प्राप्त करने में सफल नही रहा तो उसके क्या कारण हैं; तथा किस प्रकार कार्यवाही में सुधार करके उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है। अतः नियंत्रण प्रबंध का अंतिम कार्य होते हुए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रबंध के सभी कार्यो की सफलता प्रभावपूर्ण नियंत्रण पर ही निर्भर करती है।

नियंत्रण का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Control)

प्रबंध में नियंत्रण से तात्पर्य वास्तविक प्रगति की समीक्षा करके ऐसी कार्यवाही करना है कि वास्तविक प्रगति अपेक्षित प्रगति के अनुरूप हो। इसमें उन समस्त क्रियाओं को शामिल किया जाता है जो कंपनी के पूर्व निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यो को निर्देशित एवं उत्प्रेरित करती है। यह कोई प्रतिबंध लगाने का साधन नहीं है वरन यह तो वह साधन है जिसके माध्यम से प्रबंधक विश्वास तथा सुरक्षा के साथ अधिकारों का प्रत्यायोजन एवं विकेन्द्रीकरण कर अपेक्षित दिशा में व्यवहारों को निरूपित करता है।

आधुनिक प्रबंधक यह मानते हैं कि नियंत्रण का तात्पर्य कर्मचारियों पर साम्राज्य स्थापित करना नहीं है अपितु यह तो वह क्रिया है जिसके माध्यम से कर्मचारियों के कार्यो को पूर्वनिश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्देशित एवं समन्वित किया जाता है। नियंत्रण का सार यह देखने में है कि क्रियाएं वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में ही की जा रही हैं अथवा नहीं। दूसरे शब्दों में, नियंत्रण का आशय यह देखना है कि प्रत्येक क्रिया स्वीकृत योजनाओं के अनुसार ही हो रही है।

नियंत्रण को विद्वानों ने विभिन्न ढंग से परिभाषित किया है। इनमें कुछ प्रमुख परिभाषाएं अग्रलिखित हैं-

1. हेनरी फेयोल (Henry Fayol) के शब्दों में, "नियंत्रण कार्य में यह देखना शामिल है कि क्या सभी काम अपनाई गई योजनाओं, जारी किए गए निर्देशों और निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार किए जा रहे हैं। इसका उद्देश्य कमजोरियों और गलतियों का संकेत देना है जिससे उन्हें सुधारा जा सके और भविष्य में उनकी पुनराव त्ति को रोका जा सके।"

   इस परिभाषा से स्पष्ट है कि नियंत्रण की प्रक्रिया के द्वारा प्रबंधक यह कोशिश करता है कि संस्था में सभी काम योजनाओं, निर्देशों तथा सिद्धान्तों के अनुसार किए जाएँ और यदि कहीं कोई कमी रह जाए तो न केवल इसे सुधारा जा सके, बल्कि भविष्य में इसकी पुनराव त्ति को पहले से रोका जा सके।

2. मेसी (Massie) के अनुसार, "नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वर्तमान कार्यो का मापन किया जाता है और कुछ पूर्व-निश्चित तथ्यों की और मार्गदर्शन दिया जाता है।"

   मेसी ने नियंत्रण को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है-एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें जो काम हो रहा है उसे मापा जाता है तथा इस प्रकार की कार्यवाही की जाती है कि पूर्व-निश्चित प्रमाप प्राप्त किए जा सकें।

3. कोटलर (Kotler) के शब्दों में, "नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वास्तविक परिणामों को इच्छित परिणामों के निकट लाने के प्रयास किए जाते हैं।"

   इस परिभाषा में भी लगभग वही बात कही गई है कि इच्छित परिणामों को प्राप्त करने में जो प्रयास किए जाते हैं उसी प्रक्रिया को नियंत्रण कहते हैं।

4. डेल हेनिंग (Dale Henning) के शब्दों में, "नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कार्यो को योजना के अनुरूप किया जाता है।"

   इनके अनुसार भी नियंत्रण में वे कार्य आते हैं जो कार्यो को योजनाओं के अनुरूप करवाते हैं।

5. मेरी (Marry) के अनुसार, "किन्हीं निश्चित लक्ष्यों या लक्ष्यों के समूहों की ओर निर्देशित क्रियाओं में संतुलन बनाए रखना ही नियंत्रण है।"

   इन्होंने नियंत्रण को संतुलन में बनाए रखने की एक प्रक्रिया बताया है। संतुलन उन क्रियाओं में बनाया जाएगा जो कि पूर्व-निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए की जा रही हैं।

6. बिली ई॰ गोज (Billey E. Goetz) के अनुसार, "प्रबंध नियंत्रण से आशय घटनाओं को योजनाओं के अनुसार बनाए रखने से है।"

   इन्होंने भी वही बात कही है कि संस्था में हो रहे कार्यो को योजनाओं के अनुरूप बनाना ही नियंत्रण है। 'कार्यो' के स्थान पर ये 'घटनाओं' शब्द का प्रयोग करते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि नियंत्रण के अंतर्गत किसी उपक्रम या विभाग के उदेश्यों की प्राप्ति हेतु की जाने वाली क्रियाएं ठीक ढ़ंग से क्रियान्वित की जा रही हैं या नहीं, की जानकारी करना और यदि ठीक ढ़ंग से कार्य नहीं कर रही है तो उसमें आने वाली बाधाओं का पता लगाना और उन्हे दूर करने का प्रयत्न करना इत्यादि सम्मिलित होता हैं। संक्षेप में, यह एक विधि है जो यह निश्चित करती है कि निष्पादन, योजना के अनुसार हो रहा है

नियंत्रण की प्रक ति
(Nature of Control)
or
नियंत्रण की विशेषताएँ अथवा लक्षण
(Characteristics of Control)

नियंत्रण की प्रक ति के निम्नलिखित लक्षण हैं-

1. नियंत्रण प्रत्येक प्रबंधक का एक आवश्यक कार्य है (Control is an Essential Function of all Managers)- नियंत्रण प्रत्येक प्रबंधक के लिए आवश्यक है चाहे वह मुख्य प्रबंधक हो या कोई सुपरवाइजर। हाँ, एक बात अवश्य है कि इनके नियंत्रण के ढ़ंगों में अंतर हो सकता है। उच्च प्रबंधकों को कभी-कभी केवल उपवादात्मक स्थितियों में ही, नियंत्रण करना पड़ता है तथा केवल संकेत मात्र से उनका काम चल जाता है जबकि निम्न स्तर के प्रबंधकों को प्रतिदिन नियमित रूप से कर्मचारियों के कार्यो की देखभाल करनी पड़ती है तथा सुधारक कार्यवाही भी करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए, एक फोरमैन अपने कारीगरों के काम की प्रतिदिन देखभाल करता है और तत्काल कार्यवाही करता है, लेकिन मुख्य प्रबंधक सभी विभागीय अध्यक्षों के कार्यो की न तो प्रतिदिन देखभाल कर पाता है और न ही कोई तत्काल कार्यवाही की जाती है।

2. यह एक निरंतर प्रक्रिया है (It is a Continuous Process)- नियंत्रण एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है क्योंकि व्यावसायिक परिस्थितियाँ हमेशा बदलती रहती हैं और एक व्यक्ति की कार्य प्रगति प्रतिदिन एक सी नहीं रहती। नियंत्रण का संबंध संस्था के उदेश्यों व कार्यो में समन्वय व सामंजस्य स्थापित करने से है। अतः जब तक संस्था में कार्य होते रहेंगें, नियंत्रण प्रक्रिया चलती रहेगी।

3. **नियंत्रण प्रबंधकीय प्रक्रिया का प्रारंभ व अंत दोनों है** (Control is Both the Beginning and the end of the Process of Management)- **नियंत्रण की आवश्यकता प्रबंधकीय प्रक्रिया के शुरू व अंत दोनों में ही पड़ती है। शुरू में प्रमाणों के निश्चित करने अर्थात योजना बनाने में नियंत्रण की आवश्यकता होती है। प्रमाणों के आधार पर कर्मचारियों के कार्यो का मूल्यांकनों के आधार पर प्रबंधक नई योजनाएं बनाता है तथा प्रमाणों में सुधार करता है। अतः यह लगातार चलता रहता है।**

4. **नियंत्रण का आधार सुधारात्मक कार्यवाही करना है** (Action is the Essence of Control)- **नियंत्रण में वास्तविक प्रगति की अपेक्षित प्रगति से तुलना करके सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। यदि प्रबंधक वास्तविक प्रगति की अपेक्षित प्रगति से तुलना करने के पश्चात् इसमें सुधार करने के प्रयास नहीं करता है तो ऐसे तुलना का कोई लाभ नहीं होगा। वह अपने उदेश्यों में तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक वह इन अंतरों को पाटने के लिए उचित कार्यवाही नहीं करता है। इस प्रकार सुधारात्मक कार्यवाही नियंत्रण की आत्मा है।**

5. **नियंत्रण एक कुशलता ब द्धि की धारणा है** (Control is an Efficiency Improvement Concept)- **नियंत्रण का झुकाव कुशलता में व द्धि करने की तरफ होता है। यह संगठन में अव्यवस्था तथा अराजकता को खत्म करता है और सभी लोगों को संगठन के उदेश्यों की प्राप्ति में समन्वित प्रयास करने के लिए बाध्य करता है। इसके फलस्वरूप फिजुलखर्ची तथा लापरवाही पर रोक लगती है और संगठन तथा इसके बाह्य वातावरण में एक अच्छा तालमेल पैदा किया जाता है। इसमें यह देखा जाता है कि कार्य निर्धारित योजना के अनुसार क्यों नहीं हो पा रहा तथा फिर इसके कारणों का पता लगाकर उनमें सुधार किया जाता है। इस सबसे संस्था के कर्मचारियों की कार्यकुशलता में व द्धि होती है।**

6. **नियंत्रण न केवल पीछे देखना है बल्कि आगे देखना भी है** (Control is not Necessarily Looking Back, it is Looking Forward also) - **नियंत्रण के संबंध में आम धारणा यह है कि यह केवल पीछे देखना है। यह धारणा इसलिए है क्योंकि प्रबंधक नियंत्रण के द्वारा वास्तविक प्रगति की अपेक्षित प्रगति से तुलना करके अंतर मालूम करता है तथा सुधारात्मक कार्यवाही करता है परंतु यह धारणा गलत है। निंयत्रण न केवल पीछे देखना है बल्कि आगे देखना भी है। इसके दो कारण है - सर्वप्रथम, सुधारात्मक कार्यवाही आगे देखने का ही एक उपाय है। द्वितीय, एक अच्छी निंयत्रण व्यवस्था वह है, जो विचलनों को घटित होने से पहले ही सूचित कर दे और ऐसी रोकथाम कर दे कि भविष्य में विचलन पैदा ही न हों।**

7. **नियंत्रण बल प्रयोग करना, कर्मचारियों को दोष लगाना या दबाव डालना नहीं है** (Control is no Coercion, Accusation or Suppressing Employees) - **मैकफारलैंड के अनुसार, नियंत्रण का उद्देश्य अपेक्षित परिणाम प्राप्त करना है, न कि लोगों पर दोषारोपण करना या उन्हें दबाना, अंकुश में रखना या नियमों में जकड़ना। उदाहरण के लिए धड़ी का उद्देश्य समयबद्धता को बढावा देना है न कि समय पर न आने वालों को दंडित करना। बल प्रयोग, दोषारोपण या दबाव पर आधारित नियंत्रण न तो स्वीकार किया जाता है और न ही अच्छे परिणाम पैदा कर सकता है।**

8. **नियंत्रण कार्य के संवेदनात्मक तथा अभिप्रेरणात्मक दोनों प्रकार के परिणाम होते हैं** (Control Function has both Emotional as well as Motivational Implications) - **नियंत्रण के संवेदनात्मक परिणाम इसलिए होते हैं क्योकि अकसर लोग निंयत्रण को प्रतिबंध के रूप में देखते हैं तथा इससे घ णा करते हैं। इसका कारण यह है कि कई बार सुपरवाइजर उत्पादन के मानकों को पूरा करवाने के प्रयास में कर्मचारियों के साथ कठोरता का व्यवहार करता है। लेकिन दूसरी ओर उन कर्मचारियों के लिए जो काम करना चाहते हैं, नियंत्रण अभिप्रेरण का काम करता है, क्योंकि उन्हें अपने काम के अभिप्रेरण का काम करता है, क्योंकि उन्हें अपने काम के लिए मान्यता मिलती है तथा उनका काम मापा और पहचाना जाता है।**

9. **नियंत्रण के सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों पहलू हैं** (It has both Positive and Negative Aspects) - **सकारात्मक द ष्टि से निंयत्रण का उद्देश्य संस्था के साधनों का प्रभावपूर्ण प्रयोग करना तथा उत्पादन को उचित स्तर पर बनाए रखना होता है तथा नकारात्मक द ष्टि से नियंत्रण का उद्देश्य साधनों के दुरूपयोग और असंतोषजनक परिणामों को रोकना होता है।**

10. **नियंत्रण का संबंध मानवीय क्रियाओं से है** (Control is Related to Human Activities) - **नियंत्रण सजीव वस्तुओं पर होता है न कि निर्जीव वस्तुओं पर। यह ठीक है कि नियंत्रण मशीनों, पदार्थो व द्रव्यों आदि पर भी किया जाता है; लेकिन यदि ध्यान से देखा जाए तो मालूम पड़ेगा कि नियंत्रण उक्त वर्णित निर्जीव वस्तुओं पर न किया जाकर मनुष्यों द्वारा उनके प्रयोग पर किया जाता है।**

नियंत्रण प्रक्रिया
(Control Process)

नियंत्रण प्रक्रिया में प्रमापों की स्थापना की जाती है; वास्तविक कार्य की प्रमापों से तुलना की जाती है और यदि वास्तविक प्रगति निर्धारित प्रगति से भिन्न है तो उसके कारणों की जाँच करके आवश्यक सुधारक कार्यवाही की जाती है। इस प्रकार, नियंत्रण की प्रक्रिया में चार महत्वपूर्ण कदम उठाने पड़ते हैं-

1. **प्रमापों का निर्धारण** (Setting Standards),
2. **वास्तविक कार्य का मापन** (Performance Measurement),
3. **वास्तविक प्रगति की प्रमापों से तुलना** (Comparison of Actual Progress with Standards) **तथा विचलन मालूम करना** (Calculating Deviations),
4. **सुधारात्मक कार्यवाही करना** (Taking Corrective Action)

1. **प्रमापों का निर्धारण** (Setting Standards) - **यह नियंत्रण प्रक्रिया का पहला चरण है। इसके अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति, विभाग या दल के लिए कार्य के ऐसे प्रमाप तय किए जाते है जिन्हें प्राप्त करने के लिए वह व्यक्ति, विभाग या दल प्रयत्न करें। प्रमाप, संस्था के समस्त नियोजन कार्यक्रम में से वे चुने हुए बिन्दु हैं जिन पर वास्तविक कार्य को मापकर प्रबंधकों को यह संकेत दिया जाता है कि कार्य किस प्रकार चल रहा है। प्रमापों का निर्धारण भौतिक इकाइयों जैसे वस्तु की मात्रा, श्रम-घटे, सेवा की इकाइयाँ, गति इत्यादि के रूप में, या मौद्रिक इकाइयों जैसे विक्रय मूल्य, लागतें, पूंजी, खर्चे या लाभ इत्यादि के रूप में किया जाता है।**

   काम के ये मापदण्ड ऐसे होने चाहिए कि उन्हें उपलब्ध योग्यता और साधनों से सरलता से प्राप्त किया जा सके। यही नहीं, ये मापदण्ड कंपनी की प्रगति की योजना के अनुरूप होने चाहिएं। इन्हें तय करते समय प्रबंधकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि ये मापदण्ड (i) **सरल हों तथा प्राप्त करने योग्य हों,** (ii) **निश्चित हों,** (iii) **मापनीय हों,** (iv) **उद्देश्यों के अनुकूल हों,** (v) **लोचपूर्ण हों,** (vi) **सामयिक हों** (vii) **किफायती हों अर्थात् अधिक खर्चीले न हों।**

   प्रमापों को ज्यादा प्रभावशाली बनाने के लिए यह भी विचारणीय है कि सभी जिम्मेदारी के क्षेत्रों के लिए अलग-अलग प्रमाप तय किए जाएं जिससे जिम्मेदारी तय करने और संबंधित पक्षों को अभिप्रेरित करने में आसानी हो।

   इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित करना आवश्यक है कि इसके कितने विचलनों को सहन किया जा सकता है। वास्तविक कार्यो तथा प्रमापों के मध्य विचलन तो होंगें ही। अतः हमें उस सीमा को तय कर लेना चाहिए जिस सीमा तक विचलनों को सहन किया जा सकता है। विचलनों की सीमा तय करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि यह सीमा बहुत अधिक या बहुत कम न हो।

2. **वास्तविक निष्पादन का मापन** (Measurement of Actual Performance) - **नियंत्रण प्रक्रिया की दूसरी अवस्था, संस्था में काम की प्रगति का मापन किया जाता है। वास्तविक प्रगति को मापते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि** (i) **प्रगति के ये आंकड़े नियमित रूप से तथा निरंतर तैयार किए जाने चाहिए** (ii) **प्रगति के ये आंकड़े पूर्णतया सही होने चाहिएं। नियंत्रण के लिए वास्तविक प्रगति की रिपोर्ट बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उच्च प्रबंधकों के पास इतना समय नहीं होता कि वे हर रिपोर्ट की गौर से जाँच कर सकें अतः प्रबंधकों के समक्ष केवल वे रिपोर्ट ही पेश की जानी चाहिए जिनमें विचलन महत्वपूर्ण हों। जो विचलन एक सीमा के भीतर हों, उन पर प्रबंधक ज्यादा ध्यान दें, यह आवश्यक नहीं है।**

3. **वास्तविक प्रगति की प्रमापों से तुलना तथा विचलन मालूम करना** (Comparison of Actual with Standards and

Calculation of Variations) - नियंत्रण प्रक्रिया के तीसरे चरण में वास्तविक प्रगति की प्रमापों से तुलना की जाती है, विचलन मालूम किए जाते हैं तथा इन विचलनों के कारणों का पता लगाया जाता है। विचलनों के कई कारण हो सकते हैं जैसे नियोजन बनाने में गलती हो जाना, अथवा परिस्थितियों में अंतर आ जाना, अथवा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के द्वारा कम काम करना इत्यादि। यहाँ प्रबंधकों को ध्यान रखना चाहिए कि वे केवल महत्वपूर्ण अंतरों को ही सुधारक कार्यवाही के लिए चुनें, साधारण अंतर केवल संयोग की बात हो सकते हैं। अतः उन्हें ध्यान देना जरूरी नहीं है।

विचलनों को, विश्लेषण की द ष्टि से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है-

(i) नियंत्रणीय विचलनः- जिन्हें नियंत्रित किया जा सकता है,

(ii) अनियंत्रणीय विचलनः- जिन्हें दूर तो नहीं किया जा सकता।

हाँ, पूर्वानुमान की अच्छी व्यवस्था द्वारा कम जरूर किया जा सकता है। सुधारात्मक कार्यवाही द्वारा नियंत्रणीय विचलनों को ही नियंत्रित किया जा सकता है।

4. सुधारात्मक कार्यवाही करना (Taking Corrective Action) - नियंत्रण प्रक्रिया का अंतिम चरण सुधारात्मक कार्यवाही करना है। वास्तव में सुधारात्मक कार्यवाही नियंत्रण प्रक्रिया की आत्मा है। इसका उद्देश्य वास्तविक प्रगति को अपेक्षित प्रगति के अनुकूल बनाने में मदद देना है। इसमें दो प्रकार के कार्य शामिल हैं-

1 वास्तविक प्रगति में कमी को दूर करना,

2 इस कमी की पुनराव ति को भविष्य के लिए रोकना।

सुधारात्मक कार्यवाही करते समय प्रबंधकों को चार बातें ध्यान में रखनी चाहिएं-

1 सुधारक कार्यवाही तुरंत की जानी चाहिए।

2 सुधारक कार्यवाही विचलन-विश्लेषण पर आधारित होनी चाहिए, अटकलबाजी या जोड़-तोड़ पर नहीं।

3 सुधारक कार्यवाही, संबंधित कर्मचारी के मनोवैज्ञानिक द ष्टिकोण से मेल खाती हुई होनी चाहिए।

4 सुधारक कार्यवाही उसी स्तर के प्रबंधकों के द्वारा शुरू कराई जानी चाहिए जिस स्तर पर विचलन रिकार्ड किए जाते हैं।

नियंत्रण की तकनीकें
(Techniques of Control)

(I) लागत नियंत्रण
(Cost Control)

अर्थ - लागत नियन्त्रण से आशय व्यवसाय को चलाने तथा वस्तुओं के उत्पादन व वितरण पर आने वाले विभिन्न व्ययों का उपयुक्त विश्लेषण तथा नियोजन के द्वारा नियंत्रण करने से है। इसका प्रमुख उद्देश्य व्यावसायिक व्ययों और उत्पादन लागत को न्यूनतम करके उसकी कार्यक्षमता अधिकतम करना होता है। लागत नियंत्रण के मूलभूत तत्व निम्नलिखित हैं - (i) लागत विश्लेषण करना तथा उसके प्रत्येक शीर्षक के लिए लागतमानों की स्थापना करना, (ii) उपर्युक्त शीर्षक के अंतर्गत होने वाले वास्तविक व्ययों के लेखे तैयार करना, (iii) वास्तविक एवं लागतमानों में यदि कोई अन्तर हो तो उस अन्तर का विवरण के आधार पर उसके कारणों की जाँच करना तथा उनके लिए जिम्मेदारी निश्चित करना, (iv) ऐसी सुधारात्मक कार्यवाही करना, जिससे भविष्य में वास्तविक लागत मानक लागतों के बराबर ही हो।

सिद्धान्तः- लागत नियन्त्रण के प्रमुख सिद्धांत निम्नांकित हैः

1 हिसाब-किताब के लेखे इस प्रकार लिखे जाएं जिससे प्रत्येक विभाग में होने वाले खर्चे, उत्तरदायी अधिकारियों की जिम्मेदारी के अनुसार, प थक्-प थक् जाने जा सकें। इस प्रकार, प्रत्येक व्यय के लिए अलग-अलग व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

2 यथाशक्ति व्ययों का वर्गीकरण एक ही अर्थ में तथा एक ही प्रकार के शीर्षक में किया जाए, जिससे व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के न्यायोचित निर्धारण में सुविधा हो।

3 प्रत्येक व्यय और लागत के मानदण्ड, अनुमान व बजट तथा उनमें घटबढ़ के लिए छूट की सीमा को प्रारंभ में ही निर्धारित कर देना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार उनमें संशोधन भी करते रहना चाहिए।

4 उन संस्थाओं में, जहाँ कारोबार के स्तर में घटबढ़ हो जाने से लागत-व्यय में कमी या व द्धि हो जाती है; लागत के लचीले अनुमान बनाए जाने चाहिए, जिससे कि अनुमानित और वास्तविक लागत में अंतर निकालते समय इस तत्व को प थक किया जा सके।

5 जहाँ तक सम्भव हो, प्रत्येक लागत के लिए मानक स्थापित करते समय लागत के लिए उत्तरदायी अधिकारी का सहयोग तथा उसकी सहमति अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिए।

6 वास्तविक व अनुमानित लागत के अन्तरों का, प्रत्येक लागत तत्व के लिए अलग-अलग विश्लेषण किया जाना चाहिए उसके विस्त त विवरण तैयार करने चाहिए।

7 प्रत्येक लागत के लिए उत्तरदायी अधिकारी को अपने अधिकार क्षेत्र में ही वास्तविक लागत निर्धारित लागत मान के विषय में समय-समय पर नियमित रिपोर्ट देनी चाहिए।

8 उन लागतों को, जो केन्द्रीय रूप से अनेक विभागों पर मिलाकर व्यय की जाती है, और प्रत्येक विभाग के खाते में तो जोड़ दी जाती है किन्तु उन पर उस विभाग के अध्यक्ष का कोई नियन्त्रण नहीं होता, विभागाध्यक्ष को दी जाने वाली लागत रिपोर्ट में सम्मिलित नहीं करना चाहिए।

9 कुशल अधिकारियों को अपने अधिकार क्षेत्र में लागत पर नियंत्रण रखने तथा उसे कम करने के लिए उपयुक्त प्रलोभन दिया जाना चाहिए।

(II) बजट द्वारा नियन्त्रण
(Control Through Budgeting)

बजट एक प्रकार का अनुमान होता है जो किसी विशिष्ट भावी अवधि के लिए पहले से ही बनाया जाता है। I. C. & W. A. के अनुसार, "बजट एक वित्तीय या संख्यात्मक विवरण होता है जो किसी नियत अवधि के पूर्व बनाया जाता है। तथा जिसके एक विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उस अवधि में अनुकरण की जाने वाली नीति का उल्लेख होता है।" बजट के पाँच उद्देश्य होते हैं - (i) व्यावसायिक नियोजन का स्पष्टीकरण करना; (ii) विभिन्न विभागों की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना; (iii) कार्यक्षमता का माप करना तथा केन्द्रीय नियंत्रण की व्यवस्था करना; (iv) व्यवसाय के अर्थ-प्रबंध में मदद देना; (v) सभी संबंधित पक्षकारों को आवश्यक सूचना पहुँचाना जिस पर व्यवसाय की योजना आधारित है। प्रभावशाली बजट की पाँच मुख्य विशेषताएँ हैं:- (i) बजट में लोच होने से लागत-नियंत्रण का कार्य सरल व सुविधाजनक हो जाता है। (ii) बजट के निर्माण में भूतकालीन विवरण व अनुभव के साथ-साथ वर्तमान परिस्थितियों का पूरा ध्यान रखना चाहिए। (iii) बजट एक सहयोग की क्रिया है जिसमें सभी विभागाध्यक्षों का पूर्ण सहयोग रहता है; (iv) बजट एक विशिष्ट सांख्यिकीय विवरण होना चाहिए; (v) सर्वोच्च प्रशासन को बजट के निर्माण में विशेष रूचि रखनी चाहिए।

बजट का निर्माण कैसे किया जाए ?

व्यावसायिक बजट के निर्माण में निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए:

1. सत्य पूर्वानुमान:- पूर्वानुमान करना व्यावसायिक आय-व्ययकरण की आधारशिला होती है। वास्तव में व्यावसायिक पूर्वानुमान के आधार पर ही विभिन्न प्रकार के बजटों का निर्माण किया जाता है।

2. पूर्व एवं नियोजित लेखाकरण की विधि:- सफलतापूर्वक बजट के निर्माण हेतु यह भी आवश्यक है कि लेखाकरण की पद्धति पूर्ण एवं यथाविधि नियोजित हो; क्योंकि लेखाकरण की दूषित पद्धति की दशा में न तो एक श्रेष्ठ बजट का निर्माण ही किया जा सकता है और न उसका सफल संचालन ही संभव हो सकता है।

3. पूर्ण एवं नियोजित लागत-लेखा की विधि:- लागत-लेखा की कुशल पद्धति आय-व्यय के निर्माण के लिए नितान्त

आवश्यक है, क्योंकि यदि लागतों का अनुपात ही दूषित है; तो उन पर आधारित बजट भी सही नहीं हो सकता।

4. नियत उत्तरदायित्व वाला कुशल संगठनः- बजट के निर्माण एवं उसके संचालन के लिए यह नितांत आवश्यक है कि कारखाने में संगठन की व्यवस्था पर्याप्त एवं सर्वश्रेष्ठ हो।

5. बजट-समिति का निर्माणः- बजट बनाना एक सहकारिक कार्य है। छोटी संस्थाओं में लेखापाल या एकाउण्टेण्ट ही प्रंबधक, संचालक व विभागाध्यक्षों के परामर्श से बजट का निर्माण कर लेता है, किन्तु बड़ी व्यावसायिक संस्था में यह कार्य लेखापाल पर नहीं छोड़ा जा सकता। बड़ी व्यावसायिक संस्थाओं में प्रायः एक बजट-समिति होती है जिसमें सभी विभागों के अध्यक्ष होते हैं तथा एक कुशल व अनुभवी व्यक्ति उसका संचालक होता है। उस संचालक को 'बजट अधिकारी' कहते हैं। बजट-समिति का सबसे महत्वपूर्ण कार्य पूर्वानुमानों विभागीय बजटों तथा सामयिक रिपोर्टो को प्राप्त करना है।

6. स्पष्टतः परिभाषित व्यावसायिक नीतियाँः- एक श्रेष्ठ बजट के निर्माण के लिए यह भी नितान्त आवश्यक है कि व्यावसायिक नीतियाँ पूर्णतः स्पष्ट हों, क्योंकि वे बजट की आधारशिला होती हैं।

7. सांख्यिकीय सूचनाः- बजट बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक विभाग से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएं आंकड़ों के रूप में उपलब्ध होनी चाहिएं, जैसे-विषय के पूर्वानुमान, कच्चे माल की मात्रा, कार्यशील पूंजी की मात्रा, श्रम-शक्ति इत्यादि। उत्पादन संबंधी बजट का निर्माण के लिए विक्रय पूर्वानुमान नितान्त आवश्यक होते हैं।

8. उच्चवर्गीय प्रबंधक की पूर्ण सहानुभूतिः- 'सहानुभूति' से हमारा आशय यह है कि प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष के सदैव प्रबन्ध व प्रशासन के साथ संबंध घनिष्ठ बनाये रखना चाहिए।

9. बजट की अवधिः- सामान्यतः बजट की अवधि व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करती है; फिर भी यह इतनी विस्त त होनी चाहिए की सभी प्रकार के मौसमी परिवर्तन, वित्तीय क्रियाओं, कुछ उत्पादन, आदि का समामेलन हो जाए। यद्यपि बजट साल भर के लिए बनाया जाता है, किन्तु निष्पादन की सुविधा की द ष्टि से अर्द्धवार्षिक या मासिक बजट बनाना चाहिए।

10. बजट के निर्माण में सावधानियाँः- बजट का निर्माण करते समय दो बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिएः (i) बजट बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो भी लक्ष्य निर्धारित किया जाए उनको बिना कठिनाई के प्राप्त किया जा सके। (ii) कुछ आलसी प्रव ति के प्रबंधक बजट बनाते समय पिछले लक्ष्यों को ही दोहरा देते हैं। यह स्थिति बहुत दोषपूर्ण है क्योंकि समय व स्थिति में परिवर्तन होने के साथ-साथ लक्ष्यों में परिवर्तन करना जरूरी हो जाता है।

बजटों का वर्गीकरणः-

मास्टर बजटः- एक बड़ी व्यवसायिक संस्था के लिए यह कठिन हो जाता है कि एक ही बजट में संस्था के सभी विभागों की विस्त त योजनाओं का समावेश हो जाए। अतः सभी विभाग पहले अलग-अलग अपने विस्त त बजट तैयार करते हैं और फिर उसका संक्षिप्त विवरण एक प थक बजट में हस्तांतरित कर दिया जाता है, जिससे एकमात्र दिग्दर्शन से प्रबंधक सही निष्कर्ष निकाल सकें। इस बजट को ही वाणिज्य की भाषा में 'प्रमुख या मास्टर बजट' कहते हैं। अन्य बजटों को 'सहायक बजट' की संज्ञा दी जा सकती है। मास्टर बजट एक समन्वय करने वाला बजट है तथा उच्च प्रबंधकों के काम की वस्तु है।

सहायक बजटः- सहायक बजटों में निम्न के नाम उल्लेखनीय हैंः

1. विक्रय बजट (Sales Bugget) - विक्रय बजट में मुख्यतः (i) वस्तुओं के विक्रय से प्राप्त होने वाली कुल आय, (ii) विक्रय-व्ययों का उल्लेख होता है। विक्रय बजट का निर्माण करने के लिए निम्नलिखित सूचनाओं तथा उनसे संबंधित आंकड़ों की आवश्यकता होती हैः (i) पिछले परिणामों का विश्लेषण; (ii) विपणि विश्लेषण; (iii) बाजार एवं लाभ की द ष्टि से प्रत्येक उत्पादक का विश्लेषण। इसी प्रकार विक्रय व्ययों में संबंधित बजट का निर्माण करने के लिए विज्ञापन, संग्रहण, विपणि-अनुसंधान, विक्रेताओं का वेतन, विक्रय कार्यालय के व्यय आदि व्ययों के विषय में सही पूर्वानुमान होना नितान्त आवश्यक है। ऐसे पूर्वानुमान के लिए उक्त व्ययों से संबंधित उन लेखों का विस्त त विवरण होना भी आवश्यक है। इसके बाद विक्रय बजट बनाने के लिए निम्न कदम उठाने चाहिएं - (i) प्रत्येक विक्रेता को

चाहिए कि वह संभावित आदेशों के विषय में पूर्वानुमान लगाए; (ii) तत्पश्चात् विक्रेताओं के अनुमानों का क्षेत्र विशेष अथवा जिला प्रबंधकों द्वारा परीक्षण किया जाता है; (iii) इसके बाद प्रमुख विक्रय प्रबंधक द्वारा कुल क्षेत्र विक्रय संबंधी अनुमान का पुनरावलोकन किया जाता है, (iv) फिर उच्चवर्गीय प्रबंधक द्वारा उक्त संक्षिप्त आंकड़ों का सावधानीपूर्वक परीक्षण किया जाता है, (v) तत्पश्चात् संभावित विक्रय पूर्वानुमानों के आधार पर विक्रय बजट का निर्माण किया जाता है, तथा यह भी निर्धारित किया जाता है कि अमुक क्षेत्र में कब तथा कितने माल का विक्रय करना है जिससे उसके वितरण की समुचित व्यवस्था की जा सके।

2. उत्पादन बजट (Production Budget) - उत्पादन बजट, विक्रय बजट की आवश्यकता की पूर्ति करता है। उत्पादन बजट वह आधारभूत बजट है, जिससे प्रति इकाई वस्तुओं की लागत अथवा कुल लागत का भी अनुमान लगाया जा सकता है। उत्पादन बजट का प्रमुख उद्देश्य न्यूनतम लागत पर इतना उत्पादन करना होता है जितना कि व्यापार की माँग के अनुसार आवश्यक हो।

3. वित्तीय बजट (Financial Budget) - वित्तीय बजट वास्तव में पूर्वानुमानित स्थिति विवरण तथा लाभ-हानि खाता होता है। तथा इसके एकमात्र दिग्दर्शन से इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि बजट की अवधि के अंत में संस्था में पास नकद राशि कितनी होगी। वित्तीय बजट के आधार पर संस्था के पूँजी के कलेवर में भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है।

4. निर्माणी क्षमता विषयक बजट (Manufacturing Capacity Budget) - वस्तुओं के निर्माण में भूमि व भवन, संयंत्र व मशीनरी, कच्चे माल तथा श्रम को एकत्रीकरण करना पड़ता है। अतएव इन विभिन्न वस्तुओं व सम्पत्तियों से संबंधित बजटों का जिस एक बजट में समन्वय किया जाता है, उसे निर्माणी क्षमता विषयक बजट कहते हैं। इस बजट के अंतर्गत सम्मिलित किए जाने वाले प्रमुख सहायक बजट निम्नलिखित हैं:

   1 भौतिकी सम्पत्ति संबंधी अथवा प्लाण्ट बजट (Physical Property or Plant Budget) - भौतिक सम्पत्ति से हमारा आशय भूमि, भवन, मशीनरी, संयंत्र आदि से है, जो व्यवसाय में एक प्रकार के स्थायी विनियोग के रूप में होते हैं। प्लाण्ट बजट से समान्यतः निम्न सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं - (i) विभागानुसार मशीनों की संख्या, (ii) मशीनों का प्रांरभिक मूल्य ह्रास तथा वर्तमान पुस्तक-मूल्य, (iii) कार्य जिसके लिए प्रत्येक मशीन का उपयोग किया जाता है, (iv) मशीनों पर वर्तमान कार्यभार, (v) मशीनों का शेष जीवन-काल, (vi) नवीन यन्त्रों को क्रय करने की आवश्यकता तथा उनके क्रय हेतु आवश्यक धनराशि, (vii) नवीन यंत्रों को लगाने से होने वाली अनुमानित अतिरिक्त आय, आदि। प्लाण्ट बजट बनाने का मुख्य उद्देश्य संयंत्र मशीनरी संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है।

   2. कच्चे माल का बजट (Raw Materials Budget) - कच्चे माल से आशय उन पदार्थो से है जिनको निर्मित दिशा में परिवर्तित किया जाता है तथा जिनके सहयोग से अन्तिम उत्पादन का निर्माण किया जाता है। इस बजट का निर्माण उत्पादन बजट के आधार पर किया जाता है तथा इसमें उन पदार्थो से संबंधित आंकडों का उल्लेख होता है जिनकी आवश्यकता एक विशिष्ट अवधि में पड़ेगी, जिसके लिए बजट बनाया जा रहा है।

5. उपरिव्यय बजट (Overhead Budget) - इस बजट को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है- (i) कारखाना उपरिव्यय बजट, (ii) विक्रय उपरिव्यय बजट, (iii) प्रशासन उपरिव्यय बजट, (iv) तित्तीय उपरिव्यय बजट। प्रथम बजट का संबंध उत्पादन विभाग से होता है। अतः इससे संबंधित आंकड़े उत्पादन विभाग के अध्यक्ष से प्राप्त किए जा सकते हैं। इसी प्रकार द्वितीय व त तीय बजटों से संबंधित आंकड़े क्रमशः विक्रय व प्रशासन विभागों के अध्यक्षों से प्राप्त किए जा सकते हैं। व्यवसाय के सफल संचालन के लिए सभी विभागों में धनिष्ठतम सहयोग का होना नितान्त आवश्यक है। विभिन्न बजटों में समन्वय के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि सभी बजटों में पर्याप्त लोच हो। बजट में लोच से हमारा आशय यह है कि बजट ऐसा होना चाहिए जिसमें आवश्यकता पड़ने पर आवश्यक परिवर्तन किया जा सके।

(3) बजटरी नियंत्रण

अर्थ व उद्देश्यः- बजटरी नियंत्रण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा वास्तविक कार्यकलापों का पता लगाया जाता है

और फिर बजट-अनुमानों से उनकी तुलना की जाती है जिससे उपलब्धियों की पुष्टि की जा सके अथवा बजट-अनुमानों से समायोजन करके या अन्तरों के कारणों का सुधार करके, अंतरों को दूर किया जा सके। बजटरी नियंत्रण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं: (i) यह संस्थाओं के लक्ष्यों को परिभाषित करता है। (ii) निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु यह दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन योजनाओं की व्यवस्था करता है। (iii) यह व्यावसायिक उपक्रम के प्रत्येक विभाग के लिए निष्पादन का एक प्रमाप स्थापित करता है। (iv) नीतियों के निर्धारण हेतु यह आंकड़े प्रदान करता है। (v) यह विभिन्न विभागों की क्रियाओं के मध्य समन्वय स्थापित करता है क्योंकि अन्य विभागों के संदर्भ में ही प्रत्येक विभाग की क्रियाओं का पूर्व आयोजन किया जाता है। (vi) बजट निर्माण के कार्य में प्रायः सभी विभागाध्यक्ष सहयोग से कार्य करते हैं एवं पारस्परिक समस्याओं के विश्लेषण के उपरान्त ही बजटों का निर्माण किया जाता है; इसलिए आय-व्यय नियंत्रण की प्रथा से संस्था के विविध अधिकारियों के बीच निरन्तर सहयोग बना रहता है। (vii) इस प्रथा से व्ययों पर अवैयक्तिक नियंत्रण स्थापित हो जाता है। (viii) इस पद्धति के अंतर्गत लागत एवं निष्पादन संबंधी आंकड़े विभागों में व्यर्थ एकत्रित नहीं होते रहते, वरन उनका समय पर उपयोग हो जाता है। (ix) यह प्रथा वित्तीय आवश्यकताओं के निर्धारण तथा नकदी संबंधी स्थिति पर नियंत्रण करने में सहायक सिद्ध होती है (x) इससे इस बात का भी संकेत मिल जाता है कि वांछित निष्पादन प्राप्त करने के लिए अधिकारियों को क्या कदम उठाने पड़ेंगें। (xi) इस प्रणाली के माध्यम से प्रबंधकीय नियंत्रण का केंद्रीयकरण हो जाता है।

(4) साँख्यिकीय आँकड़े
(Statistical Data)

प्रत्येक व्यावसायिक संस्था में अनेक प्रकार के आवश्यक आँकड़े आसानी से एकत्र किये जा सकते हैं और उनका समुचित विश्लेषण करके नियन्त्रण की द ष्टि से उनका उपयोग सार्थक ढंग से किया जा सकता है। यह विश्लेषण या तो ऐतिहासिक (Historical) या पूर्वानुमान (Forecasting) की प्रकृति का हो सकता है। इस विश्लेषण को या तो तालिका के रूप में (Tabular form) या चार्ट (chart) के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रायः प्रबन्धक आँकड़ो को चार्ट के रूप में देखना पसन्द करते हैं क्योंकि उन्हें समझना आसान होता है और उनका विवेचन करना आसान होता है। यथासम्भव सांख्यिकीय रिपोर्ट की उपनीति बरतनी चाहिए जिससे कि उसके माध्यम से आसानी से यह पता लगाया जा सके कि उसकी क्या सम्भावना हो सकती है। इसके लिए 'Time Series Analysis' और वह भी चलित आधार पर आधारित होनी चाहिए जो कि अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि आंकड़ों को इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि जिससे उनकी तुलना किसी पूर्व-निर्धारित मानक से आसानी से की जा सके। वैसे, इन आंकड़ों का प्रयोग करते समय तथा उनका विवेचन करके नियन्त्रण के उपकरण के रूप में प्रयोग करने की जो सीमाएँ हैं उनको भी ध्यान में रखना अति आवश्यक है।

(5) विशेष रिपोर्ट एवं विश्लेषण
(Special Reports and Analysis)

प्रायः व्यवहार में कुछ ऐसी समस्याएँ सामने आ जाती हैं जिन्हें न तो अच्छी तरह समझा जा सकता है और न ही जिसका विश्लेषण आसानी से किया जा सकता है। समस्या क्यों उत्पन्न हुई इस कारण का भी अच्छी तरह पता नहीं लग पाता, फलस्वरूप उसका हल भी नहीं निकल सकता। ऐसी स्थिति में समस्याओं के हल के लिए विशेषज्ञों का सहारा लेना पड़ता है। ये विशेषज्ञ सभी स्थितियों को ध्यान में रखकर उनका पता लगाते हैं और समुचित विश्लेषण करके अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं कि उन्हें कैसे हल किया जा सकता है। इसकी आवश्यकता तब विशेष रूप से पड़ती है जब कि सामान्य लेखा सम्बन्धी आँकड़े अथवा सांख्यिकीय रिपोर्ट आवश्यक सूचना उनके सम्बन्ध में नही दे पाते हैं और जिसके फलस्वरूप उनका हल नहीं ढूंढ़ा जा सकता। ऐसे विश्लेषण एवं रिपोर्ट के माध्यम से प्रायः केवल विशिष्ट समस्या का ही हल नहीं निकलता अपितु उसके अतिरिक्त अन्य कुछ महत्वपूर्ण बातों की भी जानकारी हो जाती है जो बाद में लागत को घटाने में सहायक होती है। परन्तु इस विधि की सबसे बड़ी सीमा है कि यह एक महंगी विधि है और प्रत्येक संस्था इस योग्य नहीं होती कि वह विशेषज्ञों की राय प्राप्त कर सके। परन्तु इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि प्रायः इस प्रकार की रिपोर्ट के प्राप्त करने में जो लागत आती है उसकी क्षतिपूर्ति भी हो जाती है। यह क्षतिपूर्ति उसके फलस्वरूप लागत में होने वाली कमी के रूप में होती है।

प्रबन्धकीय सूचना तंत्र (Management Information System) - सूचनाऐं किसी भी संगठन की जीवन शक्ति हैं विशेष तौर

पर तंत्र व्यवस्था प्रबन्ध की दशा में। सूचना को दूसरों द्वारा दी गई जानकारी या अनुसंधान अथवा अध्ययन से उभर कर आये ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। लेकिन इस प्रक्रिया में सभी समंक सूचना नहीं कहलाते जब तक उनको प्रयोग योग्य रूप में नहीं ढाल लिया जाता। कम्प्यूटर जैसे इलेक्ट्रॉनिक तंत्रों के उपयोग द्वारा सूचना तंत्रों के विकास की ओर व्यापक ध्यान दिया जा रहा है। जो निर्णयन तथा नियंत्रण-हेतु सम्बन्धित प्रबन्धकों को सम्बद्ध सुचनाऐं सुलभ करा पाते हैं। नियंत्रण की एक पूर्व अनिवार्यता है नियंत्रणकर्ता सत्ता के समक्ष सामजिक तथा परिपक्व सूचनाऐं होना। इस प्रकार, प्रबन्धकीय सूचना तंत्र को सही तौर से सम्बद्ध सूचनाऐं प्रत्येक प्रबन्धक के समक्ष जरूरत के समय सुलभ कराने के तंत्र के रूप में परिभाषित किया जा सकता है ताकि उसकी सूझबूझ बढ़े तथा वह कार्यवाही के लिए अभिप्ररित हो उठे।

सूचनाओं का यह तंत्र संगठन की निम्न द ष्टियों से सहायता करता है:

(i) लागतों में कमी लाना, (ii) समंकों में और अधिक सूक्ष्मता लाना, (iii) प्रत्येक उपतंत्र के विचारों को एकीकृत करके समन्वय लाना, (iv) सूचनाओं का प्रबंधकों तक और अधिक तीव्रता के साथ पहुँचना जिनकी उनको तत्परता से आवश्यकता है।

कम्प्यूटर आधारित सूचना तंत्र में एक तंत्र के लिए उपलब्ध सूचना को दूसरे तंत्रो के लिए भी प्रयोग किया जाता है। यदि सूचना को एक केन्द्रीय कम्प्यूटर में डाल दिया जाता है तो कई विभागों के लिए काम लाई जा सकती है। अतः स्टॉक की सूचना लेखांकन, उत्पादन विपणन तथा वित्त के प थक-प थक तंत्रों में न रख कर एक केन्द्रीय समंक भंडार को उपलब्ध करा दी जायेगी ताकि सभी उपतंत्र उसका उपयोग कर सकें।

कम्प्यूटर आधारित सूचना तंत्र के लिए एक अलग प्रकार के संगठनात्मक ढाँचे की आवश्यकता होगी। जब संगठन में कम्प्यूटर का प्रयोग किया जा रहा होगा तो निचले स्तरों पर कार्य परिचालन न केवल कर्मचारियों की संख्या के रूप में प्रभावित होगा वरन् उनकी गुणवत्ता भी प्रभावित होगी।

(6) सम-विच्छेद विश्लेषण (Break Even Analysis)

प्रबन्ध में प्रयोग किया जाने वाला यह एक आधुनिक उपकरण है जिससे यह पता लगाया जाता है कि किस सीमा तक उत्पादन करने पर हानि होती है और किस सीमा के बाद लाभ होने लगता है। उत्पादन की वह सीमा जिस पर न लाभ होता है और न हानि, सम-विच्छेद बिन्दु (Break-Even Point) कहलाता है। इस सीमा या बिन्दु पर आय (revenue) लागत या व्यय के बराबर होता है। उससे कम उत्पादन करने पर हानि होती है और यदि उससे अधिक उत्पादन किया जाए तो लाभ होगा। इस सीमा या बिन्दु की गणना गणित के माध्यम से की जाती है। परन्तु प्रायः इसका पता ग्राफ के माध्यम से लगाया जाता है क्योंकि ग्राफ में केवल देखकर आसानी से इसका पता चल जाता है। इसको लाभ ग्राफ (profit graph) भी कहते हैं। जब हम इसे चार्ट के रूप में दिखाते हैं तो यह सम-विच्छेद चार्ट (Break-even chart) कहलाता है जिसे आगे दिखाया गया है।

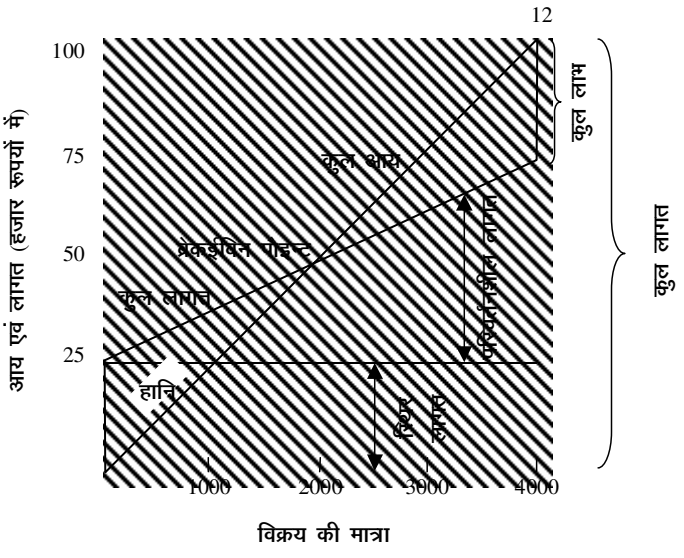

चार्ट को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि उत्पादन 2,000 इकाई या टन की जाती है तो उस पर न तो लाभ हो रहा है और न ही हानि, परन्तु यदि इससे अधिक उत्पादन किया जाता है तो लाभ हो रहा है। यदि उत्पादन उससे कम किया जाता है तो हानि होगी। यदि उत्पादन 1,000 इकाई या टन किया जाए तो उस स्थिति में कुल आय कम है और कुल लागत अधिक है अतः हानि होगी।

प्रबन्धक के लिए यह अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण नियंत्रण की विधि है जो लागत विक्रय की मात्रा और आय के बीच सह-संबंध बताता है कि उत्पादन के विभिन्न स्तर पर क्या लाभ हो सकता है और इस जानकारी के माध्यम से यह व्यय पर नियंत्रण करके लाभ को बढ़ाने की विशिष्ट योजना तैयार कर सकता है। वास्तव में, इसके माध्यम से प्रबंधक सभी महत्वपूर्ण सूचनाएँ या आकडें एक ही द ष्टि में देख सकता है। यह योजना और नियंत्रण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सीमान्त के विचार (concept of margin) पर बल देता है एवं स्पष्ट करता है कि अतिरिक्त विक्रय या लागत का लाभ पर क्या प्रभाव पड़ता है।

इस विधि की अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं-

1. यह इस मान्यता पर आधारित है कि मूल्य निश्चित या स्थिर है, परन्तु व्यवहार में ऐसा नही पाया जाता। स्थिर मूल्य पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति का द्योतक है जबकि व्यवहार में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं पाई जाती।
2. इसके नापने में यह भी कठिनाई होती है कि कौन-सी लागत की जाए, कौन सी नहीं, इस प्रकार लागत के नापने की कठिनाई सामने आती है।
3. यह उत्पादन और विक्रय के बीच समय अन्तराल (time-lag) पर ध्यान नहीं देता।
4. यह उत्पादन को प्रभावित करने वाले कुछ महत्वपूर्ण घटक, जैसे, प्लाण्ट का आकार, तकनीक आदि पर ध्यान नही देता है।
5. इसकी गणना केवल वही फर्म कर सकती है जो केवल एक ही वस्तु का उत्पादन करती है। ऐसी फर्मे जो कई वस्तुओं का उत्पादन एक-साथ करती हो, इसका उपयोग नही कर सकती।
6. इसमें विक्रय से सम्बन्धित व्यय, जैसे विज्ञापन व्यय पर ध्यान नहीं दिया जाता जबकि यह एक महत्त्वपूर्ण व्यय है।
7. यह समय और लागत के संबंध पर भी विचार नहीं करता। उदाहरण के लिए यदि किसी मशीन की मरम्मत पर व्यय किया गया परन्तु उसका लाभ अगले पाँच वर्षो तक उठाना है तो उसको यह चार्ट बनाते समय नहीं लिया जा सकता है।
8. उसी प्रकार से यह कर सम्बन्धि व्यय पर भी विचार नहीं करता।

(7) अंकेक्षण या लेखा परीक्षण (Auditing)

अंकेक्षण का सामान्य अर्थ लेखा-बहियों की जाँच से होता है। उद्देश्य के आधार पर अंकेक्षण के विभिन्न प्रकार अपनाये जाते हैं। प्रायः वित्तीय अंकेक्षण का प्रयोग सभी संस्थाओं में होता है। किसी भी संस्था के प्रबंधंक के पास नियन्त्रण के लिए यह भी एक उपयोगी उपकरण है। आन्तरिक अंकेक्षण के लिए, प्रबंधंक को विशिष्ट स्टाफ की नियुक्ति करनी पड़ती है इन्हें आन्तरिक अंकेक्षक कहा जाता है। आन्तरिक अंकेक्षक संस्था के लेखों की जांच के लिए ही नियुक्त किया जाता है परन्तु आज कल इसके अतिरिक्त वित्तीय, कर सम्बन्धि और अन्य विषयों के लिए भी किया जाता है। यह संस्था के सभी क्रियाओं के नियत्रंण रखने में मुख्य भुमिका निभाता है और साथ ही योजनाओं नीतियों और पूर्व-निर्धारित मानकों से वास्तविक प्रगति कि तुलना करने में भी सहायक होता है। वास्तव में, तुलना के सही आकड़ें तथा सूचनाएँ प्रदान करने में यह अत्यन्त सहायक हैं। इस प्रकार, आन्तरिक अंकेक्षण का सार्थक उपयोग हम नीतियों का मूल्यांकन विधियों की जाँच, अधिकारों का उपयोग, प्रबन्धक की कार्यकुशलता जाँचने आदि के लिए करते हैं।

प्रबन्धकीय अंकेक्षण (Management Audit) - सर्वांगीण तौर पर प्रबन्ध का एक मूल्यांकन होता है। यह सम्पूर्ण प्रबन्ध प्रक्रिया का स्वतन्त्र एवं चर्चित परीक्षण है। अतः यह नियोजन, संगठन, कर्मचारी नियुक्ति, निर्देशन तथा नियंत्रण की पूर्ण प्रबन्धकीय

परम्परा का परीक्षण करता है। वास्तव में कम्पनी की योजनाऐं, लक्ष्य, नीतियाँ, प्रविधियाँ, संगठन, नियंत्रण तंत्र, सेविवर्गीय सम्बन्ध सभी प्रबन्धकीय अभिप्राप्ति के मूल्यांकन हेतु मापे जाते हैं। प्रबन्धकीय अंकेक्षण के सामने अनेक समस्याऐं उत्पन्न हो जाती हैं क्योंकि एक तरह से प्रबन्धकीय अंकेक्षण एक नई नियंत्रण तकनीक है। मूल प्रश्न उठता है इसके क्षेत्र तथा प्रविधि के बारे में, उन व्यक्तियों के बारे में जो इसको अंजाम देंगे, उन व्यक्तियों की क्या योग्यताऐं तथा लक्षण होंगे, तथा वह व्यक्ति जिनके समक्ष अंकेक्षण प्रतिवेदन रखे जायेंगे।

जहाँ तक प्रबन्धकीय अंकेक्षण के क्षेत्र तथा प्रविधि का प्रश्न है प्रबन्धकीय अंकेक्षण के व्यापक अभ्यास के कारण इनको भली प्रकार परिभाषित नहीं किया गया है। बहुत कुछ प्रबन्धकीय अंकेक्षण के चातुर्य, कौशल एवं योग्यता पर निर्भर करता है। प्रबन्धकीय अंकेक्षण करने वाले व्यक्ति को प्रबन्धकीय सिद्धातों, व्यवहारिक पहलुओं तथा प्रबन्ध के क्रियात्मक क्षेत्रों का व्यापक ज्ञान गहन सूझबूझ होनी चाहिए। प्रबन्धकीय अंकेक्षण प्रतिवेदनों का रूप लेता है। प्रतिवेदन विशिष्ट तथा जटिल अंकेक्षण प्रतिवेदनों से हटकर होने चाहिएं। कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र जो प्रबन्धकीय अंकेक्षण द्वारा उभारे जा सकते हैं इस प्रकार बताये जा सकते हैं-

a भूमिकाओं, गतिविधियों तथा सम्बन्धों के संगठनात्मक ढांचों की अभिकल्पना तथा परिचालन,

b संगठनात्मक लक्ष्यों, व्यूहरचनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों का निर्धारण तथा वह तरीका जिससे उनको लागू किया जाये तथा साथ ही प्राप्त सफलता की मात्रा,

c वह तरीका तथा कार्यक्षमता जिसके साथ संसाधन तथा सम्पत्तियों की गतिशीलता को, विकसित, प्रभारित, प्रयुक्त तथा सुरक्षित बनाया जा सके। उल्लेखनीय है कि मानवीय संसाधनों को भी इसमें शामिल किया जायेगा।

d संगठन के भीतर विभिन्न तंत्रों तथा क्रियाओं की अभिकल्पना तथा क्रियान्वयन

e वह तरीका जिसमें प्रबन्धकीय बाह्य वातावरणीय तत्वों की कल्पना करती है तथा उनमें काट छाँट करती है तथा उनसे निपट पाने के लिए उपयुक्त व्यूहरचनाओं की अभिकल्पना करती है,

f आन्तरिक संगठनात्मक जलवायु किस सीमा तक यह सहयोग, एकरसता, स जन, उत्पादकता तथा संतुष्टि के लिए उपयोगी है।

g प्रबन्धकीय निर्णयों की गुणवत्ता उनकी परिपक्वता कालबद्धता तथा प्रभावोत्पादकता।

प्रबन्धकीय अंकेक्षण कार्य संगठन के वैधानिक अंकेक्षण तथा आन्तरिक अंकेक्षण से कहीं दूर तक जाता है क्योंकि इसका स्वभाव तथा विषय सामग्री उनसे कहीं हट कर है। जैसा कि आशा की जा सकती है लेखाकारों तथा अंकेक्षकों ने प्रबन्धकीय अंकेक्षण को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण रूचि दिखाई है तथा विशेष तौर पर संयुक्त राज्य अमेरिका में इस दिशा में अनेक क्रान्तिकारी कदम उठाये जा रहे हैं। इसका लक्ष्य यही रहा है कि इस बात का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन किया जाये कि जैसे संगठन के क्रियाकलाप का प्रबन्ध किया जा रहा है।

8 व्यक्तिगत अवलोकन (Personal Observation)

व्यक्तिगत अवलोकन नियन्त्रण की सबसे प्राचीन तकनीक है। निम्न स्तर पर नियन्त्रण हेतु इसे बहुत अधिक उपयुक्त माना जाता है। नियन्त्रण में, व्यक्तिगत अवलोकन का आज भी महत्व है यद्यपि नियन्त्रण की नई-नई वैज्ञानिक विधियाँ निकल चुकी हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अनेक सूचनाएँ व्यक्तिगत अवलोकन से ही ज्ञात की जा सकती हैं और बिना इसके उसकी जानकारी हो ही नहीं सकती। अनेक सूचनाएँ या तथ्य प्रबन्धक अपने कमरे में बैठकर रिपोर्ट चार्ट या आंकड़ों से नहीं ज्ञात कर सकता है। अनेक बातें जो आंकड़ों से स्पष्ट नहीं होती हैं, स्वयं देखकर ही हो सकती हैं। यह प्रबन्धक को कर्मचारियों से व्यक्तिगत रूप से बात करने, विचार-विमर्श करने का भी अवसर प्रदान करता है। इसके माध्यम से व्यक्तियों की कठिनाइयों, दुखों और अकुशलताओं को भी दूर किया जा सकता है। व्यक्तियों से व्यक्तिगत रूप से मिलकर सुझाव प्राप्त किया जा सकता है। प्रायः इस माध्यम से बहुमूल्य सुझाव प्राप्त हो सकते हैं। व्यवहार में, देखा गया है कि एक व्यक्ति जो काम नहीं करता और कुशल भी है, प्रबन्धक के सामने आने पर कुशलता से काम करने लगता है। किसी भी स्थान पर उसकी उपस्थिति ही व्यक्तियों

को प्रेरित करने के लिए पर्याप्त होती है। यहाँ पर यह बात लागू होती है कि जो काम लिख-पढ़कर नहीं हो सकता उसे आमने-सामने बात करके किया जा सकता है। इस प्रकार, व्यक्तिगत अवलोकन, प्रायः कुछ परिस्थितियों में, नियन्त्रण का अत्यन्त उपयोगी उपकरण सिद्ध होता है।

9 उत्पादन-नियन्त्रण
(Production Control)

उत्पादन नियन्त्रण का तात्पर्य यह देखना होता है कि उत्पादन का कार्य पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार हो रहा है अथवा नहीं। इसके लिए सम्पूर्ण उत्पाद-प्रक्रिया को इस प्रकार से संयोजित, निर्देशित तथा नियन्त्रित किया जाना चाहिए कि उपलब्ध साधनों का समुचित उपयोग हो सके, बर्बादी की मात्रा न्यूनतम हो तथा न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन सम्भव हो सके। यह तभी सम्भव होगा जबकि कार्य पूर्ण कुशलता या क्षमता के साथ किया जाए। नियन्त्रण करने में यह भी देखना होता है कि सभी कर्मचारी मन लगाकर और क्षमता के अनुसार काम कर रहे हैं और समय नष्ट नहीं कर रहे हैं। साथ ही मशीन तथा अन्य उपकरणों का उपयोग निर्धारित क्षमता के अनुसार किया जा रहा है। वास्तव में, उत्पादन नियंत्रण उत्पादन प्रक्रिया में सामग्री के कच्चे माल की स्थिति से लेकर निर्मित माल की स्थिति तक के व्यवस्थित प्रवाह को नियंत्रित करता है। यह संस्था में आने वाले विक्रय आदेशों (orders) को एकत्र करता है, उन्हें उत्पादन आदेशों में बदलकर कारखाने में उत्पादन के लिए ऐसे गति एवं क्रम में लगाता है कि कारखाना इसे आसानी से सम्भाल सके और उसके लिए कम-से-कम आन्तरिक उथल-पुथल करनी पड़ें।

उत्पादन नियन्त्रण की कार्य-विधि
(Steps in Production-Control)

पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए और योजनाबद्ध ढंग से उत्पादन करने के लिए नियन्त्रण आवश्यक है और उसके लिए कुछ निश्चित, आवश्यक प्रयास किए जाने चाहिए। व्यवहार में, इसके लिए अनेक कदम उठाये जाते है। यहाँ पर हम नियंत्रण के लिए उठाये जाने वाले निम्नलिखित प्रमुख कदमों या कार्य-विधियों का उल्लेख करेंगेः (अ) मार्ग-निर्धारण, (ब) समय-निर्धारण, (स) प्रेषण, (द) अनुगमन, (य) निरीक्षण।

अ. मार्ग-निर्धारण (Routing) - यह इस बात को निश्चित करता है कि किस प्रकार से और किस क्रम से उत्पादन किया जाएगा। इसके द्वारा उस मार्ग को क्रम से निर्धारित किया जाता है जिससे गुजर कर कच्चे माल को निर्मित माल में परिवर्तित किया जाएगा। इसके द्वारा वास्तव में, उत्पादन के लिए कार्य-संचालन, उसका मार्ग, उसका क्रम, स्थान, आवश्यक मशीन तथा अन्य उपकरण एवं आवश्यक व्यक्तियों आदि का निर्धारण करना होता है। मार्ग का निर्धारण करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि उत्पादन-प्रक्रिया में सामग्री को एक स्थान से दूसरे स्थान पर कम-से-कम लाना या ले जाना पड़े जिससे सामान व समय की बरबादी न्यूनतम हो और इसके फलस्वरूप लागत में व द्धि न हो। किसी भी नए उत्पादन के लिए पथ-निर्धारण के बारे में कुछ निश्चित करने से पूर्व, निम्नलिखित बातों पर विचार करना होगा-

1. उस वस्तु का विश्लेषण करना और यह पता लगाना कि क्या तैयार करना है और उसके लिए कब क्रय करना होगा,
2. यह निश्चित करना कि उसके उत्पादन के लिए कौन-कौन सी सामग्री की आवश्यकता होगी,
3. उत्पादन की क्या विधि होगी और वह किस क्रम से किया जायेगा,
4. एक लाट (lot) के आकार को निश्चित करना।
5. उत्पादन प्रक्रिया में कितना अवशेष (scrap) होगा, उसका पता लगाना,
6. वस्तु की उत्पादन-लागत का विश्लेषण,
7. उत्पादन पर नियन्त्रण के लिए संगठन के स्परूप पर विचार करना।

ब. समय-निर्धारण (Scheduling) - उत्पादन का नियन्त्रण करने के लिए, समय-निर्धारण करना और यह देखना कि उत्पादन निर्धारित समय के अन्दर ही हो रहा है अथवा नहीं, अत्यन्त आवश्यक है। समय-निर्धारण के अन्तर्गत यह निश्चित करना होता है कि काम को कब प्रारम्भ करना है और एक निश्चित अवधि में कितना काम हो सकेगा और काम को पूरा करने में कुल कितना समय लगेगा किम्बाल तथा किम्बाल (Kimball and Kimball) ने इसे निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया है: "यह उस समय-अवधि को निर्धारित करता है जो प्रत्येक क्रिया को पूरा करने के लिए आवश्यक है, और उस समय को भी निर्धारित करना है जो इन क्रियाओं की सम्पूर्ण श्रंख्ला (series) को, जिस प्रकार उनका पथ-निर्धारण किया गया हो, सभी सम्बन्धित घटकों के लिए गुंजाइश छोड़ते हुए, पूरा करने के लिए आवश्यक है। यह, इस प्रकार, निश्चय ही उत्पादन-योजना और उत्पादन-नियन्त्रण का प्रमुख अंग है क्योंकि सम्पूर्ण भावी उत्पादन-प्रक्रिया इसी के आधारित समय में पूरी करनी होगी। योजना तैयार करते समय इस पर समुचित ध्यान देना अति आवश्यक है क्योंकि बाद में उत्पादन के सम्बन्ध में उठाए जाने वाले सभी कदम इसी पर निर्भर करते हैं।

स. प्रेषण (Despatching) - इसे उत्पादन-संयोजन भी कहते हैं। सामान्य अर्थो में, इसका तात्पर्य किसी वस्तु को भेजने या प्रेषण से है परन्तु उत्पादन प्रक्रिया में इसका अर्थ भिन्न है। यहां इसका तात्पर्य निश्चित स्थानों या मशीनों को निश्चित काम सौंपने की विधि से है। यथासम्भव, इसी के माध्यम से कार्य की प्रगति को धीमा या तीव्र भी किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत प्राथमिकताओं के आधार पर काम के लिए आदेश देना भी सम्मिलित किया जाता है। वास्तव में, उत्पादन नियन्त्रण की दिशा में यह प्रथम वास्तविक कार्यवाही है। यह एक ऐसी क्रिया है जो निर्धारित पथ, समय तथा कार्यक्रम के अनुसार उत्पादन कार्य को प्रारम्भ करती है। इसमें निर्धारित योजना के अनुसार कार्य चालू करने की आज्ञा देना सम्मिलित किया जाता है। सामान्यतया, उत्पादन-संयोजन या प्रेषण में निम्नलिखित क्रियाएँ सम्मिलित की जाती हैं-

1. मशीन तथा उत्पादन-विभागों को काम सौंपना;
2. जहाँ पर माल, औजार आदि का प्रयोग किया जाना हो वहाँ उसे उपलब्ध कराने के लिए व्यवस्था करना और निश्चित अधिकार देना;
3. सभी सम्बन्धित कर्मचारियों को उत्पादन-आदेश, निर्देश और उत्पादन सम्बन्धी नक्शे आदि देना;
4. उत्पादन-प्रक्रिया तथा प्रगति का निर्धारित पथ तथा समय-सारणी के अनुसार उचित ढंग से नियन्त्रित करना और उसमें कुछ परिवर्तन करना आवश्यक हो जाए तो उस पर विचार करके सम्बन्ध में उचित आदेश व अधिकार देना;
5. एक मशीन या विभाग या स्थान पर कार्य समाप्त होने पर उसे दूसरी मशीन, विभाग या स्थान पर पहुँचने की व्यवस्था करना इससे सम्बन्धित समुचित अधिकार प्रदान करना;
6. योजना विभाग तथा निर्माण विभाग के मध्य सम्पर्क बनाए रखना।

द. अनुगमन सम्बन्धी कार्यवाही और निरीक्षण (Follow-up and Inspection) - उत्पादन के लिए समुचित अधिकार तथा आदेश प्राप्त होने के पश्चात् जब उत्पादन-कार्य आरम्भ हो जाए तो नियन्त्रण की द ष्टि से यह देखना अति आवश्यक हो जाता है कि उत्पादन की प्रगति कैसी चल रही है। उत्पादन का कार्य योजना के अनुसार हो रहा है या नहीं। सभी कर्मचारी समय से तथा कुशलता के साथ कर रहे हैं अथवा नहीं, वे समय की बर्बादी तो नहीं कर रहे हैं, मशीनों का समुचित उपयोग हो रहा है अथवा नहीं। आवश्यक उपकरण या कच्चे माल या मरम्मत के कारण कोई मशीन बन्द तो नहीं पड़ी है। उत्पादन पूर्व-निर्धारित लक्ष्य के अनुसार तथा अच्छी श्रेणी का हो रहा है अथवा नहीं। इन सभी बातों के बारे में पर्याप्त सतर्कता की आवश्यकता होती है। इस प्रकार, उत्पादन के दौरान ही, प्रगति के बारे में जानकारी प्राप्त करना तथा उन पर पर्याप्त नियन्त्रण रखना अति आवश्यक है। इस कार्य के लिए ही निरीक्षण की आवश्यकता होती है। यह निरीक्षण करना अत्यन्त उपयोगी है यद्यपि इसमें कुछ लागत भी पड़े। लागत के कारण इसे रोक नहीं देना चाहिए। वास्तव में उत्पादन के दौरान ही निरीक्षण के माध्यम से निर्मित होने वाली वस्तु की किस्म तथा मात्रा के बारे में नियंत्रण करना आवश्यक है।

उत्पादन-नियन्त्रण से लाभ
(Advantages)

1. योजनाबद्ध उत्पादन तभी हो सकता है जबकि उत्पादन पर समुचित नियन्त्रण रखा जाए।
2. उत्पादन पर उचित नियन्त्रण करके उत्पादन सम्बन्धी जो भी लक्ष्य रखे गए हों उनको आसानी से और निश्चित समय में प्राप्त किया जा सकता है।
3. उचित नियन्त्रण के फलस्वरूप उत्पादन में लगी सभी मशीनों तथा उपकरणों का अधिकतम उपयोग सम्भव हो पाता है और उनके बन्द रहने तथा दुरूपयोग होने से रोका जा सकता है।
4. उत्पादन कार्य बिना किसी रूकावट के सम्भव हो पाता है क्योंकि नियन्त्रण तथा निरीक्षण करके सभी बाधाओं तथा गतिरोधों को दूर करने का प्रयास किया जाता है।
5. उत्पादन-नियन्त्रण के अन्तर्गत यह भी देखा जाता है कि सभी कर्मचारी अथवा श्रमिक कुशलता के साथ कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं। इस प्रकार, उन पर नियन्त्रण रखने के कारण उनकी कार्यक्षमता में व द्धि होती है।
6. बिना समुचित नियन्त्रण के उचित तथा निर्धारित मानदण्ड के आधार पर उचित किस्म के माल का उत्पादन सम्भव नहीं हो सकता। नियन्त्रण करके उचित किस्म के माल का ही उत्पादन नहीं होता अपितु निम्न श्रेणी के माल के उत्पादन से होने वाली हानि से भी बचा जा सकता है।

10 किस्म-नियन्त्रण
(Quality Control)

किस्म-नियन्त्रण उत्पादन-नियन्त्रण का प्रमुख अंग है, परन्तु यह इतना महत्वपूर्ण है कि इसका अलग से अध्ययन करना आवश्यक है किस्म-नियन्त्रण का तात्पर्य उत्पादित वस्तुओं की किस्म पर नियन्त्रण करने से है। इसके अन्तर्गत प्रमापित या पूर्व-निश्चित किस्म से वास्तविक निर्मित वस्तु की किस्म की तुलना करके यह पता लगाना होता है कि निर्मित माल की किस्म प्रभापित किस्म की तरह ही है या उनमें कुछ अन्तर है। यदि उनमें अन्तर है तो उसके कारण का पता लगाना होता है। इसमें यह भी देखना होता है कि जितनी भी वस्तुएँ तैयार हुई हैं उन सभी की किस्म एक समान है या नहीं।

किस्म नियन्त्रण की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

1. डा॰ डब्ल्यू॰ आर॰ स्प्रीगल के अनुसार, "उत्पादन की किस्म की व्याख्या उसके विभिन्न लक्ष्यों के योग के रूप में की जाती है, जैसे-आकृति, आकार, रचना, शक्ति, कारीगर, समायोजन तथा अन्तिम रूप-रंग।"
2. सिगमण्ड पी॰ जे॰ के अनुसार, "किस्म नियन्त्रण का आशय यह निश्चित करना है कि ग्राहकों को वही मिलता है जिसको कि खरीदने का वह विश्वास रखता है। यह लागत को कम करने का कार्यक्रम है।"
3. जे॰ ए॰ शुविन के अनुसार, "किस्म नियन्त्रण से आशय निर्धारित प्रमापों से विचलन तथा पहचानने योग्य दोषों के कारणों को मान्यता प्रदान करना एवं उन्हें दूर करना है।"
4. आल्फर्ड एवं बीटी के अनुसार, "किस्म नियन्त्रण औद्योगिक प्रबन्ध की एक ऐसी तकनीक अथवा तकनीकों का समूह है जिसके द्वारा एक-सी स्वीक ति योग्य किस्म के उत्पादन तैयार किये जाते हैं।
5. एच॰ डी॰ शोरी (H. D. Shoree) - "किस्म नियन्त्रण अनिवार्य रूप में कच्चे माल को प्राप्त करने से लेकर निर्मित माल के लादने तक को विभिन्न व्यय होते हैं उनमें कमी लाने एवं निरीक्षण लागतों को न्यूनतम करने से सम्बन्धित है। यह एक उत्पारदकता तकनीक है जिसका उद्देश्य इन दोनों प्रकार की लागतों को कम करना है। यह एक निवारणात्मल (preventive) तकनीक भी है, क्योंकि इसका एकमात्र उद्देश्य शुरू में ही ऐसी व्यवस्था कर देना है जिससे कि दोष उत्पन्न न हो सकें।"

किस्म-नियन्त्रण के उद्देश्य
(Objectives)

1. किस्म नियन्त्रण का मूल उद्देश्य इस बात की गारण्टी करना है कि उत्पादन निर्धारित आकार, रूप, रंग, किस्म

कलात्मक ढंग से ही तैयार किया जा रहा है।

2. किस्म नियन्त्रण का उद्देश्य ऐसे प्रमापों की स्थापना करना है जो कि सभी ग्राहकों को स्वीकार्य हों।
3. निर्धारित प्रमापों से विचलनों का पता लगाना तथा उनके कारणों की छानबीन करना भी किस्म नियन्त्रण का महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं।
4. निर्धारित प्रक्रिया से भिन्नता होने की दशा में उपयुक्त कार्यवाही के लिए सुझाव भी दिये जा सकते हैं।
5. केवल श्रेष्ठ कोटि की वस्तुओं का उत्पादन सम्भव बनाकर किस्म नियन्त्रण वस्तुओं की विक्रय व द्धि में भी सहायक होता है।

किस्म नियन्त्रण के कार्य
(Functions of Quality Control)

ए॰ आई॰ पीटरसन (A.I. Peterson) ने किस्म नियन्त्रण के निम्न प्रमुख कार्य बताते हैं- (1) प्रमापों (standards) तथा मानकों (specifications) में समन्वय स्थापित करना। इनके निर्धारण का कार्य इंजीनियर्स का है। इनका निर्धारण क्रय, विक्रय, निर्माण और निरीक्षण विभाग के सहयोग से किया जाना चाहिए। (2) उत्पादन प्रक्रिया तथा विधि पर आवश्यक नियन्त्रण स्थापित करना। प्राप्त उत्पादन को निर्धारित प्रमापों से मिलाना। (3) सांख्यिकीय अनुसन्धान कार्य को निरन्तर चालू रखना। (4) ग्राहकों की शिकायतें सुनना, कारणों का पता लगाना और उपचारात्मक व निवारणात्मक कदम उठाना। (5) निरीक्षण के कार्य में सहयोग देना।

किस्म नियन्त्रण के आवश्यक तत्व अथवा सिद्धान्त
(Essentials or Principles of Quality Control)

एक सफल किस्म नियन्त्रण की तकनीक में निम्नलिखित तत्वों का समावेश होना आवश्यक है-

1. निर्धारित प्रमापों का लागू होना (Enforcing Standards) - उत्पादन प्रारम्भ करने से पूर्व ही स्पष्ट रूप से प्रमापों का निर्धारण होना आवश्यक है, ताकि उत्पादित माल का उससे मिलान किया जा सके एवं विचलन का पता लगाया जा सके।
2. उत्तरदायित्वों का ग्रहण किया जाना (Assignment of Responsibility) - निर्मित माल निर्धारित किस्म का हो, इसके लिए किसी योग्य व्यक्ति को उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए।
3. प्रबन्धक का एकमात्र होना (Same view of Management) - किस्म नियन्त्रण की उपयुक्तता और आवश्यकता के सम्बन्ध में सभी स्तरीय प्रबन्ध को एकमत होना चाहिए, अन्यथा किस्म नियन्त्रण की योजना असफल हो जायेगी।
4. निरीक्षण की व्यवस्था (Inspection arrangement) - औद्योगिक उपक्रम में निरन्तर किस्म निरीक्षण की व्यवस्था स्थापित की जानी चाहिए ताकि जैसे ही निर्धारित किस्म से विचलन होता दिखाई पड़े, उसका तुरन्त पता लगाकर सुधारात्मक कदम उठाया जा सके।
5. निरन्तरता (Continuity) - किस्म नियन्त्रण के लिए व्यवस्था होनी चाहिए जिससे कि निर्धारित प्रमापों से तनिक भी विचलन होते ही तुरन्त उपचारात्मक उपाय किया जा सके।
6. सहयोग (Co-operation) - किस्म नियन्त्रण योजना को सभी सम्बद्ध व्यक्तियों का हार्दिक सहयोग मिलना चाहिए।

निवेश के प्रत्याय के माध्यम से नियंत्रण (Control through Return on Investment) - किसी भी संगठन की कार्यक्षमता उसके निवेश के आकार के सम्बन्ध में उसके द्वारा कमाये लाभ की राशि द्वारा जाँची जाती है। जिसे आमतौर पर निवेश पर प्रत्याय (ROI) कहते हैं। यह व्यवस्था 1919 से संयुक्त राज्य अमेरिका की महत्वपूर्ण कम्पनी Du Point के नियंत्रण तंत्र का महत्वपूर्ण भाग रही है जबकि वास्तव में इसको 1914 में डोनाल्डसन ब्राउन द्वारा बताया गया था। इतनी बड़ी कम्पनी में इसके सफल परिचालन को देखकर बहुत बड़ी संख्या में कम्पनियाँ अपनी सर्वांगीण निष्पत्ति में मुख्य मानदण्ड के रूप में इस विधि को अपनाती रही हैं। इसकी गणना का आधार रहा है-

$$ROI = \frac{\text{Net Income}}{\text{Sales}} \times \frac{\text{Sales}}{\text{Total Investment}}$$

शुद्ध आय विक्रय से विक्रय की लागत घटाकर निकलने वाला मूल्य आगम का अवशेष है। तुलना की द ष्टि से कर पश्चात् तथा कर पूर्व शुद्ध आय को लिया जा सकता है। कुल निवेश में व्यवसाय में लगी स्थायी सम्पत्तियाँ तथा कार्यशील पूँजी को शामिल किया जाता है।

निवेश पर प्रत्याय उत्पादकता तथा कार्यक्षमता का लेखांकन का अभिन्न अंग है। इससे निम्न लाभ प्राप्त हो सकते हैं-

1. यह तकनीक अन्तः संगठन तुलना के लिए स्वस्थ आधार प्रदान करती है।
2. इस तकनीक के भरोसे से अधिक विवेकपूर्ण तरीके से किसी भी संगठन के संसाधनों का आबंटन किया जा सकता है।
3. यह तंत्र अधिकार सत्ता विकेन्द्रीयकरण में सहायक सिद्ध होता है।
4. एक द ष्टि से इसे सम्पूर्ण नियंत्रण तंत्र के रूप में लिया जा सकता है कि प्रत्याय की दर संगठन के उद्देश्यों को प्रतिबिम्बित करती है।

अध्याय–9
संगठनात्मक व्यवहार
(Organisational Behaviour)

परिचय
(Introduction)

संगठनात्मक व्यवहार उस परीक्षा से सम्बन्धित है जो यह विश्लेषण करती है कि कैसे और क्यों व्यक्ति संगठनों में विशिष्ट प्रकार से व्यवहार करते हैं। यह मानवीय व्यवहार की प्रक्रिया तथा उन परिवर्तनों के प्रति हमारी सूझबूझ को विकसित करने का प्रयास करती है कि किस प्रकार संगठनों की संरचनाएँ, प्रक्रियायें तथा मूल्य मानवीय व्यवहार को प्रभावित करते है तथा किस प्रकार संगठनों के भीतर व्यक्तियों तथा समूहों का व्यवहार संरचनाओं, प्रक्रियाओं तथा मूल्यों पर अपना प्रभाव छोड़ता है। संगठनात्मक व्यवहार की परख जहाँ एक ओर मानवीय व्यवहार को सही दिशा में प्रवाहित करने के तौर तरीकों की अभिकल्पना का मूल्यवान तंत्र सिद्ध होती है वहीं सम्पूर्ण संगठनात्मक जलवायु भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। संगठनात्मक व्यवहार की विचारधारा के तीन अतिचर्चित आयाम हैं- संरचना, प्रक्रिया तथा मूल्य। संरचना से किसी तन्त्र के विभिन्न उपतन्त्रों के बीच सम्बन्धों एवं भूमिकाओं के ताने बाने का आभास मिलता है। प्रक्रिया किसी तन्त्र द्वारा निष्पादित गतिविधियों की क्रमबद्ध तथा चरणबद्धता को कहते है। मूलतः यह तंत्र को विषय सामग्री सुलभ कराती है। मूल्य तंत्र के लक्ष्य होते हैं तथा वे दिशाएं है जिनमें व्यवस्था को जाना है तथा जैसे व्यवहार की लोगों से आशा की जाती है।

व्यक्तिगत व्यवहारः-

संगठनात्मक तन्त्र में व्यक्ति उसका मुख्य आधार होता है। संगठन के लिए प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक अलग जगह होती है। किसी भी व्यक्ति की संरचना में उसकी शरीर रचना उसका व्यक्तित्व तथा मूल भौतिक एवं मानसिक गुण महत्वपूर्ण होते है। इनमें कुछ बातें तो उसे विरासत में मिलती है तथा कुछ उसके वातावरण के साथ सम्पर्क द्वारा विकसित होती है। इस सन्दर्भ में सम्प्रेषण प्रक्रिया, द ष्टिकोण तंत्र तथा अभिप्रेरणा प्रक्रिया अपनी भूमिका निभाती है। लोग अपने वातावरण की सूझबूझ प्राप्त करने हेतु विचारों, द ष्टिकोणों तथा सूचनाओं का आदान प्रदान करते है। लोगों के बीच परस्पर सम्पर्क उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए अनिवार्य है तथा सामाजिक द ष्टि से वांछनीय।

अलग-अलग तरीके से लोग वस्तु स्थिति के बारे में सोचते है। व्यक्तिगत व्यवहार में नजरिए की अहम भूमिका रहती है। अभिप्रेरणा की प्रक्रिया अंशतः स्वनिर्मित तथा अंशतः अनेक सकारात्मक अभिप्रेरकों के माध्यम से बाह्य परिवेश से प्रभावित होते है। जहाँ तक लोगो के मूल्यों का प्रश्न है, उनका निर्धारण लोगों के सांस्क तिक उतार चढ़ाव से जाना जा सकता है। जीवन मूल्य अपेक्षाक त चिरस्थायी रहते हैं तथा लोगों के जीवन कार्य तथा परिवेश के प्रति उनके नजरिये को अपने तरीके से ढ़ालते हैं।

समूह व्यवहारः-

संगठनों में अनेक प्रकार के समूह बन जाते है जो व्यक्ति तथा संगठनों के मध्य सम्पर्क सूत्र का काम करते है। उनका लोगों के व्यक्तिगत जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। समूह के सदस्य सामान्यतः समूह द्वारा स्वीक त भूमिकाओं का पोषण करते है तथा एक दूसरे से सम्बन्धों का जाल सा बुन लेते है जो बदलते रहते है। समूहों के ये संरचनात्मक आयाम समूह प्रक्रियाओं - सम्प्रेषण प्रक्रिया, शंका समाधान प्रक्रिया, एकता तथा अनुशीलन प्राप्ति की प्रक्रिया को प्रभावित किये बिना नहीं रहते। संगठनों

के भीतर समूहों का उदय विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति तथा सदस्यों के लिए उचित जीवन मूल्यों के अनुरक्षण हेतु होता है।सामूहिक मूल्यों के उदाहरण के रूप में प्रजातांत्रिक विचार विमर्श, समानता, सम्बद्धता तथा पारस्परिक समर्थन आदि का उल्लेख किया जाता है।

संगठनों में व्यवहारः-

व्यक्ति तथा समूह दोनों ही संगठन के भीतर काम करते है। एक संगठन को मात्र व्यक्तियों का संघ ही नहीं माना जाता और न ही वह अनेक समूहों का एक बड़ा समूह ही है। उसका अपना एक अलग अस्तित्व एवं सत्ता है। उसकी अपनी प थक संरचना प्रक्रिया व मूल्य है। उसमें विभिन्न गतिविधियों अधिकार सत्ता सम्बन्धों एवं सम्प्रेषण श्र ंखलाओं का जाल सा बिछा रहता है। अपनी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए उसे अनेक तकनीकों एवं तकनीकियों का सहारा लेना पड़ता है। ये संगठन औपचारिक भी हो सकते है तथा अनौपचारिक भी। कभी कभी ये परस्पर विरोधी काम करते है। उनकी संरचना, प्रक्रिया मूल्य भी अलग-अलग होते है। स्थायित्व विकास, अस्तित्व तथा उपादेयता की द ष्टि से संगठनों के अपने निजी उद्देश्य होते है। वे सूचनाओं का प्रक्रियाकरण करके निर्णयन तथा अन्य दूसरी प्रक्रियाओं में काम लाते है ताकि व्यक्तियों एवं समूहों के प्रयासों को परिणामों की ओर मोडा जा सके। संगठनात्मक द ष्टि से अन्य प्रक्रियाएँ, हैः- नेत त्व तथा अभिप्रेरणा की प्रक्रिया, पुरस्कार तथा प्रतिबन्धों का प्रशासन, परिवर्तन तथा विवादों का प्रबन्ध, बाह्य परिवेश में परिवेश में परिवर्तनों का अनुशीलन तथा समायोजन आदि। संगठन अपने मूल्यों एवं तौर तरीको को भी आगे बढ़ाने का प्रयत्न करते है। जो उनके संतुलन एवं दर्शन की छाप छोड़ते है। उदाहरण के लिए व्यावसायिक संगठन अभिप्राप्ति, विकास, गतिशीलन तथा सामाजिक उत्तरदायित्व के मूल्यों को साथ-साथ निभाने का प्रयास करते है। इस प्रकार एक संगठन अर्द्ध खुला तंत्र है जिसमें अनेक अन्तः सम्बन्धित उपतंत्र शामिल है। दो ऐसे बडे उपतंत्र है- सामाजिक तंत्र तथा तकनीकी तंत्र। संगठन पूरी तरह से न तो एक सामाजिक तंत्र है और न ही एक पूर्ण तकनीकी तंत्र। सामाजिक तथा तकनीकी तंत्र के बीच वाहन संबंध होता है। तकनीकी तंत्र सामाजिक तंत्र की तथा सामाजिक तंत्र तकनीकी तंत्र की निष्पत्ति तथा व्यवहार को प्रभावित करता है। तकनीकी त्ंत्र का विवेकपूर्ण पहलू तथा सामाजिक तंत्र का भावनात्मक पहलू आपस में मिल से जाते है। संगठनात्मक व्यवहार प्रक ति में उस सीमा तक एक सामाजिक तकनीकी व्यवस्था है कि तकनीकी तंत्र के भीतर लोग व्यक्तियों के रूप में तथा समूहों के सदस्यों के रूप में व्यवहार करते है। इसके इर्द गिर्द फैली तकनीकें तथा गतिविधियाँ लोगों के बीच सम्पर्क के निर्दिष्ट समुच्चयों को जन्म देती है तथा उनके भावों, रूझानों तथा व्यवहारों को स्वरूप प्रदान करती है। सामाजिक तकनीकी तंत्र कार्यक्षमता आविष्कार, मानवीय सन्तुष्टि तथा विकास को उपयुक्त महत्ता प्रदान करता है। यह सामाजिक तंत्र के मूल्यों तथा आवश्यकताओं को तकनीकी ज्ञान से सम्बन्धित करने के लिए आवश्यकता पर जोर देती है। तकनीकी से सामाजिक तन्त्र के सदस्यों के कार्यशील जीवन की गुणवत्ता के साथ साथ लोगों के रूझान, निष्पत्तियाँ, सन्तुष्टि तथा मानवीय चातुर्य पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

संगठनात्मक जलवायु
(Organisational Climate)

'संगठनात्मक जलवायु' किसी संगठन के आन्तरिक वातावरण की अपेक्षाक त स्थिर गुणवत्ता के रूप में जानी जा सकती है। जैसा कि उसके सदस्यों द्वारा जाना तथा समझा जा सकता है। तथा जिसे विशिष्ट आयामों तथा लक्षणों के रूप में जाना जा सकता है तथा जो अपने सदस्यों के व्यवहार ढाँचे तथा कार्य निष्पादन को प्रभावित करता है। संगठनात्मक जलवायु के व्यापक लक्षणों को इस प्रकार लिखा जा सकता हैः-

1. संगठनात्मक मूल्य, उद्देश्य तथा प्राथमिकताएं,
2. प्रबन्धकीय मूल्य तन्त्र तथा जीवन शैलियाँ,
3. सामर्थ्य, चरित्र, कटिबद्धता तथा प्रबन्ध की गतिशीलता,
4. संगठनात्मक नीतियों तथा व्यवहारों की संरचना तथा वह निरन्तरता जिससे उनका पालन हो रहा है,
5. शक्ति संरचना,

6. सामान्य संगठनात्मक संरचना,
7. कार्यो की प्रक ति ,
8. स्वतन्त्रता तथा नियन्त्रण की मात्रा,
9. अधीकक्षीय शैलियां
10. पारितोषिक ढाँचा,
11. विवादों के प्रति संगठन का रवैया, तथा
12. संगठन में भौतिक कार्य दशाएं।

संगठनात्मक जलवायु के सभी तत्व किसी भी कर्मचारी की अभिप्रेरणा पर अनेक नजरियों, रूझानों, आवश्यकताओं, मूल्यों, योग्यताओं, प्रयासों, निष्पत्तियों तथा सन्तुष्टि को प्रभावित करके काफी हद तक धनात्मक अथवा ऋणात्मक असर डालते है। कार्य परिवेश में कर्मचारी का व्यवहार अंशतः उसके नजरिये पर आश्रित होता है अर्थात वह तरीका जिससे वह घटनाओं तथा बातों पर अपने तरीके से सोचता हैं। यह सोच उसके अनुभव, ज्ञान तथा सूझबूझ आदि से उभर कर आती है। उसकी अनेक आवश्यकताएं तथा अभिप्रेरणाएं होती हैः- शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक सभी की महता उसके लिए समान नहीं होती। संगठनात्मक जलवायु के विभिन्न तत्व जिस सीमा तक उसकी आवश्यकताओं को पूरा कर पाते है। यह बात उसकी अभिप्रेरणा का निर्धारण करती है। आवश्यकता सन्तुष्टि संगठनात्मक लक्ष्यों को पाने के लिए कर्मचारी के प्रयासों में धनात्मक इच्छा उत्पन्न करती है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की संगठनात्मक जलवायु कर्मचारी को प्रोत्साहन तथा हतोत्साहन प्रदान करती है।

इस प्रकार संगठनात्मक जलवायु अनेक अभिप्रेरणाएं प्रदान करती है, अनेक अवसर प्रदान करती है तथा अपने सदस्यों के बीच अनेक प्रत्याशाओं को उभारती है और इसके साथ यह उन पर अनेक प्रकार के बन्धन भी लगाती है, उनके सामने चुनौतियाँ, समस्याएँ तथा परेशानियाँ भी खडी करती है। लोगों का व्यवहार न केवल ऐसे अवसरों एवं धमकियों की वस्तुनिष्ठ वास्तविकताओं से प्रभावित होता है वरन् उनके व्यक्तिनिष्ठ रूझानों तथा नजरियों से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इस प्रकार संगठनात्मक जलवायु एक जटिल स्थिति है।

संगठनों में स्तर ढाँचे
(Status Patterns in Organisation)

संगठनों अथवा समूहों में व्यवहार को समझने की एक महत्वपूर्ण विचारधारा है 'स्तर' जिसको किसी मानदण्ड के आधार पर दल के भीतर सदस्यों के साप्रेक्षिक सामाजिक श्रेणीकरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। ये मानदण्ड हो सकते हैः- व्यक्तिगत लक्षण (जेसे आयु, लिंग, अनुभव, सामाजिक, उद्भव आदि) व्यक्तिगत योग्यताएं, गुण एवं चातुर्य (जैसे शिक्षा, ज्ञान, ईमानदारी, स जन, कठिन परिश्रम आदि) तथा व्यक्तिगत उपलब्धियाँ (जैसे संसाधनों पर काबू, शक्ति संचय आदि) इसके अतिरिक्त, कुछ संगठन जातीय उद्गम, पारिवारिक सम्बन्धों तथा विरासत में मिली सम्पदा को महत्ता देते है। एक औपचारिक संगठन में स्तर पदस्थितियाँ औपचारिक पदों, वेतन स्तरों, अधिकार सत्ता एवं काम की प्रक ति के आधार पर बनाई जाती है। संगठन अथवा समूह में प्रत्येक व्यक्ति का कोई ना कोई स्तर होता है जो साप्रेक्षिक तौर पर ऊँचा या नीचा हो सकता है। संक्षेप में, हम स्तरों को निम्न श्रेणियों में बांट सकते हैं-

1. **विरासत में मिला तथा प्राप्त हुआ स्तरः-** विरासत में मिला स्तर व्यक्ति की पारिवारिक प ष्ठभूमि, जातीय गुण, विरासत में मिली सम्पदा, लिंग व आयु से बड़ा होता है। जबकि प्राप्त स्तर अपने व्यक्तित्व चातुर्य, गुण, योग्यताएं एवं प्राप्तियों से कमाया जाता है।
2. **सीढ़ीनुमा स्तर तथा क्रियात्मक स्तरः-** आदेश की श्र ंखला में किसी व्यक्ति की अधिकार स्थिति से भी उसका स्तर बनता है। एक औपचारिक संगठन में अनेक स्तरों का प्रबन्ध होता है तथा उनको प्रदत्त अधिकारों के आधार पर उनके स्तर का निर्धारण किया जा सकता है। जबकि क्रियात्मक स्तर समूह में व्यक्ति द्वारा किये जा रहे कार्यो की प्रक ति पर निर्भर करता है।

3. **स्थितिगत तथा व्यक्तिगत स्तरः-** स्थितिगत स्तर बहुत कुछ सीढ़ीनुमा स्तर से मिलता है। कभी कभी किसी व्यक्ति की पद स्थिति किसी संगठन में नीची होते हुए भी उसकी व्यक्तिगत स्थिति अपेक्षाक त ऊँची हो सकती है।

स्तर तन्त्र
(Status Systems)

इसे सामाजिक पदस्थितियों एवं सम्बन्धों के ढाँचे तथा संरचना के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। ये हर प्रकार के छोटे बड़े समूहों में विद्यमान रहता है। समूह के सदस्यों के बीच स्तर की विभिन्नताएं अनिवार्य तौर पर पाई जाती है। कुछ स्तर विभेद, योग्यताओं, रूझानों, प्राप्तियों तथा उत्तरदायित्वों, कार्यो व भूमिकाओं के कारण वास्तविक तौर पर उत्पन्न होते है जबकि कुछ मामलों में ये विभेद परम्परागत नजरियों तथा भ्रान्तिओं के आधार पर उत्पन्न हो जाते है। जो सांस्क तिक तौर पर जन्म लेते है। जैसे कुछ समाजों में महिलाओं को पुरूषों की अपेक्षा नीचा स्तर दिया जाता हैं। अनेक संगठनों में विदेशी डिग्री पाये व्यक्ति को भारतीय योग्यताओं की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती है।

जहाँ तक स्तर चिन्हों का प्रश्न है इनसे किसी व्यक्ति के स्तर की मान्यता तथा परिचयाजन में सुविधा मिलती है। औपचारिक संगठनों में कार्य के पद को स्तर चिन्ह माना जाता है जैसे उपकुलपति, प्रधानाचार्य, डीन ऑफ कॉलेजिन, महालेखाकार कर विशेषज्ञ आदि। सैनिक संगठनों में पद तथा उनकी फीत स्तर चिन्ह माने जा सकते है। इसके अतिरिक्त अधिकारी के कमरे की साज सज्जा, निजी सचिव, क्लब की सदस्यता, कार आदि को स्तर संकेत माना जा सकता है। अनेक संगठनों में अधिकारियों को कई पूर्वाधिकार तथा सुविधाएं प्रदान की जाती है तथा कई बन्धनों से मुक्त रखा जाता है जैसे उपस्थिति रजिस्टर पर रोज हस्ताक्षर करना आदि। यहाँ तक कि औपचारिक संगठनों में सांस्क तिक तौर पर स्तर चिन्हों की विद्यमानता रहती है।

स्तर अभिप्रेरणा (एक स्तर विशेष पाने की चाह) इन्सान का एक महत्वपूर्ण गौण, अभिप्रेरक है। मैस्लो की आवश्यकता प्राथमिकता सिद्धान्त में यह बात 'प्रतिष्ठा की आवश्यकता' के रूप में ली गई है। लोग अपने स्तर के प्रति विचारशील रहते है। वे दूसरे के उच्च स्तर के प्रति ईर्ष्या कर सकते है तथा उसे पाने के लिए इच्छुक रहते है और लोगों से अपने स्तर की मान्यता देने की अपेक्षा करते हैं। अपने स्तर संकेतों को बढ़ा चढ़ा कर दिखाने में शान समझना आम मानव स्वभाव है। वस्तुतः स्तर तन्त्र से निम्न उद्देश्यों की पूर्ति होती हैः-

1. लोगों की अहम् भावना की सन्तुष्टि,
2. उर्ध्वगामी सामाजिक गतिशीलन का मार्ग प्रशस्त होता है,
3. पेशे से जुडी प्रतिष्ठा तथा जीवन मूल्य,
4. योग्यता तथा प्राप्तियों के अन्तर का बखूबी ज्ञान,
5. अनिश्चितता, जटिलता तथा सामाजिक सम्पर्क एवं लेन-देनों में उत्सुकता में कमी लाते हैं,

समूहों तथा संगठनों में स्तर तन्त्र के उपरोक्त धनात्मक पहलुओं को देखने के बावजूद इसके निम्न दोषों को भी नही भुलाया जा सकता है।

1. अप्रजातान्त्रिक व्यवस्था
2. लोगों के बीच ऊँच नीच की खाई
3. लोगों के बीच सामाजिक दूरी बढती है।
4. अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा एवं गन्दी राजनीति को बढावा।

संगठनों के मध्य शक्ति सम्बन्ध
(Power Relationships among Organisation)

अपने तौर तरीकों से घटनाओं, चीजों तथा लोगों पर नियन्त्रण, प्रभाव तथा वर्चस्व प्राप्त कर पाने की व्यक्ति की योग्यता उसकी शक्ति मानी जाती है। अपने आदेशों तथा इरादों पर दूसरों को चला पाने की ताकत ही उसकी शक्ति है। वातावरण के विभिन्न मूल चरों पर काबू पाने की योग्यता तथा घटनाओं तथा लोगों को अपनी विचारधारा में ढाल पाने के लिए उसका प्रयोग इसका

अभिन्न अंग रहता है। शक्ति के निम्न आधार पाये जाते हैं।

(i) पुरस्कार :- जो किसी भी व्यक्ति द्वारा पुरस्कार पाते हैं वे उसके आश्रित सम्बन्धों में बँध जाते हैं। पुरस्कार मौद्रिक, सामाजिक अथवा मनोवैज्ञानिक हो सकते हैं। जिन लोगों में योग्यता होती है तथा पुरस्कार देने की पद स्थिति होती है वे शक्ति जुटा पाते हैं।

(ii) उत्पीड़न :- कई लोग अपनी दादागिरी के जोर पर शक्ति जुटा लेते है। लोगों को प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष अथवा भौतिक मनोवैज्ञानिक उत्पीड़न द्वारा डरा कर अपना प्रभाव जमा पाते है। लोग दबाव में आकर तथा दण्ड एवं अनेक प्रतिबन्ध लग जाने के कारण उनके इरादों पर काम करते है। जैसे स्वतन्त्रता, सुरक्षा का मान, नियमित आदि छिनने का डर। संगठनों में पुरस्कार तथा जुर्माने साथ साथ चलते है।

(iii) प्रतिभा, ज्ञान तथा सूचना :- अधिक जानने वाला अनुभवी व्यक्ति अपने ज्ञान, प्रतिभा, अनुभव एवं अद्यतन जानकारी के आधार पर दूसरों पर नियन्त्रण कर पाता है। लोग उसकी विशेषज्ञता, अनुभव, चातुर्य एवं जानकारी का लोहा मानकर खुद उनके वर्चस्व को स्वीकार करते है।

(iv) व्यक्तित्व का करिश्मा :- उदाहरण के लिए महात्मा गाँधी, चार्ल्स डीगाल, माओत्से तुंग, रूजवेल्ट एवं अब्राहम लिंकन के व्यक्तित्व के करिश्में में सारी दुनिया उनके नेत त्व की शक्ति का लोहा मानती थी।

(v) अनुकरणीय :- कई बार किसी व्यक्ति के आन्तरिक अथवा बाह्य गुणों की लोग इतनी प्रशंसा करते हैं कि उसका अनुसरण करने का प्रयास करते है। वे उन लोगों का उदाहरण सामने रखकर उनकी गतिविधियों, मूल्यों तथा आदतों को अपनाना चाहते है। इस सन्दर्भ में फिल्मी हीरो तथा स्पोर्ट्स हीरो एवं हीरोइनों का उल्लेख किया जा सकता है।

(vi) औपचारिक अधिकार सत्ता संगठनों में अपनी पद स्थिति के आधार पर लोगों को औपचारिक शक्ति प्राप्त होती है।

जहाँ तक शक्ति एवं अधिकार के मध्य अन्तर का प्रश्न है अधिकार सत्ता एक प्रकार से कई अन्य आधारों में से एक शक्ति आधार है। शक्ति व्यक्ति की वह योग्यता है जो दूसरों के कार्यो को प्रभावित कर सकती है जबकि अधिकार प्राप्त व्यक्ति दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करके उनसे अनुशीलन की माँग कर सकता है। शक्ति अधिकार सत्ता से कहीं व्यापक विषय है। वैसे भी अधिकार सत्ता बहुत कुछ औपचारिक होती है जबकि शक्ति कई गैर औपचारिक स्थितियों में भी अपना रंग दिखाती है।

अधिकार सत्ता पद स्थितियों में अव्यक्तिक तौर पर निहित रहती है। लेकिन करिश्मा, ज्ञान, अनुकरण जैसी शक्ति के आधार व्यक्तिगत होते है तथा सम्बन्धित शक्ति प्राप्त व्यक्ति द्वारा यह पदस्थिति से प्रवाहित हो यह आवश्यक नहीं। अधिकार सत्ता नीचे की ओर जाती है तथा अपेक्षाक त अधिक स्पष्ट एवं क्रियात्मक तरीके से ही लागू की जाती है जबकि शक्ति के कई आधार उतने संरचनात्मक नहीं होते। वे बहुत कुछ खुले तथा लचीले रहते है। हमेशा शक्ति नीचे की ओर बहे यह अनिवार्य नहीं।

उल्लेखनीय है कि कर्त्तव्य एवं अधिकार साथ साथ चलतें हैं जबकि शक्ति के कई आधारों में उत्तरदायित्व का मान होता भी है और नहीं भी। लोगों पर अपना आतंक जमाने के लिए कोई व्यक्ति बम्ब बना सकता है लेकिन वह अपने इस विशिष्ट ज्ञान को बिना किसी उत्तरदायित्व के चला सकता है। अधिकार सत्ता का अनुशीलन करना औपचारिक होता है तथा उसकी अवमानना करने पर प्रताड़ित किया जाता है। जबकि शक्ति के कई आधारों में अनुशीलन अनिवार्य नहीं रहता। हम किसी विशेष मामले पर किसी विशेष परामर्श को माने या न मानें यह तो व्यक्तिगत चयन का मामला है।

प्रभाव सम्बन्ध
(Influence Relationships)

प्रभाव को किसी व्यक्ति या वर्ग द्वारा दूसरे व्यक्ति या वर्ग के रूझान तथा व्यवहार को प्रभावित करने की गतिविधि या कला के रूप में जाना जा सकता है। इसमें नेत त्व, अभिप्रेरणा जैसे विषय आते हैं जो लोगों के व्यवहार को आकार दे सकते है,उनको नियन्त्रित कर सकते है तथा उनमें परिवर्तन ला सकते है। शक्ति एवं प्रभाव प्रक्रियाएं तथा सम्बन्ध समूहों तथा संगठनों में व्याप्त रहते है। स्वयं प्रबन्ध को ही समूह के प्रयासों का समन्वय करने, काम करा पाने, घटनाओं को घटित करने, संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु परिस्थितियों पर काबू पाने की एक प्रभाव प्रक्रिया के रूप में माना जा सकता है।

औपचारिक कार्य समूह में नेता या अधीक्षक को लोगों को काम देने, आदेश देने तथा आदेश पूरा कराने की शक्ति होती है। इसी प्रकार संगठनों में कार्य सम्बन्धी मुद्दों पर अधिकारीगण अधीनस्थों पर अपना प्रभाव थौप सकते है। यहाँ तक की बराबर स्तर के लोगों के बीच भी प्रभाव एवं शक्ति सम्बन्ध विद्यमान रहते है। ये एकपक्षीय व द्विपक्षीय दोनों प्रकार के हो सकते है। उल्लेखनीय है कि प्रभाव को यदि प्रभावपूर्ण बनाना है तो उसे शक्ति का पुट देना होगा। शक्ति ही प्रभाव की आवश्यक योग्यता हो पायेंगें। शक्ति अधिकार लोगों पर प्रभाव डालने के लिए काम में लाये जाते है। लोग प्रभाव प्रक्रिया में शामिल होते हैं क्योंकि वे या स्वयं को प्रभावकर्त्ता मानते है या प्रभावित व्यक्ति और इससे वे धनात्मक परिणामों को अधिकतम अथवा ऋणात्मक प्रभावों को कम कर सकते है। परिणाम संकेतिक होते हैं। विशेष तौर पर प्रभावित व्यक्ति प्रभाव की केन्द्रीय शक्ति का अनुशीलन था तो उत्साह वश करते है या परिस्थितियों के दम पर। शक्ति आधारो की तरह प्रभाव को भी निम्न तरीके से डाला जा सकता है

(i) **अनुकरण** (Emulation)

(ii) **उत्पीड़न** (Coercion)

(iii) **सुझाव** (Suggestion)

(iv) **समझाना बुझाना** (Persuation)

समूहों तथा संगठनों में प्रभाव तन्त्र काफी जटिल होता है तथा शक्ति तन्त्र एवं संरचना के एक भाग के रूप में विद्यमान रहता है। वैसे प्रभाव सम्बन्ध अधीनस्थों एवं अधिकारियों के बीच व्युत्क्रम सम्बन्धों वाले हो सकते हैं।

संगठनात्मक विकास
(Organisational Development)

संगठनात्मक विकास की विचारधारा को व्यावहारिक विज्ञान के ज्ञान को अपनाकर संगठन की प्रक्रियाओं में सावधानीपूर्वक अभिकल्पित हस्तक्षेपों के माध्यम से संगठनात्मक प्रभावोत्पादकता सुधारने के लिए उच्च प्रबन्ध द्वारा प्रारम्भ किये गये नियोजित एवं संगठन भर में फैले व्यापक प्रयास के रूप में परिभाषित किया जा सकता हैं। इसे समस्या निदान, परिवर्तन के प्रारम्भ तथा आत्म-नवीनीकरण हेतू किसी संगठन की क्षमताओं को सुधारने के दीर्घकालीन प्रयास के रू॰ मे लिया जाना चाहिए। वास्वत में संगठनात्मक विकास को लक्ष्यों, भूमिकाओं, सम्बन्धों, समस्याओं, क्षमताओं तथा प्रतिबाधाओं के सन्दर्भ में संगठन के सदस्यों की जिज्ञासा एवं प्रबुद्धता के विकास के रूप में समझा जाता है। संगठनात्मक विकास के निम्न उद्देश्य बताये जा सकते हैः-

(a) सम्प्रेषण के खुलेपन को सभी दिशाओं में बढ़ाना।

(b) अपेक्षाक त अधिक प्रभावी कार्य समूहों को विकसित करना,

(c) सर्वागीण संगठनात्मक जलवायु में सुधार लाना,

(d) संगठन के सदस्यों के मघ्य व्यक्तिगत उत्साह, सन्तुष्टि एवं समर्थन के स्तर को बढ़ाना।

(e) लोगों की अनुभूतियों तथा भावनाओं के साथ साथ उनके धनात्मक जीवन मूल्यों एवं विश्वास को और अधिक पक्का करना,

(f) एक संश्लिष्ट तरीके से समस्या निदान तथा विवाद समाधान हेतु अन्तःवैयक्तिक सामर्थ्य सुधारना।

अनेक व्यावहारिक वैज्ञानिकों ने संगठनात्मक विकास की विचारधारा के उद्‌गम में उल्लेखनीय योगदान किया है। मैकग्रैगीर, ऐल्टन मेयो, मैस्लो, लिकर्ट, व्रूम आदि के सिद्धान्त तथा मॉडल इस क्षेत्र में सराहनीय प्रयास कहे जा सकते है। वैसे भी संगठनात्मक विकास में प्रयुक्त अनेक तकनीकें व्यावहारिक विज्ञान की शोध का परिणाम ही है जिनमें प्रबुद्धता प्रशिक्षण जो प्रयोगशाला विधि पर आधारित है तथा प्रबन्धकीय साँचा (ग्रिड) प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। संगठनात्मक विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है संगठनात्मक व्यवहार में सुधार लाने के लिए नियोजित तरीके से हस्तक्षेप करना जो आन्तरिक तौर पर या बाहरी परिवर्तन अभिकर्त्ताओं के माध्यम से लाया जा सकता है। बाहरी परिवर्तन अभिकर्त्ता परामर्शदाता होते है जो परिवर्तन व्यूहरचनाओं का परीक्षण करने तथा उनको प्रभावी तौर पर लागू करने में प्रबन्धको तथा दूसरों की सहायता करके संगठनात्मक विकास का मार्ग प्रशस्त करते है।

जहाँ तक संगठनात्मक व्यवहार की तकनीकों का प्रश्न है विकसित देशों में अनेक हस्तक्षेपात्मक, व्यूहरचनाएँ इस दिशा में अपनाई जा रही हैं। इनको व्यापक तौर पर दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। व्यवहार संकेन्द्रित हस्तक्षेप तथा संरचना संकेन्द्रित हस्तक्षेप। जहाँ तक व्यवहार संकेन्द्रित हस्तक्षेपों के कार्यक्रमों का प्रश्न है वे व्यक्तियों तथा समूहों के रूझान, व्यवहार तथा सम्पर्क ढाँचों को बदलने की ओर उन्मुख रहते है। उनका मुख्य उद्देश्य है व्यक्ति अथवा समूह को अधिक त तथा सहकारी व्यवहार में लगाकर उनकी समस्याओं के समाधान की योग्यता में व द्धि लाना। इनमें कुछ विकास कार्यक्रम है भविष्य नियोजन तथा विकास, प्रबुद्धता प्रशिक्षण समीक्षा, अभिव्यक्ति प्रशिक्षण प्रक्रिया परामर्श रचना टीम, अन्तः समूह टीम रचना तथा प्रबन्धकीय ग्रिड। इन सब का संक्षिप्त रूप से विवेचन किया जायेगा।

भविष्य नियोजन तथा विकास में शामिल होते है :-

(a) संगठनों में मानवीय संसाधनों के उपयोग का नियोजन,

(b) संगठन के सदस्यों को यह जानने में सहायता प्रदान करना कि पेशेवर जीवन से वे क्या चाहते हैं।

(c) संगठन के भीतर उत्पादकीय रूप से कार्य करने की लोगों की क्षमता में सुधार लाना, तथा

(d) अपने जीवन के विभिन्न चरणों पर लोगों का संगठनों से मिलान करना।

अभिव्यक्ति प्रशिक्षण कर्मचारियों को रचनात्मक ढ़ंग से अभिव्यक्ति करने में सहायता देना प्रशिक्षण का कार्य है। अन्य लोगों के अधिकारों का हनन किये बिना अपनी आवश्यकताएं सन्तुष्ट करने के लिए इस प्रशिक्षण को अभिकल्पित किया जाता है। प्रबुद्धता प्रशिक्षण समूह के परस्पर सम्पर्को के माध्यम से लोगों के रूझान तथा व्यवहार में बदलाव लाने के लिए यह प्रशिक्षण विधि अपनाई जाती है। खुले तथा स्वस्थ वातावरण में एक दूसरे के सम्पर्क में आकर लोग दूसरों पर अपने व्यवहार के प्रभाव को भली भान्ति समझ सकते है। व्यवहारात्मक समीक्षा को अन्तः वैयक्तिक सम्प्रेषण के ढाँचे की समीक्षा करने के लिए एक सैद्धांतिक उपकरण के रूप में लिया जा सकता हैं। जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे से सम्प्रेषण करता है तो सम्पर्क का ढाँचा या तो पूरक हो सकता है या परस्पर विरोधी। इस ढाँचे को समझने से रचनात्मक तौर पर लोगों को व्यवहार करने में मदद मिल जाती है।

प्रक्रिया परामर्श का उद्देश्य समूह के सदस्यों को गहनता से समझाना है कि सामूहिक प्रक्रिया में उनके चारों और क्या कुछ घटित हो रहा है। एक प्रशिक्षित प्रत्यक्षदर्शी समूह प्रक्रियाओं जैसे सम्प्रेषण, निर्णयन, व्यक्तिगत भूमिकाओं, सामूहिक परिवेश आदि का अवलोकन करता है तथा समूह को फीड बैंक प्रदान करते हैं।

टीम स जन वास्तव में टीम बनाना एक सामूहिक प्रबुद्धता प्रशिक्षण है जो अन्तः व्यक्तिगत प्रबुद्धता में सुधार लाने की अपेक्षा कार्य सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित करता है। इसे बहुधा 'FAMILY-I GROUP' कहा जाता है। उद्देश्य यही रहता है कि वर्ग के सदस्यों के अन्तः सम्बन्धों को अपेक्षाक त श्रेष्ठ प्रबन्ध के द्वारा समूह की प्रभावोत्पादकता को सुधारा जाये। अन्तः समूह टीम स जन यह विधि समूहों को परस्पर अच्छे सम्पर्क बनाने में सहायता करती है तथा समूहों के बीच सामान्य हित तथा विवाद के स्रोतों को चिन्हित करती है। विवादों को सुलझाने में सहायता करती है तथा सदस्यों एवं समूहों में सहकारी सम्बन्ध विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

संरचना उन्मुख कार्यक्रमः-

ये कार्यक्रम कार्यो सरंचनात्मक सम्बन्धों तथा अन्य प्रबन्धकीय व्यवहारों में बदलाव लाकर संगठनात्मक प्रभावोत्पादकता सुधारने का प्रयास करते है। इस संगठनात्मक उपतन्त्रों में परिवर्तन लाकर प्रबन्ध संगठन के सदस्यों का न केवल रूझान तथा व्यवहार प्रभावित कर सकते है वरन् बदलते परिवेश के प्रति भी और अधिक संवेदनशील हो सकते हैं। इन कार्यक्रमों में अनेक तकनीकें सम्मिलित है। मैट्रिक्स संगठन, कार्य विस्तार, कार्य सम द्विकरण, उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध जैसे विषयों को पहले ही समझाया जा चुका हैं व्यवहार परिवर्तन संगठनात्मक पुरस्कारों का प्रबन्ध करने वाले पुनः प्रवर्तनीयता सिद्धान्त का समावेश करती है। जब पुरस्कार कर्मचारी की आवश्यकताओं से मल खा जाते है तब पुरस्कार तन्त्रों की प्रभावोत्पादकता बढ जाती है तथा निष्पादन से प्रत्यक्षतः सम्बन्ध रखते है।

फलैक्सी टाइम की कार्य अनुक्रमण की विधि में अधिकारी की इच्छा से कर्मचारी निर्दिष्ट सीमा के भीतर अपने कार्यकारी घन्टों को सैट करते है। वे अपने काम करने के प्रारम्भ तथा अन्त का समय तय कर सकते है बशर्ते कि वे पूरे दिन काम पर रहें तथा मुख्य घन्टों में उपस्थित रहें जैसे सुबह 9.30 से शाम 2.30 बजे तक। लिंकिन पिन संगठन ऐसी संगठनात्मक अभिकल्पना है जो सभी प्रबन्धकीय स्तरों पर सहभागी कार्य समूहों को उपयोग में लाती है। इसमें एक समूह की गतिविधियों को इन सुपरवाइजरों द्वारा सम्बद्ध कर दिया जाता है जो उनके बीच लिंकिग पिन्स की भूमिका निभाते है। एक अन्य विधि सर्वेक्षण पुष्टि में निम्न तीन गतिविधियों का समावेश होता है।

(i) संगठन तथा उसकी उपइकाईयों से विभिन्न संगठनात्मक तन्त्रों के बारे में आँकडे एकत्र करना,

(ii) एकत्रित आँकड़ों की समीक्षा करना,

(iii) सम्बद्ध पक्षकारों को परिणामों की जानकारी देना।

रूझान सर्वेक्षण, जलवायु सर्वेक्षण, तथा तन्त्र समीक्षा इस तकनीक के उदाहरण हैं। प्रबन्ध इस सूचना का प्रयोग प्रबन्धकीय व्यवहारों की प्रभावोत्पादकता सुधारने में काम ला सकता है। प्रबन्ध इसका प्रयोग प्रबन्धकीय विकास गतिविधि के प्रकारों को निर्धारित करने में भी कर सकता है।

अध्याय–10
अभिव त्तियाँ
(Attitudes)

परिचय
(Introduction)

सामाजिक सम्बंध बनाने में तथा मानव व्यवहार को दिशा प्रदान करने में अभिव त्तियाँ महत्वपूर्ण स्थान रखती है। हमारी किसी वस्तु व्यक्ति अथवा विचार के प्रति किस प्रकार की व्यवहार क्रियाएं होगी यह बहुत कुछ हमारी उसके प्रति बनी अभिव त्तियाँ पर निर्भर करता है। व्यवहार ही नहीं व्यक्ति का संपूर्ण व्यक्तित्व उसकी अभिव त्तियों के अनुकूल ही ढलता है। जो कुछ भी हम सीखते है, जैसे हमारी आदतें तथा रूचियाँ होती है, जैसे सम्बंध हम व्यक्तियों या समूहों से बनाते है वे सभी हमारी अभिव त्तियों से ही प्रभावित होते है। अतः हमें अभिव त्तियों के अर्थ, उनकी प्रक ति तथा विशेषताओं, उनके निर्माण तथा विकास सम्बंधी तथ्य एवं उनमें निहित अवयवों (Components) आदि से अच्छी तरह परिचित होना ही चाहिये। आगे के प ष्ठों में हम यही करने जा रहे है।

अर्थ एवं परिभाषायें (Meaning and Definitions)-

विभिन्न विद्वानों द्वारा अभिव त्ति को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया हैः-

1. ट्रैवर्स- "व्यवहार को कोई एक दिशा प्रदान करने वाली प्रतिक्रिया के लिये आवश्यक, तत्परता का नाम अभिव त्ति है।"

   ("An attitude is a readiness to respond in such a way that behaviour is given a certain direction")

2. मकेशी एवं डोयल- "अभिव त्ति को हम किसी एक वस्तु से जुड़े हुये संप्रत्ययों, विश्वासों, आदतों और अभिप्रेरणाओं के संगठन के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।"

   ("We define an attitude as an organisation of concepts, beliefs, habits and motives associated with a particular object.")

3. सोरेन्सन- "अभिव त्ति किसी वस्तु के प्रति एक विशिष्ट भावना है। इसलिए इसमें उस वस्तु (चाहे वह व्यक्ति, विचार या पदार्थ कुछ भी हो) से जुड़ी हुई परिस्थितियों में एक निश्चित प्रकार से व्यवहार करने की प्रव त्ति निहित होती है। यह आंशिक रूप में तार्किक और आंशिक संवेगात्मक होती है तथा किसी भी व्यक्ति में जन्मजात न हो कर उपार्जित होती है।"

   ("An attitude is particular feeling about something. It, therefore, involves a tendency to behave in a certain way in situations which involve that something, whether person, idea or object. It is partially rational and partially emotional and is acquired, not inherent, in an individual.")

4. व्हिटेकर- "अभिव त्ति (शरीर अथवा मस्तिष्क की प्रति पूर्व नियोजन अथवा तत्परता की वह अवस्था है जो सार्थक उद्दीपकों के प्रति पूर्व निश्चित तरीके से प्रतिक्रिया करने में सहायक होती है।"

   ("An attitude is a predisposition or readiness to respond in a predetermined manner to relevant stimulie.")

अभिव त्ति, पहली परिभाषा के अनुसार व्यवहार को एक निश्चित दिशा प्रदान करने लिये उत्तरदायी है। अगर किसी की किसी वस्तु के प्रति सकारात्मक (Positive) अभिव त्ति है तो वह उस वस्तु के प्रति आकर्षित होगा, उसे पाने के लिए प्रयत्न करेगा और अगर नकारात्मक (Negative) अभिव त्ति हुई तो वह उससे दूर भागेगा और यहां तक कि वह उसके नाम से ही चिढ़ने या उत्तेजित होने लगेगा। उदाहरण के लिये जिस व्यक्ति की जनतन्त्र के प्रति सकारात्मक अभिव त्ति है वह जनतन्त्रात्मक परम्पराओं और संस्थाओं के प्रति अनुकूल रखेगा और तानाशाही प्रक्रियाओं के प्रति प्रतिकूल रवैया अपनायेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि अभिव त्तियों के द्वारा व्यवहार को एक निश्चित मोड़ प्रदान किया जाता है।

दूसरी परिभाषा में वस्तु के प्रति बनी हुई समस्त धारणाओं, विश्वासों, आदतों और अभिप्रेरणाओं को अभिव त्ति के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। ये एक प्रकार से अभिव त्ति के विभिन्न अवयवों का निर्माण करते है।

तीसरी परिभाषा बतलाती है कि कोई व्यक्ति किसी अभिव त्तियों के प्रभाव में आकर एक निश्चित प्रकार का व्यवहार क्यों करता है। अभिव त्तियों के द्वारा किसी वस्तु या विचार के प्रति एक विशेष प्रकार की रूचि-अरूचि, पसंद-नापसंद पनप जाती है जिसकी बुनियाद कुछ हद तक तार्किक हो सकती है, परन्तु संवेगात्मक कारण अवश्य ही उससे जुड़े रहते है। व्यक्ति में ये बातें जन्मजात नहीं होती, अनुभव के द्वारा वातावरण ही इन्हें सिखाता है। उदाहरण के लिये किसी धर्म के प्रति विकसित अभिव त्ति को ही लीजिए। कौन सीख कर आया था कि अपना धर्म औरों से अच्छा है, दूसरे धर्म घटिया है। यह सब यहां वातावरण ने सिखाया है। अपने को सही रास्ते पर सिद्ध करने के लिए कितने ही ठोस तर्क क्यों न दिये जाएं संवेगों से हम कितने प्रभावित है इसे कौन झुठला सकता है।

अंतिम परिभाषा अभिव त्ति को ऐसी प्रव त्ति या तैयारी की मानसिक या शारीरिक अवस्था मानती है जो व्यक्ति को किसी एक परिस्थिति में एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करने को प्रेरित करती है। व्यक्ति की किसी विशेष उद्दीपक के प्रति किसी प्रकार की प्रतिक्रिया होगी, यह उसके प्रति बनी अभिव त्ति पर निर्भर करेगा। उदाहरण के लिये कांग्रेस पार्टी से सम्बन्धित सभी उद्धीपकों के प्रति किसी व्यक्ति की एक निश्चित रूप की प्रतिक्रियाएं होंगी अगर उस पार्टी उसमें कोई अभिव त्ति अनुकूल या प्रतिकूल पनप गई है।

इस प्रकार अभिव त्तियां बहुत कुछ सीमा तक किये जाने वाले व्यवहार के लिये उत्तरदायी ठहराई जा सकती है, परन्तु इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि व्यक्ति का व्यवहार सम्पूर्ण रूप में उसकी अभिव त्तियों पर ही निर्भर करता है। व्यक्ति का व्यवहार हर एक स्थिति में उसके व्यक्तित्व की अपनी विशेषताओं और स्थिति जिससे वह व्यवहार कर रहा होता है, दोनों का ही संयुक्त परिणाम होता है। इसलिए ऐसा होना असंगत नहीं कि व्यक्ति का चाहे कितनी ही गहन अभिव त्ति किसी विचार के प्रति रखे, परन्तु परिस्थितिवश वह बिल्कुल विपरीत व्यवहार कर सकता है। ऐसी दशा में अभिव त्तियों के आधार पर व्यवहार की भविष्यवाणी तो नहीं की जा सकती, हां, थोड़ी बहुत अटकलें अवश्य लगाई जा सकती है कि प्रतिकूल या अनुकूल अभिव त्ति के कारण अमुक व्यक्ति की किसी वस्तु या विचार के प्रति इस प्रकार की प्रतिक्रिया होगी।

परिणामस्वरूप अभिव त्ति की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि अभिव त्ति व्यवहार को दिशा प्रदान करने वाली वह अर्जित प्रव त्ति है जो व्यक्ति को किसी विशेष वस्तु या व्यक्तियों के प्रति एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करने को तत्पर करती है बशर्ते कि वातावरण जन्य परिस्थितियों में कोई प्रतिकूल परिवर्तन न हो।

अभिव त्तियों की प्रकृति एवं विशेषतायें
(Nature and Characteristics of Attitudes)

अभिव त्ति को व्यवहार से पूर्व की मनोदैहिक अवस्था या प्रव त्ति के रूप में हमने समझा है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इस प्रकार की अन्य अवस्थाओं या प्रव त्तियों जैसे आदत, रूचियों, शीलगुण (Trait) और मूल अभिप्रेरकों को भी अभिव त्तियों का नाम दिया जाना चाहिये? उत्तर स्पष्टतया नकारात्मक है। अभिव त्ति इन सभी विशेषताओं से अलग प्रव त्ति है। आगे दी गई विशेषताओं से इसकी प्रक ति को समझने में सहायता मिलेगी।

1. अभिव त्तियों में व्यक्ति-वस्तु सम्बन्ध पाया जाता है- (Attitudes have a subject object relationship)- किसी भी विशेष वस्तु, व्यक्ति,समूह, संस्था, मूल्य अथवा मान्यता के प्रति बनी हुई अभिव्यक्ति-इन सभी के प्रति व्यक्ति का कैसा सम्बन्ध

है यह स्पष्ट करती है।

2. अभिव त्तियां अर्जित होती है (Attitudes are accquired or learned)- कोई भी अभिव त्ति जन्मजात नहीं होती, वातावरण में उपलब्ध अनुभवों के द्वारा अर्जित की जाती है। इस आधार पर अभिव त्तियों को मूल अभिप्रेरणाओं से अलग किया जा सकता है। उदाहरण के लिये 'भूख' को ही लीजिये जो जन्मजात प्रव त्ति है। इसे सीखा नहीं जाता जबकि किसी विशेष प्रकार के भोजन के प्रति हमारा झुकाव एक अर्जित प्रव त्ति के नाते अभिव त्ति का स्वरूप ले लेता है।

3. अभिव त्तियां तत्परता की अपेक्षाक त स्थायी अवस्थायें हैं (Attitudes are relatively enduring states of readiness)- किसी वस्तु या प्रक्रिया के प्रति व्यक्ति की स्वाभाविक तत्परता जिसे अभिव त्ति के नाम से जाना जाता है, उसका स्वरूप बहुत कुछ स्थायी होता है। मूल अभिप्रेरणाओं के स्वरूप में इतना स्थायित्व नहीं होता। भूख और कामोत्तेजना (Sexual Tension) सम्बन्धी तत्परता आवश्यकता पूर्ति के साथ समाप्त हो जाती है जबकि पत्नी के प्रति आकर्षण में ढली अभिव त्ति कामेच्छा की संतुष्टि के बाद भी बनी रहती है।

4. अभिव त्तियों में अभिप्रेरणात्मक-प्रभावोत्पादक विशेषता पाई जाती है (Attitudes have motivational affective characteristics)- अभिव त्तियों के विकास में किसी अभिप्रेरणा का हाथ होता है जबकि आदत आदि अन्य प्रव तियों में यह आवश्यक नही। उदाहरण के लिये सीधे हाथ से लिखने की आदत को ही लें तो इसे किसी अभिप्रेरणात्मक प्रभाव से जुड़ा हुआ नही माना जा सकता। दूसरी ओर अपने परिवार, राष्ट्र, धर्म और अंन्य पवित्र एवं प्रतिष्ठित संस्थाओं के प्रति बनी हुई अभिव त्तियों में कोई निश्चित प्रेरणात्मक प्रभाव पूरी तरह स्पष्ट हो सकता है।

5. सम्बंधित उद्दीपनों के अनुरूप ही अभिव त्तियों की संख्या असीमित होती है (Attitudes are as numerous and varied as the stimuli to which they refer)- अभिव त्तियांकों क्षेत्र एवं स्वरूप बहुत विस्त त है। अभिव त्तियां व्यक्ति को किसी विशिष्ट उद्दीपन (Stimulus) के प्रति विशेष प्रतिक्रिया व्यक्त करने को तत्पर करती है। जितने प्रकार के विभिन्न-विभिन्न उद्दीपन हों के उतनी ही विभिन्न अभिव त्तियां होंगी ताकि उपयुक्त प्रतिक्रियायें व्यक्त हो सकें। अभिव त्तियों में परिस्थितिजन्य संशोधन या परिवर्तन भी होता है। इस कारण से भी इनके स्वरूप में बहुत कुछ लचीलापन है। इसलिए यह बात सही है कि अभिव त्तियां उतनी ही असीमित है जितनी कि सम्बंधित उद्दीपन और परिस्थितियां।

6. अभिव त्तियों का प्रसार क्षेत्र पूर्णतः सकारात्मक से पूर्णतः नकारात्मक तक फैला होता है (Attitudes range from strongly positive to strongly negative)- अभिव त्तियों में दिशा और परिणाम (Direction and Magnitude) दोनों ही पाये जाते है। जब कोई व्यक्ति वस्तु या विचार के प्रति आकर्षित होकर उसे पाना चाहता है तो उसकी अभिव त्ति की दिशा सकारात्मक मानी जाती है और अगर वह उससे विकसित हो कर दूर भागना चाहे तो अभिव त्ति की दिशा नकारात्मक कहलाती है। दिशा के साथ साथ अभिव त्ति में भावनाओं की तीव्रता भी जुड़ी रहती है जिससे यह बोध होता है कि प्रव त्ति कितनी अधिक मात्रा में सकारात्मक है या नकारात्मक।

अभिव त्ति का रूचि और अभिरूचि के साथ सम्बन्ध
(Relation of Attitudes with interests and Aptitudes)

अभिव त्ति और रूचि
(Attitudes and Interests)

अभिव त्ति और रूचि दोनों ही व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण अवयव है। इनकी प्रक ति और व्यवहार के फलस्वरूप इनमें पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। रूचि में हमारा सम्बन्ध किसी विशेष चाह से होता है। हम किसी व्यक्ति, विचार या वस्तु के प्रति एक ही दिशा की ओर बढ़ते है, सकारात्मक विचार रखते है जबकि अभिव त्तियों में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों दिशाओं में ही बढ़ाया जा सकता है। हम किसी व्यक्ति, वस्तु या प्रक्रिया के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल दोनों प्रकार के विचार रख सकते है। दूसरे अभिव त्ति का क्षेत्र रूचि की अपेक्षाक त अधिक व्यापक होता है। रूचि में व्यक्ति की प्रतिक्रिया उसी तक सीमित रहती है। जिसमें रूचि होती है। तीसरे, जहां रूचि का प्रयोग अधिकतर व्यावसायिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में होता है वहां अभिव त्ति दिन-प्रतिदिन के व्यवहार में प्रयुक्त होती है।

अभिव त्ति और अभिरूचि
(Attitudes and Aptitudes)

अभिव त्ति व्यक्तित्व की उस विशेषता की ओर इशारा करती है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी वस्तु, व्यक्ति या प्रक्रिया के बारे में अपने विचार रख कर प्रतिक्रियायें व्यक्त करता है जबकि अभिरूचि से अर्थ उन वर्तमान योग्यताओं और क्षमताओं से है जिनके आधार पर यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि व्यक्ति को अगर अवसर मिले तो वह ऐसे कार्य को सीख सकेगा या ठीक प्रकार से कर सकेगा जिससे सम्बन्धित योग्यतायें या क्षमतायें उसमें अभी देखने को मिल रही है। इस तरह से स्पष्ट रूप में एक का सम्बन्ध संपूर्ण व्यक्तित्व से है तो दूसरे का मात्र विशेष योग्यता और कार्यक्षमताओं से। दूसरे अभिरूचिओं का क्षेत्र अत्यंत संकुचित होता है। केवल कुछ अमुक व्यवसायों एवं क्रियाओं के प्रति व्यक्ति की अभिरूचि का मापन किया जाता है जबकि अभिव त्तियों का प्रयोग व्यापक रूप से किसी भी वस्तु, व्यक्ति, विचार या प्रक्रिया के प्रति भावना या प्रतिक्रिया जानने के लिए किया जाता है। तीसरे, अभिव त्ति सदैव अर्जित होती है जबकि अभिरूचि अर्जित एवं जन्मजात दोनों ही प्रकार की होती है।

अभिव त्तियों का निर्माण
(Formation of Attitudes)

अभिव त्तियों का अर्जन कैसे होता है यह जिज्ञासा बहुत पुरानी है। नीचे इस दिशा में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आलॅपार्ट (Allport) के विचारों पर आधारित चार ऐसी परिस्थितियों पर विचार किया जायेगा के द्वारा अभिव त्ति निर्माण होता है।

1. अनुभवों का संगठित होना (Integration of Experiences)- किसी एक वस्तु या विचार के प्रति एकत्रित हो जाने वाले सभी अनुभव मिल कर व्यक्ति की उस व्यक्ति या विचार के प्रति अभिव त्ति जो जन्म देते है। सवर्णो की हरिजनों तथा हिन्दुओं की मुसलमानों के प्रति बनी हुई अभिव त्तियां इसके उदाहरण है।
2. अनुभवों का विभेदीकरण (Differentiation of Experiences)- नये अनुभवों को ग्रहण करने पर पूर्व अर्जित अनुभवों से उनकी तुलना की जाती है। अगर नवीन अनुभव रूचि अनुकूल एवं शाक्तिशाली होते हैं तो वे पुरानी अभिव त्तियों में संशोधन लाते हैं। अथवा बिल्कुल अलग प्रकार की अभिव त्तियों को जन्म देते है।
3. तात्कालिक अनुभव (Trauma or dramatic Experiences)- कुछ अकस्मात् घटने वाली घटनाओं, तथा तात्कालिक विशेष अनुभवों के द्वारा भी अभिव त्तियाँ जन्म लेती है। इनमें अपेक्षाक त अधिक तीव्रता पाई जाती हैं। किसी दुकानदार की हड़ताली विद्यार्थियों द्वारा उसकी दुकान की क्षति पहुँचाने पर विद्यार्थी समाज के प्रति बनी अभिव त्ति इसका एक उदाहरण है।
4. पूर्व निर्मित अभिव त्तियों को ग्रहण करना (The adoption of the available attitudes)- बहुत सारी अभिव त्तियाँ जो बनी बनाई होती है, मित्रों अध्यापकों, माता-पिता तथा समाज के अन्य सदस्यों के सुझाव या अनुकरण पर या अनायास ही संस्कारवश ज्यों की त्यों ग्रहण कर ली जाती है। तमिल भाषी बच्चों की हिन्दी के प्रति जो अभिव त्ति है उसका निर्माण प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर न हो कर इसी रूप में हुआ है। भूत और चुड़ैल सम्बन्धी अभिव त्तियां भी इस रूप में पनपी है।

अभिव त्ति के अवयव या संघटक
(Components of attitudes)

किसी भी अभिव त्ति के मुख्य रूप से निम्न तीन अवयव या संघटक होते है।

(i) ज्ञानात्मक संघटक या अवयव (Cognitive Component)

(ii) भावात्मक संघटक या अवयव (Attective Component)

(iii) क्रियात्मक या व्यावहारात्मक संघटक या अवयव (Conative Component)

ज्ञानात्मक संघटक या अवयव
(Cognitive Component)

अभिव त्ति का यह पहला मुख्य अवयव है जो ज्ञान और बोध पक्ष से जुड़ा है। हमारी किसी वस्तु, व्यक्ति या संस्था के प्रति वैसी

ही अभिव त्ति होगी जैसा कि हमें उसके बारे में ज्ञान है। इस ज्ञान के आधार पर ही हमारी उसके प्रति धारणायें बनेगी, संप्रत्यय उभरेगा तथा विश्वास जमेगा। यही बातें आगे जाकर उसके प्रति सकारात्मक या नकारात्मक अभिव त्ति को जन्म देंगी। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (R.S.S) के बारे में किसी को जितना ज्ञान एवं बोध है उसको लेकर ही वह उसके बारे में धारणायें बनायेगा तथा एक विशेष प्रकार का विश्वास या अविश्वास उसमें जन्म लेगा और फिर वैसा ही उसके प्रति उसमें अभिव त्ति का विकास होगा। कौन विशेष राजनैतिक दल कितनी धर्म निरपेक्ष, जातिवादी, सामन्तवादी या स्वच्छ सरकार देने में सक्षम है यह उनके प्रति हमारी जानकारी तथा ज्ञान और उसके फलस्वरूप बनी धारणाओं तथा विश्वास पर ही आधारित होते है।

भावात्मक संघटक या अवयव
(Attective Component)

अभिव त्ति का यह दूसरा अवयव अभिव त्ति जन्य व्यवहार के भावना पक्ष से जुड़ा होता है। हम किसी वस्तु व्यक्ति या संस्था से भावनात्मक रूप से जिस रूप में जुड़े होते है उसी रूप में हमारी उसके प्रति अभिव त्ति होती है। यह भावनात्मक अवयव एक तरह से हमारे अभिव त्ति जन्य व्यवहार को अभिप्रेरणा प्रदान करने की भूमिका निभाता है। हमारी अभिव त्ति की तीव्रता या सामान्यता इसी संघटक द्वारा निर्धारित होती है। उदाहरण के लिये अगर कोई व्यक्ति गाँधी जी से भावानात्मक रूप से जुड़ा है तो किसी के द्वारा गाँधी की आलोचना या बुरे बर्ताव को वह बिल्कुल पसन्द नहीं करेगा। किसी के ऐसा करने से उसके दिल को काफ़ी ठेस लगेगी तथा वह उत्तेजित हो जायेगा। इसी तरह धर्म निरपेक्षता का ढोल पीट कर जब राजनैतिक दल या व्यक्ति भारतीय जनता पार्टी के विरूद्ध एक जुट होते हैं तो यह बात भावनात्मक रूप से जुड़े हुये किसी व्यक्ति को उत्तेजित कर सकती हैं और यही उत्तेजना उसमें दूसरे दलों या व्यक्तियों के प्रति एक विशेष प्रकार की अभिव ति को अपनाती हैं।

क्रियात्मक या व्यावहारात्मक संघटक या अवयव
(Conative Component)

अभिव त्ति के इस संघटक का सम्बंध किसी वस्तु व्यक्ति या संस्था के प्रति बनाये गये विचार तथा भावनात्मक अनुभूति को क्रियात्मक रूप देने से है। यही पक्ष व्यवहार की क्रियात्मक अभिव्यक्ति में सहायक होता है। उदाहरण के लिये अगर किसी व्यक्ति का गाँधी जी के प्रति सकारात्मक धारणा और उनके जीवन दर्शन के प्रति आस्था और अनुकूल विचार है और वह उनसे भावनात्मक रूप से जुड़ा है, तो वह उनके प्रति बनायी गयी सकारात्मक अभिव त्ति को अवश्य ही क्रियात्मक तथा व्यवहारात्मक रूप से अभिव्यक्त करेगा। गाँधीजी के बारे में कुछ उल्टा सीधा कहने वाले व्यक्ति से वह रोष प्रकट करेगा, बहस करेगा तथा अधिक उत्तेजित होने पर मारपीट करने को उतारू हो जायेगा।

इस तरह अभिव त्ति के तीनो अवयव या संघटक व्यवहार में ज्ञान, भाव एवं कर्म पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हुये व्यक्ति के अभिव त्यात्मक व्यवहार को पूरी तरह हमारे सामने ला देते है। इन तीनों अवयवों या संघटकों के रूप में कोई भी व्यक्ति किसी वस्तु, व्यक्ति या संस्था के बारे में जो भी सोचता है (ज्ञानात्मक अवयव), अनुभव करता है (भावात्मक अवयव) और अपनी जिस रूप में प्रतिक्रिया (क्रियात्मक या व्यावहारात्मक अवयव) व्यक्त करता है यह सब उसकी उनके प्रति बनी अभिव त्तियों को ही प्रकट करता है।

रूढियाँ
(Stereo-types)

अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition)

रूढ़ि को आँग्लभाषा में स्टीरियोटाईप (Stereo-types) कहा जाता है। इस शब्द का अर्थ है एक तख्ती (Plate) जो साँचे का कार्य करती हैं। जैसे साँचे में ढाल कर हम एक जैसी बहुत सारी वस्तुओं का निर्माण कर सकते है वैसे ही रूढ़ि रूपी साँचे में ढलकर हमें सभी एक वर्ग के व्यक्ति, वस्तुयें तथा स्थान आदि एक जैसे ही दिखते है। रूढ़ि इस तरह हमारे मन और मस्तिष्क में निहित वे वैचारिक या भावनात्मक साँचे है जिनमें ढलकर किसी समूह विशेष के व्यक्ति, वस्तुयें या स्थानों के प्रति एक जैसे

विश्वास व धारणाओं को जन्म मिलता है। जैसे-

(i) पहाड़ी लोग परिश्रमी होते है।

(ii) बिहारी आलसी तथा कमजोर होते है।

(iii) बनिये कंजूस होते है।

(iv) जाट सिख आक्रामक होते है।

(v) गंजी खेपड़ी बाले सम द्ध एवं धनी होते है।

(iv) लड़कियाँ बातूनी होती है।

(iiv) स्त्रियों के पेट में कोई बात नहीं पचती।

(iiiv) कायस्थ लोग झूठे और चालाक होते है।

(ix) हिन्दू काफिर होते है।

(x) मुसलमान फिरकापरस्त होते है।

(xi) चीनी धोखेबाज होते है।

(xii) रेगिस्तानी इलाकों में पानी नहीं मिलता।

(xiii) पहाड़ी पर सदैव ठंडा मौसम रहता है।

(xiv) हरे रंग के फल खट्टे होते है और लाल रंग के मीठे।

(xv) आसाम और बंगाल में जादूगरनियाँ पाई जाती है।

(xvi) भैंसवाल (हरियाणा का एक स्थान) के लोग मूर्ख होते है।

(xvii) चश्मा लगाने वाले व्यक्ति अध्ययनशील होते है।

(xviii) बड़ें पैरों वाले व्यक्ति गँवार होते है।

ऊपर हमने कुछ सामान्य रूप से प्रचलित रूढ़ियों का जिक्र किया है जो भारतीय जनमानस में देखने को मिलती है। इन उदाहरणों के आधार पर हमें रूढ़ि शब्द के अर्थ एवं प्रयोग को समझने में सहायता मिलती है और हम रूढ़ि को किसी समूह या वर्ग में शामिल व्यक्ति या वस्तुओं के प्रति बनायी गई अति सामान्यीक त धारणाओं या विश्वासों के रूप में परिभाषित करने का प्रयत्न कर सकते है। परिभाषा की द ष्टि से कुछ अन्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषायें भी विचारने योग्य है।

1. किम्बल यंग (Kimble Young)- "रूढि की सबसे अच्छी परिभाषा इस रूप में दी जा सकती है कि यदि एक गलत ढंग से वर्गीक त किया हुआ ऐसा संप्रत्यय है जिसके प्रति सामान्यता हमारी गहरी पसंद-नापसंद, स्वीक ति-अस्वीक ति तथा तीव्र संवेगात्मक अनुभूति जुड़ी रहती है।"

(Stereo-type in best defined as a false classificatory concept to which as a rule, strong emotional feeling, tone of like or dislike, approvel or disapproved is attached)

2. सेकार्ड एवं बैकमैन (Secord and backman)- रूढ़िवद्धता श्रेणी या वर्गो का एक ऐसा अतिरंजित रूप है जिसकी तीन विशेषतायें होती हैं-

   (iv) लोग एक वर्ग के व्यक्तियों की किन्हीं निश्चित गुण-धर्मो या विशेषताओं के आधार पर पहिचान बनाते हैं,

   (iv) उस वर्ग में शामिल हो सकने वाले सभी व्यक्तियों में ये गुण धर्म या विशेषतायें अवश्य होगीं इस विचार से वे सहमत होते है,

   (iv) वे इन गुण धर्म और विशेषताओं को उस वर्ग से सम्बंधित किसी भी व्यक्ति पर थोपने का प्रयत्न करते हैं।

(Stereotyping is an exaggerated form of typification that has three characteristics-people identify a category of

persons according to certain attributes, people agree in attributing sets of traits or characteristics to the category of persons, and people attribute the characteristics to any person belonging to that category)

अब अगर इन दोनों परिभाषाओं का विश्लेषण हम पहले दिये गये रूढ़ि सम्बंधी 18 उदाहरण कथनों के संदर्भ में करना चाहे तो रूढ़ि शब्द का काफी स्पष्ट चित्र हमारे सामने आ सकता है।

जब हम कहते है कि बिहारी आलसी या निकम्मे होते है तो हमारी यह धारणा और संप्रत्यय गलत ढंग से वर्गीक त किया हुआ ही माना जायेगा। हो सकता है कि हमारा यह अनुभव किसी एक या दो बिहारियों के साथ विशेष परिस्थितियों में रहा हो परन्तु उनके आधार पर इतनी अतिरंजिता (Exagageration) पूर्ण सामान्यीकरण करना भी ठीक नहीं है कि सभी बिहारी ऐसे ही होते है। बिहारी तो डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद भी थे परन्तु वे तो किसी भी हालत में कामचोर और आलसी नहीं थे। इसी प्रकार सभी सेठों और बनियों को कंजूस कहना कहाँ तक उचित है जबकि हमारे सामने राणाप्रताप के युग में भीमाशाह तथा आज के युग में बिरला बंधुओं की दानशीलता स्पष्ट नजर आती है। अतः इस तरह कुछ व्यक्तियों, स्थानों या वस्तु विशेषों में पायी जाने वाली विशेषताओं या उनसे हमें होने वाले पूर्व अनुभवों के आधार पर हम उनके सारे समूह, वर्ग या जाति को उन गुणों या विशेषताओं से युक्त नहीं मान सकते। इस तरह दूसरी परिभाषा द्वारा रूढ़ियों के निर्माण में जो तीन चरण दिये गये है उनमें निहित कमियाँ हमें स्पष्ट संकेत देती है कि वैचारिक चिन्तन और निष्कर्ष निकालने का यह कितना गलत ढंग है और परिणामस्वरूप रूढ़ियों के रूप में हमें जो सामान्यीक त विचार या निहित विश्वास मिलते है वे प्रायः अपने आप में पूर्ण नकारात्मक, विवेकहीन तथा मिथ्या ही होते है।

रूढ़ियां की विशेषतायें
(Characteristics of Stereo-types)

रूढ़ियों की प्रक ति एवं विशेषताओं के संदर्भ में मुख्य रूप से निम्न बातें कहीं जा सकती है ।

1. रूढ़ियाँ जन्मजात नहीं होती उनकी गिनती सदैव ही अर्जित व्यवहार (Acquired behaviour) में होती है।
2. रूढ़ियाँ एक प्रकार से हमारे मन और मस्तिष्क में किसी एक फर्म या समूह के व्यक्तियों या वस्तुओं के प्रति बनी हुई अति सामान्यीक त प्रतिमाओं (Over generalized images) का प्रतिनिधित्व करती है।
3. रूढ़ियों का विकास किन्हीं विशेष परिस्थितियों में बनी धारणाओं के आधार पर होता है। उदाहरण के लिये जब हम अपने अनुभवों में कुछ पढ़ाकू या अध्ययनशील व्यक्तियों को चश्मा लगाते हुये पाते है तो सभी चश्में लगाने वालों को अध्ययनशील मान बैठने की रूढ़ि का निर्माण कर लेते है।
4. रूढियाँ किसी भी समूह या समाज के व्यक्तियों में दूसरे समूह या समाज के व्यक्तियों के प्रति बनी हुई निश्चित धारणाओं तथा विश्वासों का प्रतिनिधित्व करती है। जैसे भारतीय नारियों की अपने पतियों के प्रति यह धारणा कि "पति परमेश्वर होते है" रूढ़ियों की इस प्रकार की विशेषता को ही प्रकट करती है।
5. रूढ़ियाँ हमें व्यक्तियों के बीच में क्या विभिन्नतायें है इस ओर से बिल्कुल अन्धा कर देती है। हम किसी वर्ग या समूह के सभी व्यक्तियों को उनकी वैयक्तिकता की अनदेखी कर उनके समूह या वर्ग के प्रति ब१नाई गई अपनी रूढ़िबद्ध विचारों के आधार पर ही मापते है। किसी चीनी का हमारे साथ कैसा भी अच्छा व्यवहार क्यों न हो हम उसे सदैव ही चीनियों के प्रति बनाई गई नकारात्मक रूढ़ि (चीनी दग़ावाज ओर खतरनाक होते है) के संदर्भ में ही देखते है।
6. अपनी रूढ़ियों के माध्यम से हम दुनिया को अपने ही रंग के चश्में से देखते हैं। यह एक ही प्रकार के व्यवहार के लिये अपनी रूढ़िवद्धता के कारण अलग-अलग द ष्टिकोण तथा नजरिया अपनाते है। अगर हमारा देश अणुशक्ति को हथियार के लिये आवश्यक मानकर ठीक समझते है जबकि कोई पड़ोसी देश ऐसा करता है तो हम उसे आक्रामक, शांति का दुश्मन तथा युद्ध करने पर उतारू ऐसी संज्ञायें दे डालती है।
7. रूढ़ियाँ अपेक्षाक त स्थायी और स्थिर (Permanent and Stable) ही होती है। इनमें परिवर्तन लाना कुछ कठिन ही होता है। चाहे हमारे व्यक्तिगत अनुभव कुछ अलग भी हों तो भी ये स्थायी ही रहने को तत्पर रहती है। जैसे जो रूढियाँ हिन्दुओं की मुसलमानों या मुसलमानों की हिन्दुओं के प्रति बन गई है उनमें बदलाव आना मुश्किल ही पड़ता है। आपस

में घनिष्ठता और स्नेह सम्बंध होने पर भी वे एक स्नेह सम्बंध होने पर भी वे एक दूसरे को शक के नजरिये से ही देखते है और उनकी रूढ़ियों "मुसलमान फिरकापरस्त तथा संप्रदायवादी है" तथा "हिन्दु काफिर है" में कोई बदलाव नहीं आता।

8. रूढ़ियों में कभी परिवर्तन आ ही नहीं सकता ऐसी भी बात नहीं है। हिन्दी चीनी भाई-भाई के नारे में व्यक्त चीनियों के प्रति बनी हमारी रूढ़ि, उनके द्वारा अचानक हमारे देश में हमला करने और शत्रुता बरतने के बाद एकदम सकारात्मक द ष्टिकोण की जगह नकारात्मक द ष्टिकोण वाले स्वरूप में बदल गई है।

9. किन्हीं परिस्थितियों में कुछ अपवादों को छोड़कर सामान्य तथा सभी रूढियाँ मिथ्या और असत्य ही सिद्ध होती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ऑलपोर्ट ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा है कि यद्धपि ऊपर से देखने पर रूढ़ियों में सच्चाई के कण नजर आते हैं परन्तु उनकी सत्यता उतनी ही होती है जैसे किसी अजनबी के बारे में बनाया गया पहला मोटा अनुमान।

10. एक ही प्रकार की रूढ़ियों में दो रूप सकारात्मक तथा नकारात्मक हो सकते है। जैसे हममें से कुछ आधुनिक पीढ़ी को चुस्त तथा बुद्धिमान मानते है जबकि कुछ की धारणा यह है कि वे सुस्त, कामचोर तथा बुद्धिहीन बनते जा रहे है।

रूढियाँ, अभिव त्तियाँ तथा अन्तर्वैयक्तिक सम्बंध
(Stereo-types, Attitudes and Interpersonal Relationships)

रूढ़ियाँ, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, हमारे किसी वस्तुओं या व्यक्तियों के समूहों या वर्गो के प्रति बनी हुई अति सामान्यीक त (Over generalized) तथा अतिरंजित (Exaggerated) धारणाओं (concepts) ताकि विश्वासों (Belief) का प्रतिनिधित्व करते है। अभिव त्तियों के निर्माण में, चाहे वे सकारात्मक हों या नकारात्मक, इन रूढ़ियों से पर्याप्त आधार और दिशा निर्देशन हमें प्राप्त होते है जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट हो सकता है।

रूढ़ियों के आधार पर जो धारणायें तथा विश्वास किन्हीं व्यक्ति या वस्तु समूहों के प्रति हममें पाया जाता है। वह हमारे विचार तथा भावनाओं को अपने रंग में रंगने में काफी सीमा तक सफल सिद्ध होता है। रूढ़ियों के प्रति हममें अन्धा विश्वास होता है हम उन्हें बिना सोचे समझे तथा बिना वैयक्तिक विभिन्नताओं का ध्यान रखे आँखें बन्दकर स्वीकार करते हैं और फलस्वरूप हमारे विचार, भावनाओं तथा क्रियात्मक व्यवहार में इनकी छाप स्पष्ट या द ष्टिगोचर होती है। एक अभिव त्ति के निर्माण के लिये आवश्यक तीनों अवयव- ज्ञानात्मक, भावानात्मक एवं क्रियात्मक उस वस्तु या व्यक्ति के प्रति बनी रूढ़ियों में सहज ही प्राप्त हो जाते है। मुसलमानों के प्रति बनी हमारी नकारात्मक रूढियाँ हमें बरवस ही उनके प्रति नकारात्मक अभिव त्ति बनाने को अभिप्रेरित करती है। हम जो कुछ भी उनके बारे में सोचते या अनुभव करते हैं वह हमारी उस पूर्व सूचना के आधार ही हम प्राप्त करते है जिन्हें रूढ़ियों के रूप में हमने अपने मन मंदिर में प्रतिष्ठित कर रखा है। रूढ़ियों के रूप में प्राप्त करना चाहते है और न उस पर विश्वास करने को तैयार होते है अतः परिणामस्वरूप हमारी अभिव त्ति उस व्यक्ति या वस्तु के प्रति वैसी ही बनती है जैसी कि रूढ़ियों द्वारा निर्धारित एवं निर्देशित की जाती है। हम कभी यह मानने को तैयार नहीं होते कि हमारी रूढ़ियाँ सही तथ्यों तथा सही विचारयुक्त चिन्तन पर आधारित नहीं होने के कारण मिथ्या और भ्रम मूलक है। हमारी अभिव त्तियाँ वही होती है जो रूढियाँ निर्धारित करती हैं और इस रूप में उनके गलत होने की सम्भावना भी अधिक रहती है।

रूढ़ियों के रंग में रंगी हुई इन गलत अभिव त्तियों को अपनाने से हमारे व्यवहार को गलत दिशा मिलती है और इसके परिणामस्वरूप अन्तर्वैयक्तिक सम्बंधों को ठीक प्रकार बनाये रखने में परेशानी खड़ी हो जाती है। रूढ़ियाँ गलत सूचनायें तथा गलत विश्वास जमाकर हमें गलत व्यवहार करने को मजबूर करती हैं। ये हमारे व्यवहार को सहज, विवेकपूर्ण तथा परिस्थितिजन्य नहीं बनने देती और इसलिये सम्बंधों में मधुरता की जगह कटुता तथा स्वाभाविकता की जगह बनावटीपन आ जाता है। जट सिक्ख आक्रामक तथा झगड़ालू होते है इस प्रकार की रूढ़ि का शिकार कोई भी व्यक्ति किसी जाट सिख पड़ोसी या सहकर्मी परिवार के साथ सामान्य अन्तर्वैयक्तिक सम्बंध बनाने से कतरा सकता है। इसी प्रकार हिन्दू या सिक्ख परिवार के व्यक्तियों का मुस्लिम परिवारों के साथ सामान्य सम्बंध बनाये रखने में भी एक दूसरे के प्रति बनी रूढ़ियाँ ही आड़े आती रहती है। इसलिये अन्तर्वैयक्तिक सम्बंधों को सही तथा सामान्य बनाये रखने के लिये हम सभी से यही आशा की जाती है कि हम नकारात्मक रूढ़ियों को गले लगाना बन्द करें।

पूर्वाग्रह
(Prejudices)

रूढ़ियों की भाँति पूर्वाग्रह भी हमारी अभिव त्तियों एवं व्यवहार को अपने रंग में रंगने का प्रयत्न करते हुये अंतः वैयक्तिक सम्बंधों की सामान्यता तथा मधुरता में बिगाड़ पैदा कर सकते है। अतः इस द ष्टि से हमें इनसे अच्छी तरह परिचित होना काफी आवश्यक है। नीचे की पंक्तियों में हम यही परिचय प्राप्त करने जा रहे है।

पूर्वाग्रहों का अर्थ एवं प्रक ति
(Meaning and Nature of Prejudices)-

पूर्वाग्रह का संधि विच्छेद है पूर्व + आग्रह यानी ऐसा आग्रह जिद् या हठ पूर्ण धारणा या विचार जो किसी व्यवहार को करने से पहले ही एक व्यक्ति द्वारा किसी विशेषज्ञ वस्तु या व्यक्ति समूहों के बारे में बना लिया जाता है। अगर पूर्वाग्रह के अंग्रेजी पर्याय Prejudice पर ध्यान दिया जाय जो शब्दोत्पत्ति की द ष्टि से Prejucdice शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द Judicium से हुई है। लैटिन भाषा के इस शब्द का अग्रेंजी में अर्थ होता है Before judgement यानी मुकदमा सुने बिना ही पहले से फैसला कायम कर लेना, दूसरों की बात सुने बिना ही अपनी राय बना लेना, तथ्यों के प्रत्यक्ष ज्ञान या बीती न होने पर भी पहले से ही किसी निर्णय पर पहुँच जाना आदि-आदि। सामाजिक परिवेश के संदर्भ में पूर्वाग्रहों के उदाहरण के रूप में निम्न परिस्थितिजन्य बातों को रखा जा सकता है।

(i) कोई व्यक्ति इस पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो सकता है कि अधिक सुन्दर स्त्रियों के साथ वैवाहिक जीवन की पटरी ठीक से नहीं बैठती।

(i) किसी में इस प्रकार का पूर्वाग्रह हो सकता है कि स्टेज पर शो करने वाली या गाने बजाने में रूचि रखने वाली लड़कियों का चरित्र ठीक नहीं होता।

(i) हरिजनों से सवर्णो को ज्यादा मिलना-जुलना नहीं चाहिये क्योंकि इससे वे सिर पर चढ़ जाते हैं कोई व्यक्ति या समूह इस पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो सकता है।

(i) ग्रामीण छात्र गँवार तथा असभ्य होते है उनकी बौद्धिक क्षमता भी कम होती है कुछ लोग इस तरह का पूर्वाग्रह रख सकते है।

(i) ग्रामीण या आदिवासी क्षेत्रों से सम्बंधित लड़कियाँ ही अच्छी एथीलीट बन सकती है इस तरह का पूर्वाग्रह भी किसी को हो सकता है।

इसी तरह व्यक्तियों के शिक्षित या अशिक्षित होने, काले या गोरे होने, मोटे या दुबले होने, सिर पर कम या अधिक बाल होने, अपनी जाति या दूसरी जाति का होने, संधर्मी या विधर्मी होने, अपने प्रान्त का या दूसरे प्रान्त का होने, नौकरी पेशा या घरेलू महिला होने इत्यादि परिस्थितियों को लेकर व्यक्तियों द्वारा अपने-अपने ढंग से उनके प्रति अलग-अलग पूर्वाग्रहों का निर्माण किया जा सकता है। वे इन व्यक्तियों या व्यक्ति-समूहों के बारे में अब जो भी अनुभव करते है सोचते है या उनके प्रति जैसा भी व्यवहार करते है वह सब कुछ उनके इनके प्रति बनाये गये पूर्वाग्रहों पर बहुत कुछ सीमा तक निर्भर करता है।

पूर्वाग्रहों के अर्थ एवं प्रक ति को और अच्छी तरह समझने में कुछ निम्न जानी मानी परिभाषायें भी हमें उचित सहायता कर सकती है।

1. ऐश्मोर (Ashmore)- "पूर्वाग्रह एक सामाजिक रूप से परिभाषित समूह या उसके किसी सदस्य के प्रति बनी नकारात्मक अभिव त्ति है"।

   (Prejudice is negative attitude toward a socially defined group and toward any person perceived to be a member of that group)

2. क्रेच एवं अन्य (Kretch etc.)- "पूर्वाग्रह किसी वस्तु के प्रति ऐसी प्रतिकूल अभिव त्ति होती है जो अपने आप में बहुत अधिक रूढ़िवद्धता तथा भावनात्मक आवेश लिये होती है और जिसे विरोधी सूचना के द्वारा आसानी से बदला नहीं जा सकता।

(Prejudice is an attitude that predisposes a person to think, perceive, feel and act in favourable or unfavourable way towards a group or its individual members)

अगर उपरोक्त तीनों परिभाषाओं का विशलेषण करके देखा जाये तो पूर्वाग्रहों की निम्न प्रमुख विशेषतायें हमारे सामने उभर कर आती है।

1. पूर्वाग्रह एक विशेष प्रकार की मनोव त्ति या अभिव त्तियाँ हैं जो हमारे द्वारा किसी वस्तु या व्यक्तियों के समूह या उनके सदस्यों के प्रति बनाई जाती है।
2. इनमें काफी रूढ़िवद्धता (stereotyping) पाई जाती है।
3. ये व्यक्ति को संवेगात्मक रूप से काफी उग्र बना डालती है और व्यक्ति भावनाओं के प्रवाह में बहकर पूर्वाग्रह निर्देशित व्यवहार करने को मजबूर सा रहता है।
4. पूर्वाग्रहों में आग्रह की मात्रा इतनी अधिक होती है कि इससे निर्देशित व्यवहार एवं बातों के अतिरिक्त व्यक्ति कुछ अन्य न तो सोच सकता है न अनुभव कर सकता है। यहाँ तक कि बीच में अगर कोई अनुभव भी हो अथवा कोई सूचना ऐसी प्राप्त हो जो उसकी पूर्वाग्रह धारणा के विपरीत हो तो भी वह अपने पूर्वाग्रह निर्देशित व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं लाता।
5. पूर्वाग्रह निर्देशित व्यवहार में प्रत्यक्ष में जो कुछ अब घट रहा है उसके आधार पर अनुक्रिया नहीं होती बल्कि पूर्वाग्रहों के रूप में जो धारणा पहले बन चुकी है जो निर्णय या निष्कर्ष पहले मन में विराजमान हो चुका है उसी पर आरूढ़ रहने की प्रव त्ति पाई जाती है।
6. अधिकतर वस्तुओं तथा व्यक्तियों या उनके समूहों के विपक्ष में होने के कारण पूर्वाग्रहों की गिनती प्रायः प्रतिकूल अभिव त्तियों के रूप में ही की जाती है जैसा कि पहली दी परिभाषाओं में संकेत दिया गया है। परन्तु सदैव ऐसा होना आवश्यक नहीं है। हम वस्तुओं तथा व्यक्ति विशेष या उनके समहों के प्रति सकारात्मक दुष्टिकोण तथा अनुकूल अभिव त्ति (जो उनके पक्ष में होती है) भी अपना सकते हैं और इस तरह हमारे प्रतिकूल पूर्वाग्रह जहाँ किसी के साथ पक्षपात कर उसे नुकसान पहुँचा सकते है तो वहाँ अनुकूल पूर्वाग्रहों द्वारा उन्हें दूसरों की तुलना में नाजायज लाभ भी पहुँचा सकते है। उदाहरण के लिये हम जो दूसरी जाति के है उसके प्रति अभिव त्ति अपनाते है तथा अपनी जाति वालों के साथ अनूकूल अभिव त्ति अपनाते है इस तरह ऐसी अभिव त्तियों से युक्त पूर्वाग्रहों में प्रतिकूल तथा अनुकूल दोनों दिशायें ही समान रूप से पायी जाती हैं और वे हमारे व्यवहार को दोनों दिशाओं में ही अभिप्रेरित कर सकते हैं।
7. पूर्वाग्रहों का अन्तर्वैयक्तिक तथा सामाजिक सम्बंधों को दिशा प्रदान करने में बड़ा महत्वपूर्ण हाथ रहता है। पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होकर जब पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाता है तो उसके परिणामस्वरूप समाज के सदस्यों में पारस्परिक वैमनस्य, जाति तथा वर्ग संघर्ष को जन्म मिलता है कुठायें तथा निराशायें पनपती है विद्रोह तथा असामाजिकता उभर कर सामने आती है।
8. पूर्वाग्रह पूर्ण रूप से अर्जित होते है। इनकी उत्पत्ति और विकास हमारे अपने परिवेश में ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अनुभवों के माध्यम से बिना किसी विवेक तथा तर्क के आधार पर होता है।

इस तरह अगर पूर्वाग्रहों के अर्थ एवं प्रक तिजन्य विशेषताओं को ध्यान में रखकर चला जाय तो हम सार रूप में पूर्वाग्रह को कुछ निम्न शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं।

पूर्वाग्रहों से अभिप्राय मात्र अपने निजी अनुभवों (प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष) के माध्यम से विकसित होने वाले उन अविवेकपूर्ण मनोव त्तियों या अभिव त्तियों से होता है जो वस्तुओं, व्यक्तियों या उनके समूहों के प्रति हमें पक्षपातपूर्ण ढ़ंग से व्यवहार करने को प्ररित करती है।

पूर्वाग्रहों के स्त्रोत
(Sources of Prejudices)

पूर्वाग्रह जन्मजात विशेषतायें न होकर अर्जित संपत्तियाँ है। हम अपने वातावरण में उपस्थित विभिन्न परिस्थितियों तथा कारकों

के सम्मलित प्रभाव से ही इन्हें धारण करते है। इन्हें जन्म और पोषण देने वाले स्त्रोतो को हम मुख्य रूप से तीन भागों में बाँट कर समझ सकते है।

1. **सामाजीकरण प्रक्रिया** (The process of socialization)- बालक स्वभाव से काफी निश्छल एवं अबोध होते है। उनमें पूर्वाग्रह सम्बंधी व्यक्तित्व दोषों का जन्म और पोषण समाजीकरण से सम्बंधित विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से ही होता है। सामाजिकता का यह पाठ बालक अपने माता-पिता, घर के सदस्यों, रिश्तेदारों, साथियों, पड़ोसियों तथा अन्य मिलने-जुलने वालों से प्रारम्भ करते है। धीरे-धीरे विद्यालय का परिवेश भी इसमें शामिल हो जाता है और समाज के अन्य समूह जैसे धार्मिक संस्थान, सामाजिक संस्थायें, पत्र-पत्रिकायें; जनसंचार तथा जनसंपर्क के साधनों की भूमिका भी उनकी मनोव त्तियों तथा अभिव त्तियों के निर्माण में अपना-अपना खेल खेलने लगती है। यहाँ इन सब सामाजीकरण के स्त्रोत तथा एजेन्सियों के माध्यम से उसे विविध प्रकार के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होते है जिनमें औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप से उसे व्यवहारगत गुणों के अर्जन के अवसर मिलते है और परिणामस्वरूप उसमें वस्तुओं तथा व्यक्तियों या उनके समूहों के प्रति अनुकूल एवं प्रतिकूल पूर्वाग्रहों की उत्पत्ति तथा उनका विकास होता रहता है। ऐसा होना नितान्त स्वभाविक भी है। बालकों के कोमल अबोध निष्पाप तथा निष्पक्ष मनों में शुरू से ही ऐसी बातें उनके सामाजिक एवं सांस्क तिक परिवेश से जुड़े हुये विभिन्न तत्वों एवं परिस्थितियों द्वारा सुझाई जाती है जिससे उनमें जातिवाद, संप्रदायवाद, भाषावाद, प्रान्तीयता, क्षेत्रीयता से सम्बंधित पूर्वाग्रहों की उत्पत्ति एवं विकास हो सके। हमारे अपने भारतीय समाज में इस प्रकार के पूर्वाग्रहों की अतिशयता का कारण हमारे समाज और संस्क ति में घुले हुये ऐसे वैचारिक जहर ही हैं जो शुरू से ही बालकों को जीवन घुट्टी की तरह पिलाये जाते है। इन पूर्वाग्रहों रूपी विचारधारा के बीजों को समय-समय पर अनुभवों के माध्यम से अनुकूल भूमि एवं पोषण सामग्री भी प्राप्त होती रहती है। शंका तथा अविश्वास की विषवेल को बढ़ते हुए देर नहीं लगती, जरा सी चिनगारी ही दावानल का कार्य करती हैं। किसी हरिजन बालक को सवर्ण अध्यापक या साथियों द्वारा कोई भी जरा सा अच्छा न लगने वाला व्यवहार सवर्णो के प्रति बने उसके पूर्वाग्रहों को और भी गहरा बना डालता हैं।

2- **व्यक्तित्व संरचना एवं विशेषतायें** (Personality structure and characteristics)- यह बात भी ठीक है कि संगति या परिवेशजन्य परिस्थितियों के प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं रहता। काजल की कोठरी में कोई भी सायने से सायने आदमी जाये और कैसे भी बचने का प्रयास कर वह कालिख से बच नहीं सकता। परन्तु दूसरी ओर ऐसे स्वभाव तथा प्रक ति के व्यक्ति भी होते है जिन पर बुराईयों का प्रभाव दूसरों की अपेक्षा काफी कम पड़ता है। "चंदन विष व्यापत नहीं लपटे रहते भुजंग"। विषैले सर्पो के साथ रहकर भी चन्दन में उनके गुण नहीं आतें। जैसा स्वभाव व व्यक्तित्व विशेषतायें होती है, वैसी ही बातें हमें अच्छी लगने के कारण हम पर ज्यादा प्रभाव डालती है। मनौवैज्ञानिक एवं सामाजिक अनुसंधानों के निष्कर्षो के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि कुछ व्यक्तियों के व्यक्तित्व की संरचना तथा व्यक्तित्व विशेषतायें ही ऐसी होती है जो उन्हें नकारात्मक अभिव त्तियों तथा पूर्वाग्रहों को ग्रहण करने की ओर प्रेरित करें। ऐसी व्यक्तित्व संरचना तथा विशेषताओं में प्रमुख रूप से निम्न का उल्लेख किया जा सकता है।

अंधविश्वासी होना, असहनशीलता तथा अधैर्य से युक्त होना, सत्ता के प्रति विनम्रता, अधिक आज्ञापालक या अनुशीलता, संवेगात्मक अस्थिरता, असुरक्षित की भावना से ग्रस्त, निराशा तथा चिन्ता युक्त, रूढ़ि और परम्परावादी, अधिक आक्रामकता तथा एकांतप्रिय एवं असामाजिक जीवन बिताने वाले।

इस प्रकार के व्यक्तित्व गुणों एवं विशेषताओं से युक्त व्यक्तियों में पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होने की संभावना अन्यों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगना चाहिये कि ऐसे गुणों युक्त व्यक्ति ही पूर्वाग्रहों के शिकार होते हैं, अन्य नहीं।

3- अंतर्समूह वैमनस्य एवं संघर्ष (Intergroup rivalaries and conflicts)- समूह के सदस्यों में समूह के प्रति उत्पन्न भक्तिभाव तथा अपनापन के कारण ऐसे विचार तथा भाव स्वतः ही उत्पन्न हो जाते है कि उनका अपना समूह तथा उसके द्वारा किये गये कार्य सभी तरह से ठीक है जबकि अन्य समूह तथा उनके द्वारा किये गये कार्य निम्न स्तर के हैं या अनूचित है। एक उपश्रेणी (Section) के बालकों की दूसरी उपश्रेणियों (Sections), एक विद्यालय के बालकों की दूसरे विद्यालयों, एक जाति या धर्म के अनुयायियों की दूसरी जाति या धर्म के अनुयायियों के प्रति ऐसी धारणायें

और विश्वास बनना नितान्त स्वाभाविक ही है। क्योंकि सदस्यों की अपने समूहों के प्रति भक्ति तथा अपनापन दूसरों के प्रति वैमनस्य और शत्रुतापूर्ण द ष्टिकोण को किसी न किसी रूप में जन्म दे ही देता है। प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियाँ तथा प्राप्त संसाधनों की सीमितता इस वैमनस्त, अलगाव तथा विरोधी भावनाओं को भड़काने में आग में घी डालने की भाँति कार्य करती है। एक प्रान्त में रहने वाले व्यक्तियों को अब यह बात बहुत चुभती है कि दूसरे प्रान्त के निवासी नौकरियों पर विराजमान हो जायें अथवा आर्थिक संसाधनों पर कब्जा जमा लें और फलस्वरूप आसामवासियों के लिये है पहाड़ पहाड़ियों के लिये है ऐसे क्षेत्रीय नारे लगते है। अन्तर्समूह वैमनस्य एवं संघर्षो की बात भयानक रूप धारण करती है। जाति, वर्ग, धर्म, भाषा, तथा क्षेत्रों के आधार पर विभाजन रेखायें खिंचती है, अमीर गरीब, मालिक-मजदूर, भूमिहार तथा भूमिहीनों में वर्ग संघर्ष छिड़ता है, काले-गोरे की बात उठती है साम्प्रदायिक हिंसायें होती है, उग्रवाद एवं आतंकवाद पनपता है और इन सभी विवादों, वैमनस्यों एवं संघर्षो के बीच जो कुछ जन्म लेता है और जिसको पोषण मिलता है वह है व्यक्तियों के बीच खाईयाँ बढ़ाने वाली नकारात्मक अभिव त्तियाँ तथा पूर्वाग्रह। अमेरिका में नीग्रों तथा श्वेतों में एक दूसरे के प्रति विकसित प्रतिकूल पूर्वाग्रहों के पीछे इसी प्रकार की पुरानी वैमनस्य तथा संघर्ष रहे है। हमारे देश में भी सांप्रदायिकता एवं जाति के नाम पर होने वाले नर संहारों, उपद्रवों तथा पक्षपात पूर्ण व्यवहार को ही जाति और धर्म सम्बंधी पूर्वाग्रहों का जन्मदाता तथा पोषण कर्त्ता कहा जा सकता है।

अन्तवैयक्तिक सम्बंध और पूर्वाग्रह
(Interpersonal Relationship and Prejudices)

पूर्वाग्रह के रूप में उत्पन्न एवं पोषित अभिव त्तियाँ व्यक्तित्व सम्बंधी अनेक दुर्गणों एवं बुराइयों को जन्म देती है। व्यक्ति का द ष्टिकोण पूरी तरह से पक्षपात पूर्ण हो जाता है। वह अब सामान्य एवं सहज संग से व्यवहार न कर पूर्वाग्रहों से ग्रस्त एवं निर्देशित व्यवहार करने को ही सदैव अभिप्रेरित रहता है। विवेकपूर्ण चिन्तन की जगह भावानात्मक आँधी ले लेती है और आँधी रूपी पूर्वाग्रहों में उसके सामाजिक तथा अन्तर्वैयक्तिक सम्बंध ढल जाते है। उसे सभी सवर्ण अब अपने दुश्मन नजर आते है, दूसरे प्रान्त के रहने वाले इसके हक को छीनने वाले दिखते है तथा सभी मुसलमान या उर्दुभाषी पाकिस्तानी एजेन्ट। इस तरह पूर्वाग्रहों से ग्रस्त व्यक्ति जो कुछ भी सोचता है, अनुभव करता है तथा व्यवहारक्रियायें करता है उस में उसके पूर्वाग्रहों का ही बोल बाला रहता है तथा उसके अन्तर्वैयक्तिक तथा सामाजिक सम्बंधों में मधुरता की जगह कड़वापन आने लगता है तथा वैमनस्य और समूहगत संघर्षो को बल मिलता है।

अध्याय–11

अवबोध

(Perception)

परिचय
(Introduction)

ज्ञान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बाहरी वातावरण से सूचना चुनी जाती है, प्राप्त की जाती है, संगठित की जाती है और उसे अर्थ के अनुसार विश्लेषित किया जाता है। इसी के आधार पर व्यक्ति निर्णय ले सकता है।

It is a result of a complex interaction of various senses such as feeling, seeing, hearing, thinking and comparing with known aspects of life in order to make some senses of the world around us.

क्योंकि इसी के आधार पर हर व्यक्ति की निर्णय क्षमता प्रभावित होती है।

In the words of Ajit singh "Perception refers to interpretation of sensory data. Sensation involves detecting the presence of a stimulus where as perception involves understanding what the stimulus means. For example, when we see something, the visual stimulus is the light energy reflected from the external world and the eye becomes the sensor. This visual image of the external thing becomes perception when it is interpreted in the visual cortex of the brain. Thus, visual perception refers to interpreting the image of the external world projected on the retina of the eye and constructing a model of the three dimensional world".

Perception **एक व्यक्ति की प्रारम्भिक प्रक्रिया है जो हर व्यक्ति को अलग-अलग पहचान बताती है जैसा कि** "All that glitters is not gold" and "things are not what they seem" **यह सब अलग-अलग मानसिक क्रियाएं हैं एक ही स्थिति की। लोग जो वास्तविक नहीं है उसे वास्तविक समझ कर व्यवहार करते है। यह उदाहरण है भूतपूर्व** U.S **राष्ट्रपति** Richard Nixon **और उनके साथियों का, "राष्ट्रपति रात देर तक काम कर रहे थे उन्होंने होटल के नौकर को कहा मुझे कॉफी चाहिए। रात को रसोई बन्द हो चुकी थी नौकर ने तुरन्त ही रात को रसोई बन्द हो चुकी थी रसोइए को जगाया व कॉफी बनाने को कहा इसमें काफी समय लग गया राष्ट्रपति ने इस दौरान फिर कहा "कॉफी" तो एक नौकर ने सोचा कि राष्ट्रपति को कॉफी पीने वाली नहीं चाहिए उन्हें अपने एक सहायक जिसका नाम कॉफी है उससे बात करनी है अतः जो वास्तव में उद्देश्य था वह उस नौकर की समझ में नही आया और उसने कॉफी बना कर नहीं दी जबकि वास्तव में राष्ट्रपति कॉफी पीना चाहते थे।" अतः हमारा मानसिक ज्ञान जो प्राप्त करता है उसी के आधार पर निर्णय लिए जाते है अतः** perception **के तीन तत्व प्रभावित करते हैं।**

Major influences of the perception process

1. **समझने वाले की विशेषताएं** (Perceiver characteristics)
2. **प्राप्त किए जाने की विशेषताएं** (Perceived characteristics)
3. **स्थिति की विशेषताएं** (Situation characteristics)

1. **समझने वाले की विशेषताएं** (Characteristics of the perceiver):- एक व्यक्ति की जरूरतें, आदतें, पूर्व अनुभव, व्यवहार और व्यक्तित्व सभी कुछ perception प्रक्रिया को प्रभावित करती है। हमारे मूल्य एवं नैतिकता दूसरों का अनुमान लगाने में महत्वपूर्ण मानी जाती हैं क्योंकि यदि हम किसी व्यक्ति को अपने हिसाब से अच्छे व्यवहार का नहीं समझते तो हम उसके साथ अच्छा व्यवहार कर ही नहीं सकते क्योंकि हमारी Values उसे ऐसा ही मानती हैं।

2. **प्राप्त किए जाने की विशेषताएं** (Characteristics of the perceived):- एक व्यक्ति की शारीरिक विशेषताएं जैसे appearance, facial expression आयु, भेद, बातचीत करने का तरीका, व्यक्तित्व गुण सब कुछ एक व्यक्ति की perception को प्रभावित करते हैं जैसे जब हम एक व्यक्ति को आत्मविश्वासी देखते हैं तो हम अपने आप अनुमान लगा लेते हैं कि वह executive या leader हो सकता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति के बोलने के तरीके से हम अनुमान लगा सकते हैं कि वह पढा लिखा है या नहीं और उसी के अनुसार उससे व्यवहार करना शुरू कर देते है। क्योंकि एक व्यक्ति का पेशा या status हमारे दिमाग पर प्रभाव छोडता है।

3. **स्थिति की विशेषताएं** (Characteristics of the situation):- शारीरिक, सामाजिक और संगठनात्मक settings of the situation भी हमारी perception को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए हम एक ऐसे व्यक्ति को पहली बार मिलते हैं जो कि हमारे किसी ऐसे परिचित के साथ हैं जिसकी हम इज्जत करते हैं व उसे पसन्द करते हैं तो उसकी image अच्छी बन जाएगी परन्तु अगर हम उसे एक ऐसे व्यक्ति के साथ मिलते हैं जिसे हम पसन्द नहीं करते तो उसकी छवि भी हमारे दिमाग में वैसी ही बन जाएगी क्योंकि स्थिति के अनुसार हमारी Perception भी प्रभावित होती है। ये प्रारम्भिक प्रभाव समय के साथ परिवर्तित भी हो जाते है लेकिन फिर भी यह सच हैं कि "first impression is the last impression". Location भी व्यवहार को प्रभावित करती है जैसे हम अपने बोस के साथ किसी सामाजिक function पर अलग तरह से व्यवहार करते हैं न कि कार्यालय जैसा।

(Perceptual Selectivity)

Perception एक चुनने की प्रक्रिया है क्योंकि व्यक्ति को जितनी सूचना चाहिए वह केवल उतनी ही वातावरण से एकत्रित करता है बाकी को छोड़ देता है जो हमारे मतलब की चीज है उसे हमारा दिमाग अपने पास रखकर निर्णय ले लेता है। कुछ ऐसे तत्व जो चुनने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैः-

1. Self concept:- एक व्यक्ति की स्वयं की पहचान उसे दूसरों से व्यवहार करने की धारणा बनाती हैं क्योंकि व्यक्ति अपने गुणों के अनुसार ही उन व्यक्तियों को चुनता है जिनसे उसके विचार मिलते है।

2. Expectations:- उम्मीदें भी व्यक्ति की धारणाओं को प्रभावित करती हैं क्योंकि उम्मीद किसी व्यक्ति के व्यवहार को बताती हैं। संगठन में भी उम्मीदें व्यक्ति की Perception को प्रभावित करती है तभी तो एक technical मैनेजर non-technical व्यक्ति से उत्पादन में गलती होने को नजरअंदाज कर सकता है व संघ का नेता गलत भाषा का प्रयोग कर सकता हैं ये दोनों चीजें एक आम बात मानी जाती है।

3. Inner Needs:- लोगों की धारणाएँ उनकी जरूरतों के अनुसार भी निर्धारित होती हैं The need is a feeling of tension or discomfort when one thinks he is missing something or when he feels he has not quite closed a gap in his knowledge. अतः व्यक्ति अपनी जरूरतों के अनुसार अलग-अलग वस्तुओं को चुनते है जिससे वह उन्हें पूरा कर सकें। जब व्यक्ति अपनी जरूरतों को पूरा नहीं कर पाते तो वह स्वप्नों के माध्यम से उसे पूरा करने की कोशिश करते हैं जिसे day dreaming कहते हैं।

4. Response Disposition:- यह बताती है कि व्यक्ति हमेशा उन चीजों को शीघ्रता से ग्रहण करता हैं जिनके बारे में उसे कुछ जानकारी है व उनको देर से ग्रहण करता है जिनके बारे मे उसे जानकारी नहीं है। एक प्रयोग में यह सिद्ध किया गया कि जो धार्मिक प्रव त्ति के लोग है वह शीघ्रता से पुजारी या मंत्री जैसे शब्द पहचान लेते है। जबकि अर्थशास्त्र की 'कीमत' या 'लागत' को नहीं समझ पाते।

5. Response Salience:- एक मुख्य समस्या का केवल उन्ही व्यक्तियों के द्वारा समाधान किया जा सकता है जो उसके बारे में जानते है न कि दूसरों के द्वारा जैसे एक संगठन में विपणन का कार्य केवल विपणन प्रबन्धक के द्वारा लेखांकन का कार्य लेखाकार के द्वारा व कर्मचारियों की समस्याएं कर्मचारी प्रबन्धक के द्वारा दी दूर की जाती हैं यह बताता है कि इस तरह के Response Salience लोग उनकी धाारणा को प्रभावित करते है ऐसा इसलिए है क्योंकि उन्हें एक विभाग में प्रशिक्षण दिया जाता है।

6- External factors:- कुछ बाह्य तत्व भी perception प्रक्रिया को चुनने में प्रभावित करते है। जैसे intensity, size, contrast, repetition, motion amd novelty.

(Barriers in Person Perception)

मनुष्य की मानसिक प्रक्रिया में कई प्रकार की बाधाएं आती है यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें जो वास्वत में समझना चाहिए वह समझा नहीं जाता क्योंकि निर्णय ठीक सूचना के अभाव में ठीक नहीं लिया जा सकता। इसकी कुछ बाधाएं इस प्रकार है:-

1. Personality:- समझने वाले का व्यक्तित्व व्यक्ति की धारणा को प्रभावित करता है। प्रयोगकर्ता यह सुझाव देते है कि self concept का एक महत्वपूर्ण स्थान हैं Perception में, क्योंकि सुरक्षित व आत्मविश्वासी लोग दूसरों के साथ ठीक से व्यवहार कर सकते हैं जबकि इसके विपरीत व्यक्ति विपरीत व्यवहार करते है।

2. First Impression:- यह बात साधारण है कि लोग प्रथम प्रभाव से ही दूसरों का मूल्यांकन करते हैं जबकि यह गलत है क्योंकि अगर प्रथम प्रभाव का मूल्यांकन ठीक नहीं किया गया तो उस व्यक्ति की अवधारणा गलत बन जाएगी इसे कई बार मिलने से ठीक किया जा सकता हैं लेकिन First Impression को सुधारना इतना आसान नहीं है।

3. Mental Set:- मनुष्य का दिमाग एक विशेष स्थिति में क्या कार्य करता है और उसी के अनुसार निर्णय लेता है जैसे एक जगह command दी गई थी Get ready, Get set जब हमने सुना तो command थी 'Go' क्योंकि तुम पहले ही जाने के लिए तैयार हो चुके हो अतः हमने पहली बात पूरी सुने बिना ही दूसरी बात सुन ली और बिना तैयार हुए ही चले गए जिससे हमारे Mental Set की वजह से Misperception उत्पन्न हुआ।

4. Stereotyping:- यह शायद सबसे बडी बाधा है दूसरों को ठीक समझने में क्योंकि व्यक्ति हमेशा एक ही तरीके से लोगों को परिभाषित करते हैं। जैसे कि हम अगर एक executive के office में जाते है व वहाँ एक औरत और मनुष्य को देखते है तो हम यह अनुमान लगायेंगे की औरत सचिव है व मनुष्य अधिशासी जबकि उसके विपरीत भी स्थिति हो सकती है। यह प्रक्रिया हमारी stereotype धारणा ही है कि औरतें सचिव हैं और आदमी अधिशासी। हमने अपने दिमाग में कुछ अवधारणाएं बना ली है और उसी के हिसाब से व्यवहार करना शुरू कर देते है जबकि वास्तव में ऐसा नहीं होता।

5. Person Perceived:- जिस मनुष्य को समझने जा रहे है उसकी विशेषताएं भी Perception को प्रभावित करती हैं जैसे व्यक्ति का status समाज में ऊँचा हैं उसे उसके उसी गुण से स्वीकार किया जाता है और कुछ दिखने वाली विशेषताओं जैसे ईमानदारी वफादारी इनके आधार पर भी व्यक्ति की अवधारणा बन जाती है।

6. Projection:- इसके आधार पर यह देखा जाता है कि मनुष्य यह सोचता है कि जो गुण उसमें है वही दूसरों में भी होंगे। उदाहरण के लिए, अमेरिका में यदि एक भारतीय किसी दूसरे भारतीय से मिलता है तो वह सोचेगा कि उसमें भी भारतीय विशेषताएँ होगीं जैसी की उसमें है। इसी प्रकार एक कहावत है 'to an honest man, everybody is honest"

   Undesirable वातावरण में Projection एक Perpetual defense भी बन जाती है जैसे एक बेईमान श्रमिक जब फर्म से चोरी करता है तो सोचता है कि सभी श्रमिक ऐसा ही करते हैं।

(Managerial Implications of Perception)

एक प्रबन्धक को दूसरे व्यक्तियों से कार्य करवाते हुए अपने संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है अतः मानसिक प्रक्रिया व्यवहार को प्रभावित करती है। इसलिए संगठन में उनके व्यवहार को समझना प्रबन्धक के लिए अति आवश्यक हैं। एक संगठन में कर्मचारियों के सम्बंधों, नए कर्मचारियों के चुनाव में ठीक सूचना का होना अति आवश्यक है।

1. Interpersonal Working Relationship:- संगठन हमेशा आपसी सम्बन्धों के आधार पर चलते है यदि श्रमिकों के अन्तः सम्बन्ध अच्छे होते हैं तो वातावरण मधुर बनता है अन्यथा संगठन में कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं क्योंकि झूठी अवधारणाएं या भ्रामक अवधारणाएँ किसी संगठन के वातावरण को दूषित कर देती है और संघर्ष का कारण बन जाती है।
2. Selection of Employees:- संगठन में नए कर्मचारियों का चुनाव, चुनाव प्रक्रिया से किया जाता है जिसमें आवेदनकर्त्ताओं की चुनाव परीक्षा व साक्षात्कार को शामिल किया जाता है। कुछ Cases में सूचना गलत होने से प्रबन्धक को चुनाव करते समय कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
3. Performance Appraisal:- किसी अधीनस्थ की कार्यक्षमता का मूल्यांकन प्रबन्धक की अवधारणा से प्रभावित होता है। यदि किस कर्मचारी की अवधारणा यह बन जाती हैं कि वह कार्य अच्छा करता है या प्रबन्धक के काफी नजदीक है तो उसकी कार्यक्षमता का प्रबन्धक सही मूल्यांकन करता है या halo effect के कारण जो उसकी अवधारणा बन गई है उसकी कार्यक्षमता का मूल्यांकन विपरीत भी हो जाता है।

सीखना
(Learning)

सीखना एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जो मनुष्य के व्यवहार को निर्धारित करती है। इसे एक स्थायी परिवर्तन कह सकते है जो मनुष्य अपने व्यवहार में लगातार प्रयत्न करने से प्राप्त करता है। मनुष्य के अन्दर ऐसी शक्ति है कि वह हर परिवर्तित अवस्था को स्वीकार कर लेता है अपनी इस सीखने की कला से । अतः सीखना एक महत्वपूर्ण कड़ी है - मनुष्य व्यवहार में। Howard C. Warren,"Learning is used in many contexts. According to the dictionary of psychology learning refers the process of acquiring the ability to respond adequately to a situation which may or may not have been previously encountered, the favourable modification of response tendencies consequent upon previous experience, particularly the building of a new series of complexity coordinated motor response the fixation of items in memory so that they can be recalled or organised the process of acquiring insight into a situation." अतः सीखने का अर्थ है अनुभव के द्वारा अपने अन्दर परिवर्तन महसूस करना। सीखना हमेशा स्थायी होना चाहिए अस्थायी नहीं होना चाहिए क्योंकि थकावट से होने वाला परिवर्तन सीखना नहीं माना जाता। शारीरिक परिपक्वता से होने वाला परिवर्तन भी सीखना नहीं माना जाता।

सीखने के तत्व इस प्रकार हैं
(Components of learning process)

1. Drive:- सीखने को drive बहुत ज्यादा प्रभावित करता है अर्थात जब तक हममें कोई stimuli नहीं होगी अर्थात प्रेरणा नहीं होगी हम कोई कार्य ठीक से नहीं कर सकेंगे उसी के हिसाब से व्यक्ति respond करता है। Drives दो प्रकार की होती है - प्राथमिक और सहायक। इन दोनों के परस्पर सहयोग से उद्देश्य को पूरा किया जाता है।
2. Responses:- उत्तेजन से प्रभाव उत्पन्न होता है। Responses शारीरिक रूप से भी हो सकता है और व्यवहारात्मक भी क्योंकि इससे व्यक्ति के काम करने का पता चलता है।
3. Generalisation:- दो स्थितियां एक जैसी नहीं हो सकतीं। अतः प्रतिक्रियाएँ एक जैसी भी हो सकती और अलग-अलग भी हो सकती हैं। इसी सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति अपने पूर्व अनुमान के आधार पर अपने आप को समायोजित कर लेता है अन्यथा हर नई स्थिति जो उसके सामने उत्पन्न होती है उसे समझना कठिन हो जाता। उदाहरण के लिए एक व्यवसायी प्रबन्ध का विद्यार्थी case studies के माध्यम से वास्वतिक प्रबन्ध की समस्याओं को समझता व

सीखता है। यह माना जाता है कि case studies से जो साधन विकसित होता है वह carrier experiences के लिए generalised माना जाता है

4. Discrimination:- जब 'generalisation' को प्रतिक्रियाओं की समानता माना जाता है तो dicscrimination को एक जैसी प्रतिक्रियाओं से अलग-अलग माना जाता है। उदाहरण के लिए 'लाल बत्ती' व 'हरी बत्ती' दोनों ही light के रूप है, परन्तु एक auto के चालक के लिए दोनों का अर्थ अलग-अलग है। अतः एक ही वस्तु को driver ने अलग-अलग कर दिया है।

5. Reinforcement:- यह सीखने की मुख्य शर्त मानी जाती है। बिना reinforcement के व्यवहार में कोई सुधार नहीं किया जा सकता। सीखने में इसका महत्व "Thorndike" ने इस प्रकार किया है - "of several responses made to the same situation, those which are accompanied or closely followed by satisfaction (reinforcement) will be more likely torecur; those which are accompanied or closely followed by discomfort (negative reinforcement) will be less likely to occur.

6. Extinction:- इस तरह की reinforcement को अवांछनीय व्यवहार को कम करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसे याददाश्त में कमजोरी भी कहा जाता है Extinction is a specific form of forgetting. अगर संगठन में कोई व्यक्ति हमेशा देर से आता है और अपने मैनेजर से कोई प्रशंसा नहीं पता व अपनी salary में भी इसी वजह से कोई व द्धि नहीं पाता तो यह आशा की जाती है कि उसे यह आदत छोड़नी होगी अगर वह कुछ पाना चाहता है।

(Theories of Learning)

यहाँ learning की चार theories हैः-

1. Classical conditioning:- इसे P .Powel ने एक प्रयोग के द्वारा सिद्ध किया कि cause और effect का प्रबन्ध क्या है जिसे stimuli Response का सम्बन्ध कहा जाता है अर्थात जब कोई stimuli होती है तो उसकी प्रतिक्रिया भी उत्पन्न होती है। इस प्रयोग को कुत्तों पर किया गया। कुत्तों के सामने कुछ माँस (Meat) रखा गया जिस की प्रतिक्रिया उन्होंने लार टपका कर की। यह Response बिना किसी शर्त के था। Powel ने इसके बाद bell बजा कर मास रखा। घंटी का बजना अपने आप में किसी तरह की कोई प्रतिक्रिया (Response) नहीं था लेकिन बाद में Meat रखने के साथ-साथ Bell बजाई गई तो कुत्तों ने लार टपकाना शुरू कर दिया तो Powel ने यह सिद्ध किया कि दो stimulus में एक संबंध है अर्थात घंटी और माँस इससे कुत्तों के दिमाग में यह स्थापित हो गया की घंटी बजते ही माँस मिलेगा और वह अपनी लार टपकाने लग जाते। अतः लार टपकाने के Response के लिए घंटी बजना एक Conditional stimulus बन गया। अतः इसमें कारण और प्रभाव (cause and effect) का सम्बन्ध स्थापित हो गया और मनुष्य भी उसी के अनुसार व्यवहार करते है।

2. Instrumental or Operant Conditioning:- यह एक दूसरी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसके द्वारा stimulus Responses सीखे जाते है या आदतें सीखी जाती है। यह सिद्धांत बताता है कि उचित व्यवहार के लिए इनाम की प्राप्ति। Watson ने शुरूआती काम किए और यह सिद्ध किया कि व्यवहार में परिवर्तन बार-बार किए जाने वाले कार्यो से होता है जिनमें इनाम की प्राप्ति होती है अतः नियन्त्रित इनामों से व्यवहार को रूप दिया जा सकता है। अगर व्यक्ति सन्तुष्ट रहता है अपनी क्रियाओं से तो उसका व्यवहार भी उसी के अनुरूप निर्धारित होता हैं क्योंकि यह माना जाता है कि व्यवहार ऐच्छिक है और उसे निर्धारित किया जा सकता है। नए व्यवहार को सीखने में तीन तत्व शामिल किए जाते है :-

   (i) Stimulus situation.
   (ii) Behavioural response to the situation.
   (iii) Consequence of the response to the person.

इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है एक वाहन चालक के लिए दुर्घटना रोकने के लिए Brake का प्रयोग करना। अगर चालक के द्वारा Brake का प्रयोग न करके दुर्घटना की संभावना एक stimulus situation है अब Brake को लगाना एक व्यवहार

है और दुर्घटना से बचना उस व्यवहार का नतीजा है। अतः इस क्रिया से हम यह समझ सकते है कि किस-किस व्यवहार से हमें फायदा होता हैं और उसी वजह से हम यह व्यवहार करते है अतः एक आदत को सीखने को हम Operant conditioning कह सकते है।

3. Social learning:- यह cognitive और Operant conditioning approach का मिला जुला रूप है। यह सिद्धांत बताता है कि केवल stimuli (Classical and operant) से ही सब कुछ नहीं सीखा जा सकता हम अपने समाज से भी बहुत कुछ सीखते है। सीखने की प्रक्रिया न केवल बाह्य वातावरण अपितु अपने आत्म-नियंत्रण और अनुशासन से भी हो सकती है। आन्तरिक इच्छा से एक व्यक्ति बाहरी नतीजों की परवाह किए बिना ज्ञान अर्जित कर सकता है। समाज में रहकर एक दूसरे का अवलोकन करके भी सीखा जा सकता है। जैसे बच्चा अपने बड़ों के आचरण से सीखता है, उसी प्रकार हर व्यक्ति का कोई न कोई Model होता है जिसकी वह नकल करके वैसा ही बनना चाहता है तथा अपने आपको विकसित करता है जैसे एक अधीनस्थ हमेशा अपने प्रबन्धक के आचरण को देखकर वैसा ही बनने की कोशिश करता है। अपने अच्छे के लिए मनुष्य दूसरों का अवलोकन करने के साथ-साथ स्वयं से भी सीखता है।

4. Cognitive learning:- यह इच्छा अनुसार सोचने की प्रक्रिया है न कि कारण और प्रभाव की। यह किसी सूचना को पाने की कला है। यह सुचना किसी मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करती है क्योंकि प्राप्त सूचना के आधार पर निर्धारित उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। इसे Tolman के एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। Tolman ने एक प्रयोगशाला में कुछ चूहों को एक जटिल जाल में से उनके भोजन की तरफ उन्हें भगाया। चूहों को यह उम्मीद थी कि वह भोजन तक पहुँच जायेंगे और यह पाया गया कि कुछ cognitive cues की सहायता से चूहों ने अपने निर्धारित लक्ष्य अर्थात भोजन को प्राप्त किया। संगठन में इसी आधार पर श्रमिकों को अधिक कार्यकुशल व उत्पादी बनाने के लिए कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रम निर्धारित किए जाते है जिनसे श्रमिकों का फायदा हो सके।

सीखने का सिद्धांत
(Principles of learning)

सीखने का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत reinforcement है। इसे अध्ययन की द ष्टि से चार भागो में बांटा गया है।:-

1. Positive and Negative Reinforcement:- Positive reinforcement एक तरह का ऐसा प्रेरणा स्त्रोत (Reward or incentive) है जो कि एक ऐच्छिक व्यवहार के लिए दिया जाता है। यह इनाम पर्याप्त मात्रा में शाक्तिशाली और मजबूत होना चाहिए ताकि इनाम के अनुकूल ही व्यवहार पाया जा सके। मुख्यतः मुद्रा को एक अच्छा प्रेरणा स्त्रोत माना जाता है इसके साथ-साथ स्वतन्त्रता व निर्णायक निर्णय भी संगठन में महत्वपूर्ण इनाम व्यवहार को प्रभावित करते है। उचित व्यवहार के समय ही इनाम का महत्व है बाद में नहीं। अतः reinforcer ज्यादा प्रभावी होता है अगर वह ऐच्छिक व्यवहार के तुरन्त बाद दिया जाता है। Negative Reinforcement इनाम के अतिरिक्त सजा देना माना जाता है या सजा देने की धमकी देना। नकारात्मक प्रेरणा व्यवहार पर विपरीत प्रभाव डालती है।

2. Extrinsic and Intrinsic Reinforcement:- Positive reinforcement को आगे दो भागों में बाँटा जाता हैः- Extrinsic and intrinsic reinforcement बाह्य ताकतों का व्यवहार के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं होता। जैसे मुद्रा दे कर कर्मचारियों को नए विचारों के लिए कहना जबकि जबरदस्ती किसी से नए विचारों को उत्पन्न नही करवाया जा सकता जबकि intrinsic reinforcement व्यवहार का प्राक तिक परिणाम होता है जिससे एक व्यक्ति अपने मन से कुछ सीखने लगता है और अधिक उत्तरदायित्व वहन करता है। आन्तरिक और बाह्य ताकतें प्रेरणा की प्रक्रिया से प्रभावित होती है।

3. Primary and Secondary Reinforcement:- सकारात्मक कारकों को प्राथमिक व सहायक दो भागो में बांटा जाता है। प्राथमिक reinforcer से व्यक्ति सन्तुष्ट होता है और इनका पूर्व अनुभव से कोई सम्बन्ध नहीं होता जैसे भोजन व sex जिससे मनुष्य की मनोवैज्ञानिक जरूरतें पूरी होती है। द्वितीयक कारक प्रशंसा, पहचान आदि मानी जाती है जिससे एक व्यक्ति की कार्यक्षमता प्रभावित होती है।

सीखने के चार कदम हैं
(Steps in learning)

(1) Stimului

(2) Response

(3) Motivation

(4) Reward or Incentive.

सीखने में सीखने वाले के लिए स्पष्ट उद्दीपन (stimuli) का होना बहुत जरूरी है ताकि वह अच्छी प्रकार से कार्य कर सके उदाहरण के लिए प्रबन्धक के संदेशों को कर्मचारियों के द्वारा न समझे जाने पर संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

कर्मचारियों को समय-समय पर उनकी प्रतिभा का प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। प्रेरणा से व्यक्ति में सीखने की लगन और अभिव्यक्ति उत्पन्न होती हैं। व्यक्ति की जिस कार्य में रूचि हो उससे वही कार्य करवाना चाहिए अन्यथा संस्था के उद्देश्यों को पूरा नहीं करवाया जा सकता।

सीखने वाले को समय-समय पर इनाम जरूर देना चाहिए जैसे कोई कार्य ठीक से सीखने पर उसकी प्रशंसा करना इससे सीखने की प्रक्रिया ज्यादा आसान और प्रभावी बन जाती है। अगर किसी व्यक्ति को यह उम्मीद हो कि वह सीखने से भविष्य में कुछ प्राप्त नहीं करेगा तो वह सीखना बन्द कर देता है।

अध्याय–12
व्यक्तित्व
(Personality)

परिचय
(Introduction)

व्यक्तित्व (Personality) शब्द का हम आम बोलचाल की भाषा में प्रयोग करते ही रहते हैं। उसका व्यक्तित्व (Personality) बहुत अच्छा है, वह अपने व्यक्तित्व का बिल्कुल भी ध्यान नहीं रखती, आदि-आदि। परन्तु सामान्यतया हम इस शब्द का जिन अर्थो में प्रयोग करते रहते हैं वह हमारी व्यक्तित्व सम्बंधी मिथ्या धारणाओं पर ही आश्रित है।,

शब्द को उत्पत्ति की द ष्टि से देखा जाये तो व्यक्तित्व शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द पर्सनल्टी (Pesonality) का हिन्दी रूपान्तर है। पर्सनल्टी (Pesonality) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द परसोना (Persona) से हुई है जिसका अर्थ होता है मुखौटा या आवरण (Mask) । आवरण या मुखौटा से तात्पर्य उन चेहरों से होता है जिन्हें पहन कर रामलीला में रामलीला के पात्र बंदर, भालू तथा राक्षस आदि बन जाया करते हैं। यूनान में नाटक करते समय अभिनेता भी ऐसे ही आवरण या मुखौटा पहन लिया करते थे और उन्हें ही परसोना कहा जाता था। धीरे-धीरे परसोना शब्द बदलते-बदलते पर्सनल्टी बन गया और इसे "जैसा कोई व्यक्ति रंगमंच पर अभिनय करते हुए बाहरी तौर पर नजर आता था" के रूप में प्रयोग किये जाने लगा। आज भी इतने लम्बे अन्तराल के बाद संसार के अनेक व्यक्तियों द्वारा इसे इसी रूप में समझा ओर व्यवहार में लाया जा रहा है।

परिणामस्वरूप हम सभी के द्वारा आज भी अधिकतर बोलचाल की भाषा में 'व्यक्तित्व' शब्द का प्रयोग शारीरिक डील-डौल, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, रूप लावण्य, आदि बाहर से दिखाई पड़ने वाले तत्वों के संदर्भ में किया जाता है। किसी के गठीले बदन और चमकते चेहरे को देख कर हम कह उठते हैं कि देखो उनका व्यक्तित्व कितना आकर्षक है ओर किसी की सूखी टांगों, पिचके गाल, या निस्तेज चेहरे को देख कर अथवा उसके कपड़ों और जूतों की खस्ता हालत देख कर हम उसके व्यक्तित्व को उपेक्षा या तिरस्कार की वस्तु समझते हैं। खाने-पीने, बोलने-चालने और चलने-फिरने के अच्छे और बुरे ढंग के माध्यम से भी हम व्यक्तित्व सम्बन्धी अच्छे-बुरे लेबल (Label) चिपकाने का प्रयत्न करते हैं। ऊपर से देख कर व्यक्तित्व के अनुमान लगाने का यह ढंग व्यक्तित्व का सही अर्थ न जानने का ही परिणाम है।

दूसरी ओर प्रायः हम व्यक्तित्व शब्द को व्यक्ति के चरित्र या नैतिकता के पर्यायवाची शब्द के रूप में भी प्रयोग करते हैं। चरित्र सम्बन्धी कुछ गुणों से युक्त होने पर व्यक्ति को अच्छे व्यक्तित्व वाला और कुछ अवगुणों या सामाजिक बुराइयों में ग्रस्त होने पर बुरे व्यक्तित्व वाला कहा जाता है। व्यक्तित्व शब्द का यह प्रयोग भी अपूर्ण और अनुचित है। चरित्र सभी प्रकार से केवल नैतिकता और आचार संहिता से अपना सम्बन्ध रखता है जबकि व्यक्तित्व में मानव को सम्पूर्ण बनने से सम्बन्धित सभी पक्षों का समावेश होता है।

हमारे द्वारा इस प्रकार से व्यक्तित्व शब्द को बाह्य रूप तथा आकृति अथवा चरित्र और बाह्य व्यवहार के समान अर्थो में प्रयुक्त करना एक बड़ी-भूल है। किसी भी अवस्था में व्यक्ति के 'व्यक्तित्व' के आंतरिक पक्ष की अवहेलना नहीं की जा सकती। व्यक्तित्व में व्यक्ति के व्यवहार का समग्र रूप सामने आता है। अतः व्यवहार के बाह्यय और आँतरिक दोनों पक्षों (Overt and covert behaviour) के अध्ययन को इसमें स्थान मिलना चाहिये।

व्यक्तित्व - अर्थ एवं परिभाषायें
(Meaning and Definitions - Personality)

मनोवैज्ञानिक भाषा में व्यक्ति अपने आप में जो कुछ भी है वही उसका व्यक्तित्व है। अपने प्रति और दूसरों के प्रति किये जाने वाले व्यवहार का यह एक समग्र चित्र (Totality) है। इसमें व्यक्ति के पास शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक और अध्यात्मिक रूप से जो कुछ भी होता है वह सभी सम्मिलित होता है। थोड़े शब्दों में व्यक्तित्व वह सब कुछ है जो एक व्यक्ति के पास होता है।

इस प्रकार से निश्चित रूप में 'व्यक्तित्व' शब्द बाह्य रूप, आकृति और व्यवहार से अधिक गूढ़ अर्थ संजोये हुए है, जिसे निश्चित शब्दों में पारिभाषित करना एक कठिन कार्य है। फिर भी मनोवैज्ञानिकों द्वारा अपने-अपने तरीकों से इसे परिभाषा में बांधने का प्रयत्न किया जाता रहा है। ऐतिहासिक द ष्टि से व्यक्तित्व शब्द की अधिक पूर्ण और विस्त त परिभाषा सबसे पहले गॉर्डन ऑलपोर्ट (Gordon Allport) नामक मनोवैज्ञानिक द्वारा दी गई। उसने अपने समय में उपलब्ध व्यक्तित्व की 49 विभिन्न परिभाषाओं की समीक्षा करने के बाद व्यक्तित्व को निम्न प्रकार से परिभाषित किया।

"व्यक्तित्व व्यक्ति में निहित उन मनोदैहिक तन्त्रों या व्यवस्थाओं का ऐसा गत्यात्मक संगठन है जो कि वातावरण के साथ उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करता है।"

Personality is a dynamic organisation within the individual of those psycho-physical systems that determine his unique adjustment to his environment.

ऑलपोट द्वारा दी गई उपरोक्त परिभाषा व्यक्तित्व सम्बंधी निम्न तथ्यों को हमारे सामने रखती है।

1. व्यक्तित्व व्यक्ति का संपूर्ण एंव समग्र चित्र होता है। इसमें उसके पास विभिन्न तन्त्रों या व्यवस्थाओं के रूप में जो कुछ भी होता है सभी शामिल होता है। ऑलपोर्ट ने इसे मनोदैहिक तन्त्रों या व्यवस्थाओं का नाम दिया है। दैहिक या शारीरिक तन्त्र (Physical System) के रूप में इसमें व्यक्ति की शारीरिक संरचना, ऊपरी ढ़ाचा तथा बनावट, शरीर के भीतर कार्य कर रहे विभिन्न संस्थान जैसे पाचन संस्थान (Digestive system), रक्त परिभ्रमण संस्थान (Blood Circulatory System), स्नायु संस्थान (Nervous System) उत्सर्जन संस्थान (Excretory System) आदि सम्मलित हो सकते हैं। शरीर रूपी मशीन को चलाये रखने के लिये 'मन' का शक्तिरूपी ईंधन (Psyche Energy) चाहिये। इस मन को चाहे मस्तिष्क की शक्ति (Brain Power) के रूप में समझा जाये या आत्मिक शक्ति के रूप में।
    1. जब तक इसका पूरा सहयोग और तालमेल नहीं हो पाता तब तक शारीरिक तन्त्र सुचारू रूप से वांछनीय व्यवहार नहीं कर सकता। अतः व्यक्तित्व का शारीरिक पक्ष बिना मानसिक, भावात्मक तथा आत्मिक पक्ष के अधूरा ही है इस बात को ऑलपोर्ट ने अपनी परिभाषा द्वारा स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखने का प्रयत्न किया है।
    2. ऑलपोर्ट की यह परिभाषा व्यक्ति में उसके तन्त्रों एवं व्यवस्थाओं के रूप में जो कुछ होता है उसके संगठन (Organistion) पर पूरा बल देती है। यह स्पष्ट संकेत करती है कि व्यक्ति की शारीरिक तथा मानसिक विशेषताओं या गुणों के संग्रह मात्र से ही व्यक्तित्व का निर्माण नही हो जाता। उदाहरण के लिए जैसे किसी दीवार के बारे में उसकी ईटों को गिनकर यह नहीं कहा जा सकता की वह क्या है और कैसी है। इसके लिए कुछ और चाहिए और इसी द ष्टिकोण से व्यक्तित्व के स्पष्टीकरण के लिए भी विशेषताओं और गुणों के संग्रह के अतिरिक्त कुछ और चाहिए। व्यक्तित्व कुछ मनोदैहिक व्यवस्थाओं (Psychophysical System) अथवा व्यवहार सम्बन्धी विशेषताओं और क्रियाकलापों का एक संयुक्त संगठन है। जिस प्रकार हाथी की टांगों को देखने मात्र से यह नही कहा जा सकता कि हाथी खंभे जैसा होता है, उसी प्रकार किसी के डील-डौल अथवा बोलने-चालने और खाने-पीने के द्वारा उसके व्यक्तित्व के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। जब तक व्यक्ति के शरीर और मन से सम्बंधित सभी क्रियाओं तथा व्यवस्थाओं के उचित तालमेल और समन्वय की बात नही आती तब तक व्यक्तित्व का चित्र अधूरा रहता है।

3. व्यक्तित्व को व्यक्ति में निहित सभी मनोदैहिक तन्त्रों या व्यवस्थाओं का गत्यात्मक संगठन बताते हुए ऑलपोर्ट ने स्पष्ट रूप से यह संकेत देने का प्रयत्न किया है कि व्यक्तित्व जड़ नहीं बल्कि गतिशील और निरन्तर परिवर्तित एंव परिमार्जित होने वाली वस्तु है। अपने सामायोजन के लिए जो कुछ भी आवश्यक होता है, व्यक्ति का व्यक्तित्व उसे वह सब कुछ देता है। समायोजन की प्रक्रिया एक सतत प्रक्रिया है। व्यक्ति को जब से वह जन्म लेता है तब से लेकर अपनी आखिरी सांस तक समायोजन (Adjustment) के लिए संधर्षरत रहना पड़ता है। इस संधर्ष के लिए उसे अपने व्यवहार और व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों में आवश्यक परिवर्तन लाने होते हैं और इस तरह व्यक्तित्व अस्थिर वस्तु न हो कर गतिशील एवं परिवर्तनशील वस्तु बन जाता है।

4. ऑलपोर्ट की परिभाषा स्पष्ट रूप से यह संकेत देती है कि व्यक्तित्व अपूर्व (Unique) और विशिष्ट (Specific) होता है। कोई भी दो व्यक्ति चाहे वे समरूप यमज (Identical Twins) ही क्यों न हों, किसी भी समय बिल्कुल एक जैसा व्यवहार नहीं करते। हम में से प्रत्येक अपने ढंग से अपना समायोजन करता है और इस तरह हर एक का व्यक्तित्व अपने आप में एक अद्‌भुत और अनूठी वस्तु होती है। जिसकी जैसी मनोदैहिक रचना और व्यवस्था होती है वह उसके माध्यम से उसी रूप में अपने आप से तथा अपने वातावरण के साथ समायोजित होने का प्रयत्न करता है। अब क्योंकि सभी की मनोदैहित व्यवस्थायें और उनका संगठन अलग-अलग होते है अतः वे उसी के अनुरूप समायोजन करने में सफल होती हैं और यही बात उनके व्यक्तित्व को अपूर्व तथा विशिष्ट बनाने का कारण बनती है।

इस प्रकार विश्लेषण करके देखने से ऑलपोर्ट की यह परिभाषा यद्धपि काफी लम्बे समय तक काफी विस्त त तथा ठीक समझी जाती रही परन्तु समय के साथ-साथ इसकी भी आलोचना शुरू हो गई। इस सम्बंध में अपने विचार प्रकट करते हुये वर्तमान युग के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एच॰ जे॰ आइजेंन्क (H. J. Eysenck) ने इस परिभाषा की जिन दो मुख्य विसंगतियों तथा दोषों पर लोगों का ध्यान आकर्षित किया वे निम्न हैं।

1. ऑलपोर्ट की परिभाषा व्यक्तित्व को गत्यात्मक तथा गतिशील स्वरूप प्रदान करके उसे परिवर्तनशील बनाने की बात कहती है। अगर व्यक्तित्व परिवर्तनशील संप्रत्यय है तो फिर इसका मापन कैसे संभव है। क्योंकि जैसे ही हम इसका मापन करेंगे और इस मापन की सत्यता और विश्वसनीयता की स्थापना के लिये व्यक्तित्व का दुबारा मापन करने बैठेगें, व्यक्तित्व बदला हुआ मिलेगा। इस तरह व्यक्तित्व को पूरी तरह गत्यात्मक तथा परिवर्तनशील मानना ठीक नहीं है।

2. ऑलपोर्ट की परिभाषा में व्यक्ति में निहित जिन तन्त्रों या व्यवस्थाओं के संगठन को व्यक्तित्व का नाम देने का प्रयत्न किया है, उन्हें पूरी तरह स्पष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया गया है। वे मनोदैहिक तन्त्र या व्यवस्थायें कौन-सी है, इसका विवेचन दूसरों पर छोड़ देना ठीक नहीं है।

इन दोषों और कमियों को सामने लाते हुऐ आइजेन्क ने ऑलपोर्ट की बहुचर्चित परिभाषा में उपयुक्त सुधार लाने का प्रयत्न किया और फलस्वरूप अपनी परिभाषा को निम्न शब्दों में व्यक्त किया।

"व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव, बुद्धि और शारीरिक बनावट का थोड़ा बहुत ऐसा स्थायी और स्थिर संगठन है जो वातावरण के साथ उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है।"

Personality is the more or less stable and enduring organisation of a person's character, temperament, intellect, and physique. which determine his unique adjustment to the environment.

उसने अपनी परिभाषा में शामिल कुछ शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास भी किया है जो निम्न प्रकार हैः-

चरित्र (Character) व्यक्ति के क्रियात्मक व्यवहार के थोड़े बहुत स्थिर और स्थायी संगठन को प्रकट करता है।

स्वभाव (Temperament) व्यक्ति के भावात्मक व्यवहार के थोड़े बहुत स्थिर और स्थायी संगठन की अभिव्यक्ति करता है।

शारीरिक बनावट (Physique) से तात्पर्य व्यक्ति के जन्मजात शारीरिक ढांचे (Physical configuration) और उसके स्नायु संस्थान एवं नलिका विहीन ग्रन्थियों (Neuro-endocrine endowment) के थोड़े बहुत स्थायी और स्थिर संगठन से है।

वर्तमान समय में आइजेंन्क द्वारा दी गई व्यक्तित्व की उपरोक्त परिभाषा को काफी मान्यता प्राप्त है। व्यक्तित्व के अर्थ एवं प्रक ति को सही ढंग से सामने लाने की द ष्टि से इस परिभाषा की प्रशंसा में निम्न बातें कही जाती हैं।

1. यह परिभाषा व्यक्तित्व को न तो इतना जड़ या स्थिर मानती है जिसमें परिवर्तन ही न लाया ला सके और न गिरगिट की तरह रंग बदलने वाली प्रक ति की तरह बिल्कुल अस्थायी या गतिशील रचना ही स्वीकार करती है। स्पष्ट रूप से यह परिभाषा यह संकेत देती है कि वैसे तो व्यक्तित्व काफी निश्चित एवं स्थिर होता है परन्तु परिस्थिति वश और प्रयत्नों के फलस्वरूप इसमें वांछित परिवर्तन लाये जा सकते हैं।
2. यह परिभाषा व्यक्तित्व के निर्माण में वंशानुक्रम और वातावरण के संतुलित महत्व को सामने लाती है।
3. इसके माध्यम से आइजेंन्क ने व्यक्तित्व के लिए व्यवहार सम्बन्धी विशेषताओं को गिनाने की बजाय उसके (व्यक्तित्व) संगठन और संरचना को अधिक महत्व दिलाने का प्रयत्न किया है। व्यवहार सम्बन्धी विशेषताओं को गिनाने की तुलना वह एक भवन में लगी ईटों को गिनाने से करता है।
4. यह परिभाषा व्यक्तित्व को शरीर विज्ञान सम्बन्धी आधार भी प्रदान करती है।
5. क्रियात्मक (Conative), ज्ञानात्मक (Cognitive), भावात्मक (Affective) और रचनात्मक (Consitutional) पक्षों को लेकर यह व्यक्ति के व्यवहार का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न करती है।
6. व्यक्तित्व को मापन एवं मूल्यांकन की वस्तु बना कर यह उसे वैज्ञानिक आधार प्रदान करने की चेष्टा करती है।

यद्यपि आइजेंन्क की उपरोक्त वर्णित परिभाषा को काफी व्यापक समर्थन प्राप्त है। परन्तु व्यावहारिकता की द ष्टि से मेरे अपने विचार से एक और परिभाषा जो प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आर॰ बी॰ कैटल (R. B. Cattell) द्वारा प्रस्तुत की गई है, काफी उपयुक्त एवं व्यावहारिक ठहराई जा सकती है। यह परिभाषा निम्न प्रकार है।

"व्यक्तित्व वह है, जिसके द्वारा हम यह भविष्यवाणी कर सकते है कि कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति में क्या करेगा।"

(Personality is that which permits a prediction of what a person will do in a given situation.)

अगर व्यावहारिकता तथा क्रियात्मकता की कसौटी पर इस परिभाषा को परखने का प्रयत्न किया जाये तो मालूम हो जायेगा कि व्यक्तित्व के बारे में कितनी यथार्थ और खरी बात कैटेल ने थोड़े शब्दों में ही कह डाली है वह कहते हैं कि व्यक्तित्व वह है जो काफी स्थिर और निश्चित हो तथा जिसका सही-सही मापन किया जा सकें, जिसके माध्यम से एक ऐसी निश्चित छवि तथा धारणा व्यक्ति के बारे में बनाई जा सकें, जिसके माध्यम से भलीभाँति यह भविष्यवाणी की जा सकें कि उस प्रकार के व्यक्तित्व से विभूषित व्यक्ति किन्हीं निश्चित परिस्थितियों में किस प्रकार का व्यवहार करेगा।

कैटेल का यह दावा व्यवहारिक परिस्थितियों में बिल्कुल उचित नजर आता है। अगर हम किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में जानते हैं तो हम यह निश्चित रूप से अनुमान लगा सकते हैं कि किन्ही व्यवहार परिस्थितियों में वह किस प्रकार का व्यवहार करेगा। एक उदाहरण द्वारा हम कैटेल के इस विचार का समर्थन करना चाहेंगे। कल्पना करो कि एक घर में 5-6 लोग हैं। रात के 2-3 बजे कोई अचानक घर का दरवाजा खटखटाता है। अब यहाँ व्यवहार परिस्थिति सभी उपस्थित लोगों के लिए एक जैसी होते हुये भी सबके व्यवहार या अनुक्रिया करने का ढंग अलग-अलग होगा और यह बहुत कुछ उनके व्यक्तित्व गुणों की प्रकृति पर निर्भर करेगा। उनमें से एक व्यक्ति जो साहसी तो है परन्तु लापरवाह है किसी को बिना बताये या जगाये कोई भी सावधानी बरते बिना तुरन्त ही दरवाजा खोलने पहुँच जायेगा। दूसरा जो साहसी होने के साथ-साथ बुद्धिमान तथा सावधानी बरतने वाले है वह अपने किसी साथी को जगाकर सावधान भी करेगा और स्वयं भी सावधानी बरतकर (कोई डंडा या हथियार लेकर) ही दरवाजे को खोलने की कोशिश करेगा या यह सुनिश्चित करने की कोशिश करेगा कि दरवाजा खटखटाने वाला कौन हो सकता है। तीसरा जो डरपोक है परन्तु अपनी कमजोरी को छुपाना चाहता है अपने अन्य साथियों से दरवाजा खोलने को कहेगा तथा स्वयं कोई न कोई बहाना बनायेगा तथा दूसरा कोई अन्य जो बहुत ही डरपोक तथा कायर प्रकृति का है शायद उस समय पलंग के नीचे छुपने या रजाई में अपना सिर छुपाने की कोशिश भी कर सकता है। इस तरह जिसका जैसा व्यक्तित्व होगा उसी के अनुरूप इस व्यवहार परिस्थिति में मौजूद व्यक्तियों की व्यवहार अनुक्रियायें होंगी।

व्यक्तित्व सम्बंधी विभिन्न उपागम
(Various Approaches to Personality)

व्यक्तियों के व्यक्तित्व को जानने और समझने तथा व्यक्तित्व की प्रकृति की सही धारणा बनाने का हमारा प्रयास तब तक अधूरा ही माना जायेगा जब तक हम उसकी संरचना और स्वरूप पर प्रकाश डालने वाले कुछ महत्वपूर्ण उपागमों (Approaches) का अध्ययन नहीं कर लेते। व्यक्तियों तथा उनके व्यक्तित्व को जानने से सम्बंधित कुछ महत्वपूर्ण उपागमों के रूप में निम्न उपागमों का उल्लेख किया जाना अधिक व्यावहारिक सिद्ध हो सकता है।

1. मनोविश्लेषणात्मक उपागम (Psycho analytic Approach)
2. विशेषक या व्यक्तित्व गुण सम्बंधी उपागम (Trait Approach)
3. व्यक्तित्व वर्ग या प्रकार सम्बंधी उपागम (Type Approach)
4. विशेषक एवं प्रकार समन्वित उपागम (Trait cum Type Approach)

आइये अब इन विभिन्न उपागमों को समझने का प्रयत्न किया जाये।

मनोविश्लेषणात्मक उपागम
(Psychoanalytic Approach)

व्यक्तित्व को जानने और समझने सम्बंधी यह उपागम मनोविज्ञान में बहुचर्चित मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा (School of Psycho-analysis) की देन है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड (Freud) इस विचारधारा के जन्मदाता कहे जाते हैं। फ्रायड ने अपने मनोविश्लेषणवादी उपागम के माध्यम से व्यक्तित्व में झाँकने हेतु मुख्य रूप से निम्न विचार प्रस्तुत किये हैं।

1. मानव व्यवहार के मूल में उसकी मूल प्रव त्तियाँ (Basic Instinets) कार्य करती है। प्रत्येक व्यक्ति में उसकी अन्य मूल प्रव त्तियों के अतिरिक्त दो मूल प्रव त्तियाँ-जीवन मूल प्रव त्ति (Life Instinct) तथा म त्यु मूल प्रव त्ति (Death Instinct) पायी जाती है। व्यक्ति का काफी कुछ व्यवहार एवं व्यक्तित्व संरचना इन्हीं दोनो प्रव त्तियों द्वारा निर्देशित रहती है। जीवन मूल प्रव त्ति जहाँ उसमें जीवन को जीने की इच्छा बनाये रखती है और उसमें इसे अच्छी तरह जीने के साधन जुटाने के लिये तत्पर रखती है वहाँ म त्यु मूल प्रव त्ति उसमें जीवन के प्रति विरक्ति, उससे विद्रोह तथा विनाशकारी व्यवहार को संचालित करने का आधार बनती है।
2. मानव में जितनी भी मूल प्रव त्तियाँ (Instinct), प्रेरणायें (Impulses) तथा चालक (Motives) पाये जाते हैं उन सब में सबसे अधिक शक्तिशाली चालक तथा प्रेरणा पुंज उसकी काम भावनायें (Sexual desires) है। यौन आवश्यकताओं (Sex Needs) की पूर्ति फ्रायड के अनुसार मानव व्यवहार का केन्द्रीभूत तत्व है। जन्म से लेकर म त्यु तक व्यक्ति का संपूर्ण व्यवहार इसी के द्वारा संचालित होता है। कामेच्छाओं की संतुष्टि पर ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का संतुलित विकास तथा उचित समायोजन (Proper Adjustment) निर्भर करता है।
3. मानव व्यवहार के संचालन में मन (Mind or Psyche) की प्रमुख भूमिका रहती है मानव मन (Human Psyche) के उसकी व्यवहार सम्बंन्धी भूमिका को लेकर तीन भाग किये जा सकते हैं। 1. चेतन मन (Conscious Mind), 2. अवचेतन मन (Semi Conscious Mind) तथा 3. अचेतन मन (Unconscious Mind) मन के इन तीनों प्रकारों से हमारे तीन प्रकार के व्यवहारों चेतन व्यवहार (Conscious behaviour) अवचेतन व्यवहार (Semi Conscious Behaviour) तथा अचेतन व्यवहार (Unconscious Behaviour) का संचालन होता है। फ्रायड ने व्यक्ति के व्यवहार और उसके व्यक्तित्व की संरचना में अचेतन व्यवहार को सबसे अधिक महत्व दिया। उसने बताया की चेतन व्यवहार (Conscious Behaviour) वह व्यवहार है जिसकी हमें पूर्ण चेतना होती है तथा जिसे हम जानबूझ कर करते हैं ऐसा व्यवहार तो हमारे द्वारा किये जाने वाले सम्पूर्ण व्यवहार का केवल 1/10 मात्र ही होता है बाकी की 9/10 व्यवहार क्रियायें तो हमारे अवचेतन तथा अचेतन मन द्वारा ही संचालित की जाती हैं।
4. मानव मन (Human Psyche) की संरचना तथा उसके द्वारा व्यवहार क्रियाओं के निरूपण हेतु फ्रायड ने इड (Id), ईगो (Ego) तथा सुपर ईगो (Super Ego) की धारणाओं को भी हमारे सामने रखा। हिन्दी रूपान्तर हेतु इन धारणाओं

के लिये क्रमशः "इदम्", "अहम" तथा "पराहम्" का प्रयोग भी किया जाता है। परन्तु यहाँ हम इनको मूल नामों से ही संबोधित कर विस्तार में समझाना चाहेंगे।

इड *(Id)*-मानव मन के इस पक्ष में व्यक्ति के व्यवहार और व्यक्तित्व से सम्बंधित पाशविक प्रव तियों और अनैतिक भावनाओं का संग्रह होता है। इसी के माध्यम से मनुष्य इन्द्रिय जनित सुखों की खोज करता है। अपनी इच्छाओं की त प्ति ही इसके लिए सब कुछ है और अपनी इस त प्ति के लिए वह किसी भी नियम अथवा रीति रिवाज का उल्लंधन कर सकता है।

ईगो या साधारण अन्तःकरण (Ego)- यदि इड को अपनी इच्छा पर ही छोड़ दिया जाए तो इसका परिणाम दुःखदायी होता है। इस लिए इड के असामाजिक व नियम विरूद्ध कार्यो को रोकने के लिए ईगो अर्थात् साधारण अन्तःकरण पुलिसमैन का कार्य करता है। व्यक्ति द्वारा क्या किया जाना चाहिए और क्या नहीं, यह इसके द्वारा निश्चित किया जाता है। एक प्रकार से यह व्यक्ति की विवेचन शक्ति है जो वास्तविकता के धरातल पर अपना कार्य करती है। मनुष्य की कौन सी इच्छाओं की कैसे और कितनी सन्तुष्टि होनी है, यह इसी के द्वारा तय किया जाता है।

सुपर ईगो (Super Ego) या उच्च अन्तःकरण-यह व्यक्तित्व के आदर्श और नैतिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। इसके द्वारा वास्तविकता की परवाह न कर आदर्शो पर जोर दिया जाता है। सुख और आनन्द की प्राप्ति के स्थान पर नैतिक और आदर्श मूल्यों की प्राप्ति ही इसका उद्देश्य होता है। क्या अच्छा है और क्या बुरा, क्या पुण्य है और क्या पाप, इस सब का सामाजिक मान्यताओं के आधार पर व्यक्तित्व के इसी पक्ष द्वारा निर्णय किया जाता है।

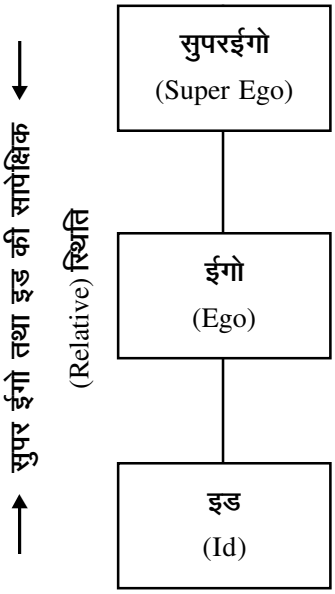

मानव मन या अन्तःकरण की संरचना
(Structure of the Human Psyche)

व्यक्तित्व के ये तीनों पक्ष एक दूसरे से बहुत अधिक सम्बन्धित हैं और तीनों के सम्मिलित रूप के ही क्रियान्वयन द्वारा व्यवहार क्रियायें होती है तथा व्यक्तित्व का निर्माण होता है। यह कैसे होता है इसके बारे में फ्रायड के निम्न विचार व्यक्त किये हैं।

1. जिन व्यक्तियों का साधारण अंतःकरण (Ego) शक्तिशाली होता है उनका व्यक्तित्व भी सन्तुलित और प्रभावशाली होता है क्योंकि उन की ईगो में इड और सुपर ईगो में उचित संतुलन बनाए रखने की क्षमता होती है।
2. अगर किसी व्यक्ति की ईगो कमज़ोर होती है तो उसका व्यक्तित्व भी असंतुलित ओर कम समायोजित (Maladjusted) होता है। इस सन्दर्भ में दो परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं-
   (a) सुपर ईगो का ईगो पर हावी होना (Super Ego defeats Ego)- जब सुपरईगों ईगो से अधिक शक्तिशाली होती है तो वह इच्छाओं और प्रव त्तियों की सन्तुष्टि के लिए उचित अवसर प्रदान नही करती, व्यक्ति अन्दर ही अन्दर घुटता रहता है और वह विक्षिप्तावस्था को जन्म देती है।
   (b) इड का ईगो पर हावी होना (Id defeats Ego)- इन्द्रिय जनित सुखों की अभिलाषा करने वाली इड ईगो पर पूरी तरह हावी हो जाती है। परिणामस्वरूप व्यक्ति अनैतिक और असामाजिक कार्यो में फंस कर अपराधी प्रव त्ति का हो जाता है।

मनोविश्लेषणवाद
(Psycho-Analytical Approach)

विचारधारा पर चलते-चलते फ्रायड के शिष्यों मुख्यतया अल्फ्रेड एडलर (Alfred Adler) तथा कार्ल युंग (Carl Yung) का फ्रायड की विचारधारा मुख्य रूप से उसके द्वारा काम या यौन (Sex) को ही मानव व्यवहार या व्यक्तित्व का केन्द्र बिन्दु मानने के कारण मत भेद उत्पन्न हो गये। अतः उन्होने अपने अलग विचार व्यक्तित्व तथा व्यवहार को जानने तथा समझने हेतु प्रतिपादित करने प्रारम्भ कर दिये।

एडलर ने अपने द ष्टिकोण को प्रतिपादित करते हुऐ बताया कि काम अथवा यौन को जीवनदायिनी शक्ति अथवा मानव व्यवहार की केन्द्रीभूत शक्ति मानना ठीक नही है। वस्तुतः व्यक्तियों में महत्वपूर्ण बनने अथवा शक्ति ग्रहण करने की बहुत अधिक अभिलाषा होती है। इसी महत्वकांक्षा को मानवशक्ति का कुंज या स्त्रोत कहा जा सकता है। हम में से प्रत्येक श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण बनने का प्रयत्न करता है परन्तु इस प्रकार के प्रयत्न सभी अपने-अपने ढंग से करते है। उसने अपने-अपने ढंग से किये जाने वाले इस वैयक्तिक प्रयास को 'व्यक्ति के जीने का ढंग' (Life Style of an Individual) नाम से सम्बोधित किया है। इसलिए व्यक्ति के व्यक्तित्व को उसके जीने के ढंग (Life Style) अर्थात् व्यक्ति द्वारा जीवन लक्ष्यों और उन अक्ष्यों की पूर्ति के लिए किये जा रहे प्रयत्नों द्वारा अच्छी तरह आंका जा सकता है।

इस प्रकार से एडलर ने व्यक्तित्व के अध्ययन में वैयक्तिक द ष्टिकोण को जन्म दिया। उसने बताया की प्रत्येक व्यक्ति के अपने जीवन द ष्टिकोण और लक्ष्य होते है जिनकी पूर्ति वह अपने एक विशेष तरीके से करना चाहता है। फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में एक विलक्षणता और अनोखापन लिए होता है। अतः व्यक्तियो को किन्ही विशेष समुह या वर्गो (Types) में वर्गीक त करना ठीक नही है।

इसी समय में युंग (Jung) ने भी मानव व्यक्तित्व की रचना तथा हमारे व्यवहार सम्बन्धी कारणों के बारे में अपने विचार अलग ढंग से प्रस्तुत किये। उसने बताया की हम जो भी व्यवहार करते है उसके पीछे वास्तव में न तो यौनसुख प्राप्ति (Sex) अभिप्रेरक कार्य करता है और न प्रभुत्व स्थापित करने की या श्रेष्ठ दिखाने की अभिप्रेरणा (Power or Self Assertion Motive) बल्कि यह इसलिए होता है कि हम सभी आत्माभिव्यक्ति (Self-Actualization) चाहते हैं। हमारे भीतर जो कुछ है हम जो भी है हमें जो भी आता है, हममें जो भी शक्तियाँ है, हमारी जो भी इच्छायें है सबको अभिव्यक्ति चाहिये ओर हमारा सारा व्यवहार इसी अभिव्यक्ति के लिये होता है। युंग की विचारधारा जो विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (Analytical Psychology) नाम से जानी जाती है उसने एडलर के व्यक्तिवाद (Individual Psychology) का विरोध करते हुए व्यक्तित्व को प्रकारों तथा वर्गो (Types) अन्तर्मुखी एवं बर्हिमुखी में बाँटने का भी प्रयत्न किया। इसकी विशेष चर्चा हम आगे इसी अध्याय में करेंगे।

विशेषक या व्यक्तित्व गुण सम्बंधी उपागम (Trait Approach)

व्यक्तित्व गुण या विशेषताओं (Personality Traits), जिन्हें विशेषक भी कहा जाता है, से तात्पर्य हमारे व्यक्तित्व और व्यवहार के उन गुणों एवं विशेषताओं से है जिनके आधार पर हमारे व्यक्तित्व की पहचान होती है। एक व्यक्ति का व्यक्तित्व व्यवहार दूसरे से किस प्रकार भिन्न है यह उन व्यक्तियों के व्यक्तित्व गुणों के आधार पर ही कहा जाता है। कुछ बहुत शांत, शर्मीले और डरपोक प्रकृति के होते है, दूसरे बहुत उग्र, अधिक खुले हुए तथा निडर प्रकृति के होते हैं। कई एकान्त में रहना पसन्द करते है तो कुछ को मेल-जोल बढ़ाना अच्छा लगता है। इस प्रकार व्यवहार एवं व्यक्तित्व की सभी विशेषताओं को व्यक्तित्व गुणों या विशेषकों का संबोधन दिया जाता है। व्यक्तित्व गुण इस प्रकार से व्यक्तित्व को परिभाषित करने, उनकी एक पहचान तथा छवि बनाने तथा एक व्यक्तित्व को दूसरे से प थक कराने के कार्य में अच्छी तरह सहयोगी होते है। ये एक प्रकार से व्यक्ति के व्यक्तित्व को वर्णन करने वाले वैसे ही गुण एवं विशेषताएं है जिस प्रकार के गुण एवं विशेषताओं द्वारा हम पशु, पक्षी तथा पेड़ पौधों को एक दूसरे से प थक करते हैं। सभी पौधे एक जैसे नही हैं। हम उन्हें उनकी पत्तियों, टहनियों, तने, जड़ फल-फूल आदि की सहायता से अलग-अलग करते हैं। पक्षियों को उनकी चोंचो, पंजों, परों के रंगों तथा अन्य व्यवहार बातों के आधार पर अलग करते है। इसलिए व्यक्तित्व गुण या विशेषक भी व्यक्ति के इसी प्रकार के गुण है जिनके आधार पर व्यक्ति की पहचान और उसे दूसरों से अलग करके देखा जाना संभव हो पाता है।

विशेषक या व्यक्तित्व गुण सम्बंधी उपागम क्या है ? (What is Trait Approach?)

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान करने या उसका वर्णन करने के लिये उसके व्यक्तित्व सम्बंधी गुणों या विशेषताओं को आधार बनाने को विशेषक उपागम का नाम दिया जाता है। इस उपागम को अच्छी तरह प्रकाश में लाने का श्रेय दो प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों गार्डन ऑलपोर्ट तथा आर॰ बी॰ कैटेल को जाता है। आगे की पंक्तियों में हम उन्हीं के प्रयासों का वर्णन करना चाहेंगे।

ऑलपोर्ट का विशेषक उपागम
(Allport's Trait Approach)

ऑलपोर्ट के अनुसार विशेषक या व्यक्तित्व गुण हमारे व्यक्तित्व की वे आधारभूत इकाइयाँ (Basic units) है जिनसे हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता है। ऑलपोर्ट ने व्यक्तित्व वर्णन के लिये जिन तीन प्रकार के गुणों या विशेषकों को हमारे सामने रखा है उनके नाम है। (i) प्रधान विशेषक (Cardinal Traits) (ii) केन्द्रीय विशेषक (Central Traits) और (iii) गौण विशेषक (Secondary Traits) कार्डीनल या प्रधान विशेषक (Cardinal Traits) ही व्यक्ति के व्यक्तित्व में सबसे प्रमुख रूप से क्रियाशील पाये जाते हैं। व्यक्तित्व को तथा व्यवहार को अपने ही रंग में रंगकर एक निश्चित दिशा देने का काम इन्हीं का होता है। ये संख्या में लगभग एक या दो ही होते हैं। किसी के व्यक्तित्व में इनका पाया जाना भी अनिवार्य नहीं होता। कुछ व्यक्ति ऐसे ही हो सकते हैं जिनके व्यक्तित्व में इस प्रकार के पूरी तरह छा जाने वाले ये एक दो व्यक्तित्व गुण (Cardinal Traits) हो हीं नहीं। प्रधान विशेषकों के उदाहरण के रूप में हम मजाकिया या हँसोड़ापन (Sense of Humour) को लेकर चल सकते हैं। जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व में यह गुण प्रधान विशेषक (Cardinal Traits) के रूप में उपस्थित होता है वह व्यक्ति अपने इसी गुण के कारण बहुचर्चित रहता है। सभी अवसरों पर (चाहे उचित हो या अशोभनीय) उसे हँसी या मजाक ही सूझता रहता है और उसका व्यक्तित्व उसके इसी व्यक्तित्व गुण या विशेषक का पर्याय बन कर रह जाता है।

केन्द्रीय विशेषक (Central Traits)- व्यक्तित्व सम्बंधी उन कुछ विशेष व्यक्तित्व गुणों या विशेषकों को कहा जाता है जो प्रायः एक व्यक्ति में व्यक्तित्व का वर्णन करने तथा उसकी पहचान बनाने के काम में लाये जाते हैं। जैसे ईमानदारी, दयालुता, सज्जनता, परोपकारिता, दबंगपन, कायरता, चाटुकारिता, कामुकता आदि। प्रायः किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को जानने तथा उसकी पहचान कायम करने के लिये इस प्रकार के 8-10 व्यक्तित्व गुणों या विशेषकों की आवश्यकता हुआ करती है।

सैकेन्डरी या गौण विशेषक (Secondary Traits) व्यक्ति के व्यक्तित्व का वह भाग जिसके होने या न होने का कोई विशेष प्रभाव उसके व्यक्तित्व की पहचान या छाप पर नहीं पड़ता। गौण नाम के अनुरूप ही इनका एक तरह से व्यक्तित्व वर्णन की द ष्टि से महत्व भी गौण ही होता है। व्यवहार में इन गुणों तथा विशेषताओं की झलक भी यदा-कदा ही देखने को मिलती है और इन्हें किसी के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग नहीं माना जा सकता। जैसे कोई, स्वार्थी, कंजूस तथा लालची प्रव ति का होते हुए यदा-कदा किसी कारणवश चन्दा देते हुए या परोपकार करते हुए देख लिया जाये।

ऑलपोर्ट के अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व को जानने, समझने उसका वर्णन कर एक अलग पहचान बनाने में इस तरह मुख्य भूमिका प्रधान विशेषकों (Cardinal Traits) तथा कुछ चुनी हुये केन्द्रीय विशेषकों (Central Traits) की ही होती है। शेष केन्द्रीय विशेषक गौण विशेषको के साथ मिलकर ऐसी विशेषताओं तथा व्यक्तित्व गुणों का निर्माण कर सकते हैं जिनकी उपस्थिति सामान्यतया बहुत से व्यक्तियों में पाई जाती हो। ऐसे सभी व्यक्तित्व गुणों को सामान्य विशेषकों (Commen Traits) का नाम दिया जा सकता है। अतः किसी के व्यक्तित्व की पहचान तथा उसे जानने समझने हेतु हमें उसके व्यक्तित्व में निहित पहले दो प्रकार के व्यक्तित्व गुणों (Traits) कार्डीनल तथा केन्द्रीय विशेषकों पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित करने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि ये ही गुण या विशेषक किसी के व्यक्तित्व को विशेष या अद्वितीय बनाते है।

व्यक्तित्व के वर्णन हेतु कितने व्यक्तित्व गुण या विशेषकों की आवश्यकता है यह निश्चित करने के लिए ऑलपोर्ट ने अपने एक सहयोगी ऑडबर्ट (odbert) के साथ मिलकर शब्दकोषों में से व्यक्तित्व गुणों को प्रकट करने वाले 17953 शब्दों का विश्लेषण किया तथा उनमें से समानार्थी तथ कुछ कम उपयोगी शब्दों को निकालकर ऐसे 4541 शब्दों का चयन किया जिनके द्वारा व्यक्तित्व तथा व्यवहार का ठीक प्रकार वर्णन किया जा सकें।

इस तरह ऑलपोर्ट न व्यक्तित्व गुणों या विशेषकों के माध्यम से व्यक्तित्व को जानने तथा समझने का एक नवीन उपागम विकसित करने की शुरूआत की जिसे आगे चलकर कैटेल जैसे मनोवैज्ञानिकों ने पूर्ण वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

कैटेल का व्यक्तित्व गुण या विशेषक उपागम
(Cattell's Trait Approach)

आर॰ बी॰ कैटेल ने व्यक्तित्व का वर्णन करने सम्बंधी ऑलपोर्ट के व्यक्तित्वगुण या विशेषक उपागम (Trait Approach) को आगे

बढ़ाने के प्रयत्न जारी रखे। उसने ऑलपोर्ट द्वारा दिये गये 17,953 शब्दकोषीय शब्दों को (जो विभिन्न व्यक्तियों के व्यक्तित्व वर्णन करने प्रयोग में लाये जा सकते थे) अपने कार्य का आधार बनाया तथा यह कोशिश की व्यक्तित्व के वर्णन हेतु कम से कम पारिभाषिक शब्दों या परिमाणों (Dimensions) का प्रयोग किया जाये। यह सब कराने के लिए उसने कारक विश्लेषण (Factor Analysis) तकनीक का प्रयोग किया। उसने यह सब कैसे किया, आइये इसे साधारण तरीके से समझने का प्रयत्न किया जाये।

(1) उसने ऑलपोर्ट के द्वारा दी गई शब्द कोषीय 17,953 शब्दों की सूची में से 4000 शब्दों को छाँटकर अपना कार्य शुरू किया। व्यक्तित्व तथा व्यवहार जन्य गुणों को प्रकट करने वाले इन शब्दों में वह समानता तथा सम्बन्ध देखता गया और इस तरह अंत में उसने मात्र 171 शब्दों की एक सूची प्रस्तुत की और इस प्रकार वह ऑलपोर्ट के 17,953 व्यक्तित्व गुणों के स्थान पर इनकी संख्या मात्र 171 निश्चित करने में सफल हुआ। व्यक्तित्व वर्णन सम्बंधी इन शब्दों को उसने विशेषक या विशेषता सूचक तत्व (Trait Elements) कहा।

(2) फिर उसने इन शब्दों में सम्बन्ध ढूंढने का प्रयास किया। उसने देखा कि प्रत्येक विशेषतासूचक तत्त्व कुछ के साथ गहरा सम्बन्ध रखता है और कुछ के साथ कम। इस आधार पर वह अधिक मिलते-जुलते तत्त्वों के विशिष्ट समूह बनाने में सफल हो गया जिन्हें उसने ऊपरी विशेषता या वाह्य विशेषक (Source Trait) का नाम दिया।

(3) उसने पुनः इन ऊपरी विशेषताओं के आपसी सहसम्बन्ध का अध्ययन किया। उसने पाया कि कुछ एक दूसरे से बहूत अधिक मिलते-जूलते है। मिलती-जूलती विशेषताओं को इकट्ठा रूप दे कर वह अपने इच्छित मूल परिमाणों (Basic dimensions) तक पहुंच गया जिन्हें उसने आधारभूत विशेषकों (Source Tait) का नाम दिया।

(4) इन आधारभूत या मूल विशेषकों (Source Traits) जिनकी संख्या 16 थी को उनके विपरीत व्यक्तित्व गुणों या विशेषकों (Opposite Traits) के साथ समन्वित करके उसने व्यक्तित्व वर्णन हेतु 16 व्यक्तित्व कारकों (Opposite Traits) के साथ समन्वित करके उसने व्यक्तित्व वर्णन हेतु 16 व्यक्तित्व कारकों (Personality factors) को जिस प्रकार हमारे सामने रखा उसे निम्न तालिका द्वारा अच्छी तरह समझा जा सकता है।

तालिकाः कैटल के 16 व्यक्तित्व कारकों में विद्यमान विभिन्न व्यक्तित्व गुण या विशेषक

कारक क्रमांक (Factors)	व्यक्तित्व गुण (Traits)	परस्पर विरोधी व्यक्तित्व गुण (Opposite Traits)
1.	भावुक/संवेगात्मक रूप से अस्थिर	शांत/संवेगात्मक रूप से स्थिर
2.	विवेकशील	अविवेकपूर्ण
3.	स्वयं में सीमित/मित्रता रहित	मेलजोल वाला/मित्रतापूर्ण
4.	दबंग/अधिकार जमाने वाला	द ढ़ता का अभाव/नम्र
5.	सादा एवं संयमी/गंभीर	मस्त मौला
6.	अन्तरात्मा से प्रेरित	स्वहित से प्रेरित
7.	शर्मीला/डरपोक	साहसी
8.	नाजुक	सख्त
9.	शंकालु	विश्वास करने वाला
10.	व्यवहारशील	कल्पनाशील
11.	चालाक/हेराफेरी वाला	सीधा/बिना हेराफेरी वाला
12.	आत्मविश्वासी/संतोषी	शंकित
13.	रूढ़िवादी	प्रगतिशील
14.	दूसरों पर निर्भर	आत्म निर्भर
15.	अनुशासनहीन	स्वअनुशासित
16.	चिंतामुक्त	चिंतित/बैचेन

कैटेल ने अपने इन 16 आधारभूत परिमाणों (Basic Dimensions) या व्यक्तित्व कारकों (Personality Factors) का उपयोग एक व्यक्तित्व परिसूची (Personality Inventory) बनाने में किया जिसे कैटल की 16 व्यक्तित्व कारक परिसूची (Cattell's sixteen personality factors or sixteen P. F. Inventory) के नाम से जाना जाता है व्यक्तियों के व्यक्तित्व के मापन हेतु इस परिसूची का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। इस तरह व्यक्तित्व गुणों या विशेषकों के माध्यम से व्यक्तित्व की जाँच या परख करने हेतु कैटेल के प्रयासों को काफी सराहनीय कदम माना जा सकता है।

व्यक्तित्व वर्ग या प्रकार सम्बंधी उपागम (Type Approach)

इस उपागम में व्यक्तियों के व्यक्तित्व को कुछ निश्चित प्रकारों या वर्गो में वर्गीक त करने का प्रयत्न करके यह दावा किया जाता है कि किसी भी व्यक्ति को उसके अपने व्यवहार एंव व्यक्तित्व सम्बंधी गुणों एंव विशेषताओं के आधार पर किसी एक या दूसरे वर्ग (Type) में रखा जा सकता है। विभिन्न मनोवेज्ञानिकों ने इस तरह व्यक्तियों को कुछ विशेष प्रकारों या वर्गो में बाँटने हेतु अपने-अपने ढ़ंग से विभिन्न प्रयास किये है इनमें से कुछ को आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. **हिपोक्रेटस का वर्गीकरण (Hippocrates Types)-** यूनानी शरीरशास्त्री हिपोक्रेटस ने व्यक्तियों को स्वभाव (Temperaments) तथा शारीरिक स्वास्थ्य दोनों में सम्बंध दिखाते हुए निम्न चार विभिन्न प्रकारों में बाटनें का प्रयत्न किया है।

	शारीरिक अवस्था	स्वभाव व व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषतायें
1.	कफ प्रव ति वाले (Choleric)	चुस्त परन्तु चिड़चिड़ा, स्वभाव, संवेगात्मक रूप से कमजोर परन्तु शारीरिक रूप से शक्तिवान
2.	काले पित्त वाले (Melancholic)	निराशावादी, शक्तिहीन और दुखी, संवेगात्मक और शारीरिक दोनों द ष्टि से कमजोर
3.	पीले पित्त वाले (Phiegmatic)	आनन्द युक्त एवं सुस्त, संवेगात्मक रूप से सशक्त परन्तु शारीरिक रूप से कमजोर
4.	अधिक रूधिर वाले (Sanguinic)	रूधिर की मात्रा अधिक, कर्मठ, असहिष्णु, शीघ्रगामी और आशावादी शारीरिक रूप से सबल और संवेगात्मक रूप से स्थिर एवं संतुलित।

2. **क्रेशमर का वर्गीकरण (Kretschmer's classification)-** क्रेशमर ने शारीरिक बनावट के द ष्टिकोण से मनुष्यमात्र को कुछ जैविक समूह या वर्गो (Biological Types) में बांटने का प्रयत्न किया है और प्रत्येक वर्ग की मुख्य विशेषताओं को भी प्रकाश में लाया है।

	व्यक्तित्व के प्रकार (Personality Types)	व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताएं (Personality Characteristics)
1.	पिकनिक प्रकार अर्थात् मिलनसार व्यक्ति (Picnic Type) - छोटा कद, शरीर मोटा और चर्बी वाला	सामाजिक, विनोदप्रिय, बहिर्मुखी, आरामतलब और लोकप्रिय।
2.	ऐथलैटिक प्रकार अर्थात् खिलाड़ी प्रक ति वाले (Atheletic Type)) - सशक्त अस्थि पंजर, बलवान मांसपेशियां, चौड़ा सीना तथा संतुलित शरीर	सुखी, द ढ़ निश्चयी, चुस्ती एवं फर्तीलापन, आशावादी एवं समायोजित

3.	लेप्टोसोमेटि प्रकार अर्थात् निर्बल शरीर वाले (Leptosomatic Type) - लम्बे और दुबले पतले, सीना छोटा, पेट पीठ से लगा हुआ	शर्मीले और एकान्तप्रिय, निराशावादी, सामाजिक रूप से असमायोजित।

3. **शेल्डन का वर्गीकरण (Sheldon's Classification)-** क्रेशमर की भाँति शेल्डन ने भी व्यक्तियों को उनकी शारीरिक बनावट के आधार पर विभिन्न प्रकारों में विभाजित कर उनके विभिन्न गुणों एंव विशेषताओं की निम्न रूप में चर्चा की।

	व्यक्तित्व के प्रकार (Personality Types)	**शारीरिक बनावट और ढाँचा** (Somatic or Body Structure)	**व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषतायें** (Personality Characteristics)
1.	गोलाकार या एन्डोमोरफिक (Endomorphic)	शक्तिहीन, मोटे तथा कोमल शरीर वाले (क्रेशमर के पिकनिक प्रकार जैसे)	आरामतलब, सामाजिक और स्नेहशील
2.	आयताकार या मीसोमोरफिक (Mesomorphic)	शारीरिक रूप से संतुलित, अच्छा स्वास्थ्य और फुर्तीला बदन। (क्रेशमर के ऐथलैटि प्रकार जैसे)	साहसी, निडर, फुर्तीले, आशावादी तथा कर्मठ
3.	लम्बाकार या एक्टोमोरफिक (Ectomorphic)	कमजोर एवं शक्तिहीन, लम्बे, दुबले पतले शरीर तथा अविकसित सीने वाले (क्रेशमर के लेप्टोसोमेटिक प्रकार जैसे)	निराशावादी, असामाजिक एकान्तप्रिय और चिड़चिड़ा स्वभाव।

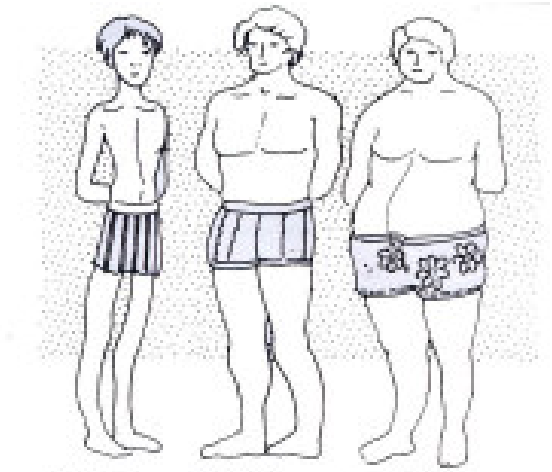

हिप्पोक्रेटस, क्रेशमर और शेल्डन आदि उपरोक्त मनोवैज्ञानिकों ने शारीरिक बनावट और व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं में निश्चित रूप से जो सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है वह अपने आप में बहुत भ्रामक है। इस प्रकार का सम्बन्ध अवश्य होता है, यह बात वास्तविकता से बहुत दूर है।

4. **युंग का वर्गीकरण (Yung's Classification)-** युंग ने सभी व्यक्तियों को उनके सामाजिक कार्यो मे भाग लेने अथवा रूची प्रदर्शित करने के द ष्टिकोण से अन्तर्मुखी (Introvert) और बर्हुमुखी (Extravert)- दो निश्चित वर्गो में वर्गीक त करने का प्रयत्न किया। बाद इन वर्गो को उसने फिर उपवर्गो में विभक्त किया। इस प्रक्रिया में उसने चिन्तन

(Thinking), भावना (Feeling), संवेदन (Sensation), और अन्तर्दृष्टि (Intuition) नामक मनोवैज्ञानिक क्रियाओं को अपने अन्तर्मुखी और बर्हिमुखी वर्गो के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया।

युंग द्वारा किए हुए इस वर्गीकरण की काफी आलोचना की गई। कहा गया कि सामान्यता व्यक्तियों को इस प्रकार के समूहों में विभक्त नहीं किया जा सकता। पूर्णतः अन्तर्मुखी अथवा बर्हिमुखी होने के स्थान पर अधिकांश व्यक्तियों में दोनो ही प्रकार के लक्षण पाये जाते है। अतः अन्तर्मुखी और बर्हिमुखी होने के स्थान पर उभयमुखी (Ambivert) प्रकार का व्यक्तित्व अधिक देखने को मिलता है। इस प्रकार से युंग द्वारा मनोवैज्ञानिक क्रियाओं के आधार पर व्यक्तियों को दो निश्चित उपवर्गो में विभाजित करने का औचित्य ही लगभग समाप्त सा हो जाता है।

5. **फ्रायडमैन तथा रोजनमैन का वर्गीकरण (Friedman's and Rosenman's Classification)-** मेयर फ्रायडमैन तथा रे रोजनमैन द्वारा प्रतिपादित यह वर्गीकरण व्यक्तियों को उनके व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों के आधार पर दो प्रकारों या समूहों A तथा B में विभक्त करना है तथा यह बताने का प्रयत्न करता है कि कौन से प्रकार (A Type or B Type) के व्यक्तियों में हृदय रोग से पीड़ित होने की संभावना अधिक रहती है। हृदय रोग में अधिक प्रचलित और सामान्य बात यही आई है कि धमनियों तथा शिराओं (Arteries and Veins) में जो कि रक्त वाहिनी नाड़ियाँ (Blood Carrying Nerves) होती हैं रक्त के थक्के (Blots) बन जाते हैं परिणामस्वरूप रक्त का बहाव रूक जाता है। इन नाड़ियों में रक्त के थक्के जमने का कारण रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा की अधिकता माना जाता रहा है। यह इसी प्रकार की बात है जैसे किसी पानी के निकास की नाली में धीरे-धीरे इस प्रकार के पदार्थ जमा हो जाये जो उस नाली को धेरते रहे तथा पानी निकलने के रास्ते को बन्द करते रहें। कोलस्ट्रोल रक्त को गाढ़ा कर उसमें थक्के (Blots) बनाकर रक्त के आवागमन में इसी तरह बाधक बनता है। जब हृदय को रक्त की उचित मात्रा मिलनी बन्द हो जाती है तो उसका काम करना बन्द करना स्वाभाविक ही है। चिकित्सा जगत में होने वाले अनुसंधानों ने हृदय से रक्त न मिलने तथा उसका काम न करने का एक और कारण 1955 में तलाश किया। उन्होंने यह करण तनाव और दबाव (Strains and Stresses) बताया। मेयर फ्रायडमैन तथा रोजनमैन ने अपने अध्ययनों के द्वारा इन चिकित्सा शास्त्रियों की काफी मदद की क्योंकि उन्होंने उन व्यक्तियों को खोजने का मार्ग आसान कर दिया जो अधिक तनाव तथा दबाव से धिरे रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों को उन्हें A प्रकार के व्यक्ति कहा तथा उनकी दूसरों से अलग करके पहचान करने के लिये उनके कुछ व्यक्तित्व गुणों या विशेषकों (Personality Traits) को भी सामने रखा। उनके विरोधी व्यक्तित्व गुणों से युक्त व्यक्तियों को उन्होने बी प्रकार (B-Type) के व्यक्ति कहा ओर इस तरह व्यक्तित्व की पहचान का वर्णन करने के लिये व्यक्तियों को A तथा B प्रकारों में बाँटने का अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया। नीचे हम उनके द्वारा प्रतिपादित दोनों प्रकारों से सम्बंधित व्यक्तित्व गुण तथा विशेषकों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

'ए' प्रकार का व्यक्तित्व (A Type Personality)	**'बी' प्रकार का व्यक्तित्व** (B Type Personality)
संवेगात्मक रूप से अस्थिर, तनाव युक्त, चिन्तित, चिड़चिड़ा स्वभाव, प्रतिस्पर्धी, उच्च उपलब्धि अभिप्रेरणा, मूडी और अपनी इच्छाओं तथा भावनाओं के वशीभूत, उदासीन और एकान्त प्रिय, जल्दबाज, शंकालु, ईर्ष्यालु, क्रोधी तथा उग्र स्वभाव, आक्रामक, दूसरों से तथा अपने आप से परेशान, किसी काम के बुरी तरह पीछे पड़ने वाले तथा किसी भी काम की पूर्णता या उसके परिणाम से संतुष्ट न होने वाले, बहुत अधिक आदर्शवादी तथा समय के अनुसार अपने आपको बदलने में असमर्थ, समय की पाबन्दी तथा नियमों के पालन के प्रति अधिक चिन्तित।	संवेगात्मक रूप से स्थिर, तनाव मुक्त, चिन्ता मुक्त, मस्तमौला, सामान्य उपलब्धि अभिप्रेरणा, विश्वास करने वाला, असंवेदनशील, धीमीगति या संयम से काम करना, अपने आप से तथा अपने वातावरण से समायोजित, शांत स्वभाव, किसी काम को बहुत ज्यादा गंभीरता से नहीं लेना, कार्य परिणामों से संतुष्टि अनुभव करने वाला, भाग्यवादी, यथार्थवादी द ष्टिकोण, तथा आवश्यकतानुसार अपने विचारों तथा कार्यप्रणाली में परिवर्तन करने वाला।

विशेषक एवं प्रकार समन्वित उपागम
(Trait Cum Type Approach)

यह उपागम व्यक्तियों की उनके व्यक्तित्व गुणों या विशेषकों के आधार पर व्याख्या करने (Trait Approach) तथा उन्हें या प्रकारो में विभाजित करने (Type Approach) दोनों ही द ष्टिकोणों का समन्वय करने का प्रयत्न करता है।

आइजैन्क द्वारा प्रतिपादित उपागम इसी श्रेणी में आता है। वह इस मामले में गार्डन ओलपोर्ट तथा आर॰ बी॰ कैटल से कुछ और आगे बढ़ जाता है। वह किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्णन करने तथा उसकी पहचान कायम करने के लिये उसके व्यक्तित्व सम्बंधी गुणों (Traits) की ही चर्चा नहीं करता बल्कि इन गुणों के आधार पर व्यक्तियों को निश्चित वर्गो या प्रकारों में बाँटने का भी प्रयत्न करता है। आइजैन्क ने व्यवहार सम्बंधी विशेषताओं तथा व्यक्तित्व गुणों (Traits) को संगठित करके विशिष्ट वर्ग या प्रकार कैसे बनाये, यह चित्र द्वारा अच्छी तरह स्पष्ट हो सकता है।

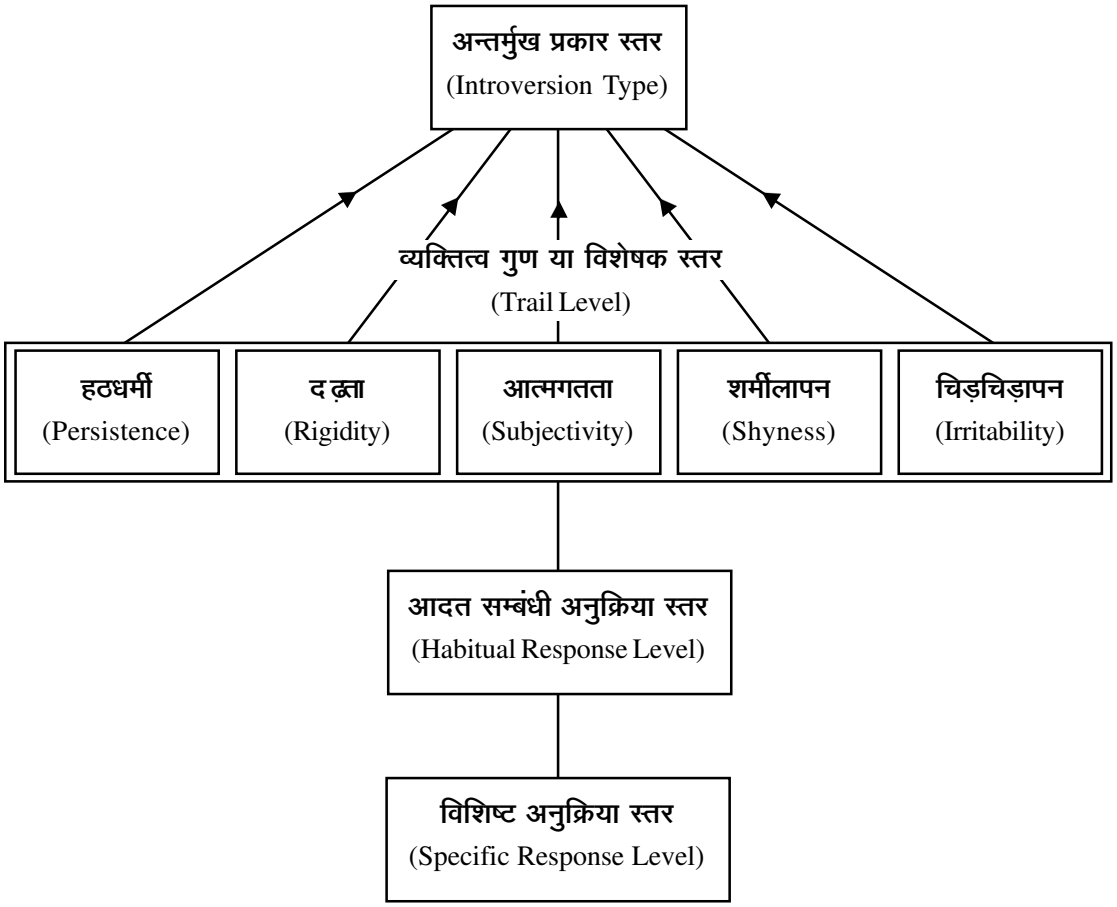

आइजैन्क द्वारा प्रतिपादित व्यवहार स्तर उपागम
(Eysenck's Trait Cum Type Approach)

व्यवहार संगठन की प्रक्रिया को आईजैन्क द्वारा चार स्तरों में विभाजित किया गया है।

1. सबसे निचले स्तर पर विशिष्ट अनुक्रियाएं (Specific Responses) आती हैं। ये किसी भी एक उद्दीपन (Stimulus) के प्रति होने वाली विशेष अनुक्रिया को व्यक्त करती हैं। उदाहरण के रूप में-शर्म के कारण चेहरे का लाल हो जाना (Blushing) एक विशिष्ट अनुक्रिया है।

2. दूसरे स्तर पर स्वभाविक या आदत सम्बन्धी अनुक्रियाएं (Habitual Responses) आती हैं अगर कोई व्यक्ति एक सी परिस्थितियों में बार-बार एक जैसी अनुक्रिया व्यक्त करे तो हम उसे आदत सम्बन्धी अनुक्रिया कहते हैं। उदाहरण के रूप में-दूसरों को शीध्र मित्र न बना सकना, अपरिचितों से बात करने में हिचकचाना आदि आदत सम्बन्धी अनुक्रियाएं कही जा सकती हैं।

3. तीसरे स्तर पर आदत सम्बन्धी अनुक्रियाओं का व्यक्तित्व सम्बन्धी विशिष्ट विशेषताओं (Specific Responses) के रूप में संगठन होता है। व्यवहार सम्बन्धी सभी एक सी विशेषताओं को किसी एक विशेष विशेषता के रूप में संगठित कर लिया जाता है। ऊपर के उदाहरण में दी गई आदत सम्बन्धी अनुक्रियाएं, शर्मीलापन (Shyness) नामक विशिष्ट गुण को जन्म देती है।

4. चौथे स्तर पर विशिष्ट विशेषताओं (Traits) को एक सामान्य वर्ग या समूह (Definite Type) का नाम दिया जाता है। प्रस्तुत चित्र में हठधर्मी, द ढ़ता, आत्मनिष्ठा, शर्मीलापन और चिड़चिड़ापन आदि विशेषताओं (Traits) से मिलकर एक विशेष समूह या वर्ग का निर्माण हुआ है जिसे अन्तर्मुखी प्रव त्ति (Introversion) का नाम दिया गया है।

इस प्रकार अन्तिम स्तर पर जा कर हमें निश्चित समूह या वर्गो की प्राप्ति होती है। एक व्यक्ति को अन्तर्मुखी प्रव त्ति वाला (Introvert) कहा जा सकता है। अगर उसमें तीसरे स्तर पर दिखाई गई व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताएं (Traits) हों, द्वितीय स्तर पर वर्णन की गई आदतें हों और प्रारम्भिक स्तर पर दिखई जाने वाली विशिष्ट अनुक्रियाओं (Responses) को वह अभिव्यक्त करता हो।

आईज़ैन्क ने निष्कर्ष रूप में व्यक्तियों को चार विभिन्न समूहों या वर्गो (Types) में विभाजित किया है। ये वर्ग निम्न हैं-

1. अन्तर्मुखी प्रव त्ति (Introversion)।
2. बहिर्मुखी प्रव्त्ति (Extraversion)।
3. उन्मादावस्था (Neutroticism)।
4. साइकोटिसिज्म (Psychoticism)।

उसने इन विभिन्न वर्गो के साथ अलग-अलग व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं और गुणों को बतलाने की चेष्टा भी की है।

इनमें से पहले दो प्रकार सामान्य व्यक्तियों (Normal) को वर्गीक त करने में प्रयुक्त हो सकते हैं तो अंतिम दो प्रकारों (Types) को असामान्य व्यक्तियों (Abnormals) के वर्गीकरण या व्याख्या करने हेतु काम में लाया जा सकता है।

व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Affecting Personality)

व्यक्तित्व को प्रभावित कारकों से हमारा अभिप्रायः उन बहुत सी बातों तथ्य या परिस्थितियों से होता है जो किसी न किसी रूप में बालक के व द्धि एवं विकास, व्यवहार तथा व्यक्तित्व निर्माण को गर्भाधान के समय होने वाले वंशानुक्रम सम्बंधी हस्तान्तरण से प्रांरभ कर जीवन भर प्रभावित करते ही रहते हैं। व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले इन कारकों को मुख्य रूप से निम्न तीन प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है।

1. शारीरिक एवं जैविक कारक (Physiological and Biological Factors)
2. मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)
3. सामाजिक एवं सांस्क तिक कारक (Social and Cultural Factors)

शारीरिक एवं जैविक कारक
(Physiological and Biological Factors)

1. वंशक्रम संबंधी प्रभाव (Hereditary Influences)- गर्भाधान के समय में मां ओर बाप के रज और वीर्य में उपस्थित जिन क्रोमोसोम तथा जीन्स का बालक को हस्तान्तरण होता है और उससे पैत क एवं वंशक्रम संबंधी जो गुण एवं विशेषताएं

विरासत के रूप में बालक को प्राप्त होती हैं वे सभी तरह से व्यक्तित्व रूपी भवन के लिए ठोस बुनियाद का कार्य करती हैं। ये वह पूंजी है जिसे लेकर बालक अपना जीवन व्यापार शुरू करता है। यह विरासत की पूंजी तथा बुनियाद जितनी कम या अधिक तथा कमज़ोर या पुख्ता होगी व्यक्तित्व संबंन्धी निर्माण कार्य में उतनी ही असफलता या सफलता मिलेगी। दूसरे शब्दों में उतनी ही कम या अधिक मेहनत व्यक्तित्व निर्माण में हमें करनी होगी जितनी अधिक या कम पूंजी बालक को विरासत के रूप में अपनी वंशक्रम धरोहर से प्राप्त होगी। इस तरह वंशक्रम संबंधी धरोहर का बालकों के व्यक्तित्व निर्माण में जीवन के प्रथम चरण से ही स्पष्ट प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो जाता है।

2. स्नायु संस्थान (Nervous System) हमारा स्नायु संस्थान हमारे अपने व्यवहार को नियन्त्रित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किस समय व्यक्ति कैसा व्यवहार करेगा, यह उसके अपने मस्तिष्क द्वारा लिये जाने वाले निर्णय के ऊपर ही निर्भर करता है। हमें अपनी ज्ञानन्द्रियों के माध्यम से जो भी संवेदना (Sensation) होती है। वह स्नायु संस्थान द्वारा ही अर्थपूर्ण बनती है। हमारे कान सुनते हैं, परन्तु उन्होने क्या सुना, यह मस्तिष्क ही बताता है। इसी तरह जो भी गन्ध हमारी नासिका ग्रहण करती है, वह सुगन्ध है या दुर्गन्ध, इसका निर्णय मस्तिष्क ही लेता है। इस प्रकार से इन्द्रियों के माध्यम से रस, रंग-रूप, गन्ध, ध्वनि और स्पर्श का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में स्नायु संस्थान हमारी पूरी सहायता करता है। बहुत कुछ सीमा तक हमारी सीखने की प्रक्रिया भी स्नायु संस्थान द्वारा ही नियन्त्रित होती है। बहुत कुछ सीमा तक हमारी सीखने की प्रक्रिया भी स्नायु संस्थान द्वारा ही नियन्त्रित होती है। सीखने की प्रक्रिया में मानसिक शक्तियों की कुंजी हमारे स्नायु संस्थान और विशेष रूप से मस्तिष्क के पास है। उचित मानसिक और बौद्धिक विकास के लिए स्नायु संस्थान के सभी महत्त्वपूर्ण अवयवों का ठीक प्रकार विकसित होना तथा भली भांति कार्य करते रहना अत्यन्त आवश्यक है। सुषुम्ना और मस्तिष्क में अगर कहीं किसी तरह थोड़ा बहुत दोष पैदा हो जाए तो बच्चे के मानसिक विकास पर उसकी गम्भीर प्रतिक्रिया होती है। इसके अतिरिक्त हमारे शरीर की शारीरिक और संवेगात्मक क्रियाओं के संचालन में भी स्नायु संस्थान महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रक्त संचार, पाचन, श्वसन और ग्रन्थियों के स्त्राव के सम्बन्धित क्रियाएं जिनके बिना हमारा जीवित रहना भी कठिन ही है, हमारे स्वतन्त्र स्नायु स्थान (Autonomic Nervous System) द्वारा ही नियन्त्रित होती हैं। व्यक्ति का संवेगात्मक और शारीरिक क्रियाओं को नियन्त्रित करने के अतिरिक्त स्नायु संस्थान उसके संवेगात्मक और शारीरिक विकास में भी पूरा-पूरा साथ देता है। रस ग्रन्थियों के स्त्राव पर भी नाड़ी तन्तु पूरा-पूरा प्रभाव रखते हैं और इस तरह से व्यक्ति के संवेगात्मक व्यवहार को दिशा प्रदान करना इनके हाथ में ही होता है। इसके अतिरिक्त स्नायु संस्थान अपने नाड़ी जाल और अन्य महत्त्वपूर्ण अवयवों के माध्यम से मानव शरीर द्वारा किये जाने वाले सभी महत्त्वपूर्ण बाह्य और अन्तः क्रिया-कलापों को संयाजित और संगठित करने का प्रयास करता है।

   इसके इतने सारे महत्त्वपूर्ण कार्यो को देखते हुए यह अच्छी तरह कहा जा सकता है कि स्नायु संस्थान मानव शरीर रूपी मशीन का एक बहुत ही उपयोग कल पुर्जा है। जो इसके ठीक प्रकार कार्य करने के लिए बहुत ही आवश्यक है और बच्चे के व्यक्तित्व के समुचित विकास में यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण भमिका निभाता है।

3. प्रणालिका विहीन ग्रथियाँ (Ductless or Endocrine Glands)- हमारे शरीर में कई ग्रन्थियां (Glands) हैं जिनके द्वारा आन्तरिक और बाह्य रूप में विभिन्न रसायनिक रस स्त्रावित होते रहते हैं। इनको स्पष्ट रूप से दो निम्न भागों में बांटा जा सकता है।

   (a) **प्रणालिका युक्त ग्रन्थियां** (Duct Glands)

   (b) **प्रणालिका विहीन ग्रन्थियां** (Ductless Glands)

लार ग्रन्थियों की तरह कई ग्रन्थियां जो अपने द्वारा बनाये गये रसों को बारीक नालिकाओं या प्रणालियों (Ducts) के द्वारा बाहर निकालती हैं, प्रणालिका युक्त ग्रन्थियां (Duct Glands) कहलाती हैं। इसके विपरीत ऐसी ग्रन्थियां जिनमें उत्पन्न होने वाले रस किसी प्रणालिका (Duct) द्वारा बाहर की ओर नहीं बहते, बल्कि ग्रन्थि से निकल कर सीधे रक्त में मिल जाते हैं, प्रणालिका विहीन ग्रन्थियां (Ductless Glands) कहलाती हैं। इन ग्रन्थियों द्वारा निर्मित रसों को हारमोन (Hormone) कहा जाता है। मानव शरीर में ये ग्रन्थियां अपने-अपने निश्चित स्थानों पर क्रियाशील रहती हैं।

अतः हम यह कह सकते हैं की सभी ग्रन्थियां व द्धि और विकास के हर पहलू को पूरी तरह प्रभावित करती है। इनके माध्यम से व्यवहार और शारीरिक क्रियाओं को नियन्त्रित किया जाता है और हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को दिशा प्रदान की जाती है। इन ग्रन्थियों द्वारा उत्पन्न हारमोन्स ही हमारे व्यक्तित्व की विशेषताओं और गुणों के लिए उत्तरदायी ठहराए जा सकते हैं।

4. शारीरिक ढ़ाचा एवं बनावट (Physique and somatic structure)- शारीरिक ढ़ाचा एवं बनावट किसी के व्यक्तित्व का आवश्यक अंग होने के अतिरिक्त असके संपूर्ण व्यवहार या व्यक्तित्व के निर्धारण करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

   बालक का कद, भार, रंग, रूप शारीरिक शक्ति और स्वास्थ, शारीरिक न्यूनताएं और असमानताएं आदि शारीरिक विशेषताएं, व्यक्तित्व के विकास को बहुत अधिक प्रभावित करती है। इस प्रभाव के दो रूप हो सकते हैंः-

   1. बालक शारीरिक विशेषताओं के द ष्टिकोण से जितना अधिक सम्पन्न अथवा अभावग्रस्त होता है, उसका जीवन के प्रति द ष्टिकोण, आपसी व्यवहार करने का ढंग, मूल्य और मान्यताएं उसी के अनुकूल बन जाती हैं।
   2. बालक की अपनी शारीरिक बनाबट के प्रति दूसरे व्यक्ति जिस प्रकार की भावनाओं का प्रदर्शन करते हैं और बालक उसके आधार पर अपने बारे में जो भी धारणाएं बनाता है, उनका प्रभाव उसके व्यक्तित्व के निर्माण में अवश्य पड़ता है। आत्महीनता का आत्मगौरव की प्रव त्तियां तथा विभिन्न कुंठाओं और व्यवहार चेष्टाओं को इसी से जन्म मिलता है।

5. शरीर रसायन (Body chemistry)- बालक के व्यवहार एवं व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने में उसके शरीर रसायनों का भी काफी महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। हमारे शरीर को कार्य करने के लिए जो शक्ति मिलती रहती है उसे प्रदान करने में शरीर के भीतर चल रही रासायनिक क्रियाओं का सहयोग रहता है। शर्करा को ग्लूकोज में बदलना, भोजन का पचना, सांस के अंदर और बाहर जाने के रूप में आक्सीजन का कार्बनडाई आक्साईड के रूप में बाहर आना, आक्सीकरण की क्रिया का संपन्न होना, दिन रात हमारे शरीर में चलते रहते हैं। ये क्रियाएं जिस ढ़ग से हमारे में संपन्न होती हैं उसी रूप में हमारा व्यवहार और व्यक्तित्व प्रभावित होता है। शरीर रसायन संबंधी थोड़ी सी गड़बड़ी और असंतुलन व्यक्तित्व के विकास और व्यवहार को बुरी तरह प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए स्नायु द्रव्य (Nervous Fluid) की मात्रा अधिक होने से व्यक्ति में धबराहट (Nervousness) बढ़ जाती है। इसी प्रकार शरीर में शर्करा (Sugar) की निश्चित मात्रा विद्यमान रहने से ही व्यक्ति स्वस्थ रहता है और असका व्यवहार सामान्य रहता है। इसकी मात्रा में कमी तथा अधिकता दोनों ही व्यक्ति के व्यवहार और व्यक्तित्व को असामान्य बनाने की सामर्थ्य रखते हैं।

मनोवैज्ञानिक कारक
(Psychological Factors)

मानव व्यवहार तथा व्यक्तित्व को प्रभावित करने की द ष्टि से मनोवैज्ञानिक कारक काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कुछ उल्लेखनीय मनोवैज्ञानिक कारकों का वर्णन नीचे किया जा सकता हैः

1. **बुद्धि और मानसिक विकास (Intelligence and Mental Functioning)**- बालक की बुद्धि और मानसिक विकास का उसके व्यक्तित्व के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। कौई कैसे व्यवहार करता है यह उसकी बुद्धि और मानसिक क्षमताओं पर बहुत कुछ निर्भर करता है। व्यक्ति का संपूर्ण समायोजन, सीखने की प्रक्रिया और उसमें सफलता, ज्ञान तथा कौशलों का अर्जन, निर्णय लेने की क्षमता, समस्याओं को सुलझाने की योग्यता तथा व्यक्तियों तथा परिस्थितियों से तालमेल रखने सम्बंधी कौशल तथा समझदारी सभी कुछ उसके बौद्धिक विकास पर ही निर्भर करता है। एक तरह से व्यक्ति का संपूर्ण व्यवहार उसकी बुद्धि से ही नियमित रहता है और व्यक्ति का व्यवहार वही बनता है जो उसकी बुद्धि और मानसिक क्षमता द्वारा बनाया जाता है।

2. **रूचियां एवं द ष्टिकोण (Interests and Attitudes)**- व्यक्ति की रूचियां और द ष्टिकोण उसके व्यवहार करने के तरीकों तथा व्यक्तित्व पर काफी प्रभाव डालते हैं। हम उन्हीं बातों को कहना, सुनना तथा करना चाहते हैं जिनमें हमारी किसी न किसी तरह से कोई रूचि होती है। जिनके प्रति सकारात्मक द ष्टिकोण होता है उन बातों तथा व्यक्तियों को पसंद किया जाता है उनका सामीप्य हमें अच्छा लगता है और जिनके प्रति नकारात्मक द ष्टिकोण होता है उनसे

हम दूर भागना चाहते हैं। इस तरह हमारा व्यवहार किन्हीं वस्तुओं, विचारों या व्यक्तियों के प्रति जैसा रहता है, या बहुत कुछ हमारी रूचियों तथा द ष्टिकोणों पर निर्भर करता है। हमारा व्यक्तित्व भी उन्हीं के रंग में रंग जाता है इस बात में कोई संदेह नहीं है और इस तरह रूचियाँ और द ष्टिकोण-मनोवैज्ञानिक निर्धारकों के रूप में सशक्त भूमिका निभाने की पूरी क्षमता रखते हैं।

3. **महत्वाकांक्षा का स्तर एवं उपलब्धि अभिप्रेरणा (Level of Aspiration and Achievement Motivation)-** व्यक्ति का महत्वकांक्षा एवं उपलब्धि अभिप्रेरणा का स्तर उसके व्यक्तित्व के निर्धारण में भूमिका निभाता है। जिसमें कोई महत्वकांक्षा ही नहीं वह कुछ पाने के लिये प्रयत्न ही क्यों करेगा तथा जो इस प्रकार किसी उपलब्धि के लिये अभिप्रेरित नहीं रहेगाा उसका व्यक्तित्व भी पूरी तरह निकम्मा, आलसी और सुस्त व्यक्ति के रूप में बन जाएगा। ऐसा व्यक्ति भाग्य को कर्म से अधिक प्रधानता देगा तथा जो कुछ प्राप्त होता रहेगा उसी में संतुष्टि अनुभव करेगा। दूसरी और जहाँ महत्त्वकांक्षा अधिक होगी, उपलब्धि अभिप्रेरणा का स्तर अधिक होगा वहां व्यक्ति संधर्षशील बनेगा, सक्रिय हो कर जीवन में कुछ प्राप्त करना चाहेगा, आत्मविश्वासी होगा तथा भाग्य से अधिक कर्म पर भरोसा करेगा। निःसंदेह इस प्रकार का व्यक्तित्व महत्वाकांक्षा हीन तथा निम्न अभिप्रेरण उपलब्धि वाले व्यक्तित्व से सर्वथा प्रथक ही होगा। इस तरह जिस प्रकार की उपलब्धि, अभिप्रेरणा और महत्वाकांक्षा का स्तर व्यक्ति का होगा उसी रूप में उसका व्यवहार और व्यक्तित्व भी ढल जायेगा।

4. **इच्छाशक्ति (Will Power)-** इच्छा शक्ति को व्यवहार की नियंत्रक और चालक शक्ति कहा जाता है। द ढ़ इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति संवेगात्मक रूप से काफी संतुलित पाये जाते हैं। ऐसे व्यक्ति जो ठान लेते हैं उसे पूरा करने में जी जान लड़ा देते हैं। उनमें पर्याप्त निर्णय क्षमता तथा गजब का धैर्य देखने को मिलता है। इसके विपरीत कमज़ोर इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व भी कमज़ोर सांचे में ढला रहता है व सर्वथा असमंजस की स्थिति में रहता है, अपने पर उसे विश्वास नहीं होता। अतः कुछ विशेष सफलता प्राप्त करने की बात उसके जीवन में कम ही होती है। इस तरह इच्छा शक्ति की सबलता और निर्बलता व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में काफी अन्तर पैदा कर देती है।

5. **संवेगात्मक और स्वभावगत विशेषतायें (Emotional and Temperamental make-up)-** व्यक्ति का स्वभाव तथा संवेगात्मक विशेषतायें उसके व्यवहार एवं व्यक्तित्व को दिशा प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। व्यक्ति में जिस प्रकार के सकारात्मक एवं नकारात्मक संवेगों की अधिकता होगी, संवेगात्मक परिपक्वता का जो स्तर होगा, स्वभावगत जैसी प्रकृति और विशेषतायें होगीं और आदतों, भावनाओं तथा स्थायीभावों का जिस प्रकार का संगठन होगा, उसका व्यक्तियों, विचारों एवं वस्तुओं के प्रति वैसा ही द ष्टिकोण बनेगा तथा उसका व्यवहार और व्यक्तित्व उसी प्रकार के रंग में रंगा दिखाई देगा। एक क्रोधी और ईर्ष्यालु व्यक्तित्व कुछ और ही तरह का बनेगा जबकि शांत प्रकृति वाले, सबके हित की बात सोचने वाले व्यक्ति का व्यवहार और व्यक्तित्व एक अलग ही खूबसूरत सांचे में ढला प्रतीत होगा। इसी प्रकार स्वभावगत विशेषतायें व्यक्तित्व को सांचों में ढालने की भूमिका निभाती रहती हैं।

सामाजिक एवं सास्कृतिक निर्धारक
(Social and Cultural Determinants)

हमारा बहुत कुछ व्यवहार अर्जित ही होता है और इस अर्जन के पीछे वातावरण जन्य अनुभव अपना पूरा प्रभाव दिखाते हैं। वातावरण सम्बन्धी इस अनुभवों को प्रदान करने में व्यक्ति के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में निहीत शक्तियां, संस्थायें तथा परिस्थितियां काफी सशक्त भूमिका निभाती हैं जिनका संक्षेप में वर्णन हम आगे की पंक्तियों में करना चाहेंगे।

1. **घर एवं परिवार (Home and Family)-** व्यक्तित्व के निर्माण में पारिवारिक जीवन का बहुत अधिक महत्व है। घर और परिवार के स्वस्थ वातावरण में बच्चे को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए समुचित अवसर प्राप्त हो सकते हैं जबकि घर का बिगडा हुआ वातावरण उसके व्यक्तित्व को गलत दिशा प्रदान कर सकता है। घर और परिवार के वातावरण में बच्चे के व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कुछ उल्लेखनीय तत्व निम्न हैं:-

   (i) माता-पिता (Parents)- माता-पिता की शिक्षा, उनके व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण, संवेगात्मक और सामाजिक व्यवहार, उनके आपसी सम्बन्ध, रूचि और अभिरूचि, तथा चरित्र का बच्चों के व्यक्तित्व पर प्रभाव पडता है।

   (ii) माता-पिता बच्चे के प्रति द ष्टिकोण (Parental Attitude)- बच्चे के साथ माता-पिता किस प्रकार का व्यवहार

करते हैं, वे अधिक लाड़ करते हैं अथवा उनकी उपेक्षा करते हैं, इन बातों का प्रभाव भी बच्चे के व्यक्तित्व पर पडता है।

(iii) **परिवार में बच्चों की संख्या और उसका जन्म क्रम** (Size of the Family and Birth Order)- परिवार में कितने बच्चे हैं, वे कितने भाई बहिन हैं, वह सबसे पहला बच्चा है अथवा अन्तिम, इन बातों पर भी बच्चे के व्यक्तित्व का विकास निर्भर करता है।

(iv) **पारिवारिक स्थिति और आदर्श** (Status and Values of the Family)- परिवार की सामाजिक व आर्थिक स्थिति कैसी है, वह किन मान्यताओं, विश्वास अथवा मूल्यों में श्रद्धा रखतें हैं, किस संस्कृति व धर्म को अपनाते हैं, इन बातों का प्रभाव भी बच्चे के व्यक्तित्व पर पड़ता है।

(v) **परिवार के सदस्यों का व्यक्तित्व और व्यवहार** (The Behaviour and Personality of the Members of the Family)- माता-पिता का आपसी व्यवहार तथा उनका बालक के प्रति द ष्टिकोण तथा व्यवहार ही बालक के व्यक्तित्व को प्रभावित नही करता बल्कि घर में रहने वाले प्रत्येक परिवार के व्यक्ति का व्यवहार और व्यक्तित्व बालक के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने की पूरी क्षमता रखता है। बालक जाने-अंजाने में वही सब कुछ करने या बनने का प्रयत्न करता है। जैसा आचरण और व्यवहार अपने परिवार के सदस्यों को करते देखता है।

2. **विद्यालय का वातावरण** (School Environment)- बच्चे के व्यक्तित्व के विकास में विद्यालय के वातावरण का भी विशेष महत्व है। अध्यापक, प्रधानाध्यापक सहपाठियों के व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण, शिक्षण विधियां, पाठ्यक्रम, पाठान्तर क्रियाओं का आयोजन, विद्यालय द्वारा बनाकर रखे हुए ऊंचे आदर्श तथा मूल्य और विद्यालय का सामान्य वातावरण आदि सभी तत्व बच्चे के व्यक्तित्व के विकास प्रभावित करते हैं।

यही कारण है जिन विद्यालयों के परिवेश एंव परिस्थितियों तथा पढाई लिखाई के स्तर के बारे में काफी प्रसिद्धि होती है उनमें प्रवेश पाने के लिए काफी भीड़ रहती है और उन विद्यालयों से निकले हुए विद्यार्थियों की व्यक्तित्व सम्बन्धी एक विशेष छाप या पहचान होती है। अच्छे, सामान्य तथा निम्न दर्जे के विद्यालयों और उनमें प्राप्त वातावरण सम्बन्धी अनुभवों में से निकले हुये विद्यार्थियों के व्यक्तित्व सम्बन्धी अन्तरों को बडे ही स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है और यही बात यह सिद्ध करने में पूरी तरह समर्थ है कि विद्यालय का वातावरण व्यक्तित्व निखारने के रूप में काफी अहम भूमिका निभाता हैं।

3. **सामाजिक परिवेश में विद्यमान अन्य कारक** (The other factors in the Social environment)- घर, परिवार और विद्यालय के प्रभाव के अतिरिक्त बालक के सामाजिक परिवेश में और भी बहुत सी संस्थायें, संगठन तथा अन्य सामाजिक अनुभव प्रदान करने वाले कई स्त्रोत होते हैं जिन से बालक के व्यक्तित्व पर प्रभाव पडता है। इन्हें संक्षिप्त रूप में निम्न प्रकार वर्णित किया जा सकता हैः

पास-पड़ोस (Neighbourhood)- पास-पड़ोस में जो व्यक्ति रहते हैं जिन बालकों के साथ बालक खेलता है तथा अपना समय व्यतीत करता है उन सभी का व्यवहार और व्यक्तित्व बालक के व्यक्तित्व विकास को पूरी तरह प्रभावित करता है। यही कारण है कि एक अच्छे पड़ोस की ओर ध्यान दिया जाना बालकों के व्यक्तित्व के सही विकास के लिये सबसे आवश्यक बात मानी जाती है।

धार्मिक संस्थायें (Religious Institutions)- गुरूद्वारे तथा चर्च आदि धार्मिक स्थान, उनमें चलने वाली धार्मिक तथा सामाजिक गतिविधियाँ आदि बालक के दिल और दिमाग पर शुरू से ही बड़े ही शांत रूप में गंभीर एवं स्थायी प्रभाव छोडने की क्षमता रखते हैं और इस तरह उसके व्यवहार एवं व्यक्तित्व के निर्धारण में अपनी शक्तिशाली भूमिका निभाते हैं।

अन्य सामाजिक संस्थायें, संगठन एवं साधन (The other social agencies, means and organisations)- बालक के सामाजिक परिवेश में सभी अन्य कई तरह की संस्थायें, समूह, संगठन तथा साधन निहित होते हैं जो काफी गहरी छाप बालक के व्यक्तित्व पर अंकित करने कि क्षमता रखते हैं। कई तरह की सामाजिक संस्थायें, क्लब, मनोंरजन तथा संप्रेषण के साधन (रेडियो, टेलिविजन, फिल्म आदि) साहित्यिक तथा ललित कलाओं से सम्बन्धित संस्थायें, प्रचार से साधन, समाचार पत्र-पत्रिकायें, पुस्तकें तथा अन्य सभी तरह का साहित्य आदि

सभी किसी न किसी रूप में बालक के व्यक्तित्व को मोड़ने में काफी प्रभावकारी सिद्ध हो सकते हैं। बालक जब दूरदर्शन या पर्दे पर आज के समय की मारधाड़ और सैक्स से प्रताड़ित फिल्में देखते हैं तो उनका व्यवहार और व्यक्तित्व भी हिंसा और यौन अपराधों के सांचे में ढलने लगे तो इसमें उनका क्या कसूर। सामाजिक वातावरण में सीखे जाने वाले ये पाठ उनके व्यक्तित्व के निर्धारक ही कहे जायेंगे। किशोर बालक और बालिकाओं पर सिनेमा और उपन्यास के नायक और नायिकाओं का जो प्रभाव पड़ता है वह उनके व्यवहार और व्यक्तित्व को प्रभावित करने में कितना संमर्थ सिद्ध हो सकता है, यह बात किसी से छुपी नहीं है। इस तरह बालक अपने चारों और फैले सामाजिक वातावरण में जो कुछ भी देखते हैं उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करते हैं और उसी के अनुकूल उनका व्यक्तित्व भी इसी सांचे में ढलता चला जाता है।

4. **सांस्कृतिक वातावरण (The cultural environment)**- बालक का सांस्कृतिक परिवेश भी बालक के व्यक्तित्व सम्बन्धी विकास पर विशेष प्रभाव डालता है। बालक जिस समाज में रहता है उसका सांस्कृतिक स्वरूप क्या है, इस बात का बालक के व्यवहार, आचार, विचार तथा व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है। लोग कैसे रहते हैं, किस तरह के वस्त्र आदि पहनते हैं उनका जीवन दर्शन क्या है, सामाजिक एवं धार्मिक मान्यतायें किस प्रकार की हैं, दूसरी जाति, वर्ण, धर्म, प्रान्त तथा देशों के नागरिकों के प्रति उनका कैसा व्यवहार है, उनके किस प्रकार के संस्कार तथा आस्थायें हैं, दूसरे लिंग के प्रति उनका क्या द ष्टिकोण है और उनके जीवन यापन की क्या शैली है इस प्रकार की सभी बातें जो सांस्कृतिक परिवेश का प्रतिनिधित्व करती है, बालक को प्रारम्भ से ही अपने रंग में रंगना प्रारम्भ कर देती है। एक विशेष सांस्कृतिक वातावरण में पला हुआ व्यक्ति अपने व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं मे दूसरों से काफी भिन्न इसी लिए ही नज़र आता है। एक ऐसा सांस्कृतिक वातावरण जहाँ महिलाओं के प्रति यथेष्ट सम्मान प्रदर्शित करने की अपेक्षा कम ही होती है। एक दूसरा ऐसा सांस्कृतिक वातावरण जहाँ बुजुर्गो की विशेषकर व द्धावस्था में उनकी देखभाल तथा सेवा करना आदि जैसी बातें आचरण में नहीं होती वहां बुजुर्गो तथा नवयुवकों का व्यवहार और आचरण उसी रूप में ढल जाता है। यूरोपीयन देशों में इस प्रकार के व द्ध और आचार मां-बापों को अपने परिवार से अलग होकर एकाकी जीवन बिताने को मजबूर होना इसी प्रकार के सांस्कृतिक कारको का ही प्रतिफल है। वहाँ के परिवेश में पले युवा दंपत्तियों को अपने व द्ध मां-बाप तथा सास-ससुर को इस तरह तिरस्कृत कर देने में कोई भी अपराध भावना का अनुभव नहीं होता क्योंकि उनके व्यक्तित्व का निर्माण उस सांस्कृतिक परिवेश में वैसा ही हो जाता है। दूसरी और भारतीय परिवेश में पले हुए व्यक्तित्व में अपने बुजुर्गो के प्रति सम्मान प्रकट करना तथा व द्ध माता-पिता की सेवा करना आदि बातें शुरू से घर कर लेती है और इस प्रकार के द ष्टिकोण और विचारों से युक्त व्यक्तित्व का निर्माण कार्य सांस्कृतिक परिवेश के प्रभाव स्वरूप ही होता है। इस तरह यह भली भांति कहा जा सकता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को निर्धारित करने में उसके सांस्कृतिक परिवेश एवं वातावरण का काफी हाथ रहता है।

निष्कर्ष-इस तरह से व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्धारण में उसके जैविक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों की यथेष्ट भूमिका रहती है। इनमें से जहां जैविक कारकों को वंशक्रम से पूरी तरह जुड़ा हुआ माना जाता है वहां सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों की पूरी तरह वातावरण और परिवेश सम्बन्धी शक्तियों के रूप में गिनती की जाती है। मनोवैज्ञानिक कारक जैसे बुद्धि तथा स्वभाव आदि वंशक्रम से भी जुड़े माने जाते हैं और वातावरण से भी। एक तरह से इनकी स्थिति वंशक्रम और वातावरण के मध्य ही होती है और उन्हें दोनों प्रकार की शक्तियों के संयुक्त प्रभाव क्षेत्र के रूप से स्वीकृति दी जा सकती है। इस प्रकार से यह भलीभांति निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि व्यक्तित्व निर्धारण का बहुत कार्य वंशानुक्रम तथा वातावरण सम्बन्धी शक्तियों के अदम्य सहयोग द्वारा ही सफल होता है।

व्यक्तित्व का मूल्यांकन
(Assessment of Personality)

सभी व्यक्ति इस बात में समान रूप से उत्सुक होते हैं कि उन्हें अपना व्यक्तित्व कैसा है तथा दूसरों का कैसा है यह जानकारी प्राप्त हो सके जिससे वे अपने और दूसरों के बारे में धारणा बना सके। व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों और विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने और किसी भी व्यक्ति की उसके व्यक्तित्व के हिसाब से वर्णन करने के लिये व्यक्तित्व को मापने से सम्बन्धित तकनीकों की जानकारी चाहिए। प्रस्तुत अध्याय में हम यही जानकारी देने का प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु उससे पहले हमें एक

विशेष महत्त्व के प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है और वह यह है कि क्या व्यक्तित्व का मापन संभव है तथा व्यक्तित्व के मापन और मूल्यांकन इन दोनों पदों में से किस का प्रयोग सार्थक रहेगा। आइये, पहले इसी बात पर विचार करके देखा जाये।

व्यक्तित्व मापा जाता है या उसका मूल्यांकन होता है ?
(Whether personality is Measured or Assessed ?

क्या व्यक्तित्व का मूल्यांकन होता है अथवा मापन किया जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर भी एक प्रश्न के रूप में मिल सकता है जो यह है क्या व्यक्तित्व का मापन संभव है ? अगर नही तो ऐसी कौन सी कठिन अथवा बाधायें है जिनका सामना व्यक्तित्व की माप करते समय करना पड़ता है। आइये, हम इस प्रश्न के ऊपर विचार करें।

व्यक्तित्व के मापन में आने वाली कठिनाइयां तथा बाधाऐं
(Difficulties in the Measurement of Personality)

किसी भी मापन सम्बन्धी प्रक्रिया के तीन प्रमुख तत्व होते हैं जिनके ऊपर इस प्रक्रिया की सफलता तथा असफलता निर्भर करती है। वे ये हैं-

1. उस वस्तु की प्रकृति जिसे हम मापना चाहते हैं।
2. उस उपकरण या साधन की प्रकृति जिसके द्वारा हम वस्तु को मापना चाहते हैं।
3. उस व्यक्ति की प्रकृति जो मापने का कार्य कर रहा है। आइए, व्यक्तित्व मापने की इन तीन कसौटियों का विश्लेषण करके देखें।

(i) मापी जाने वाली वस्तु की प्रकृति (Nature of the thing we want to measure)- मापी जाने वाली वस्तु-'व्यक्तित्व' की प्रकृति इतनी जटिल है कि इसे मापने की वस्तु बनाना ही ठीक प्रकार सम्भव नहीं है। इस विषय में निम्न बातें कही जा सकती है:-

(a) व्यक्तित्व कोई वस्तु नहीं बल्कि एक विचार अथवा धारणा है। इसका स्वरूप अमूर्त (Abstract) है लेकिन मापन करते समय हम इसे मूर्त स्वरूप (Concrete shape) प्रदान करने की गलत चेष्टा करते हैं।

(b) व्यक्तित्व में वह सब क्या है जिसे हम मापना चाहते हैं; यह बात पूरी तरह स्पष्ट नहीं है। मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व के तत्वों अथवा परिणामों (Dimensions) के बारे में एक मत नहीं हैं।

(c) व्यक्तित्व एक गतिशील धारणा है। यह स्थिर नहीं है। इस प्रकार की लगातार परिवर्तित और संशोधित होती हुई धारणा (और फिर चाहे वह वस्तु ही क्यों न हो) को मापा ही कैसे जा सकता है। इसके मापने में क्षण प्रति क्षण कुछ न कुछ घटा बढ़ी अवश्य होती रहेगी, अतः ऐसी अवस्था में मापन की शुद्ध प्रक्रिया कभी भी सम्भव नहीं हो सकती।

(ii) मापने वाले उपकरणों की प्रकृति (The nature of the measuring instruments)-मापने की प्रक्रिया में मापी जाने वाली वस्तु के बाद मापने वाले उपकरणों और मापन सम्बन्धी इकाइयों (Units of Measurement) की बारी आती है। व्यक्तित्व का मापन करते समय हमे इस सन्दर्भ में भी निम्न असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।

(a) व्यक्तित्व मापन के क्षेत्र में काम में लाई जाने वाली मापन इकाई के लिए प्रारम्भिक बिन्दु (Starting Point) कहां से लिया जाए, यह बहुत बड़ी समस्या है। इस क्षेत्र में मूल उपलब्धि किसे माना जाए क्योंकि कोई भी बच्चा शून्य व्यक्तित्व लेकर नहीं पैदा होता।

(b) किसी सलाख या लकड़ी के डंडे को मापते समय हम उसे सैंटीमीटर, इंच आदि लम्बाई की इकाईयों में माप सकते हैं। तापक्रम का माप हम डिग्री अथवा अंशों में कर सकते हैं। लेकिन मनोवैज्ञानिक मापन के लिए हमें इस प्रकार की समान और निश्चित इकाईयां उपलब्ध नहीं हो सकतीं।

(c) मापन के लिए हमें ऐसे पैमानों या मापन उपकरणों की आवश्यकता होती है जो परिणामों के द ष्टिकोण से यथार्थ और विश्वसनीय हो। व्यक्तित्व मापने के क्षेत्र में हमें ऐसे उपकरण उपलब्ध नहीं हो सकते।

(iii) मापने वाले व्यक्ति की प्रकृति (The Nature of the Tester)-किसी भी मापन प्रक्रिया की वस्तुनिष्ठ, यथार्थता और

विश्वसनीयता बहुत कुछ सीमा तक मापने वाले व्यक्ति की योग्यता, कार्यकुशलता, वस्तुनिष्ठा, सत्यता, ईमानदारी और पक्षपात रहित निर्णय पर निर्भर करती है लेकिन फिर भी व्यक्ति, व्यक्ति ही होता है।

अपने या अन्य किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व मापन में यांत्रिक उपकरणों की तरह की यथार्थता, वस्तुनिष्ठा और विश्वसनीयता की आशा नहीं की जा सकती।

इस प्रकार के व्यक्तित्व का वास्तविक मापन जिसमें वस्तुनिष्ठा (Objectivity), यथार्थता अथवा वैधता (Validity) और विश्वसनीयता (Reliability) पूरी तरह से प्राप्त हो सके, सम्भव नहीं है। फिर व्यक्तित्व के सभी तत्त्वों अथवा अवयवों (जिनमें से कुछ तो अभी अज्ञात ही हैं) के पीछे घूम कर व्यक्ति में उनकी तलाश करते रहना भी सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त मापन की सफलता इसके भीतर निहित होती है कि उसके माध्यम से उस वस्तु के बारे में कुछ भविष्यवाणी की जा सके। लेकिन व्यक्तित्व जैसी गतिशील वस्तु के बारे में अग्रिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इन सब तथ्यों के आधार पर व्यक्तित्व मापन जैसी शब्दावली का प्रयोग न कर व्यक्तित्व मूल्यांकन या निदान शब्द का प्रयोग करना अधिक उचित ठहराया जा सकता है।

व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने की विधियां और तकनीक
(Techniques and Methods used for the Appraisal or Assessment of Personality)

व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने के लिए प्रचलित विधियों को प्रायः (i) आत्मनिष्ठ विधियों (Subjective methods) (ii) वस्तुनिष्ठ विधियों (Objective methods) (iii) प्रक्षेपी विधियों (Projective methods) के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। लेकिन यह वर्गीकरण काफी दोषपूर्ण है। किसे आत्मनिष्ठ कहा जाए और किसे वस्तुनिष्ठ, यह एक बहुत ही जटिल और उलझनपूर्ण समस्या है। वास्तव में आत्मनिष्ठा और वस्तुनिष्ठा के बीच कोई उपयुक्त विभाजन रेखा खींचना बहुत कठिन है। प्रक्षेपी तकनीकों (Projective Techniques) को भी परीक्षक के स्वयं के प्रक्षेपण (Self-Projection) या आत्मनिष्ठा (Subjectivity) से दूर नहीं रखा जा सकता। इस प्रकार से किसी भी विधि में पूर्ण वस्तुनिष्ठा की आशा नहीं की जा सकती। सब में कुछ न कुछ अंशों में आत्मनिष्ठा अवश्य पाई जाती है। अतः व्यक्तित्व मूल्यांकन की विधियों का इस प्रकार विभाजन करना कोई अधिक उपयुक्त नहीं है, परन्तु फिर भी सुविधा की द ष्टि से हम इस पुस्तक में इसी प्रकार के वर्णन को लेकर प्रमुख विधियों और तकनीकों की चर्चा करना चाहेंगे।

आत्मनिष्ठ विधियाँ
(Subejctive Methods)

1. आत्मकथा (Autobiography) - जब व्यक्ति स्वयं अपनी जीवन कथा अपने आप लिखता है तो इस प्रकार लिखी हुई रचना आत्म कथा कहलाती है। इसमें वह अपनी जीवन सम्बन्धी विशेष घटनाओं तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी बहुत सी बातों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की आत्म कथाओं के माध्यम से व्यक्ति विशेष की व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं से परिचित हुआ जा सकता है तथा उसके व्यक्तित्व के बारे में धारणा बनाई जा सकती है। उदाहरण के लिए महात्मा गांधी जी द्वारा लिखित 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' (My Experiments with truth) से उनके व्यक्तित्व में झांकने का यथेष्ट अवसर मिलता है। इसी प्रकार जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखी गई पुस्तक भारत एक खोज (Discovery of India) में जो पत्र उन्होंने इन्दिरा जी के नाम लिखे हैं उनसे उनके व्यक्तित्व के बारे में धारणा बनाने में काफी सहायता मिलती है।

2. जीवन कथा (Biography)-किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा किसी व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी बातों को लिखकर प्रकट की गई रचना जीवन कथा (Biography) कहलाती है। प्रायः इस प्रकार की जीवन कथायें बड़े और प्रसिद्ध व्यक्तियों जैसे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, क्रांतिकारी, समाज सुधार, धार्मिक पुरूष, नेतागण, वीर पुरूष एवं महिलायें, साहित्यकार, लेखक, कलाकार, वैज्ञानिक, गणितज्ञ आदि के लिए लिखी जाती हैं। इन रचनाओं में व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व की झांकी मिलती है तथा उसके माध्यम से उनके व्यक्तित्व की परख की जा सकती है। बहुत से साहित्यकारों के विषय में लिखी गई जीवन कथायें जैसे "मैथिलीशरण गुप्त-व्यक्तित्व एवं कृतित्व" जैसी रचनायें उनके व्यक्तित्व एवं जीवन दर्शन को हमारे सामने लाने में काफी सहायता कर सकती हैं। इसी प्रकार "इन्दिरा प्रियदर्शिनी" जैसी जीवन कथाओं से व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व की छवि बनाने में काफी सहायता मिल सकती है।

3. **प्रश्नावली** (Questionnaire)-**प्रश्नावली क्या है इसे गुडे** (Goode) **एवं हॉट** (Hatt) **के निम्न वर्णन द्वारा अच्छी तरह समझा जा सकता है:-**

"सामान्यतः प्रश्नावली से प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त, उस साधन का बोध होता है। जिसमें एक फार्म का उपयोग किया जाता है और इसे जिससे उत्तरप्राप्त किए जाते हैं, वही भारत है।"

("In general, the word questionnaire refers to a device for securing answers to questions by using a form which the respondent fills in himself.")

यह परिभाषा यह स्पष्ट करती है कि प्रश्नावली विधि में, व्यक्ति की व्यक्तित्व सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित करने के लिए एक प्रपत्र (form) **जिसमें कुछ आवश्यक प्रश्न लिखे अथवा छपे होते हैं प्रयोग में लाया जाता है। प्रश्नों का उत्तर देने के लिए इस फार्म में प्रायः स्थान दिया होता है जिसमें सबसे ऊपर 'हां', 'नहीं' अथवा '?'** (**कहा नहीं जा सकता**) **इत्यादि शीर्षक वाले विभिन्न कॉलम** (Columns) **दिए होते हैं। इन कॉलम** (Columns) **के अन्तर्गत सम्बन्धित प्रश्नों के आगे उत्तर लिखने होते हैं। व्यक्तित्व के मूल्यांकन के लिए इन उत्तरों की फिर जांच की जाती है। उदाहरण के लिए एक प्रश्नावली में कुछ निम्न प्रकार के प्रश्न शामिल हो सकती हैं।**

(i)	**क्या तुम्हें एकान्त में रहना अच्छा लगता है ?**	**हाँ, नहीं, ?**
(ii)	**क्या तुम्हें दूसरों की सफलता से खुशी होती है ?**	**हाँ, नहीं, ?**
(iii)	**तुम्हारा मज़ाक उड़ाने पर क्या तुम्हें बुरा लगता है ?**	**हाँ, नहीं, ?**
(iv)	**क्या तुम्हारे अपने साथियों व सम्बन्धियों से अच्छे सम्बन्ध हैं ?**	**हाँ, नहीं, ?**

सरलतापूर्वक सभी प्रकार की सूचनाओं को एकत्रित करने के द ष्टिकोण से प्रश्नावली को एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विधि या तकनीक माना जाता है।

4. **व्यक्तित्व परिसूची** (Personality Inventory)-**व्यक्तित्व परिसूची बहुत कुछ प्रश्नावली से मिलती जुलती है लेकिन इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है जिसे हम दो तरह से देख सकते हैं-**

   (i) **प्रश्नावली एक ऐसा सामान्य साधन है जिसे न केवल व्यक्ति के व्यक्तित्व अथवा व्यवहार के बारे में सूचना एकत्रित करने के लिए काम में लाया जाता है बल्कि इसके द्वारा सभी प्रकार की सूचनाएं एकत्रित की जा सकती है। इसकी तुलना में व्यक्तित्व परिसूची को विशेष रूप से व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए बनाया जाता है।**

   (ii) **प्रश्नावली में प्रायः जो भी प्रश्न होते हैं उन्हें मध्यम पुरूष** (Second Person) **के लिए सम्बोधित किया जाता है, जो इस प्रकार के होते हैं जैसे-**

   - क्या तुम्हें अकेलापन महसूस होता है ? हाँ, नहीं, ?

   जबकि व्यक्तित्व परिसूची में प्रश्न अधिकतर उत्तम पुरूष (1st Person) **को सम्बोधित किए जाते हैं, जैसे-**

   - मैं प्रायः अकेलापन महसूस करता हूं ? हाँ, नहीं, ?

   सबसे अधिक प्रचलित व्यक्तित्व परिसूची के रूप मे मिनीसोटा मल्टीफेजिक व्यक्तित्व परिसूची (Minnesota Multiphasic Personality Inventory) **अर्थात्** (MMPI) **का नाम लिया जा सकता है। इसमें** 550 **प्रश्न है जिनके द्वारा व्यक्तित्व सम्बन्धी किसी न किसी विशेष गुण की जानकारी एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है।**

वस्तुनिष्ठ विधियां
(Objective Methods)

1. **अवलोकन या निरीक्षण विधि** (Observation Method)-**जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करने की यह सब से लोकप्रिय विधि है। इस विधि में निरीक्षणकर्त्ता को सब से पहले यह तय करना होता है। कि उसे व्यक्ति के व्यक्तित्व की किन विशेषताओं अथवा गुणों के बारे में जानकारी एकत्रित करनी है। इसके**

पश्चात् वह उन गुणों से सम्बन्धित उस व्यक्ति के क्रिया कलापों तथा व्यवहार का बिल्कुल स्वाभाविक रूप में अवलोकन या निरीक्षण करने का प्रयत्न करता है। यह निरीक्षण दो तरह से किया जा सकता है। एक में तो निरीक्षण कर्त्ता अपनी उपस्थिति को छुपाता नहीं है। वह एक तरह से निरीक्षण किए जा रहे समूह में घुलमिल कर उसका एक अंग ही बन जाता है जबकि दूसरे में वह ऐसे स्थान पर बैठ कर निरीक्षण करता है जहाँ से वह स्वयं तो नहीं दिखाई दे परन्तु सम्बन्धित व्यक्ति के व्यवहार की सभी छोटी से छोटी बातों का भी वह निरीक्षण करने में समर्थ हो सके। भली-भांति निरीक्षण करने की द ष्टि से निरीक्षण-कर्त्ता टेप-रिकार्डर, कैमरा, दूरदर्शक (Telescope) इत्यादि उपकरणों का प्रयोग भी कर सकता है। निरीक्षण द्वारा प्राप्त परिणामों में विश्वसनीयता लाने के लिए निरीक्षणकर्त्ता निरीक्षण की प्रक्रिया को लगभग एक सी परिस्थितियों में बार-बार दोहरा भी सकता है अथवा एक ही व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण भिन्न-भिन्न निरीक्षणकर्त्ताओं द्वारा किया जा सकता है तथा प्राप्त परिणामों को एक जगह एकत्रित कर व्यक्ति के बारे में कोई राय बनाई जा सकती है।

2. परिस्थिति परीक्षण (Situation Tests)-यहां जिस व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण के बारे में जानना हो उनसे सम्बन्धित कार्यो को व्यक्ति द्वारा किए जाने के लिए आवश्यक परिस्थितियां कृत्रिम रूप से पैदा की जाती हैं। उदाहरण के रूप में बच्चे की ईमानदारी का मूल्यांकन करने के लिए कुछ ऐसी परिस्थितियां पैदा की जा सकती हैं जिसमें उसके व्यवहार अथवा अनुक्रियाओं को ईमानदारी अथवा बेईमानी के रूप में तोला जा सके। वह नेकी करने का प्रयत्न करता है अथवा नहीं, कहीं पर जानबूझ कर रखे हुए पैसों को उठाने का प्रयास करता है अथवा नहीं, इस प्रकार कुछ विशेष परिस्थितियों में वह जैसा व्यवहार करता है उससे व्यक्तित्व के बारे में बहुत कुछ जाना जा सकता है।

3. रेटिंग स्केल (Rating Scale)-रेटिंग स्केल का प्रयोग दूसरे व्यक्तियों से यह जानने के लिए किया जाता है कि कोई व्यक्ति किसी व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों के हिसाब से कैसा है। प्रायः इस तकनीक के माध्यम से हम किसी व्यक्ति (जिसे हम अच्छी तरह नहीं जानते) के व्यक्तित्व सम्बन्धी कुछ गुणों के बारे में किसी दूसरे व्यक्ति (जो उस व्यक्ति को अच्छी तरह जानता हो) की सहायता से कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। जो कुछ भी प्रभाव वह व्यक्ति, मूल्य आंकने वाले (Rater) के ऊपर छोड़ता है उसके अनुसार ही उसे श्रेणी विशेष में रखा जाता है अर्थात् रेटिंग (Rating) की जाती है। तकनीक में तीन मूलभूत बातें सम्मिलित हैं-

(i) विशिष्ट गुण या विशेषताएं जिन्हें मापा जाना है।

(ii) वह मापदंड (Scale) जिसके आधार पर किसी गुण विशेष की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति की मात्रा व्यक्त की जा सकती है।

(iii) मापदण्ड निर्धारित करने वाले उचित व्यक्ति अथवा निर्णायक की उपस्थिति।

सबसे पहले जिस विशेषता अथवा विशेषताओं का मूल्यांकन करना है उनका पूरी तरह स्पष्टीकरण करते हुए पारिभाषिक शब्दावली में बांध दिया जाता है। इसके पश्चात् मापदण्ड निर्धारण (Rating) करने के लिए एक उचित मापदण्ड बना लिया जाता है। यह कैसे किय जाता है, इसे निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है-

माना नेत त्व की क्षमता के बारे में हम कक्षा के बच्चों की स्थिति जानना चाहते हैं। तब हम इस गुण या विशेषता को कई श्रेणियों में बांट कर एक पैमाना (Scale) बना लेंगे। प्रायः यह मापदंड (Scale) तीन, पांच या सात श्रेणियों का होता है : सात श्रेणियों वाला मापदंड इस प्रकार का हो सकता है-

1	2	3	4	5	6	7
सबसे अधिक अयोग्य	अधिक योग्य	अयोग्य	सामान्य योग्य	योग्य	अधिक योग्य	सबसे अधिक योग्य

अब मान निर्धारित करने वाले उपयुक्त व्यक्तियों (जो सभी बच्चों से अच्छी तरह परिचित हों) को इस मापदण्ड की सहायता से बच्चों को विभिन्न श्रेणियों में रखने या मान देने के लिए कहा जाता है। वे प्रत्येक विद्यार्थी की नेत त्व सम्बन्धी क्षमता का सही-सही मूल्यांकन करते हुए उसे 1 से लेकर 7 तक कोई भी मान देने का प्रयत्न करते हैं।

रेटिंग तकनीक (Rating Technique) में भी अन्य तकनीकों की भांति कुछ दोष देखने को मिलते हैं। विशेष रूप से दो दोष जिन्हें व्यक्तिगत पक्षपात (Subjective Bias) और सामान्य छाप सम्बन्धी प्रभाव (Halo Effect) के नाम से जाना जाता है, अधिक उल्लेखनीय हैं। पहला दोष व्यक्ति की अपनी पसन्द-नापसन्द तथा पक्षपातपूर्ण द ष्टिकोण के कारण पैदा होता है। दूसरा दोष व्यक्ति द्वारा मूल्य आंकने वाले निर्णायक पर जो एक समान्य प्रभाव अंकित किया जाता है, उसके फलस्वरूप पैदा होता है। मान लिया अध्यापक के ऊपर रमेश ने कक्षा में पड़ते समय अच्छा प्रभाव जमाया है। वह सदैव प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता है तथा प्रश्नों के उत्तर देता है तो अगर अध्यापक से शैक्षणिक योग्यताओं के अतिरिक्त किसी अन्य योग्यता के क्षेत्र में रमेश का मूल्य आंकने के लिए कहा जाए तो वह उसे सदैव उच्च कोटि में रखने का प्रयत्न करेगा चाहे रमेश विशेष योग्यता बहुत ही अल्प मात्रा में क्यों ना हो।

इन दोषों को दूर करके कुछ अधिक विश्वसनीय मूल्यांकन करने के द ष्टिकोण से केवल एक व्यक्ति द्वारा रेटिंग कराने की बजाय कई व्यक्तियों जैसे अलग-अलग अध्यपको, माता-पिता, सहपाठियों तथा अधिकारियों आदि से अलग-अलग मूल्यांकन कराकर इन सभी के परिणामों को एक जगह एकत्रित करके उनसे उचित निष्कर्ष निकालना ठीक रहता है।

4. साक्षात्कार (Interview)-इस तकनीक द्वारा किसी भी व्यक्ति से आमने-सामने बैठ कर उसके व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यक जानकारी एकत्रित की जा सकती है। इसके द्वारा मूल्यांकन किए जाने वाले तथा करने वाले दोनों व्यक्तियों को एक दूसरे के सम्पर्क में आ कर अपने विचारों तथा जानकारी का आदान-प्रदान करने का पूरा-पूरा अवसर मिलता है। इस तकनीक को प्रयोग में लाने के लिए व्यक्तित्व के मूल्यांकन करने वाले व्यक्ति को जिसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जा रहा है, उस व्यक्ति के साथ मिलने का समय और स्थान पहले से ही तय करना होता है। जिन व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं और गुणों का उसे मूल्यांकन करना होता है, उनके बारे में वह पहले से ही निश्चित योजना बनाता है। कौन-कौन से प्रश्न पूछने हैं उनकी लिस्ट भी पहले से ही बना लेता है। साक्षात्कार के समय वह मूल्यांकन किए जाने वाले व्यक्ति पर पूरी तरह से विश्वास जता लेते है और फिर ठीक तरह से अपने प्रश्नों का उत्तर हासिल करने की चेष्टा करता है। वह न केवल उत्तर क्या दिए जा रहे हैं, इस बात का ध्यान रखता है अपितु वे कैसे, किस भाव भंगिता, आवाज तथा मनोस्थिति में दिए जा रहे हैं, इन बातों का भी उत्तरों का मूल्यांकन करते समय ध्यान रखता है।

दोष तथा कमियां (Defects and Limitations)-साक्षात्कार तकनीक में एक दोष तो यह है कि इसमें साक्षात्कार लेने वालों को काफी योग्य व प्रशिक्षित होना चाहिए। अतः इसे हर प्रयोगकर्त्ता द्वारा ठीक तरह से नहीं अपनाया जा सकता। दूसरे, यह परिश्रम, समय और पैसे के द ष्टिकोण से काफी खर्चीली विधि है। तीसरे, यह साक्षात्कार लेने वाले के पक्षपातपूर्ण द ष्टिकोण और पसन्द-नापसन्द से पैदा होने वाले दोषों से मुक्त नहीं है। चौथे, इसमें प्रश्नावली तथा व्यक्तित्व परिसूची की तरह-मूल्यांकन किए जाने वाले व्यक्ति को यह स्वतन्त्रता रहती है कि वह प्रश्नों के उत्तर मनचाहे ढंग से दे सकता है और इस प्रकार अपनी भावनाओं को छुपाने तथा कमज़ोरियों को न बतलाने का कार्य वह अच्छी तरह से कर सकता है।

गुण (Merits)-गुणों की तरफ देखा जाए तो हम यह पाते हैं कि इस तकनीक का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें पूछे जाने वाले लगभग सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए जा सकते हैं। ऐसे गोपनीय प्रश्न जिनका लिखित रूप में उत्तर देना सम्भव नहीं होता अथवा इस तरह प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त सभी तकनीकों में साक्षात्कार सबसे अधिक लचीली (Flexible) तकनीक है। इसमें जैसी आवश्यकता हो प्रश्नों की संख्या घटाई बढ़ाई जा सकती है, उनके क्रम को बदला जा सकता है और व्यक्ति के साथ तादाम्य (Rapport) स्थापित कर उसके व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं का अच्छी तरह अध्ययन किया जा सकता है।

5. **प्रक्षेपी तकनीक या विधियां** (Projective Techniques)-अब तक हमने केवल ऐसी तकनीक और विधियों की चर्चा की है जिनके द्वारा व्यक्ति के बाह्य अथवा चेतन (Conscious) व्यवहार का मूल्यांकन किया जा सकता है। आन्तरिक अथवा चेतन व्यवहार (Covert or Unconscious behaviour) इतना महत्त्वहीन नहीं कि इसके ऊपर कुछ ध्यान ही न दिया जाए। देखा जाए तो यह चेतन व्यवहार से भी महत्त्वपूर्ण है। फ्रायड के अनुसार चेतन व्यवहार हमारे सम्पूर्ण व्यवहार का केवल 1/10 भाग होता है। इस तरह शेष 9/10 भाग के मूल्यांकन की उपेक्षा करना ठीक नहीं है और

इसी कारण कुछ ऐसी तकनीक और विधियों की नितान्त आवश्यकता थी जो अवचेतन और अचेतन मन की गहराइयों की थाह ले कर व्यक्ति के आन्तरिक व्यवहार का मूल्यांकन कर सकें तथा दबी हुई इच्छाओं, अत प्त आकांक्षाओं, आशा-निराशा तथा कुंठाओं आदि को खोज कर मानव व्यक्तित्व का सम्पूर्ण मूल्यांकन करने में सहायता कर सकें।

इस चुनौती का मुकाबला करने के लिए प्रक्षेपी तकनीक सामने आई। उन्होंने मानव व्यवहार तथा व्यक्तित्व को अपने समग्र रूप में मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया।

अध्याय–13
अभिप्रेरण
(Motivation)

अभिप्रेरण का अर्थ :- अभिप्रेरण का अंग्रेजी रूपान्तर Motivation होता है। अंग्रेजी के इस शब्द की उत्पत्ति मोटिव से हुई है जिसका शब्दिक अर्थ होता है व्यक्ति में किसी ऐसी इच्छा अथवा शक्ति का विद्यमान होना, जो उसे कार्य करने की क्षमता (प्रेरणा) देती है। परन्तु कार्य करने की क्षमता तथा कार्य करने की इच्छा दो प थक-प थक तत्व है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना भी प्रतिभा-सम्पन्न, योग्य, अनुभवी और कार्य करने की क्षमता क्यों न रखता हो लेकिन यदि उसमें कार्य करने की इच्छा नही है तो ये सब गुण महत्वहीन हो जाते है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि उस व्यक्ति में उसकी कार्यक्षमता के अनुसार कार्य करने की इच्छा जाग त की जाए। किसी व्यक्ति की कार्य करने की इच्छा को जाग त करने के लिए समय-समय पर प्रेरणा देनी होती है जिसे 'अभिप्रेरणा' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस प्रकार अभिप्रेरण कार्य से सम्बन्धित है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति में जाग त किया जा सकता है। वास्तव में अभिप्रेरण वह मनोवैज्ञानिक उत्तेजना है जो व्यक्तियों को काम पर बनाए रखने के साथ-साथ उन्हें उत्साहित करती है और अधिकतम संतुष्टि प्रदान करती है। अभिप्रेरण की महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं।

1. कूण्टज एवं ओ'डोनेल के अनुसार, "अभिप्रेरण इच्छाओं, अभिलाषाओं, आवश्यकताओं और अन्य ऐसी शक्तियों के सम्पूर्ण वर्ग के लिए प्रयुक्त एक सामान्य शब्दावली है। यह कहना कि प्रबन्धकगण अपने अधीनस्थ का अभिप्रेरण करते हैं। बिल्कुल यही कहने के बराबर होगा कि वे उन सभी कार्यो को करते है जिनको वे समझते है कि उनसे इन इच्छाओं एवं आकांक्षाओं की संतुष्टि हो सकेगी तथा अधीनस्थों को अपेक्षित तरीके से कार्य करने के लिए प्रेरित किया जा सकेगा।"
2. माइकल जेथुस्यिस के अनुसार, "अभिप्रेरण स्वयं को या किसी अन्य व्यक्ति को इच्छित कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने की क्रिया है अथवा वांछित प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए सही बटन दबाना है।"
3. स्टेन्स वेन्स के अनुसार, "अभिप्रेरण के अन्तर्गत कोई भी ऐसी भावना या इच्छा सम्मिलित होती है जो किसी व्यक्ति की इच्छा को इस प्रकार बना देती है कि वह कार्य करने को प्रेरित हो जाए।"
4. मैकफरलैण्ड के अनुसार, "अभिप्रेरण एक विधि है जिसमें संवेगों, उद्वेगों, इच्छाओं, आकांक्षाओं या आवश्यकताओं द्वारा व्यवहार का निर्देशन, नियन्त्रण एवं स्पष्टीकरण किया जाता है।"

अभिप्रेरणात्मक व्यवहार का सैद्धान्तिक पहलू

बहुधा मानवीय व्यवहार को व्यक्ति के अपने वातावरण के साथ सम्पर्क के एक कार्य के रूप में देखा जाता है इसको अपने परिवेश के साथ जूझने की व्यक्ति की पहल तथा संवेदनशीलता के रूप में देखा जा सकता है। मानवीय व्यवहार को प्रभावित करने वाले समस्त घटकों को एक समीकरण के रूप में सम्बन्धित किया जा सकता है।

S-O-B

S अर्थात situation वह परिवेश जिसमें भौतिक, सामाजिक सांस्क तिक तथा संगठनात्मक घटक शामिल है।

O अर्थात organism तंत्र जो मानवीय शारीरिक तथा भौतिक आवरण, मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया तथा व्यक्तिगत घटकों से बना है।

B अर्थात Behaviour प्रत्येक ऐसी बात को मानवीय तंत्र करता है तथा उसमें व्यवहार का प्रत्येक पहलू शामिल होता है न कि ऐसे व्यवहार के परिणाम।

परिवेश तथा तंत्र आपस में मिलकर व्यवहार को स्पष्ट करते है। इस प्रकार यह मॉडल व्यवहार की आकस्मिक प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है तथा चरों की उन श्रेणियों को प्रकट करता है जिनको मानवीय व्यवहार का विश्लेषण करते समय सोचा जाना चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि व्यक्ति मुख्य रूप से अपने तत्क्षण कार्य परिवेश के प्रति संवेदनशील होता है और सामान्य सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्क तिक परिस्थितियाँ उस पर प्रभाव डालती है। संगठनात्मक संदर्भ में किसी व्यक्ति के अभिप्रेरणात्मक व्यवहार हेतु सम्बन्ध कार्य वातावरण के तत्व निम्नलिखित हैः-

(1) कार्य दल का आकार तथा दल के भीतर अन्य वैयक्तिक सम्बन्ध एवं सम्पर्क

(2) अनौपचारिक दल का प्रभाव, तथा व्यक्ति की कार्य इकाई में अधीक्षकीय शैली एवं कार्य प्रणाली

(3) कार्य की प्रक ति

(4) सामान्य संगठनात्मक वातावरण में औपचारिक भूमिकाएं तथा सम्बन्ध, नियन्त्रण एवं सम्प्रेषण ढांचे, पुरस्कार-दण्ड ढाँचा, संगठनात्मक लक्ष्य, नीतियाँ तथा तकनीकी, प्रबन्धकीय मूल्य, अन्तः राजनैतिक शक्तियां आदि पहलुओं को शामिल किया जा सकता है।

सामान्य वातावरण के तत्वों से उस समाज या समुदाय की संस्क ति एक महत्वपूर्ण घटक होती है जिससे व्यक्ति विशेष सम्बन्ध रखता हैं। जहाँ तक व्यक्तिगत तथा संगठनात्मक घटकों का प्रश्न है सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तिगत पहलू जो एक व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाते है वे है उसका शारीरिक विकास, व्यक्तिगत गुण, योग्यताएं तथा अभिप्रेरणाएं। व्यक्तियों के मध्य इन आधारों पर व्यापक असमानताएं तथा समानताएं व्याप्त रहती है। अनेक ऐसे व्यक्तिगत गुण है जो उसके व्यक्तित्व को उभारते है जैसे विश्वास, खुलापन, दयालुता, नम्रता, सामाजिक प्रबुद्धता, आत्म विश्वास, उत्तरदायित्व, भावुकता नियन्त्रण, जोखिम सहने की सामर्थ्य, दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति आदि। इनका स जन शक्ति के शारीरिक लक्षणों, पारिवारिक परिस्थितियों तथा सामाजिक सांस्क तिक प्रभावों द्वारा जांचा परखा जाता है। ये सभी तत्व कार्य पर व्यक्ति के व्यवहार को व्यापक रूप से प्रभावित करते है।

जहाँ एक व्यक्ति की योग्यताओं का प्रश्न है इसमें उसकी तर्कशक्ति, व्याख्या शक्ति, आत्म अभिव्यक्ति, धैर्य, मानसिक दक्षता, इन्द्रीय समन्वय आदि आते है। इनको शिक्षा, प्रशिक्षण तथा अनुभव द्वारा निखारा तथा विकसित किया जा सकता है। अपने कार्यो में व्यक्तियों की निष्पति को मनुष्य की योग्यताएं व्यापक रूप से प्रभावित करती है।

मानवीय व्यवहार को समझने का एक प्रमुख तत्व है उसकी आवश्यकताएं, जिनकी वह अपने अन्दर कमी अनुभव करता है। तथा जिनके दबाव, तनाव तथा असंतुलन में वह जीवित रहता है। ये आवश्यकताएं भौतिक भी हो सकती है तथा मनोवैज्ञानिक भी। ये आवश्यकताएं ही उसे कुछ प्रयास करने के लिए विवश करती है। इन आवश्यकताओं को उसकी महत्वाकाँक्षाएं, अपेक्षाएं चाहे अथवा जरूरतों के रूप में जाना जा सकता है, अन्तर केवल उनकी प्रभावोत्पाकता की मात्रा का ही है। इन आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रत्येक व्यक्ति के तरीके तथा साधन अलग-अलग हो सकते है। मूलतः आवश्यकता संतुष्टि ही सम्पूर्ण अभिप्रेरणात्मक प्रक्रिया का आधार है।

अभिप्रेरक व्यक्ति विशेष के अन्तः मनोवैज्ञानिक पटल की बात है जो लक्ष्य की प्राप्ति या पलायन की प्रत्याशा में व्यक्ति को कार्य के लिए अभिप्रेरित निर्देशित, क्रियान्वित, अथवा हतोत्साहित करती है व्यक्ति विशेष में ये बातें उसकी आवश्यकताओं, अपेक्षाओं, महत्वकांक्षाओं, भावनाओं आदि से उत्पन्न होती है।

व्यक्तिगत, गुण योग्यताएं, आवश्यकताएं तथा मानवीय अभिप्रेरणाएं स्वभावतः गतिशील होती है। व्यक्ति विशेष में वे अपने प्रयास प्रभावोत्पादकता समय विशेष पर महत्व के रूप में बदलती रहती है। अपने परिवार के साथ मौजमस्ती में और अधिक समय गुजारने की व्यक्ति की चाह उसके कठिन परिश्रम करके पैसा कमाने के मार्ग में कठिनाई बनकर खडी हो सकती है। शक्ति चाह का सम्बद्धता की चाह से हटकर मुकाबला हो सकता है।

समय विशेष पर प्रस्तुत एवं सामान्य वातावरण व्यक्ति के समक्ष अनेक प्रोत्साहन, अवसर तथा बाधा अथवा चुनौती उत्पन्न कर सकता है। अब वह उनसे किस प्रकार मुखातिब होता है यह परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। वह तौर तरीका जिनमें व्यक्ति विशेष का व्यक्तित्व योग्यता, आवश्यकताएं एवं अभिप्रेरणाएं वातावरण से प्रभावित होकर ढाली जाती है तथा वह मामला जिसमें कोई व्यक्ति अपने वातावरण का प्रत्युतर देता है दो प्रक्रियाओं-नजरियों तथा सीखना के द्वारा समझाया जा सकता है।

नजरिये को उस प्रक्रिया के रूप में लिया जा सकता है। जिससे व्यक्ति विशेष अपने ऊपर कुछ छाप छोड़ लेता है तथा अपने आस पास के वातावरण में वस्तुओं, घटनाओं तथा व्यक्तियों के व्यवहारों को घटित होते देखकर अपना एक द ष्टिकोण सा बना लेता है। वस्तुओं, घटनाओं तथा व्यक्तियों को कौन किस तरह से लेता है यह बात व्यक्ति से व्यक्ति में अलग-अलग पाई जाती है। तथ्य तथा विचार दोनों अलग हो सकते है। हम अपने नजरिये से तथ्यों को तोड़ मरोड़कर पेश कर सकते है। यह सब हमारे सोचने के तरीके पर निर्भर करता है। हमारा नजरिया हमारे पहले से बने बनाये रूझान, अनुभव, अभिप्रेरक, विश्वास तथा व्यक्तिगत गुणों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। पुनः व्यक्ति का नजरिया इन सब बातों को अपने तरीके से ढालता है। व्यक्ति की सोचने समझने की दुनिया वस्तुतः व्यक्तिनिष्ठ होती है ना कि वस्तुनिष्ठ।

सीखने को व्यवहार में अपेक्षाक त आए स्थायी बदलाव के रूप मे लिया जा सकता है जो अनुभव एवं अभ्यास का परिणाम है। एक व्यक्ति को किसी द ष्टि से सीखा या समझा जाता है जब वह निरन्तर एक परिवर्तित व्यवहार प्रस्तुत करता है। किसी हद तक सीखना व्यक्ति में एक प्रबुद्ध, सकारात्मक एवं अनूकूलन प्रक्रिया है यद्यपि सुप्तता, जन्मजात साधना से भी मना नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति के व्यवहार, उसमें रूझान मूल्य, विश्वास, योग्यता, अभिप्रेरणा तथा समय के साथ उसमें आने वाले परिवर्तनों के लिए सिखलाई एक महत्वपूर्ण स्त्रोत्र की भूमिका निभाती है।

अभिप्रेरणा की प्रक्रिया एक बहुचरणीय प्रक्रिया है जिसमें अभिप्रेरक तत्व, लक्ष्य, योग्यता, जरूरतें, प्रयास, प्रोत्साहन, पुरस्कार, निष्पादन, संतुष्टि तथा प्रति पुष्टि आदि मूल तत्व हैं। व्यक्ति के अन्दर आवश्यकता की विद्यमानता उसको बैचेन कर देती है तथा वह अपने अन्दर ऐसी अभिप्रेरणा पैदा कर लेता है कि उनका किस प्रकार समापन करे। उसको आवश्यकता को पूरा करने के लिए प्रयास करना होता है तथा उसके प्रयास किसी निष्पति तथा व्यवहार की ओर ले जाते है जिससे उसके लक्ष्य तुरन्त पूरे हो सके। आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सहायक विभिन्न प्रोत्साहन तथा पुरस्कार व्यक्ति विशेष को संतुष्टि प्रदान करते है।

अभिप्रेरण की प्रक ति
(Nature of Motivation)

अभिप्रेरण की विभिन्न परिभाषाओं से कई लक्षण प्रकट होते है जो इसकी प्रक ति को स्पष्ट करते है। अभिप्रेरण की प्रक ति को निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है।

(1) **एक प्रक्रिया**:- अभिप्रेरण एक प्रक्रिया है जो व्यक्तियों को निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित अथवा प्रोत्साहित करती है। यह मानवीय व्यवहार को जाग त करने, बनाये रखने तथा वांछित दिशाओं में अग्रसर करने की प्रक्रिया है।

(2) **मानवीय आवश्यकताओं पर आधारित**:- समस्त मानवीय व्यवहार मनुष्य की आवश्यकताओं से संचालित होते है। मनुष्य एक इच्छा प्रधान प्राणी है। अपनी शारीरिक, मानसिक व सामाजिक इच्छाओं की संतुष्टि से प्रेरित होकर ही वह अनेक कार्यो को प्रारम्भ करता है। आवश्यकताएँ व्यक्ति के भीतर रिक्तता, तनाव, संघर्ष, अभाव को जन्म देकर उसे कार्यवाही के लिए प्रव त करती है। मास्लों, हजबर्ग, एल्फरडर, मैकलीफैण्ड आदि के अभिप्रेरण सिद्धान्त मानवीय आवश्यकताओं पर ही आधारित है।

(3) **मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया**:- अभिप्रेरण मूलतः एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है इसका सम्बन्ध उन आवश्यकताओं से है जो मनुष्य के चेतन अथवा अर्द्ध चेतन मस्तिष्क में विद्यमान रहती है। मनोवैज्ञानिक के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार उसके मन एवं उसमें होने वाली अनुभूतियों से निर्मित होता है।

(4) **लक्ष्य प्रधान व्यवहार**:- अभिप्रेरण व्यक्ति के निश्चित लक्ष्यों, परिणामों अथवा निष्पादन के लिए अभिप्रेरण करता है। अभिप्रेरण एक लक्ष्य-प्रधान प्रक्रिया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने वैयक्तिक लक्ष्यों की संतुष्टि के लिए कार्य करता है। किन्तु

प्रबन्धक व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक लक्ष्यों को एकीक त करके कर्मचारियों को कार्य के लिए प्रेरित करता है।

(5) **संतुष्टि से भिन्नः**- अभिप्रेरण आवश्यकता अथवा लक्ष्य की पूर्ति से सम्बन्धित प्रक्रिया है। संतुष्टि किसी आवश्यकता की पूर्ति से मिलने वाला सन्तोष है। कार्य संतुष्टि एक परिणाम है। पोर्टर एवं लालर ने अपने अभिप्रेरण सिद्धान्त में कार्य संतुष्टि को अभिप्रेरण प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण घटक माना है जो आन्तरिक व बाह्य पुरस्कारों के साथ-साथ व्यक्ति को कितने पुरस्कार मिलने की आशा है पर भी निर्भर करता है। अभिप्रेरण व कार्य संतुष्टि की भिन्नता के कारण यह संभव है कि कार्य संतुष्टि के उच्चतम होने के पश्चात भी कार्य के लिए अभिप्रेरण का स्तर निम्न हो सकता है।

(6) **निष्पादन से सम्बन्धितः**- अभिप्रेरण का निष्पादन से गहरा सम्बन्ध है। अभिप्रेरण की प्रक्रिया विचारधाराओं के अनुसार निष्पादन भी अभिप्रेरण प्रक्रिया के महत्वपूर्ण घटकों में से एक है। जो व्यक्ति की योग्यता, प्रयासों व भूमिका-बोध पर निर्भर करता है। निष्पादन के आधार पर ही पुरस्कार भी दिये जाते है। किन्तु जहाँ पुरस्कार प्रदान करने में निष्पादन स्तर पर ध्यान नहीं दिया जाता है, वहाँ अभिप्रेरण प्रक्रिया का महत्व कम हो जाता है।

(7) **मनोबल से सम्बन्धितः**- मनोबल एवं अभिप्रेरण में अन्तर है। मनोबल से संगठन में इसके प्रबन्धकों के व्यक्तित्व, योग्यता व प्रयासों में अन्तर उत्पन्न होने लगता है। यह कर्मचारियों की अभिव ति की दशा को प्रकट करता है। अभिप्रेरण एक प्रक्रिया व कारण है जबकि मनोबल इससे उत्पन्न करने वाला परिणाम है। अभिप्रेरण व्यक्तिगत होता है जबकि मनोबल समूह विचार है।

(8) **अभिप्रेरण व टीम भावना एक नहीं हैः**- कई बार अभिप्रेरण व टीम-भावना को एक मान लिया जाता है। टीम-भावना व्यक्तियों द्वारा समूह में प्रभावशाली ढंग से कार्य करने की दशा है। जबकि अभिप्रेरण व्यक्ति की भीतर के वह इच्छा है जो उसे कार्य के लिए प्रोत्साहित करती है। टीम-भावना के द्वारा व्यक्ति समूहों में संतुष्टि के लिए कार्य कर सकते है।

(9) **विभिन्न प्रकारः**- अभिप्रेरण कई प्रकार का होता है, जैसेः- धनात्मक एवं ऋणात्मक, वित्तीय एवं अवित्तीय, व्यक्तिगत एवं सामूहिक आदि। इन विभिन्न प्रकार के अभिप्रेरण की तकनीके एवं प्रक्रिया भी भिन्न-भिन्न होती है। संस्था के सदस्यों की प्रक ति, कार्य, लक्ष्य व संगठनात्मक परिस्थितियों पर विचार करते हुए विभिन्न प्रकार के अभिप्रेरण का प्रयोग किया जा सकता है।

(10) **सतत व गतिशील प्रक्रियाः**- अभिप्रेरण संगठन में सतत् रूप से चलने वाली प्रक्रिया है यह प्रबन्धक को अपने समस्त कार्यो में अभिप्रेरित करवाता है। किन्तु व्यक्तियों की आवश्यकताओं व व्यवहारों में निरन्तर परिवर्तन होते रहने के कारण प्रबन्धक को भी अपनी अभिप्रेरणा विधियों व योजना में परिवर्तन करना होता है।

(11) **कार्य करने की तत्परताः**- अभिप्रेरण कार्य करने की तत्परता एवं योगदान देने की इच्छा है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति अपनी शारीरिक व मानसिक क्षमता का बहुत कम भाग कार्य में विनियोजित करता है। किन्तु अभिप्रेरण के द्वारा न केवल व्यक्ति की क्षमताओं का रचनात्मक उपयोग किया जा सकता है। वरन् उसकी शक्ति को अनुत्पादक कार्यो में खर्च होने से भी रोका जा सकता है।

(12) **उत्पादकता में व द्धिः**- अभिप्रेरण के द्वारा स जनात्मकता, क्रियाशीलता व रचनात्मक प्रव तियों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। व्यक्ति की क्षमताओं का अधिकाधिक उपयोग किया जा सकता है। अभिप्रेरण के माध्यम से ही संगठन में टीम भावना व मनोबल में व द्धि की जा सकती है।

(13) **उद्दीपन कार्यः**- अभिप्रेरण एक उद्दीपन कार्य है जो मनुष्य की निष्क्रिय शक्तियों को उत्तेजित करते है। इसमें विभिन्न उद्दीपको को निर्धारित करके उन्हे प्रयुक्त किया जाता है ताकि मानवीय व्यवहार को वांछित दिशा में निर्देशित किया जा सके। 'हेब' के अनुसार "मस्तिष्क सम्बन्धी घटनाओं के दो पहलू है- संकेत तथा उद्दीपन, अभिप्रेरण उद्दीपन पहलू है बिना संकेत के उद्दीपन पहलू विद्यमान नहीं रह सकता।"

(14) **व तीय प्रक्रियाः**- अभिप्रेरण एक व तीय प्रक्रिया है जो कि किसी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं संतुष्टि के साधन खोजता है। आवश्यकता पूर्ति के पश्चात व्यक्ति अपनी संतुष्टि का मूल्यांकन करता है तथा भावी व्यवहार के बारे में निर्णय लेता है।

(15) **अभिप्रेरण मानवीय संतुष्टि का कारण व परिणाम दोनों है**:- अभिप्रेरण हस्तान्तरित नहीं की जा सकती है यह मानवीय संतुष्टि को प्रेरित करने का कारण व उसका परिणाम दोनों है।

(16) **सम्पूर्ण व्यक्ति अभिप्रेरित होता है उसका एक भाग नहीं**:- प्रत्येक मनुष्य एक समग्र इकाई है। अतः मनुष्य सम्पूर्ण रूप से ही अभिप्रेरित होता है उसके किसी एक भाग को प थक से अभिप्रेरित नहीं किया जा सकता है।

(17) **अभिप्रेरण का सम्बन्ध मानवीय संसाधनों से है**:- मनुष्य में भावनाएँ, आकांक्षाएँ, मनोवेग, लक्ष्य बोध आदि विद्यमान होते है जोकि निर्जीव वस्तुओं में नहीं होते है। केवल मनुष्यों को ही अभिप्रेरित किया जाना संभव होता है।

(18) **अभिप्रेरण की विभिन्न विधियाँ है**:- मानव को अभिप्रेरित करने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि अभिप्रेरण किसी एक उत्प्रेरक या आवश्यकता से जुड़ा हुआ नहीं है। व्यक्ति को वेतन में व द्धि, बोनस, पुरस्कार प्रबन्ध में हिस्सा, सेवा सुरक्षा, मानवोचित व्यवहार, कार्य मान्यता, उत्तरदायित्व आदि के द्वारा उत्प्रेरित किया जा सकता है।

(19) **अन्य लक्षणः- अभिप्रेरण के कुछ अन्य लक्षण निम्न है**-

1. अभिप्रेरण केवल तकनीक नही है, यह तकनीक से बहुत अधिक है।
2. अभिप्रेरण अवबोध तथा ज्ञान प्राप्ति की भांति एक परिकल्पित रचना है। यह एक मानसिक संरचना है। वास्तव में अभिप्रेरण को माइकोस्कोप से देखा या प थक नहीं किया जा सकता है। अभिप्रेरण के केवल व्यवहारात्मक प्रकटीकरण को ही देखा जा सकता है।
3. अभिप्रेरण आवश्यकताओं तथा इच्छाओं पर आधारित जीवन का एक ढंग एवं दर्शन है।
4. अभिप्रेरण का सम्बन्ध मानवीय व्यवहारों के 'क्यों' से है।
5. अभिप्रेरण मानवीय सहजव ति नहीं, वरन वातावरण से सीखा हुआ एक प्रत्युत्तर है।
6. एडवर्ड डी॰ बोनो के अनुसार, "बिना तकनीक के अभिप्रेरण अभावी होता है।"
7. फ्रायड के अनुसार मनुष्य में "अचेतन अभिप्रेरण" भी क्रियाशील होता है। वास्तव में मनुष्य अपनी सभी इच्छाओं व अकांक्षाओं के प्रति जागरूक नहीं होता है यद्यपि वे कार्य करती है।

अभिप्रेरण के उद्देश्य
(Objectives of Motivation)

अभिप्रेरण प्रदान करने के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैः-

(1) कर्मचारियों को प्रोत्साहित करके उनके मनोबल को बढ़ाना

(2) कर्मचारियों का आर्थिक, वैयक्तिक, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की संतुष्टि करना

(3) कर्मचारियों को स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करना

(4) कर्मचारियों की कार्यक्षमता तथा उनके मनोबल में संतुलन स्थापित करना

(5) मधुर श्रम सम्बन्धों की स्थापना करना

(6) संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति करना

(7) बाहर से थोपे गये नियन्त्रण के स्थान पर कर्मचारियों में आत्म नियन्त्रण की प्रव ति को जाग त करना

(8) परस्पर सहयोग एवं सहकारिता की भावाना को प्रोत्साहित करना

(9) इस सत्य की जानकारी प्रबन्ध को कराना कि कर्मचारी केवल आर्थिक मनुष्य ही नहीं है वरन उसके जीवन के अन्य मूल्य में भी उसे कार्य हेतु प्रेरित करते है।

अभिप्रेरण की आवश्यकता एवं महत्व
(Need and Importance of Motivation)

मानवीय व्यवहार प्रबन्धको के लिए सदा से ही दुविधापूर्ण एवम रहस्यमय रहा है। व्यक्ति की इच्छाओं, भावनाओं व प्रेरणाओं को समझने के लिए प्रबन्ध विचारको ने अनेक सिद्धान्त खोजे हैं व मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। किन्तु फिर भी व्यक्ति के व्यवहार, ऊर्जा स्त्रोत, इच्छा शक्ति व उत्प्रेरणा को समझ पाना चुनौतीयुक्त रहा है। मानवीय चेतना के रहस्यों को जानने का प्रयास सदियों से चल रहा है।

एक प्रबन्धक के लिए व्यक्ति केवल धन अर्जन के लिए कार्य करने वाला कर्मचारी ही नहीं है वरन् अनेक संवेगों, उद्वेगों, भावनाओं, आकांक्षाओं इच्छाओं व आवश्यकताओं से उत्प्रेरित प्राणी है। आज प्रत्येक संगठन में व्यक्ति से कार्य करवाना केवल 'भय अथवा पुरस्कार' की विचारधारा द्वारा संभव नहीं है। अनेक इच्छाएं व भावनाएं व्यक्ति को कार्य के लिए प्रेरित करती हैं। टैम्पल वर्लिग का कथन है कि "आप केवल व्यक्ति के हाथ को नियुक्त नहीं कर सकते है अर्थात प्रबन्धक व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं अस्तित्व को कार्य पर लगाता है केवल उसके हाथों को नहीं। "अतः व्यक्ति के सम्पूर्ण अस्तित्व को समझे बिना उससे कार्य ले पाने का विचार निरर्थकर है। अभिप्रेरणा का सम्बन्ध कर्मचारी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास से है। अभिप्रेरण की आवश्यकता के सम्बन्ध में श्रेष्ठ कथनों में से एक कथन जनरल फूड कारपोरेशन के भूतपूर्व अध्यक्ष कलोरेन्स फ्रान्सिस द्वारा दिया गया है उनके अनुसार, "आप किसी व्यक्ति की शारीरिक उपस्थिति उस समय खरीद सकते है, आप एक विशिष्ट स्थान पर किसी का उत्साह, पहलपन अथवा वफादारी नहीं खरीद सकते।" अभिप्रेरण की आवश्यकता एवं महत्व को निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है-

(1) **संगठनात्मक व व्यक्तिगत लक्ष्यों में एकता**:- व्यक्ति प्राथमिक रूप से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही संगठन में कार्य करता है। प्रबन्धक कर्मचारियों की वैयक्तिक आवश्यकताओं को पूरा करके ही संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है। अतः प्रबन्धक वैयक्तिक प्रेरकों, लक्ष्यों, इच्छाओं तथा महत्वकांक्षाओं की पूर्ति करके ही संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है।

(2) **निष्पादन योग्य वातावरण का स जन**:- संगठन में कार्य करने की इच्छा आदेशों की पालना, लक्ष्य प्राप्ति की भावना, कार्यक्षमता की व द्धि आदि प्रेरणात्मक वातावरण में ही सम्भव है। कार्यो के कुशल निष्पादन के लिए अभिप्रेरण द्वारा ही उचित वातावरण का निर्माण किया जा सकता है।

(3) **कार्य संतुष्टि में व द्धि**:- अभिप्रेरण की प्रक्रिया कार्य स्थल पर व्यक्तियों की विभिन्न शारीरिक, मानसिक व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर जोर देती है। विभिन्न अभिप्रेरण घटकों जैसे- वेतन, बोनस, कार्य, सुरक्षा, पदोन्नति, प्रबन्ध भागीदारी, परामर्श आदि के द्वारा कार्य संतुष्टि स्तर में व द्धि होती है।

(4) **प्रबन्धकीय कार्यो का आधार**:- प्रबन्ध के विभिन्न कार्यो जैसे- नियोजन, संगठन, नियन्त्रण, समन्वय आदि को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना आवश्यक होता है। ब्रेच के शब्दों में, अभिप्रेरण की समस्या प्रबन्ध कार्यवाही की कुंजी है।

(5) **मनोबल में व द्धि**:- अभिप्रेरण की प्रक्रिया कर्मचारियों की मानसिक स्थिति एवं प्रव त्तियों को अनुकूल बनाती है। अभिप्रेरण योजना के द्वारा व्यक्तियों की कार्य संतुष्टि आत्म-विश्वास, लगन व उत्साह में व द्धि करके उसके मनोबल को ऊँचा उठा सकते है।

(6) **उत्पादकता में व द्धि**:- उत्पादकता में व द्धि का एक महत्वपूर्ण आधार कर्मचारियों को प्रदत सेवाओं से है। अभिप्रेरित कर्मचारी पूर्ण लगन, उत्साह एवं निष्ठा से अपने कार्यो का निष्पादन करते है। फलतः उत्पादकता में व द्धि होती है।

(7) **कर्मचारी समस्याओं में कमी**:- अभिप्रेरण कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों के मध्य पारस्परिक विश्वास एवं सहयोग को बढाता है, फलस्वरूप अनेक कर्मचारियों से संबंधित समस्याओं-अनुपस्थिति, शिकायतें, समय व सामग्री का दुरूपयोग, असन्तोष, नैराश्य, तोड़फोड़, घेराव, हड़ताल आदि में कमी हो जाती है।

(8) **साधनों का अधिकतम प्रयोग**:- क्रिस आर्गीरिस के अनुसार, "संगठन में मनोवैज्ञानिक भण्डार पाया जाता है"। एक अभिप्रेरित कर्मचारी अपने व्यक्तिगत स्वार्थो की अपेक्षा संस्था के हितों को प्राथमिकता देता है।

(9) **प्रबन्धकीय विकासः**- कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए प्रबन्धको को उनकी आवश्यकताओं व व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करना होता है। विवेकपूर्ण विश्लेषण करके ही प्रबन्धक व्यक्तियों के उत्प्रेरको, उद्वेगों, सवेगों, भावनाओं आदि को प्राप्त करते है। इसके अतिरक्ति, अभिप्रेरण के अन्तर्गत कर्मचारियों के साथ-साथ प्रबन्धकों को भी अभिप्रेरित किया जाता है।

(10) **मानवीय व्यवहार का प्रबन्धः**- अभिप्रेरण की विचारधारा मानवीय व्यवहार के प्रबन्ध में अत्यन्त सहायक होती है। आधुनिक प्रबन्ध व्यवहारवाद एवं व्यवहार परिष्करण को आधारशील विचारधारा दी है। अभिप्रेरण सिद्धान्तों के द्वारा मानवीय व्यवहार, व्यक्तित्व, अवबोधन व द ष्टिकोण को भली भाति समझा जा सकता है।

(11) **कर्मचारी सहयोगः**- आज का कर्मचारी पूर्णतः संगठित एवं जागरूक है। दबाव, सत्ता, प्रभुत्व व आदेश क द्वारा उससे कार्य करवाना सम्भव नहीं है। केवल उसकी भावनाओं, आकांक्षाओं, व्यक्तित्व, द ष्टिकोण एवं कार्य मूल्यों के आधार पर ही उसका सहयोग एवं योगदान प्राप्त किया जा सकता है।

(12) **मानसिक शान्तिः**- असंतुष्ट आवश्यकतएँ व्यक्ति को मानसिक रूप से विचलित एवं विक त कर देती है। अर्थात व्यक्ति संगठन में अपने कार्यो का कुशलतापूर्वक निर्वाह नहीं कर पाता है। उसकी स जनात्मकता समाप्त होने लगती है। अभिप्रेरण के फलस्वरूप व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूरा करके न केवल मानसिक शान्ति प्राप्त करता है वरन उन्हें आत्म विकास एवं अभिव्यक्ति का अवसर भी प्राप्त होता है।

(13) **परिवर्तनों में सुविधाः**- कर्मचारियों को अभिप्रेरित करके परिवर्तनों के प्रति उनका सकारात्मक रूख बनाया जा सकता है तथा नकारात्मक द ष्टिकोण को बदला जा सकता है। अभिप्रेरित कर्मचारी परिवर्तनों को सहर्ष स्वीकार करते है तथा उनको क्रियान्वित करने के लिए सुझाव भी देते है।

(14) **कर्मचारी आवर्तन एवं अनुपस्थिति की कमीः**- अभिप्रेरित कर्मचारी संस्था में स्थायी बने रहते है तथा कार्य से अनुपस्थित नहीं रहते। यह उनकी कार्य संतुष्टि का परिणाम होता है जो कि श्रेष्ठ अभिप्रेरण के कारण उत्पन्न होता है।

अन्य कारण

(1) अभिप्रेरण से निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति सरल हो जाती है।

(2) सौहार्दपूर्ण मानवीय सम्बन्धों की स्थापना की जा सकती है।

(3) कार्य के प्रति रूचि जाग त की जा सकती है।

(4) ठोस श्रम सम्बन्धों का निर्माण किया जा सकता है।

(5) कर्मचारियों की सभी प्रकार की आवश्यकताओं की संतुष्टि की जा सकती है।

(6) अच्छे कर्मचारियों को संस्था की ओर आकर्षित किया जा सकता है।

(7) संस्था की ख्याति में भी व द्धि होती है।

अभिप्रेरण के सिद्धान्त
(Principles of Motivation)

यदि कर्मचारियों को कार्य के लिए समुचित प्रेरणा देनी है, तो निम्न सिद्धान्तों का पालन करना होगा-

(1) कर्मचारियों के काम को दुर्घटनाओं आदि से सुरक्षित रखने की व्यवस्था करनी चाहिए

(2) कर्मचारियों को अनुभव करना चाहिए कि उनकी नौकरी पक्की है अर्थात उसे अनावश्यक ही नहीं निकाला जाएगा

(3) कर्मचारियों के कार्य करने के वातावरण को यथाशक्ति सुहावना व सुखद बनाना चाहिए

(4. कर्मचारियों के कार्य की प्रशंसा करनी चाहिए

(5) उनको कुशल नेत त्व प्रदान करना चाहिए

(6) उनको कार्यकारी दल में एक श्रेष्ठ स्थिति प्राप्त है ऐसा आभास करना चाहिए

(7) उनको रूचि के अनुसार काम सौंपना चाहिए

(8) चाहे वे छोटे कर्मचारी हो या बडे, प्रत्येक दशा में उनके साथ एक मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठा का व्यवहार करना चाहिए

(9) ऐसी परिस्थिति पैदा करनी चाहिए कि कर्मचारीगण अपने कार्य के प्रति गौरव अनुभव करें।

(10) उनके काम के घण्टे उचित होने चाहिए

(11) उनको उचित एवं पर्याप्त मौद्रिक पुरस्कार दिये जाने चाहिए।

अभिप्रेरण प्रक्रिया
(Process of Motivation)

अभिप्रेरणा कुछ निशचित चरणों में विभाजित होती है। अभिप्रेरणा हेतु उठाये जाने वाले मुख्य कदम निम्नलिखित हैः-

(1) **उद्देश्यों का निर्धारणः**- कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के पूर्व सर्वप्रथम अभिप्रेरण के उद्देश्य का निर्धारण करना आवश्यक होता है। अभिप्रेरण उद्देश्यों का निर्धारण कर लेने से अभिप्रेरण के स्तर, साधनों, विधियों, दिशाओं आदि के बारे में उपयुक्त निर्णय लिये जा सकते है।

(2) **प्रेरणाओं की पहचानः**- लक्ष्यों के पश्चात प्रबन्धक को कर्मचारियों की भावनाओं व आवश्यकताओं का अध्ययन करते समय विशेष समय पर प्रदान की जाने वाली प्रेरणाओं की पहचान कर लेनी चाहिए। प्रेरणाओं की उपयुक्त पहचान के लिए कर्मचारी की वैधाानिक भिन्नताओं, मनोदशा, स्थितिपद, आकांक्षाओं आदि को ध्यान में रखना चाहिए।

(3) **प्रेरणाओं का समूहीकरणः**- विभिन्न स्तरों पर व पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारियों की प्रेरणाओं को निश्चित समूहों जैसे- आन्तरिक एवं बाह्य, वित्तीय एवं अवित्तीय आवश्यकताओं, वैयक्तिक एवं सामूहिक आदि में विभाजित कर लेना चाहिए।

(4) **सिद्धान्त एवं तकनीक चयनः**- कर्मचारियों को प्रभावी ढंग से उत्प्रेरित करने के लिए उचित सिद्धान्तों व तकनीकों का चयन किया जाना चाहिए। अभिप्रेरण तकनीकें व्यवहारिक एवं न्यूनतम लागत वाली होनी चाहिए। मास्लो हर्जबर्ग, एल्डरफर, मैक्लीलैण्ड, आदि विचारकों के सिद्धान्त अधिक व्यवहारिक सिद्ध हुए है। अभिप्रेरण के प्रक्रिया प्रधान व विषय प्रधान सिद्धान्त अलग-अलग दशाओं व प्रबन्ध स्तरों पर कार्य करने हेतु प्रभावित किये गये है।

(5) **विभिन्न चरों का अध्ययनः**- अभिप्रेरण की प्रक्रिया विभिन्न चरों अथवा घटकों के पारस्परिक सम्बन्ध से निर्मित होती है। अतः प्रबन्धक को इन विभिन्न चरों-प्रेरणा, प्रयास, निष्पादन, भूमिका अवबोधन, पुरस्कार, कार्य संतुष्टि आदि के आपसी सम्बन्धों पर अध्ययन कर लेना चाहिए ताकि अभिप्रेरण प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण बनाया जा सके।

(6) **निष्पादन का मापनः**- प्रबन्धक को प्रत्येक कर्मचारी के निष्पादन का निरपेक्ष मूल्यांकन करना चाहिए। निष्पादन मूल्यांकन में किसी प्रकार का भेदाभाव या पक्षपात नहीं किया जाना चाहिए। यह मूल्यांकन निर्धारित प्रमापों के आध ाार पर किया जाना चाहिए।

(7) **पुरस्कार प्रदान करनाः**- निष्पादन का मूल्यांकन करने के पश्चात प्रत्येक कर्मचारी को उसके निष्पादन स्तर के अनुरूप पुरस्कार प्रदान करने चाहिए। पुरस्कार आवश्यकता अनुसार तथा उचित समय पर प्रदान किये जाने चाहिए। पुरस्कार गोपनीय नहीं रखे जाने चाहिए।

(8) **अनुवर्तनः**- अभिप्रेरणा प्रदान करने के पश्चात अभिप्रेरण तकनीकों, विधियों, योजनाओं व सिद्धान्तों का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए। अभिप्रेरण के प्रभाव को कर्मचारियों के निष्पादन स्तर, कार्य संतुष्टि, रचनात्मक प्रव त्तियों आदि के द्वारा मापा जा सकता है। अनुवर्तन द्वारा यह पता लगाया जा सकता है कि अभिप्रेरण योजनाएँ वांछित परिणाम उत्पन्न कर रही है अथवा नहीं।

मानवीय आवश्यकताएँ और अभिप्रेरण
(Human Needs and Motivation)

जब किसी मानवीय इच्छा की पूर्ति के लिए किसी व्यक्ति विशेष के पास साधन उपलबध हो और वह उन साधनों को व्यय करने के लिए भी तैयार हो तो अर्थशास्त्र की द ष्टि से इसे आवश्यकता कहते है। लेकिन सामान्य अर्थ में किसी वस्तु की तीव्र इच्छा आवश्यकता कहलाती है। मानवीय आवश्यकताओं को विभिन्न सिद्धान्तों ने अलग-अलग प्रकार से वगीक त किया है।

(1) स्वभाविक या प्राक तिक आवश्यकताएं

(2) उपार्जित आवश्यकताएं

(1) **स्वभाविक या प्राक तिक आवश्यकताएं**:- ये वे आवश्यकताएं होती है जो बार-बार उत्पन्न होती है, उन आवश्यकताओं में भूख, प्यास, यौन सम्बन्ध आदि प्रमुख है।

(2) **उपार्जित आवश्यकताएँ**:- ये स्वभाविक या प्राक तिक आवश्यकता नहीं होती है। इन आवश्यकताओं की उत्पति अन्य व्यक्तियों की देखा देखी से होती है। उदाहरणार्थ, योगेश के पड़ोसी के पास स्कूटर है तो वह भी स्कूटर की आवश्यकता महसूस करता है कि उसके पास भी स्कूटर हो। इस प्रकार योगेश की स्कूटर की आवश्यकता प्राक तिक या स्वभाविक नहीं है बल्कि पड़ोसी के पास स्कूटर होने से उत्पन्न आवश्यकता है। ये आवश्यकताएँ विगत अनुभवों पर आधारित होती है।

कीथ डेविस ने अपनी पुस्तक "हयूमन रिलेशन एट वर्क" में आवश्यकताओं को निम्न दो भागों में विभक्त किया है:-

(i) प्राथमिक आवश्यकताएं

(ii) गौण आवश्यकताएं

(i) **प्राथमिक आवश्यकताएं**:- ये वे आवश्यकताएं है जो मनुष्य के जीवित रहने के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है। इनमें भोजन, पानी, हवा, आराम आदि को सम्मिलित किया जाता है इन आवश्यकताओं की पूर्ति या संतुष्टि ने होने पर मनुष्य को अपने प्राणों की आहुति तक देनी पड़ती है।

(ii) **गौण आवश्यकताएं**:- इसके अन्तर्गत वे आवश्यकताएं आती है जिनका सम्बन्ध मनुष्य के मस्तिष्क और उसकी भावनाओं से होता है। मनुष्य के लिए इन आवश्यकताओं की संतुष्टि उतना महत्व नहीं रखती है जितना कि प्राथमिक आवश्यकताओं की संतुष्टि रखती है। इनमें सामाजिक, सुरक्षा, स्वाभिमान एवं आत्म विश्वास को शामिल करते है।

एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार मनुष्य की आवश्यकताएं निम्न तीनो भागों में विभाजित की जा सकती है।

(1) **आर्थिक आवश्यकताएँ**:- आर्थिक आवश्यकताएँ मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता होती है क्योंकि बिना धन के मनुष्य अपनी दूसरी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्शल के अनुसार मनुष्य एक आर्थिक प्राणी है। अतः इसकी विशेषता इसको बहुत कुछ आर्थिक प्रलोभन देती रहती है। क्योंकि यह कहा और माना जाता है कि संसार में धन सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली प्रेरणा है।

हेयन्स तथा मैसी ने इस सिद्धान्त को एक उद्देशीय सिद्धान्त का नाम दिया है। उसके अनुसार यह सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि "मनुष्य केवल अपने वितीय लाभ को बढ़ाने के लिए ही कार्य करता है। वेतन जितना अधिक होगा परिश्रम उतना ही अधिक किया जायेगा। यदि वेतन को पारिश्रमिक पर आधारित कर दिया जाएगा तो परिश्रम अधिक होगा। यद्यपि श्रमिकों के जीवन की आवश्यकताओं का सर्वाधिक महत्व नहीं होता फिर भी इन आवश्यकताओं की संतुष्टि आवश्यक होती है। वर्तमान समय में श्रमिक सर्वप्रथम वैज्ञानिक और सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि करना चाहता है लेकिन इन दोनों ही आवश्यकताओं का आर्थिक आवश्यकताओं से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।"

(2) **वैयक्तिक आवश्यकताएं**:- व्यक्ति की इन आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर वह सुख अनुभव करता है और अपने आपको गौरवान्वित वातावरण में अनुभव करता है जिससे उसकी कार्यक्षमता और मनोबल दोनों में व द्धि होती है। साधारणतः वैयक्तिक आवश्यकताओं की श्रेणी में निम्न को सम्मिलित किया जा सकता है-

(i) कार्य की सुरक्षा

(ii) उचित मजदूरी

(iii) सन्तोषजनक कार्य की दशाएं

(vi) समान व्यवहार

(v) कार्य को मान्यता

(vi) पदोन्नति के अवसर

(vii) अपनत्व की भावना

(viii) लाभों एवं प्रबन्ध में सहभागिता

(ix) सुद ढ़ नेत त्व

(x) सामाजिक प्रतिष्ठा

(xi) उचित विश्राम काल

उपर्युक्त वर्णित वैयक्तिक आवश्यकताओं में से अनेक आवश्यकताएं ऐसी होती है जिनको मौद्रिक प्रेरणाओं से संतुष्ट नहीं किया जा सकता है।

(3) **सामाजिक आवश्यकताएं**:- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसीलिए उसकी कुछ सामाजिक आवश्यकताएं होना स्वाभाविक है जिनकी संतुष्टि उसे कार्य करने के लिए अवश्य करनी होती है। श्रमिकों के सामाजिक जीवन को सुखी एवं सम द्विशाली बनाने के लिए समूह से नई आवश्यकताएं जन्म लेती हैं। समूह आवश्यकताएं वैयक्तिक आवश्यकताओं से प्रथम होती है। औद्योगिक तकनीकी में निरन्तर परिवर्तन का भय, कार्य की सुरक्षा का भय और औद्योगिक जीवन में अनेक कठिनाईयों ने सामाजिक आवश्यकताओं का महत्व वैयक्तिक आवश्यकताओं की तुलना में अधिक कर दिया। उर्विक ब्रेच के अनुसार "सामाजिक आवश्यकताएं स्त्रियों एवं पुरूषों की मार्गदर्शक, उत्तेजक और नेत त्व करने वाली शक्ति है जो प्रबन्धक के वास्तविक उत्तरदायित्वों का निर्धारण करती है। सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि न करने पर अच्छे मानवीय सम्बन्धों के निर्माण और उत्पादन में व द्धि करना एक कल्पना मात्र होगी।

सामाजिक आवश्यकताओं में फिलप्पों ने निम्नलिखित को सम्मिलित किया है-

(1) स्व-निश्चित घोषणा की आवश्यकता

(2) स्व-सम्मान की आवश्यकता

(3) सामाजिक अनुमोदन की आवश्यकता

(4) आशय एवं सुरक्षा की आवश्यकता

(5) स्नेह प्राप्त करने की आवश्यकता

(6) संघ की आवश्यकता

(7) स्व-सिद्धि की आवश्यकता

(8) अन्य आवश्यकताएं

अभिप्रेरण के प्रकार
(Types of Motivation)

अभिप्रेरण का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है जिसमें उन समस्त विधियों, पद्धतियों व घटकों का समावेश किया जाता है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने का कार्य करते है। अभिप्रेरणाओं को मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया गया है:-

(1) धनात्मक अभिप्रेरणा

(2) ऋणात्मक अभिप्रेरणा

(3) मौद्रिक अभिप्रेरणा

(4) अमौद्रिक अभिप्रेरणा

(1) **धनात्मक अभिप्रेरणा**:- एडविन बी फिलप्पो के अनुसार धनात्मक अभिप्रेरण से आशय उस प्रक्रिया से है। जिसके द्वारा लाभ या पारिश्रमिक का प्रलोभन देकर कर्मचारियों को स्वेच्छा से काम करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इसे सकारात्मक अभिप्रेरण भी कहते है।

यह मौद्रिक व अमौद्रिक दोनों प्रकार का हो सकता है।

रूप:- धनात्मक अभिप्रेरणा को निम्न रूप हो सकते हैं:-

(1) नकद पारिश्रमिक देना

(2) अधीनस्थों में व्यक्तिगत रूचि प्रकट करना

(3) कुशल व योग्य कर्मचारियों के विषय में सूचनाएं प्रसारित करना

(4) वेतन व मजदूरी देना

(5) प्रबन्ध एवं निर्णयन में भागीदारी देना

(6) मान्यता प्रदान करना

(7) कल्याणकारी सुविधाएं देना

(8) भारार्पण करना

(9) सुरक्षा प्रदान करना

(10) कार्य संतुष्टि देना

(11) स्वास्थ कार्य-दशाएं निर्मित करना

(12) मान सम्मान देना

(13) पदोन्नति के अवसर प्रदान करना

(14) कर्मचारियों के कार्य में गौरव का अनुभव करना

(15) अधिकारों का केन्द्रीयकरण करना

(16) श्रेष्ठ कार्य के लिए पुरस्क त करना

(17) विभिन्न समस्याओं पर कर्मचारियों के साथ विचार विमर्श करना व सुझाव आमन्त्रित करना

प्रभाव:- ऐसा अभिप्रेरण कर्मचारियों के मनोबल को ऊँचा उठाता है। उनकी परिवेदनाएं दूर होती है। तथा उन्हें आत्माभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करता है। यह कर्मचारियों को आन्नद व संतुष्टि की अनुभूति कराता है तथा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु उनको सहयोग के लिए प्रेरित करता है। वर्तमान युग में अभिप्रेरणा का महत्व इसी कारण लोकप्रिय है।

(2) **ऋणात्मक अभिप्रेरणा**:- एडविन फिलप्पो के ही शब्दों में ऋणात्मक अभिप्रेरणा का उद्देश्य भी, धनात्मक अभिप्रेरणा की भांति अन्य व्यक्तियों को अपनी इच्छानुसार कार्य करने हेतु अभिप्रेरित करना है किन्तु इस तकनीक का आधार भूतपूर्व दबाव होता है। ऐसी अभिप्रेरणा के समर्थकों की यह मान्यता है कि व्यक्तियों को कभी-कभी भय, डर, दबाव या दण्ड के आधार पर भी अभिप्रेरित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई कर्मचारी देर से आने का आदी हो गया है तथा अपने कार्य में भी सुधार नहीं करता तो वेतन काटने या काम से प थक करने की धमकी दी जा सकती है।

रूप:- ऋणात्मक अभिप्रेरण के निम्न रूप हो सकते है:-

(1) डांटना-फटकारना

(2) मौद्रिक दण्ड देना

(3) पदोन्नति करना

(4) जबरी छुटटी करना

(5) नौकरी से अलग करना

(6) सेवानिव त्त करना

(7) वेतन व द्धि व पदोन्नति न करना आदि।

यद्यपि अभिप्रेरण का यह रूप काफी प्रभावी होता है किन्तु अत्याधिक कठोर होने के कारण अपवाद स्वरूप ही इसका प्रयोग करना चाहिए क्योंकि ऐसे पग से असन्तोष व विद्रोह फैलने की आशंका रहती है।

धनात्मक एवं ऋणात्मक अभिप्रेरण में अन्तर की मुख्य बातें चार हैं:-

(1) धनात्मक अभिप्रेरण का मूल आधार सुख व संतोष प्रदान करना होता है जबकि ऋणात्मक अभिप्रेरण का मूल आधार भय, दण्ड व दबाव का प्रयोग किया जाना होता है।

(2) धनात्मक अभिप्रेरण में कर्मचारी को पुरस्कार देने की भावना होती है। जबकि ऋणात्मक अभिप्रेरणा में दण्ड या सजा देने की भावना होती हैं।

(3) धनात्मक अभिप्रेरण मनोबल को ऊँचा उठाता है। जबकि ऋणात्मक अभिप्रेरणा संघर्ष, असन्तोष व अशान्ति को जन्म देती है।

(4) धनात्मक अभिप्रेरणा वित्त के साथ-साथ मानसिक संतुष्टि प्रदान करती है। जबकि ऋणात्म्क अभिप्रेरणा वितीय हानि या मानसिक अशान्ति को जन्म दे सकती है।

उपर्युक्त अंतर के होते हुए भी दोनो एक दूसरे के पूरक हैं। सभी उपक्रमों में प्रायः दोनों प्रकार के अभिप्रेरकों का प्रयोग किया जाता है।

(3) **मौद्रिक या वितीय अभिप्रेरणाए**:- जब किसी कर्मचारी को कार्य के प्रतिफल स्वरूप दिया जाने वाला पारिश्रमिक मुद्रा के रूप में हो तो उसे वित्तीय या मौद्रिक अभिप्रेरण कहेंगे। यह अभिप्रेरण का सबसे अधिक लोकप्रिय माध्यम है। मौद्रिक अभिप्रेरण अधिकतर वेतन, मजदूरी, बोनस, प्रीमियम या लाभांश भागिता के रूप में होता है।

सिद्धान्त:-

(1) मौद्रिक अभिप्रेरणा की योजना सरल व बोधगम्य होनी चाहिए।

(2) किसी संस्था की अन्धी नकल न करके अमुक संस्था की देयक्षमता के भीतर ही पारितोषण कर देना चाहिए।

(3) वेतन इतना हो कि कर्मचारी के जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त हो

(4) प्रेरणा राशि प्रतिस्पर्धात्मक भी होनी चाहिए

(5) विभिन्न योग्यता वाले कर्मचारियों के लिए राशि विभिन्न हो सकती है।

(6) योजना में लोच रहना भी जरूरी है।

(4) **अमौद्रिक अभिप्रेरण**:- अवित्तीय अभिप्रेरण मानसिक व अद श्य प्रक ति का होता है जिसका वित्त या मुद्रा से कोई सम्बन्ध नहीं होता। यह कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक व सामाजिक अभाव की आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है। इसके प्रमुख उदारहण है:-

(1) कार्य की प्रशंसा करना तथा पीठ थपथपाना

(2) कार्य की सुरक्षा प्रदान करना

(3) श्रेष्ठतर कार्य दशाएं प्रदान करना

(4) नेत त्व प्रदान करना

(5) उदार अवकाश नीति अपनाना

व्यक्तिगत बनाम सामूहिक अभिप्रेरण

व्यक्तिगत अभिप्रेरण में व्यक्ति विशेष को ही अभिप्रेरित किया जाता है। पदोन्नति, मान्यता, प्रशंसा आदि इसके उदाहरण है।

सामूहिक अभिप्रेरण के अन्तर्गत व्यक्तियों के किसी समूह विशेष को समूह लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अभिप्रेरित किया जाता है। अधिलाभांश, समूह बोनस, सामूहिक पुरस्कार, विशिष्ट वार्षिक व द्धि आदि इसके उदाहरण हैं।

अभिप्रेरण को प्रभावित करने वाले घटक
(Factors Affecting Motivation)

एक सफल अभिप्रेरण के लिए आवश्यक है कि मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता के साथ-साथ उसकी सामाजिक व मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की संतुष्टि का भी ध्यान रखा जाए। इस द ष्टि से अभिप्रेरण को दो वर्गो में विभक्त करके अग्र चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता हैः-

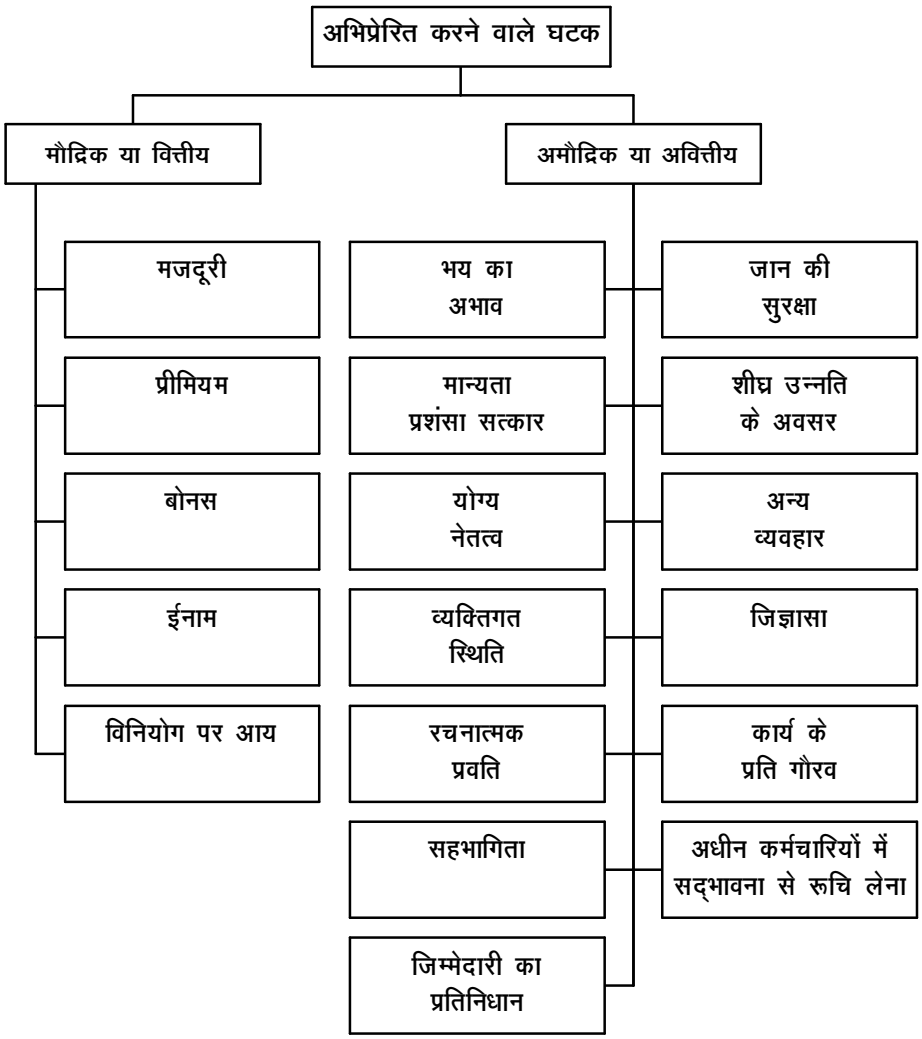

मौद्रिक या वित्तीय अभिप्रेरणाएं

मौद्रिक अभिप्रेरणाएँ कर्मचारी को अपनी भोजन, वस्त्र और आश्रय सम्बन्धी आवश्यकताओं को अपनी इच्छानुसार पूरा करने में समर्थ बनाती हैं। 'पर्स' में कुछ मुद्रा रहना सुरक्षा की भावना उत्पन्न करता है। साधारण मौद्रिक प्रेरणाएं मजदूरी, वेतन, प्रीमियम, इनाम एवं विनियोग पर आय के रूप में होती है। मजदूरी दो मुख्य अंगों में दी जाती है- कार्यानुसार एवं समयानुसार। इसके अनेक मिश्रित रूप भी प्रचलित है, जैसे- हल्से प्रीमियम प्लान, 100% बोनस प्लान आदि।

पुरस्कार देने का उपर्युक्त ढंग उत्पादन की मात्रा पर ध्यान केन्द्रित करता है, किन्तु कुछ मामलों में मात्रा की अपेक्षा किस्म का महत्व अधिक होता है। किस्म के उत्पादन हेतु उत्साहित करने में अमौद्रिक प्रेरणाओं की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि कर्मचारी की मौद्रिक मजदूरी में व द्धि कर दी जाए तो यह आवश्यक नहीं है कि कुशलता भी बढ़े। भारतीय श्रमिकों को ही लीजिए जिस सामाजिक आर्थिक परिस्थिति में वह रह रहा है। उसमें अतिरिक्त धन, शराब, जुए आदि दुर्व्यसनों में उड़ा देना अधिक संभव है। यदि उसे अवित्तीय प्रेरणाएं दी जाए तो उत्पादकता में व द्धि हो सकती है।

उदाहरण के लिए, यदि प्रबन्धक यह घोषित कर दे कि जो लोग सबसे सन्तोष जनक ढंग से कार्य करेंगे उन्हे "संस्थावीर" मान दिया जायेगा और आगामी पदोन्नति भी, तो ऐसी प्रेरणा कारखानों में एक स्वस्थ व्यवहार बना देगी, जिसमें सभी श्रमिक सर्वोत्तम प्रयास करेंगे। इससे कर्मचारी और सेवायोजक दोनों फायदे में रहेंगे। नीचे कुछ प्रमुख अवित्तीय प्रेरणाओं पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है:-

(1) **भय का अभाव** :- किसी श्रमिक को भयभीत करके उससे कुछ समय तक अधिक कार्य करवाया जा सकता है। कुछ समय पहले आयोग में इस प्रेरणा को बहुत महत्व दिया जाता था लेकिन आज यह अनुभव किया जाता है कि भय के अन्तर्गत श्रमिक दिल से कार्य नहीं करते। भय उत्पादित सहकारिता भय जारी रहने के समय तक चलती है, लेकिन भय हटा लेने पर वह विरोध में, विरोध बदले की भावना अन्यायपूर्ण व्यवहार में परिणित हो जाती है।

(2) **नौकरी या कार्य की सुरक्षा या स्थायित्व** :- प्रत्येक कर्मचारी यह चाहता है कि केवल एक निश्चित अवधि के उपरान्त उसे उचित मजदूरी या वेतन की नियत राशि मिल जाया करे वरन उसकी नौकरी भी सुरक्षित अथवा स्थायी हो। छटनी, पदोवनति या नौकरी से निकाले जाने का कोई खतरा नहीं होना चाहिए। सभी उद्योगपतियों का यह सामान्य अनुभव है कि श्रमिकों में व्याप्त नौकरी की असुरक्षा की भावना उत्पादन घटने का कारण बन जाती है किन्तु सुरक्षा की भावना होने पर उत्पादन व द्धि होती है।

(3) **मान्यता, प्रशंसा एवं सत्कार** :- मेरी कुशिग नाइल्स के शब्दो में, "प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि उसके कार्यो की प्रशंसा की जाए, उसे मनुष्य के रूप में आदर प्रदान किया जाए" किन्तु इस भावना की बहुत उपेक्षा की जाती रही है। अधिकांश लोग अपने अच्छे कार्यो की सराहना सुनना पसन्द करते है। मौन रहना पर्याप्त नहीं है, विशेषत जब अच्छा कार्य हो तो टिप्पणी रहित रह जाए किन्तु बुरे कार्य के लिए सदैव चेतावनी या तिरस्कार मिले। निसन्देह सुपरवाइजर के लिए यह संभव नहीं है कि वह हर किसी की और उसके हर काम की प्रशंसा करे किन्तु सराहना सम्बन्धी तकनीक का यथासम्भव प्रयोग करना ही चाहिए क्योंकि यह अभिप्रेरण का उपयोगी साधन है। कभी-कभी तो मशीन पर श्रमिक के नाम की प्लेट लगा देने से उसकी कार्यक्षमता बढ़ जाती है।

(4) **उन्नति के अवसर** :- प्रत्येक व्यक्ति अपनी उन्नति के अवसर चाहता है। संभव है कि अवसर मिलने पर वह उसका लाभ न उठा सके, किन्तु ऐसा अवसर मिलने की आशा वह जरूर करता है। कुछ लोग उन्नत पदों पर जाना पसन्द नहीं करते क्योंकि वे अतिरिक्त जिम्मेदारियों से बचना चाहते है, लेकिन अधिकांश लोग इसके इच्छुक रहते है।

(5) **योग्य नेत त्व** :- प्रबंध संचालक अथवा प्रबन्धक औद्योगिक संस्था रूपी जहाज का कप्तान है उसे चाहिए कि अपने कर्मचारियों के सामने अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करे। उसके द ष्टिकोण, कार्य करने के ढंग आदि की नकल की जाती है। जिस तरह वह व्यवहार करेगा उसी तरह उसके कर्मचारी भी व्यवहार करेंगे। कर्मचारियों के प्रति आदर का भाव, व्यक्तियों की समस्याओं में रूचि, कारखाने में निरीक्षण करते समय कर्मचारियों के साथ अच्छा व्यवहार आदि बहुत शीघ्र श्रम पूँजी सम्बन्धों को सुधार देगा।

(6) **महत्वपूर्ण व्यवहार** :- एक आधुनिक श्रमिक न्याय एवं उचित व्यवहार की अपेक्षा रखता है। प्रबन्धकों को केवल

तत्कालिक लाभ का ही ध्यान नहीं रखना चाहिए बल्कि कर्मचारियों के साथ सहिष्णुता का व्यवहार भी करना चाहिए।

(7) **व्यक्तिगत स्थिति** :- प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि उसे कार्य में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो, उसका कार्य उपयोगी हो, उसे उत्पादन के लिए अति आवश्यक माना जाए। उसे अपनी योग्यता, कुशलता, स्थिति व जिम्मेदारी का अभिमान होता है। अतः प्रेरण प्रदान करने के लिए औद्योगिक संस्था को चाहिए कि प्रत्येक श्रमिक का सम्बन्ध एक विशेष रूप से कायम किया जाए जिससे वह यह अनुभव करे कि "उच्च कार्य मुझ पर ही निर्भर है।"

(8) **जिज्ञासा** :- मनुष्य की एक विशेषता है उसका जिज्ञासु होना। वह जानना चाहता है कि कोई कार्य क्यों और कैसे किया जा रहा है यदि प्रबन्धक उसे उचित सूचना प्रदान करते रहे तो उसका उस पर अच्छा नैतिक प्रभाव पड़ेगा। ज्ञान होने से सहकारिता की भावना विकसित होती है।

(9) **रचनात्मक प्रव ति** :- मनुष्य में रचनात्मक प्रव ति बहुत बलवान होती हैं। यदि इस प्रव त्ति का वह अपने कार्य में प्रयोग करे, तो बहुत लाभ हो सकता है अतः यदि सेवायोजक, शुभचिन्तक, सुसन्तुष्ट एवं अनुशासित कर्मचारी वर्ग रखना चाहते है तो उन्हें ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करनी चाहिए, जिनमें उनके श्रमिको को अपनी चतुराई दिखाने का अवसर मिले।

(10) **कार्य की श्रेष्ठता विषयक अभिमान** :- एक सामान्य कर्मचारी भी यह अनुभव करना चाहता है कि संस्था के लिए वह कार्य कर रहा है अथवा जो वस्तु वह बना रहा है वह अच्छी है। वह अपने साथियों व मित्रों को गर्व सहित बताना चाहता है कि वह अमुक संस्था में कार्य कर रहा है या वह ऐसी वस्तु बना रहा है जो कि अत्यन्त श्रेष्ठ है। किन्तु उसकी यह अभिमान भावना वास्तविकता पर आधारित होनी चाहिए।

(11) **सहभागिता** :- अभिप्रेरित करने की एक उपकरण के रूप में सहभागिता को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है जैसेः- जनतन्त्रीय प्रबन्ध के लिए श्रमिकों की भागीदारी, परामर्शात्मक पर्यवेक्षक निर्णय लेने में श्रमिकों का सहयोग आदि। यदि श्रमिकों से नीतियों के निर्धारण में सहयोग लिया जाए तो वह इन्हे क्रियान्वित करने में भी सहयोग देंगे।

(12) **अधीनस्थ कर्मचारियों मैं सद्भावना से रूचि लेना** :- यदि उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की भावना और समस्याओं को सहानूभूतिपूर्वक सुने, तो कुछ न करने पर भी लाभ यह होगा कि उनके मन की घुटन निकल जाएगी तथा वह हल्के मन से कार्य में लग सकते है।

(13) **जिम्मेदारी का प्रतिविधान** :- एक दिऐ हुए कार्य को निष्पादित करने के दायित्व एवं अधिकार हस्तांतरित करना भी एक शक्तिशाली प्रेरक होता है। जब कर्मचारी यह देखते हैं कि उनका सुपरवाइजर उन पर विश्वास करता है तो प्रायः वे सहयोग करके योग्य पात्र सिद्ध करने के लिए अच्छे परिणाम दिखाने की चेष्ठा करते है।

(14) **अन्य प्रेरणाएं** :- तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधाएं प्रदान करना चुने हुए कर्मचारियों को उच्च प्रशिक्षण संस्थाओं में भेजना, कल्याण सुख सुविधाओं का आयोजन करना भी कर्मचारियों में अच्छे कार्य के लिए इच्छा उत्पन्न कर सकता है। उदाहरणार्थः- कैन्टीन व्यवस्था श्रमिकों के स्वास्थ सुधार में सहायक होकर उत्पादकता बढ़ाती है।

कर्मचारियों के लिए अभिप्रेरण की योजना
(Planning For Employees Motivation)

मिसेल जे॰ जुसियस के अनुसार, कर्मचारी को अभिप्रेरित करने के लिए योजना बनाने में निम्नलिखित चार अंग हैः-

(1) **अभिप्रेरणात्मक आवश्यकताएं पता लगाना** :- सर्वप्रथम यह पता लगाना चाहिए कि किन कर्मचारियों को प्रेरणा की आवश्यकता है। चूंकि सभी कर्मचारियों को अभिप्रेरणा की आवश्यकता रहती है। इसलिए मुख्य बात यह पता लगाना है कि किसी कर्मचारी को किस अवधि में अभिप्रेरणा की आवश्यकता है। देखा गया है कि कर्मचारी को प्रशंसा की कामना होती है। किसी को पदोन्नति की और किसी को अपने बच्चे के लिए उच्च शिक्षा व्यवस्था करने की। पुनः, कुछ अभिप्रेरणाएं समूह स्तर पर आवश्यक होती है तो कुछ वैयक्तिक स्तर पर। अतः दोनों दशाओ में उपयुक्त अभिप्रेरणात्मक आवश्यकताएं मालूम करनी चाहिए।

(2) **अभिप्रेरको को सेट करना** :- व्यक्ति एवं समूह की अभिप्रेरणात्मक आवश्यकताओं का निश्चय करने के बाद दूसरा कदम जो प्रबन्धको को उठाना चाहिए वह ऐसे अभिप्रेरकों को निर्धारित करना है, जिनके द्वारा उक्त आवश्यकताओं

की पूर्ति सम्भव है। अतः आवश्यकता विशेष संतुष्ट करने वाले अभिप्रेरकों की पूर्ण सूची बनानी चाहिए। ऐसी सूचियाँ अपने और अन्य लोगो के अभाव के आधार पर बनायी जा सकती है। प्रत्येक सूची या सेट के साथ उन दशाओं का उल्लेख होना चाहिए जो यह मालूम करने मे सहायक हो कि अमुक कर्मचारी या समूह के लिए अमुक-अमुक अभिप्रेरक उपयुक्त होगा।

(3) **उपयुक्त अभिप्रेरक का चुनाव एवं प्रयोग करना** :- यह अभिप्रेरणा योजना का सबसे नाजुक अंग है। इसके अन्तर्गत एक सेट के विभिन्न विकल्पों में से उपयुक्त अभिप्रेरक का चुनाव करना होता है, उसे प्रयोग में लाने की विधि, समय व स्थान का निर्धारण किया जाता है।

(4) **प्रयोग के अभिप्रेरक का अनुमान करना** :- इस अंग के अन्तर्गत यह मालूम करना होता है कि अभिप्रेरक को प्रयोग में लाने से वांछित परिणाम निकला है या नहीं अर्थात कर्मचारी या समूह अभिप्रेरित हुआ है अथवा नहीं। यदि उत्पादन अधिक हुआ है अथवा उत्पादन व्यय कम हो गये है तो हमेशा यह समझा जा सकता है कि कर्मचारी अभिप्रेरित हुए थे। यदि ऐसा नहीं है तो फिर अन्य अभिप्रेरकों का प्रयोग करना होगा, इस प्रकार, अनुमान कार्य के माध्यम से अभिप्रेरकों का मूल्यांकन करना भी अभिप्रेरणा योजना का एक अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण अंग है।

अभिप्रेरणा की विधियाँ
(Techniques of Motivation)

(1) **कुशल नेत त्व द्वारा अभिप्रेरण** :- एक बड़े आकार की संस्था में प्रबन्धक अपने से उच्च अधिकारी के नेत त्व में कार्य करते है। और साथ ही वह अपने अधीनस्थ कर्मचारी को नेत त्व प्रदान करते है। जो प्रबन्धक अपने अपने अधीनस्थ कर्मचारी को कार्य करने हेतु प्रेरित करने की शक्ति रखता है वही प्रबन्धक कुशल नेत त्व देने में सक्षम होता है। कुशल नेत त्व कर्मचारियों का आत्म विश्वास और प्रेम अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। कुशल प्रबन्धक अपने कर्मचारियों की समस्याओं को सुनते, समझते है तथा उनका समाधान करने का प्रयत्न करते है। समस्याओं का समाधान होने पर कर्मचारी अभिप्रेरित होते है और पूर्ण निष्ठा से कार्य करने के लिए लालायित हो उठते है।

(2) **लक्ष्यों द्वारा अभिप्रेरण** :- प्रत्येक संस्था की स्थापना कुछ निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए की जाती है। इन पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति संस्था के कर्मचारियों को अभिप्रेरित करके की जा सकती है। अब प्रबन्धको को चाहिए कि वे अपने कर्मचारियों को संस्था के लक्ष्यों के विषय में अवगत करा दें और यह स्पष्ट कर दें कि संस्थ के लक्ष्यों की पूर्ति में ही उनके व्यक्तिगत लक्ष्यों की पूर्ति निहित है अन्य शब्दों में संस्था और कर्मचारियों दोनो के मध्य समान सहयोग होना चाहिए।

(3) **सहभागिता द्वारा अभिप्रेरण** :- किसी संस्था में कार्य करने वाले कर्मचारियों से संयुक्त विचार विमर्श से ओर उनको निर्णय में सम्मिलित करने से एक ओर तो कार्य ठीक ढंग से पूरा होता है और दूसरी ओर कर्मचारी अभिप्रेरत भी होते है। अतः किसी संस्था में लिए जाने वाले निर्णयों में कर्मचारियों को सहभागिता प्रदान करके उन्हें अभिप्रेरित किया जा सकता है। कर्मचारी ऐसे विषयों पर जो प्रथम रूप में संस्था को प्रभावित करते है के सम्बन्ध में सलाह देकर गौरव की अनुभूति करते है और ऐसी मनोवैज्ञानिक संतुष्टि अनुभव करते है जो मुद्रा द्वारा कदापि भी प्राप्त नहीं होती।

(4) **प्रतियोगिता द्वारा अभिप्रेरण** :- प्रतियोगिता अभिप्रेरणा की एक मुख्य विधि है जब किसी संस्था को अन्य संस्थाओं से होने वाली प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है तो संस्था के कर्मचारी आपस में सामूहिक रूप में मिलकर प्रतियोगिता में विजय प्राप्त करने के लिए पूरी क्षमता व दक्षता से कार्य करना प्रारम्भ करते है। इससे निपुणता और उत्पादन दोनों में ही व द्धि करते है तथा संस्था प्रगति की ओर अग्रसर होती है।

(5) **चुनौती द्वारा अभिप्रेरण** :- अनेक व्यक्ति दक्ष एवं निपुण होते हुए भी अपना कार्यपूर्ण दक्षता और निपुणता से नही कर पाते। ऐसे व्यक्तियों से कार्य करवाने के लिए उन्हें उत्साहित करना पड़ता है। प्रबन्धक ऐसे कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए संस्था के लक्ष्यों को चुनौती के रूप में उनके सम्मुख रखते है इस चुनौती को योग्य कर्मचारी सहर्ष स्वीकार करता होता है तथा पूर्ण निष्ठा से लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि चुनौती स्वीकार करने से पहले निम्न बातों का पालन किया जा सकता है।

(1) रचनात्मक द ष्टिकोण को अपनाना

(2) प्रयोग की स्वन्त्रता

(3) विभिन्न द ष्टिकोणों से सोच विचार करना

(4) कार्य पूरा होने पर पुरस्कार प्रदान करना

(6) आकर्षण द्वारा अभिप्रेरण :- कर्मचारियों को अच्छा कार्य करने के प्रति आकर्षण प्रदान करके भी अभिप्रेरित किया जा सकता है। जो जो कर्मचारी अच्छा कार्य निर्धारित समय या इससे पूर्व कर लेते हैं उन कर्मचारियों के कार्य की प्रशंसा की जानी चाहिए। उनके कार्य को मान्यता मिलनी चाहिए और साथ ही पुरस्कार भी मिलना चाहिए। ऐसे करने में संस्था के अन्य कर्मचारी भी अच्छा कार्य निर्धारित समय या उससे पूर्व करने के लिए अभिप्रेरित होंगे।

(7) परिवर्तन द्वारा अभिप्रेरण :- किसी व्यक्ति की प्रक ति में आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन करने के लिए प्रबन्ध को स्वंय अपनी प्रव ति में पवितर्न करना पड़ता है जिसे परिवर्तन द्वारा अभिप्रेरण कहते है। उदाहरणार्थ, यदि किसी संस्था का प्रबन्धक प्रायः देरी से आता है और कर्मचारी भी देरी से आते है तो कर्मचारियों की देरी से आने की प्रव ति को समाप्त करने के लिए संस्था के प्रबन्धक को स्वयं समय पर आकर कर्मचारियों के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए जिससे कर्मचारी भी समय पर आने के लिए प्रेरित हो।

(8) मानवीय व्यवहार द्वारा अभिप्रेरण :- प्रबन्धक के लिए यह आवश्यक है कि वे अधीनस्थ कर्मचारी के साथ मानवीय व्यवहार करें क्योंकि कर्मचारी सर्वप्रथम मानव है और तत्पश्चात कर्मचारी। वह अपने श्रम का विक्रय करता है। स्वयं का नहीं। अतः उनके साथ मानवीय व्यवहार करके अभिप्रेरित करना चाहिए।

(9) अन्य विधियाँ :- उपर्युक्त वर्णित अनेक विधियों के अतिरिक्त निम्नलिखित विधियों द्वारा भी कर्मचारियों को अभिप्रेरित किया जा सकता है।

(1) स्वस्थ कार्य दशाएं उपलब्ध कराके

(2) प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था का विकास करके

(3) प्रशिक्षण प्रदान करके

(4) पदोन्नति के अवसरों में व द्धि करके

(5) सेवा सुरक्षा प्रदान करके

(6) विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी योजनाएँ लागू करके,

(7) अवित्तीय प्रेरणाएं प्रदान करके

(8) अधिकारों का भारार्पण करके

अभिप्रेरणा के प्रबन्ध में जटिलताएं
(Complexities Involved in Management of Motivation)

प्रबन्ध की अनेक प्रक्रियाएं होती है। उनमें कुछ जटिल भी होती है व कुछ सरल भी, परन्तु सर्वाधिक जटिल प्रक्रिया संगठन में अच्छा कार्य प्राप्त करने हेतु कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने की होती है। मुख्य समस्या होती है कि किस प्रकार अभिप्रेरित किया जाये ताकि पूर्ण क्षमता के साथ कार्य करके उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सके। इस प्रकार की अनेक जटिलताएं होती है जो अभिप्रेरणा प्रक्रिया में बाधक होती है ये निम्नलिखित होती हैं-

(1) यदि मानवीय द ष्टिकोण से देखा जाये तो व्यक्ति की मानवीय प्रव ति भी जटिलता से परिपूर्ण होती है। मनुष्य का पूरा जीवन ही जटिलताओं से भरा पड़ा है। विभिन्न समूहों तथा वातावरण में भी उसे जटिलताएं देखने को मिलती है। इस परिस्थिति में कर्मचारी को अभिप्रेरित करना वास्तव में एक जटिल कार्य है।

(2) व्यक्तिगत अभिप्रेरण एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में होता है, इसका कोई भौतिक रूप नहीं होता, दूसरों के द्वारा इसे समझ पाना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया रूप में इसे केवल अनुभव किया जा सकता है, देखा नहीं जा सकता। निष्पादन योग्यता व इच्छा का कार्य होता है इसे मापा जा सकता है इन्हें समझने, मापने व पुरस्क त करने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

(3) मानवीय अभिप्रेरित प्रक्रियाओं को प्रत्यक्ष रूप से लागू करना सम्भव नहीं होता प्रबन्धक एवम अन्य मान्यगण कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए आवश्यक दशायें व अवसर प्रदान कर सकते है उन्हें सख्ती से लागू नहीं कर सकते। यदि अवसर प्रदान करने से कर्मचारी अभिप्रेरित होते है तो ठीक है अन्यथा कुछ नहीं किया जा सकता।

(4) केवल एक मानवीय व्यावहारिक अधिनियम के पीछे अनेक प्रेरणाएं हो सकती है। इसके विपरीत केवल एक प्रेरणा अनेक व्यवहारिक अधिनियमों को जन्म दे सकती है अभिप्रेरणा व व्यवहार के मध्य कोई दीवार खड़ी नहीं हो सकती।

(5) व्यवहार केवल अभिप्रेरणा की ही देन नहीं है वरन अनुभवों, आशाओं का भी इस पर प्रभाव पड़ता है।

(6) अभिप्रेरणा केवल धनात्मक तत्वों का ही कार्य नहीं है वरन नकारात्मक तत्वों का भी है। नकारात्मक तत्व होते हैं- भय, दण्ड आदि।

(7) कर्मचारीगण अपना कार्य अपने जीवन स्तर के लिए करते है न कि निष्पादन के लिए अर्थात उसका लक्ष्य अपना पेट पालना होता है न कि संगठन की निष्पादकता को देखना। अनेक बार मनुष्य को ऐसे कार्य करने पड़ते है जिनमें उनकी बिल्कुल रूचि नहीं होती तथा वे कार्य को करने में केवल समय नष्ट ही करते है। ऐसे मनुष्यों को अभिप्रेरित करना वास्तव में एक जटिल कार्य है। जो कि अभिप्रेरित होने से स्वयं मना करते है। और इनका अभिप्रेरित होना केवल दबाव के कारण होता है।

(8) कुछ कर्मचारियों का स्तर काफी निम्न श्रेणी का होता है। वे सदैव यह सोचते रहते है कि वे क्या कर रहे है तथा उन्हें क्या मिल रहा है। उनके लिए अभिप्रेरण पूर्ण रूप से महत्वहीन है। अभिप्रेरणा के महत्व को सभी कर्मचारी नहीं जानते एवं ऐसे अनेक कर्मचारी लाभ उठाने से वंचित भी रह जाते है।

(9) कुछ कर्मचारियों की ऐसी आवश्यकताएं होती है जो संगठनात्मक कार्यो से किसी भी रूप में सम्बन्धित नहीं होती। संगठन के लिए यह भी संभव नहीं होता कि उन्हें पूरा करे।

(10) कुछ तत्व जो तकनीकी, संगठनात्मक, उद्देश्यों, विपणन तत्वों, लागतों तत्वों, औद्योगिक व्यवहारों, सरकारी प्रतिबन्धों इत्यादि से सम्बन्धित होता है, संगठन में लागू करने पड़ते है।

(11) कुछ कर्मचारी संगठनात्मक अभिप्रेरित तकनीकियों के पक्ष में भी होते है क्योंकि उनके अनुसार अभिप्रेरित तकनीकियों का आधारभूत उद्देश्य संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति करना है। कर्मचारियों के उद्देश्यो को पूरा करना है।

(12) इसके अतिरिक्त कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने की प्रक्रिया निष्पादन व संतुष्टि के मध्य सम्बन्ध होने से भी जटिलता का रूप धारण कर लेती है कुछ का मत है कि संतुष्टि के परिणामस्वरूप होती है जबकि कुछ का मत है कि निष्पादन तभी होता है जब कि कर्मचारियों को संतुष्टि होती है।

यदि संतुष्टि निष्पादन के परिणामस्वरूप हो तो कर्मचारियों में ऐसी प्रेरणाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए ताकि वे संतुष्ट हो सके एवं अच्छे परिणाम उपलब्ध कर सके। इसके विपरीत यदि निष्पादन संतुष्टि के परिणामस्वरूप हो तो अभिप्रेरणाएं प्रत्यक्ष रूप से निष्पादन से सम्बन्धित होनी चाहिएं।

(13) आवश्यकताओं तथा प्रयासों, प्रयास तथा निष्पादन, निष्पादन तथा पुरस्कार प्रक्रियाओं में काफी अन्तर देखने को मिलता है अतः यह हमेशा स्वतन्त्र नहीं है कि इन सभी विचलनों पर ध्यान दिया जाये।

(14) अच्छा निष्पादन प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने से पहले प्रबन्धकगणों को अभिप्रेरित किया जाये क्योंकि संगठन के प्रबन्धक प्रेरित होंगे तो वे अपने अधीनस्थों को भी सफलतापूर्वक प्रेरित कर सकते है। अनेक प्रबन्धक अभिप्रेरणा सम्बन्धी कार्य से अनभिज्ञ होते है। प्रबन्धकों को अभिप्रेरित करना, गैर प्रबन्धकीय व्यक्तियों की तुलना में अधिक जटिल कार्य होता है।

अभिप्रेरणा के सिद्धान्त
(Theories of Motivation)

अभिप्रेरण की विचारधारा को अग्र प्रकार से वर्गीक त किया जा सकता हैः-

1. **Herzberg's Motivation-Hygine Theory (Two Factor Theory)** :- इस विचारधारा का प्रतिपादन प्रो॰ फ्रेडरिक हर्जबर्ग ने दो सौ अधिक इंजीनियरों एवं लेखाकारो के साथ लिए गए साक्षात्कारों के आधार पर किया था। यह सिद्धान्त बतलाता है कि कार्यस्थल पर कर्मचारी के व्यवहार को प्रभावित करने वाले समस्त तत्वों को दो समूहों 'स्वास्थ' और 'अभिप्रेरक' में बांटा जा सकता है। स्वास्थ तत्व कार्य वातावरण से सम्बन्धित होते है जबकि अभिप्रेरक तत्व अधिक व श्रेष्ठ कार्य के लिए प्रेरणा प्रदान करते है। इन दो घटकों पर आधारित होने के कारण इसे द्विघटक विचारधारा भी कहा जाता है। जब व्यक्ति असन्तुष्ट होता है तो इस असन्तुष्टि का कारण कार्य वातावरण होता है। जिसके अन्तर्गत वे कार्य करते है। किन्तु जब व्यक्ति सन्तुष्टि का अनुभव करते है तो यह सन्तुष्टि केवल कार्य का परिणाम होती है, वातावरण का नहीं। अतः असन्तुष्टि को दूर करने के लिए Hygine factor तथा Motivator factor पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। ये घटक निम्नलिखित है-

   (A) **स्वास्थ तत्व** :- स्वास्थ तत्वों में संस्था की नीतियों प्रशासन, पर्यवेक्षण व्यवस्था, कार्य दशाओं, वेतन इत्यादि को शामिल किया जाता है। इनका सम्बन्ध कार्य वातावरण से होता है। तथा ये कार्य के बाह्य घटक होते है। ये कर्मचारी की कार्यक्षमता को बनाए रखते है अतः इन्हे अनुरक्षण तत्व भी कहा जाता है। ये तत्व असंतुष्टि को दूर करके अभिप्रेरण के लिए एक उचित आधार तैयार करते है। दूसरे शब्दों में, इनके अभाव में व्यक्ति को सन्तुष्टि या प्रेरणा प्राप्त नहीं होगी। ये असन्तोष उत्पन्न करने वाले घटक है, अभिप्रेरक नहीं।

   (B) **अभिप्रेरक तत्वः**- हर्जबर्ग के अनुसार इनमें उपलब्धि, मान्यता, उन्नति तथा विकास, चुनौतीपूर्ण कार्य इत्यादि घटक शामिल है। ये कार्य से सम्बन्धित घटक होते है। ये व्यक्ति को अधिक व अच्छा कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। इन्हें सन्तुष्टि प्रदान करने वाले तत्व भी कहा जाता है।

   हर्जबर्ग ने यह भी स्पष्ट किया है कि स्वास्थ तत्व प्रेरणाएं है जो कि बाह्य तत्व है जिसे वातावरण से प्राप्त किया जाता है। जबकि अभिप्रेरणा आन्तरिक तत्व है जो कि स्वंय व्यक्ति में होता है। यह विचारधारा बतलाती है कि प्रबन्धकों को केवल स्वास्थ तत्वों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। कार्य को चुनौतीपूर्ण व रूचिकर बनाना चाहिए ताकि व्यक्तियों को अभिप्रेरित किया जा सके।

(हर्जबर्ग की द्विघटक विचारधारा)

मूल्यांकन (Evaluation):- प्रबन्ध व्यवहार में व्यापक उपयोगिता के बावजूद भी इस सिद्धान्त की निम्न आलोचनाएं की जाती है।

(1) **श्रेणी विभाजन कठिन** :- हर्जबर्ग द्वारा प्रस्तुत 'स्वास्थ' एवं 'अभिप्रेरक' तत्वों की श्रेणियां निरपेक्ष नहीं है। वेतन एक

व्यक्ति के लिए असन्तुष्टि उत्पन्न करने वाला तत्व हो सकता है किन्तु किसी अन्य के लिए यह एक अभिप्रेरक तत्व सिद्ध हो सकता है। विभिन्न तत्वों को स्वास्थ व अभिप्रेरकों की श्रेणी में विभाजित करना अत्यन्त कठिन है।

(2) **स्वास्थ तत्वों द्वारा अभिप्रेरणा** :- हर्जबर्ग का यह मत है कि स्वास्थ तत्व व्यक्तियों को अभिप्रेरित नहीं करते है, ठीक नहीं है। वास्तव में विकासशील देशों तथा प्रबन्ध के निचले स्तरो पर स्वास्थ तत्व भी प्रेरणा प्रदान करते है।

(3) कार्य सन्तुष्टि का निर्धारण :- हर्जबर्ग द्वारा यह मानना है कि अभिप्रेरकों का योग ही कार्य सन्तुष्टि का निर्धारण करता है, उचित नहीं है।

(4) **दोषपूर्ण अनुसंधान विधि** :- कुछ आलोचकों के अनुसार यह सिद्धान्त दोषपूर्ण अनुसंधान विधि पर आधारित है। केवल व्यक्तियोसे साक्षात्कार करके अभिप्रेरणा की सही जानकारी नही प्राप्त की जा सकती है।

(5) **उच्च स्तर पर लागू** :- आलोचकों का कथन है कि यह सिद्धान्त प्रबन्धकीय स्तर के कर्मचारियों पर ही लागू होता है सामान्य कर्मचारियों अथवा श्रमिकों पर नहीं।

(6) **निष्पादन स्तर की अपेक्षा** :- यह सिद्धान्त व्यक्ति के निष्पादन स्तर की अपेक्षा 'सन्तुष्टि तथा असन्तुष्टि' पर ही ज्यादा ध्यान देता है।

(2) **Need Hierarchy Theory** :- 1943 में Mascow ने इस विचारधारा का निष्पादन किया था। प्रबन्ध शास्त्र में इसे व्यापक मान्यता मिली है। इस विचारधारा के अनुसार "मानवीय आवश्यकताओं की एक क्रय-बद्धता होती है।" इसी क्रम में अपनी असन्तुष्टि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य को अभिप्रेरित किया जा सकता है।

विचारधारा निम्न मान्यताओं पर आधारित है। :-

(1) **आवश्यकता श्रेणियाँ** :- मास्को के अनुसार व्यक्ति की अनन्त आवश्यकताएं है जो निरंतर पूर्ति के बाद भी उत्पन्न होती रहती हैं। व्यक्ति की इन आवश्यकताओं को पांच श्रेणियों - शारीरिक, सुरक्षात्मक, सामाजिक, स्वाभिमान व आत्मविकास में बांटा जा सकता है।

(2) **आवश्यकता क्रम बद्धता** :- मास्लो के अनुसार आवश्यकता को उनकी शक्ति एवं पुनराव ति की सम्भावना के आधार पर क्रय बद्ध किया जा सकता है मास्लो के अनुसार आवश्यकता की श्रेणियां व क्रयबद्धता सार्वभौमिक है तथा प्रत्येक संस्क ति पर लागू होती है।

(3) **सन्तुष्टि व उत्प्रेरण** :- जिन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हो जाती है उनका महत्व व शक्ति कम हो जाती है तथा अगले स्तर की आवश्यकताएं क्रियाशील हो उठती हैं। जब किसी स्तर की आवश्यकताएं ठीक प्रकार से सन्तुष्ट हो जाती है तभी अगले स्तर की आवश्यकताएं क्रम से जाग त हो जाती है।

(4) **शारीरिक आवश्यकताओं का अत्याधिक महत्व** :- शारीरिक आवश्यकताएं अत्याधिक महत्वपूर्ण होती है। जिस के पास भोजन, सुरक्षा, प्रेम व आत्म सम्मान का अभाव है, वह सबसे पहले भोजन की ही मांग करेगा, अन्य की नहीं।

(5) **आत्म सन्तुष्टि कभी न होना** :- निचले स्तर की आवश्यकताओं की भांति आत्म विकास के स्तर पर सन्तुष्टि कभी घटित नहीं होती है।

मास्लो के अनुसार आवश्यकताओं का क्रम विभिन्न बातों पर निर्भर करता है।

(1) उच्च आवश्यकताएं निम्न आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का परिणाम होती है।

(2) कोई भी आवश्यकता मनुष्य के लिए अभिप्रेरण का कार्य तब करेगी जबकि उसकी अन्य निम्न स्तरीय आवश्यकताएं पूरी हो चुकी हो।

(3) उच्च आवश्यकताओं की पूर्ति से आन्तरिक तनाव कम होता है।

(4) उच्च आवश्यकताओं की पूर्ति से मानसिक संतोष में व द्धि होती है।

(5) उच्च आवश्यकताएं बाह्य वातावरण तथा आर्थिक दशा पर निर्भर करती है।

मूल्यांकन
(Evaluation):-

अनेक प्रबन्ध विचारकों ने इस विचारधारा की कुछ आलोचनाएं भी की है।

(1) आवश्यकता - क्रमबद्धता का लागू न होना :- आलोचकों का यह विचार है कि व्यक्ति मास्लो के द्वारा बताए गए क्रय में अपनी आवश्यकताओं को पूरा नहीं करते है। अनेक शोध कार्यो से सिद्ध हुआ है कि व्यक्ति की पारिवारिक प ष्ठभूमि एवं सामाजिक मान्यताएं भी आवश्यकताओं के रूप को प्रभावित करती है।

(2) वर्गीकरण की स्पष्टता :- अधिकांश आवश्यकताओं के एक दूसरे में व्याप्त होने के कारण उनमें स्पष्ट अंतर कर पाना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त मास्लो के इस वर्गीकरण को अन्तिम नहीं माना जाता है।

(3) व्यवहार की जटिलता :- मानवीय व्यवहार विभिन्न घटकों से निर्धारित व प्रेरित होता है अतः कई बार प्राथामिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि न होने पर भी सामाजिक व स्वाभिमान सम्बन्धी आवश्यकताएं उत्पन्न हो सकती है।

(4) सन्तुष्टि आवश्यक नहीं :- अनेक अनुसंधानों से स्पष्ट हो गया है कि कई बार कुछ आवश्यकताएं सन्तुष्टि के साथ घटती नहीं है, वरन बढ़ जाती है। इस पर नियंत्रण असम्भव हो जाता है।

(5) यह विचारधारा मानती है कि मनुष्य की एक समय में एक ही प्रकार की आवश्यकता होती है जबकि व्यवहार में व्यक्ति की एक समय में एक से अधिक आवश्यकताएं भी हो सकती है।

(6) यह ज्ञात करना कठिन है कि किस व्यक्ति की कौन सी आवश्यकता महत्वपूर्ण है तथा कौन सी नहीं।

3 **X and Y Theory** :- Mc Gregor ने मानव अभिव त्तियों एवं व्यवहार के सम्बन्ध में दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं का प्रतिपादन किया हैं। इनमें एक ऋणात्मक (-) मान्यताओं वाली विचारधारा को (X) तथा सकरात्मक (+) मान्यताओं वाली विचारधारा को (Y) विचारधारा के रूप में जाना जाता है।

X Theory :- यह विचारधारा मानव व्यवहार के प्रति निराशाजनक व नकारात्मक द ष्टिकोण अपनाती है। इसकी मान्यताएं निम्नलिखित हैः-

(1) एक औसत कर्मचारी स्वभावतः आलसी होता है तथा वह जितना सम्भव हो, कम से कम कार्य करना चाहता है।

(2) चूंकि कर्मचारी कार्य से घ णा करते है, अतः लक्ष्य की प्राप्ति की ओर उनके प्रयास करवाने हेतु उन्हें धमकाया जाना, नियंत्रित किया जाना आवश्यक होता है।

(3) कर्मचारी उत्तरदायित्वों से बचना चाहते है तथा औपचारिक निर्देशन में ही कार्य करना पसन्द करते हैं।

(4) अधिकांश कर्मचारियों में संगठनात्मक समस्याओं के समाधान के लिए स जनात्मक क्षमता बहुत थोड़ी होती है।

(5) वह स्वभाव से परिवर्तन का विरोधी होता है।

(6) वह बहुत ही भोला - भाला किन्तु अधिक चतुर नहीं होता है।

(7) वह बातूनी, नीम हकीम तथा लोगों को उत्तेजित करने वाला भी होता है।

मूल्यांकन (Evaluation) :-

(1) यह विचारधारा मानव व्यवहार के प्रति नकारात्मक द ष्टिकोण अपनाती है।

(2) यह मानवीय आवश्यकताओं व भावनाओं को नकारती है।

(3) यह भय व दण्ड के आधार पर कर्मचारियों से काम लेती है।

(4) यह प्रबन्धकों को निरकुंश बनने की प्रेरणा देती है।

(5) यह मनुष्य को केवल आर्थिक मनुष्य ही मानती है।

Y Theory :- यह विचारधारा X के विपरीत हैं। Mc Greorger का मत है कि प्रबन्धकों को यही विचारधारा अपनाकर ही कर्मचारियों से कार्य लेना चाहिए।

(1) कर्मचारी कार्य को खेल व विश्राम की भांति सहज मानते है। वे कार्य से घ णा नहीं करते है।

(2) केवल भय व दण्ड से ही लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

(3) लक्ष्य के प्रति निष्ठा उपलब्धियों से जुडे हुए पुरस्कारों का परिणाम है।

(4) व्यक्तियों में अभिप्रेरण सामाजिक प्रतिष्ठा तथा आत्मविकास के स्तरों पर ही घटित नहीं होता बल्कि इसके साथ-साथ शारीरिक व सुरक्षात्मक स्तर पर भी कर्मचारी अभिप्रेरित होते है।

(5) वर्तमान औद्योगिक दशाओं में, औसत मानव की बौद्धिक क्षमताओं का केवल आंशिक उपयोग ही किया जा रहा है।

मूल्यांकन (Evaluation) :-

(1) यह मानव को विवेकशील तथा स जनशील मानती है।

(2) यह मानव के सम्मान एवं महत्व को स्वीकार करती है।

(3) यह संस्था में जनतांत्रिक व्यवस्था को प्रोत्साहित करती है।

(4) यह संस्था के सब वैयक्तिक लक्ष्यों को प्रोत्साहन देती है।

4 **Justice of Equity Theory (Stacy Adams Theory)**

इस विचारधारा का प्रतिपादन Stacy Adams द्वारा किया गया था। यह विचारधारा बतलाती है कि "अभिप्रेरणा का स्तर अवबोधित न्यायसंगतता एवं निष्पक्षता का परिणाम है। "जब व्यक्ति अपने कार्य प्रयासों के लिए अल्प पुरस्क त अथवा अति पुरस्क त अनुभव करता है तो वह असन्तुष्टि अनुभव करता है तथा अपने प्रयासों व पुरस्कार में साम्य प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित होता है। इस विचारधारा की मुख्य बातें निम्न है :-

(1) **निवेश** :- निवेश में व्यक्ति के ज्ञान, शिक्षा, प्रशिक्षण, प्रयास, कौशल को शामिल किया जाता है।

(2) **परिणाम** :- परिणामों में कर्मचारी का वेतन, पदोन्नति, वेतन-व द्धि इत्यादि घटक सम्मिलित है।

(3) **तुलना** :- सामान्यतः कर्मचारी अपने कार्य निवेशों तथा परिणामों की दूसरों के संदर्भ में तुलना करते है। जिससे तुलना की जाती है उसे Referent कहा जाता हैं। कर्मचारी तुलना के लिए निम्न स्थितियों को चुन सकता है:-

(a) स्व-आन्तरिक

(b) स्व-बाह्य

(c) अन्य आन्तरिक

(d) अन्य बाह्य

(4) **न्यास संगतता** :- कर्मचारी अपनी स्थिति की दूसरों के साथ तुलना करके न्याय संगतता तथा अनौचित्य का अनुभव कर सकते है। जब व्यक्तियों का योगदान व प्राप्ति दूसरों के समान होता है तो वे न्यायसंगतता व सन्तुष्टि का अनुभव करते है तथा इस स्थिति को बनाए रखते है।

इस प्रकार यह विचारधारा इस बात को दर्शाती है कि व्यक्ति केवल अपने को मिलने वाले पुरस्कार से ही सम्बन्ध नहीं रखते है, वरन वे अपने पुरस्कार का दूसरों को मिलने वाले पुरस्कार से भी सम्बन्ध देखते हैं।

(अभिप्रेरण की समता विचारधारा)

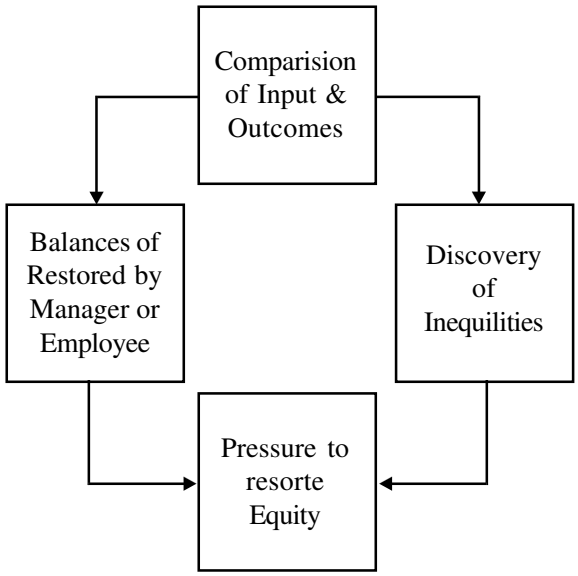

5 **Mc Clelland Theory (Manifest or Acquired Needs Theory)** :-

इस विचारधारा को मूल रूप से हेनरी ने प्रतिपादित किया था। बाद में इसे जे॰ एटकिन्सन ने किया। इस विचारधारा के वर्तमान प्रतिपादक डेविड Mc Clelland हैं। उनका मत है कि व्यक्ति की कुछ आवश्यकताएं अर्जित तथा सामाजिक रूप से सीखी हुई होती है, व्यक्ति वातावरण के साथ जो व्यवहार करता है उसके अनुसार संगठन में व्यक्ति की निम्न तीन अर्जित आवश्यकताएं मध्यपूर्ण भूमिका अदा करती है :-

(1) **उपलब्धि की आवश्यकता** :- उपलब्धि की आवश्यकता रखने वाले व्यक्ति में निम्न लक्ष्ण होते हैं:-

(a) वह समस्याओं के समाधान खोजने के लिए वैयक्तिक उत्तरदायित्व स्वीकार करता है।

(b) वह लक्ष्य केन्द्रित होता है।

(c) वह चुनौती चाहता है तथा उच्च किन्तु व्यवहारिक लक्ष्य निर्धारित करता है।

(d) वह अपने कार्यो की प्रतिपुष्टि चाहता है।

(2) **शक्ति की आवश्यकता** :- शक्ति चाहने वाले व्यक्तियों के निम्न लक्षण होते है।

(a) वह दूसरों पर प्रभाव अथवा सत्ता प्राप्त करना चाहता है।

(b) वह प्रभुत्वशाली सिद्ध होने के लिए दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा करता है।

(c) वह दूसरो के साथ मुकाबला चाहता है।

(3) **सम्बन्ध की आवश्यकता** :- सम्बन्ध की आवश्यकता रखने वाले व्यक्ति में निम्न लक्षण होते है।

(a) दूसरों के साथ सघन भावनात्मक स्थिर रखना चाहता है।

(b) सामाजिक क्रियाओं, समारोह में भाग लेता हैं।

(c) दूसरों की प्रशंसा चाहता है।

(d) समूहों व संगठनों की सदस्यता चाहता है तथा अपनत्व की भावना रखता है।

मैकलीलैण्ड के अनुसार निष्पादन की इच्छा अथवा अभिप्रेरण की शक्ति उपयुक्त तीनों आवश्यकताओं की तीव्रता पर निर्भर करती है। मैकलीलैण्ड ने इस सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निकाले है।

(1) उच्च उपलब्धकर्त्ता वैयक्तिक उत्तरदायित्व, प्रतिपुष्टि सामान्य जोखिम, चुनौती, प्राप्ति योग्य उद्देश्यों के साथ कार्य-स्थिति को पसन्द करते है।

(2) श्रेष्ठ प्रबन्धक शक्ति के लिए उच्च इच्छा रखते है किन्तु प्रबन्धकों के प्रति उनकी आवश्यकता कम होती है। उपलब्धि की उच्च चाह व्यक्ति को अच्छा प्रबन्धक बनने के लिए प्रेरित नहीं करती है।

6 **Alderfer's ERG. Theory**:- इस विचारधारा का प्रतिपादन येल विश्वविद्यालय के Alderfer ने मास्लो की आवश्यकता क्रमबद्धता धारा को और अधिक व्यवहारिक बनाते हुए एक नई ERG विचारधारा का विकास किया। मास्लों व हर्जबर्ग की भांति Alderfer ने भी आवश्यकताओं का वर्गीकरण करते हुए कहा है कि उच्च स्तरीय व निम्न स्तरीय आवश्यकताओं में एक भौतिक अन्तर होता है। Alderfer ने आवश्यकताओं को तीन श्रेणियों में बांटा है।

(1) अस्तित्व (Existence)

(2) सम्बद्धता (Relatedness)

(3) विकास (Growth)

इसलिए इनकी विचारधारा को ERG विचारधारा के नाम से जाना जाता है। अस्तित्व आवश्यकताओं का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवित रहने के लिए आवश्यक तत्वों तथा उसके शारीरिक कल्याण से है। सम्बद्धता आवश्यकताएं अन्तर्वैक्तिक एवं सामाजिक सम्बन्धों पर बल देती हैं। विकास आवश्यकताएं व्यक्ति के वैयक्तिक विकास की इच्छा से जुड़ी हुई है।

Components :- Elderfer की विचारधारा के निम्न चार अंग है।

(1) **सन्तुष्टि आरोह** :- यह तत्व मास्लों की विचारधारा में भी लागू होता है। इसका आशय यह है कि जब निचले स्तर की आवश्यकताएं पूरी हो जाती है तो उच्च स्तर की आवश्यकताएं जाग त हो जाती हैं तथा महत्वपूर्ण बन जाती हैं।

(2) **नैराश्य या विकलता** :- निराशा तब घटित होती है जब व्यक्ति किसी आवश्यकता की पूर्ति में असफल हो जाता है। इस निराशा से व्यक्ति के लिए असन्तुष्ट आवश्यकता और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। तथा वह अधिक शक्ति के साथ उसकी पूर्ति का प्रयास करता है जब तक कि वह लगातार कई बार असफल न हो जाए।

(3) **नैराश्य पश्चगमन** :- इस अवस्था में जब व्यक्ति को किसी आवश्यकता पूर्ति के सम्बन्ध में बार-बार निराशा का अनुभव होता है तो वह निम्न स्तरीय आवश्यकताओ, जो कि उसे अधिक यथार्थपूर्ण एवं पहुंच योग्य लगती है, पर अपना ध्यान केन्द्रित कर लेता है।

(4) **अभिलाषा** :- यह अंग बतलाता है कि विकास अपनी प्रव ति के कारण गहन रूप से संत प्तकारी होता है। एक व्यक्ति जितना अधिक विकास करता है उतना ही वह और अधिक विकास करना चाहता है। अतः विकास आवश्यकता जितनी अधिक पूरी की जाती है वह उतनी ही महत्वपूर्ण बन जाती है तथा व्यक्ति उसकी पूर्ति के लिए उतना ही अधिक अभिप्रेरित होता हैं।

ERG विचारधारा

आवश्यकताओं, निराशा, सन्तुष्टि व महत्व में सम्बन्ध।

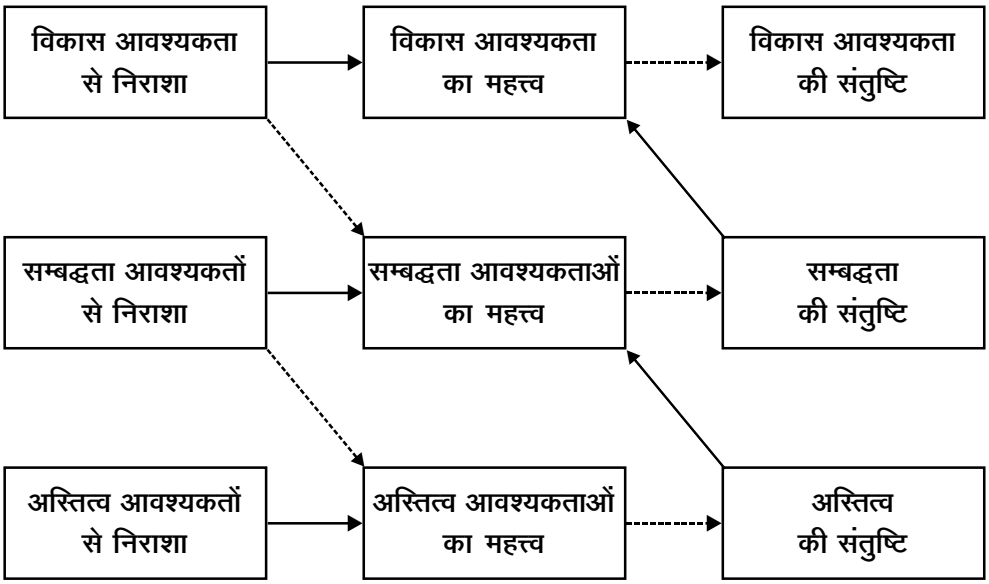

(7) Z Theory of Urwick:- इस विचारधारा का प्रतिपादन विण्डाल एफ॰ उर्विक ने किया था। यह प्रबन्ध के क्षेत्र में मानवीय व्यवहार को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समझने, निर्देशित करने व नियंत्रित करने में सहायक होती है। इस विचारधारा की यह मान्यता है कि प्रत्येक मानव सामाजिक प्रणाली होने के साथ-साथ उपभोक्ता भी होता है चाहे उसका कार्य व व्यवसाय कुछ भी क्यों न हो। यह विचारधारा व्यवसाय को विपणन के रूप में देखती है। इसके अनुसार मानव की आर्थिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं का निर्धारण समाज में रहने वाले विभिन्न व्यक्तियों की इच्छा के अनुरूप होता हैं। अतः कर्मचारियों को अभिप्रेरित करते समय उनकी सामाजिक आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए। सामान्यतः कर्मचारियों द्वारा परिवर्तन की विधि का प्रयोग तभी किया जाता है जब उनकी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा पड़ती है। सामाजिक आवश्यकताओं के अर्न्तगत समूह प्रेरणाओं, लाभों में सहभागिता, प्रक्रिया व उन्नति के अवसर इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।

(8) Fear & Punishment Theory:- यह परम्परागत विचारधारा है तथा अभिप्रेरण के ऋणात्मक स्वरूप पर आधारित है। यह व्यक्तियों को धमकी देकर, भय दिखाकर तथा ताकत के बल पर कार्य लेने पर जोर देती है। इस विचारधारा की यह मान्यता है कि व्यक्ति धन-प्राप्ति के लिए ही कार्य करते है तथा कार्य के कराए जाने के भय से ही वे अच्छा कार्य करने लग जाएंगे। इस विचारधारा के समर्थक 'भय बिन प्रीति न होय' में विश्वास करते हैं वे "या तो काम करने या चले जाओ" का मूल मन्त्र रखते है।

यह विचाारधारा औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों में ही उचित थी जब व्यक्तियों के पास रोजगार नहीं था। श्रमिकों की स्थिति दयनीय थी और श्रमसंघों व सेवा कानूनों का अभाव था। आज भी यह विचारधारा प्रासंगिक बनी हुई है। यद्यपि कई विद्वान आज के स्वतन्त्र प्रजातान्त्रिक समाज में इस विचारधारा को व्यवहारिक नहीं मानते है।

(9) Reward Theory:- यह विचारधारा इस मत पर आधारित है कि अच्छे पुरस्कार श्रेष्ठ कार्य की दशाएं, मौद्रिक व अमौद्रिक लाभ कर्मचारियों को प्रसन्न व संतुष्ट बनाते है तथा उनकी कार्यक्षमता में व द्धि करते है। उनका विचार था कि व्यक्ति उसी सीमा तक अपना कार्य दक्षतापूर्वक करता है जिस सीमा तक उसे उचित प्रतिफल प्राप्त होता है। व्यक्ति को जितना अधिक प्रतिफल प्राप्त होगा वह उतना ही अधिक श्रम करेगा। इसके लिए टेलर ने विभेदात्मक मजदूरी पद्धति के अनुसार मजदूरी का भुगतान करने का सुझाव दिया था। अधिक पुरस्कार प्रदान करके संगठन में अच्छे कार्य वातावरण का निर्माण किया जा सकता है तथा श्रम आवर्तन को कम किया जा सकता है। कुछ विद्वान यह भी मानते है कि धन व्यक्ति को केवल सन्तुष्टि प्रदान कर सकता है उसे अभिप्रेरणा प्रदान नहीं कर सकता है।

According to Peter Drucker :- "मौद्रिक पुरस्कारों से सन्तुष्टि अभिप्रेरण के लिए पर्याप्त नहीं है।"

(10) Monistic Theory of Motivation:- इस विचारधारा की मान्यता यह थी कि व्यक्ति केवल एक ही लक्ष्य, वे "अधिकाधिक मुद्रा के लिए कार्य करते है। यह मौद्रिक प्राप्ति के लिए कार्य करते है। यह मौद्रिक प्राप्ति को ही मानवीय व्यवहार का आधार मानती है। इसकी प्रमुख Assumption इस प्रकार से है :-

(1) यह व्यक्ति को "आर्थिक मनुष्य मानती है जिसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के चल मौद्रिक लाभ के लिए ही कार्य करता है।

(2) मौद्रिक परितोषणों की व द्धि से व्यक्ति के कार्य-प्रयासों में भी व द्धि हो जाती है।

(3) समूह-प्रेरणा की तुलना में व्यक्तिगत प्रेरणा अधिक प्रभावी सिद्ध होती है।

(4) पारिश्रमिक का शीघ्र भुगतान भी कर्मचारियों को अधिक कार्य करने का लिए प्रेरित करता है।

(5) अतिरिक्त उत्पादन का जितना अधिक पारितोषण दिया जाएगा उतना ही अधिक कर्मचारी को कार्य के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

अध्याय–14

समूह गत्यात्मकता
(Group Dynamics)

कोई भी संगठन शक्तियों का मात्र एकत्रीकरण ही नहीं है जो किसी तरह से अपने लक्ष्यों, आवश्यकताओं तथा हितों की प्राप्ति के लिए जमा हो जाते हैं। यह विभिन्न प्रकार के औपचारिक कार्य समूहों और अनौपचारिक सामाजिक समूहों का एक तन्त्र होता है संगठन का प्रत्येक सदस्य किसी न किसी औपचारिक कार्य समूह से सम्बद्ध होता है तथा साथ ही साथ वह एक या एक से अधिक औपचारिक कार्य समूह से सम्बद्ध होता है तब ये समूह सदस्यों के व्यवहार और उनके निष्पादन तथा समूचे संगठन के व्यवहार को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। अतः संगठन को समझने तथा इन समूहों व समूचे संगठन का प्रभावी ढंग से प्रबन्ध करने के लिए, संगठन के समूहों के निर्माण, इनकी संरचना और कार्य प्रणाली को समझना आवश्यक है। इस द ष्टि से समूह गत्यात्मकता की अवधारणा प्रसांगिक है।

समूह गत्यात्मकता दो शब्दों के योग से बना है :- समूह + गत्यात्मकता। समूह का आश्य दो या दो से अधिक व्यक्तियों के ऐसे समुच्चयों से है जो परस्पराधीन होते हैं , आपस में मिलते जुलते हैं, अपनी अलग पहचान बनाते हैं और कुछ निश्चित सामान्य क्रियाओं, हितों, मूल्यों व लक्ष्यों को लेकर एक साथ हो जाते हैं। कुछ व्यक्तियों के समुच्चय को समूह मानने के पीछे दो मुख्य कसौटियाँ है। एक तो यह कि समूह एक प्रकार का संबंध होता है जो सामाजिक सम्बन्ध की तुलना में अधिक सशक्त व स्थायित्व लिये होता है जो सामाजिक सम्बन्ध की तुलना में कम संगठित होता है। दूसरा यह कि सूमह का आकार पर्याप्त रूप में बड़ा होना चाहिए जिससे कि उसमें समूह की विशेषताएं विकसित हो सकें और उनमें स्थायित्व आ सके, लेकिन साथ ही समूह का आकार पर्याप्त रूप से छोटा भी होना चाहिए ताकि समूह के सदस्य अपनी अलग से पहचान व जागरूकता बनाए रख सकें। अधिकांश मनोवैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों ने समूह को परिभाषित करते समय विशेष रूप से औपचारिक सामाजिक समूहों को ध्यान में रखा है।

गत्यात्मकता शब्द अंग्रेजी के Dynamics शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। वस्तुतः यह Dynamic शब्द मूलतः गीक्र भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ प्रेरक बल होता है। समूह और गत्यात्मकता को अलग-अलग रूप में समझने के बाद अब हम समूह गत्यात्मकता को समग्र रूप में समझने का प्रयास करेंगे। समूह गत्यात्मकता एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग छोटे-छोटे समूहों में प्रत्यक्ष रूप से अंतर्क्रिया करते हैं। इस तरह से यह स्प्ट है कि समूह गत्यात्मकता के अन्तर्गत समूह व समूह के सदस्यों की क्रियाओं व व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

यद्यपि वैज्ञानिक द ष्टिकोणों से समूहों द्वारा दी जाने वाली क्रियाओं का विधिवत अध्ययन सन् 1924 से 1932 के बीच की अवधि के दौरान हुए हाथोर्न अध्ययनों में प्रो॰ एल्टन मेयो के मार्गदर्शन में किया गया और इन अध्ययनों में यह तथ्य उजागर हुआ कि संगठन में कार्य करने वाले लोगों की कार्य संतुष्टि और प्रभावशीलता अनौपचारिक समूहों द्वारा स्थापित मूल्यों व मानकों से प्रभावित होती है। इसी धारणा ने समूह गत्यात्मकता की संकल्पना को जन्म दिया। लेकिन इस संकल्पना की पुष्टि के लिए जो शोध व परीक्षक कार्य किये जाने थे उन्हें कुर्त लेविन के नेत त्व में किया गया। इसीलिए कुर्त लेविन को समूह गत्यात्मकता आन्दोलन का जनक कहा जाता है। समूह गत्यात्मकता के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि समूहों की आन्तरिक प्रक ति कैसी होती है, समूहों का निर्माण कैसे होता है, उनकी संरचना व प्रक्रिया तथा उनकी कार्य प्रणाली किस प्रकार की होती है और वे वैयक्तिक सदस्यों को, संगठन को तथा दूसरे समूहों को किस प्रकार से प्रभावित करते हैं।

समूह गत्यात्मकता की परिभाषा

कीथ डेविस के अनुसार, "समूह गतिशीलता एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति छोटे-छोटे समूहों में प्रत्यक्ष अन्तर्क्रिया सम्पन्न करते है।"

कलहून के अनुसार, " गतिशीलता से तात्पर्य ऐसी शक्ति से है जो परिवर्तन अथवा प्रतिक्रिया को जन्म देती है।"

कास्ट और रोजन्जविंग ने समूह के सदस्यों के मध्य होने वाली अन्तर्क्रिया को गतिशीलता कहकर पुकारा है।

शाहरमरहार्न के अनुसार, "समूह गतिशीलता से आशय उन शक्तियों से है जो समूह में कार्यरत रहती हैं, जो सदस्यता, सन्तुष्टि तथा कार्यनिष्पादन को प्रभावित करती हैं।"

फ्रेड लूंथास के अनुसार, "समूह गतिशीलता एक सामाजिक परिवेश में समूह सदस्यों के साथ अन्तर्क्रियाओं तथा शक्तियों से सम्बन्धित है। जब अवधारणा का संगठनात्मक व्यवहार में प्रयोग किया जाता है, तो इसका सम्बन्ध संगठन में औपचारिक या अनौपचारिक समूहो के सदस्यों की गतिशीलता से होता है।" कुर्त लेविन तथा होमन्स उन विचारकों में से है जिन्होंने "समूह गतिशीलता" शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किया।

एक अन्य समूह गतिशीलता के अन्तर्गत प्रविधियों के एक समूह पर बल दिया गया है। जिसमें भूमिका निर्वाह विधि, संवेदनशील प्रशिक्षण तथा समूह थैरेपी प्रविधियों को सम्मिलित किया गया है।

लेविन के अनुसार, "समूह गतिशीलता में यह अध्ययन किया गया है कि किस प्रकार समूह में परिवर्तन होता रहता है। किन परिस्थितियों में परिवर्तन होता है और किस दिशा में परिवर्तन होता है।" कुर्त लेविन के अनुसार समूह गतिशीलता के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि समूहों की आन्तरिक प्रक ति कैसी है। समूहों का निर्माण कैसे होता है, उनकी संरचना, प्रक्रिया तथा कार्यप्रणाली किस प्रकार की होती है और वे समूहों के सदस्यों, संगठन तथा दूसरे समूहों को किस प्रकार प्रभावित करती है।

समूह की संरचना एवं विशेषताएं
(Structure and Properties of Groups)

समूह की विशेषताओं का उनकी संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है। एक समूह की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है :-

1. **आकार** :- समूह दो या दो से अधिक व्यक्तियों से मिलकर बनते है। समूहो का आकार संगठन की अपेक्षा छोटा होता है। प्रायः एक समूह के सदस्यों की संख्या 30 तक हो सकती है। वे साथ मिलकर समूह की सदस्यता का निर्माण करते है।
2. **सामूहिक क्रियाएं** :- एक समूह के सदस्यों की क्रियाएं सामूहिक होती है जो कार्य से सम्बन्धित या असम्बन्धित हो सकती है।
3. **सामान्य हित एवं उद्देश्य** :- समूह के सभी सदस्यो के सामान्य हित तथा सामान्य लक्ष्य होते हैं जिसकी प्राप्ति के लिए सभी मिलकर एक निश्चित दिशा में कार्य करते है।
4. **मानक व नियम** :- समूह के सभी सदस्यों के कुछ आदर्श मानक एवं प्रतिमान होते है जिन्हें प्राप्त करने के लिए वे एकीक त होकर प्रयास करते है। समूह के सभी सदस्यों के व्यवहार कुछ नियमों द्वारा नियन्त्रित होते है। समूह, व्यवहार के मानकों एवं नियमों का पालन करने के लिए अपने सदस्यों पर विभिन्न प्रकार से दबाव डालते हैं। मानकों के अनुरूप आचरण करने पर सदस्यों को पुरस्क त एवं प्रतिकूल आचरण की दशा में दण्ड़ित किया जाता है। सामान्यतः समूह-मानक मौखिक रूप से ही प्रकट किये जाते हैं।
5. **लगाव** :- समूह के सदस्यों की क्रियाओं, लक्ष्यों, कार्यो, व्यवहार व हितों के बीच संशक्तिशीलता अर्थात एक लगाव बना रहता है यह लगाव ही उनके एक समूह के रूप में गठित होने का परिचायक होता है। इस संशक्तिशीलता के कारण समूह के सदस्यों में अपनत्व जाग त होता है। वैयक्तिक भावना के स्थान पर सामूहिक भावना का जन्म होता है।

6. **अनौपचारिक तत्व** :- समूह का प्रबन्ध औपचारिक नहीं होता हैं। समूह का नेत त्व एवं मार्गदर्शन स्वतः उभरता है। ऐसा अनौपचारिक नेता अपने विवेक, अनुभव एवं व्यक्तिगत योग्यता को आधार पर सदस्यों के दिशा निर्देश देता है। समूह में नेत त्व का विकास योग्यता प्रभाव के आधार पर होता है। इतना ही नहीं, विभिन्न दशाओं में समूह का नेत त्व विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।

7. **सामाजिक दबाव व निष्ठा** :- समूह में जहां सभी सदस्यों को लाभ होता हैं, वहां समूह के सदस्यो से पूर्ण निष्ठा एवं सहयोग की अपेक्षा की जाती है।

8. **अन्तर्क्रियाशीलता** :- समूह के सदस्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अन्तर्व्यवहार करते है। अन्तर्क्रिया के निरन्तर क्रम के कारण समूह के सदस्य एक दूसरे को प्रभावित करते है। अन्तर्क्रियाओं के अभाव में समूह का जीवन नहीं चल पाता है।

9. **समान विचारधारा** :- समूह की अभिव त्तियों एवं विचारों में भी काफी समानता पाई जाती है। विचारधारा की एकता से समूह मूल्यों तथा प्रतिमानों मे भी समानता बनी रहती है। सभी सदस्य अपने आपको एक समूह के रूप में तभी अनुभव करते हैं जब उनके विचार एक समान हो।

10. सम्बन्धों का आधार :- समूह के मध्य सम्बन्धों का आधार धर्म, जाति, वंश, परिवार, लिंग, रंग, व्यवसाय या अन्य सामाजिक हित हो सकता है।

11. संस्क ति :- प्रत्येक समूह की अपनी विशिष्ट संस्क ति होती है जिससे उसकी क्रियाएँ एवं जीवन संचालित होता है।

12. अन्तर्निभरता :- समूह के सदस्य अपने कार्यो एवं लक्ष्य पूर्ति के लिए एक दूसरे पर निर्भर करते है।

13. सामाजिक संरचना :- जिस प्रकार अन्य प्रकार के सभी संगठनों की सरंचना होती है उसी प्रकार समूह की भी निश्चित संरचना होती है। इसमें सभी सदस्यों की परिस्थिति, कार्य एवं अधिकार निश्चित होते है।

समूह की आवश्यकता एवं महत्व
(Need and Importance of Groups)

समूह में रहना न केवल व्यक्ति का स्वभाव है, वरन् अनेक कारणों से उसके जीवन की आवश्यकता भी है। प्रायः समूहों की आवश्यकता निम्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए होती हैः-

1. एक दूसरे के लिए सहयोग की भावना उत्पन्न करना
2. समूह के प्रत्येक सदस्य में अपनत्व की भावना उत्पन्न करना तथा समूह का अस्तित्व सुद ढ़ करना
3. कर्मचारियों में स्वस्थ तथा उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना
4. व्यक्तिगत एवं सामूहिक हितों की रक्षा करना
5. कर्मचारियों के स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास में व द्धि करना
6. प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रतापूर्वक विचार एवं भावनाएं व्यक्त करने का अवसर देना।

एंडरसन का विचार है कि आज समूह के अत्याधिक प्रयोग के निम्नलिखित दो कारण हैः- प्रथम, अधिकांश कार्यो में जटिलता बढ़ती जा रही है, अतः एक व्यक्ति की अपेक्षा व्यक्तियों के पास अपेक्षाक त विशिष्टीकरण ज्ञान की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। द्वितीय, अधिकांश निर्णयों में व्यापक स्वीक ति की आवश्यकता होती है। रोबिन्स का मत है कि व्यक्ति निम्नलिखित कारणों से समूहों में रहते हैः-

1. **सुरक्षा** :- जीवन के अनेक क्षेत्रों में व्यक्ति को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ता है। समूह अनेक खतरों, कठिनाइयों एवं जोखिमों से व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करता है। समूह से सुरक्षा वातावरण उत्पन्न होता है और व्यक्ति का तनाव व चिन्ताएं सहभागी होकर कम हो जाती है।

2. **परिस्थिति** :- समूह में विशिष्ट पद एवं परिस्थिति प्राप्त करने के लिए भी व्यक्ति समूह में आते है। समूह में विशिष्ट भूमिका निभाकर वे प्रतिष्ठा अर्जित करते है।

3. **स्व-महत्ता** :- समूह व्यक्ति की अहं भावना एवं स्वमहत्ता की जरूरत भी पूरी करता है। समूह में विशिष्ट की स्थिति पाकर व्यक्ति सम्मान अनुभव करता है। इस प्रकार समूह अहं-संतुष्टि का भी आधार है।

4. **प्रेम या स्नेह** :- समूह में व्यक्ति की अनेक सामाजिक आवश्यकताओं जैसेः- प्रेम, मैत्री, सह-जीवन, एकता, पारस्परिक सम्बन्ध, स्नेह आदि की पूर्ति सम्भव होती है। वह सामाजिक सम्बन्धों को सुद ढ़ कर पाता है।

5. **सत्ता या शक्ति** :- समूह एक प्रकार की शक्ति की अभिव्यक्ति है। समूह से व्यक्ति अनेक अधिकार व सत्ता ग्रहण कर सकता है। समूह का प्रतिनिधित्व करना भी एक बड़ी शक्ति का प्रतीक है।

6. **लक्ष्य-प्राप्ति** :- समूह व्यक्ति के लक्ष्यों की प्राप्ति में भी सहायक होता है। समूह में जटिल व सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति सुगम हो जाती हैं।

7. **व्यक्तित्व का विकास** :- एक कर्मचारी के व्यक्तित्व, ज्ञान एवं अभिव ति-निर्माण पर समूह के वातावरण का प्रभाव पड़ता है। समूह व्यक्ति को विचार, द ष्टिकोण, अच्छी आदतें व संस्क ति प्रदान करता है। फलतः व्यक्तित्व का विकास होता है।

8. **कार्य-क्षमता में व द्धि** :- समूह व्यक्ति को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करने का भी ध्यान रखता है। परस्पर सहयोग एवं प्रोत्साहन के कारण उनकी कार्यक्षमता एवं कौशल में व द्धि होती है।

9. **अभिव त्ति निर्माण** :- समूह में व्यक्ति सहिष्णुता, दया, प्रेम-उदारता, सहकारिता आदि अभिव त्तियों को ग्रहण करता है। गिलिन के अनुसार "समूह से व्यक्ति अपने चारों तरफ की दुनिया, जनता तथा सामाजिक संस्थाओं के प्रति मौलिक अभिव त्तियाँ प्राप्त करता है।"

10. समाजीकरण :- 'समूह' शिक्षा, संस्क ति व ज्ञान के प्रसार का आधार भी है। समूह व्यक्तियों को अपनी संस्क ति व मूल्यों के अनुकूल बनाकर उनका समाजीकरण करते है। समूह में सांस्क तिक विरासतों को बनाये रखना सम्भव होता है।"

11. सामाजिक नियन्त्रण :- समूह सामाजिक नियन्त्रण का मुख्य आधार माने जाते है। समूह अपने नियमों, आदर्शो, दण्ड-विधान एवं नियात्मक प्रक्रियाओं के द्वारा अपने सदस्यों के व्यवहार को नियन्त्रित करते है।

12. मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति :- समूह में व्यक्ति अपनी स जनात्मकता, मानसिक सोच, विचारधारा, आत्म-विकास, एवं अन्य रचनात्मक अभिव त्तियों को संतुष्ट कर सकता है। इससे उसके जीवन में संतोष आत्मविकास व त प्ति घटित होती है। वह विकास की ओर अग्रसर होता है।

13. मनोबल :- समूह में कर्मचारियों के मनोबल को ऊँचा रखा जा सकता है। उसकी मानसिक अवस्था को श्रेष्ठ एवं संवर्द्धनकारी बनाये रखा जा सकता है।

समूहों का निर्माण
(Formation of Groups)

व्यक्तियों द्वारा समूह का निर्माण क्यों किया जाता है, इसके संबंध में प्रचलित विभिन्न विचारधाराओं की जांच करेंगे। फिर हम समूहों के निर्माण के पीछे कुछ व्यवहारिक कारणों की व्याख्या करेंगे।

सामीप्य विचारधारा के अनुसार जो लोग स्थानिक द ष्टि से एक दूसरे के ज्यादा समीप होते है उनमें लगाव, घनिष्ठता और आत्मीयता विकसित हो सकती है। उदाहरण के लिए एक ही कक्षा में उन छात्रों के बीच अधिक घनिष्ठता हो जाएगी जो आस पास बैठते है। इसी प्रकार किसी संगठन में एक ही विभाग में काम करने वाले कर्मचारियों के बीच घनिष्ठता सम्बन्ध बनना स्वाभाविक है। यद्यपि यह विचारधारा काफी हद तक सही है और कुछ शोध अध्ययनों द्वारा पुष्टि भी हुई है, लेकिन यह विचारधारा विशलेषणात्मक नहीं है, साथ ही साथ यह विचारधारा समूहों के निर्माण के कारणों की कुछ जटिलताओं की व्याख्या करने में भी असमर्थ है।

समूह निर्माण की एक दूसरी विचारधारा हैः- क्रिया, अन्तर्क्रिया और मनोभाव विचारधाराः- यह विचारधारा सामीप्य

विचारधारा की तुलना में अधिक व्यापक है। इसे प्रतिपादित करने का श्रेय जार्ज होमेन्स को है। इस विचारधारा के अनुसार समूह-निर्माण के तीन आवश्यक तत्व होते है।

क्रिया, अन्तर्क्रिया और मनोभाव, ये तीनों ही तत्व एक दूसरे से संबंधित है। व्यक्तियों द्वारा मिलजुलकर जितनी अधिक क्रियाएं की जाएगी उतना ही उनके बीच अन्तर्क्रियाओं में व द्धि होगी और उनके पारस्परिक मनोभाव में द ढ़ता आएगी। यहां मनोभाव का अर्थ है कि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को कितना पसंद या नापसंद करता है। अन्तर्क्रियाओं के बढ़ने से सम्मिलित क्रियाओं तथा समान प्रकार के मनोभाव का विकास तेजी से होता है। इससे क्रियाओं और अन्तर्क्रियाओं में व द्धि होती है।

उक्त विवेचना से स्पष्ट है कि इस विचारधारा का मुख्य केन्द्र बिन्दु अन्तर्क्रिया है। केवल समीपता व्यक्तियों को पास-पास आने का अवसर प्रदान कर सकती है लेकिन इसके कारण उनके बीच घनिष्ठ सम्बन्ध बन जाए यह आवश्यक नहीं। उदाहरण के लिए पड़ोसियों में सदैव घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होते। अतः घनिष्ठ सम्बन्ध बनने के लिए अन्तर्क्रिया एक आवश्यक शर्त है। अन्तर्क्रियाओं के माध्यम से समूह के बहुत से लक्ष्य पूरे होते है। जैसे वे अपनी विभिन्न समस्याओं का समाधान ढूंढ़ते है।

समूह निर्माण के बारे में एक और विचारधारा है जो संतुलन विचारधारा के नाम से जानी जाती है। यह विचारधारा थियोडोर न्युकोम्ब की देन है। इस विचारधारा की यह मान्यता है कि व्यक्ति समान मनोव त्तियों व मूल्यों के आधार पर एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। एक बार संबंध स्थापित हो जाने पर आकर्षण तथा समान मनोव त्तियों के बीच प्रतिसम संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया जाता है। समान मनोव त्तियों का मूल्य सम्प्रदाय, राजनीति, जीवन शैली, विवाह, कार्य, सत्ता से सम्बन्धित हो सकते है। यदि किसी कारणवश असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तब फिर से संतुलन कायम करने का प्रयास किया जाता है, यदि फिर से संतुलन प्राप्त करना संभव नहीं होता तब संबंध समाप्त हो जाते है। इस संतुलन विचारधारा में सामीप्यता और अन्तर्क्रियाओं की महत्वपूर्ण भूमिका देखी जा सकती है।

समूह-निर्माण के संबंध में एक और विचारधारा विनिमय विचारधारा के नाम से जानी जाती है। इसका प्रतिपादन जॉन थानबॉट और हैरोल्ड कैली ने किया है। इस विचारधारा का मानना है कि समूह निर्माण अन्तर्क्रियाओं से जनित प्रतिफल तथा परिव्यय पर आधारित है। लोगों को अन्तर्क्रियाओं से जो व्यक्तिगत व सामाजिक संतुष्टि प्राप्त होती है, वह उनके लिए प्रतिफल है और इससे जो चिंता, नैराश्य, परेशाानी व थकान का अनुभव होता है, वह परिव्यय है। इस विचारधारा का मानना है कि ऐसी आकर्षण या संबंध के लिए कुछ धनात्मक परिणाम अवश्य होने चाहिए। अर्थात परिव्ययों की तुलना में अधिक होने चाहिए। इस विनिमय विचारधारा में समीप्य, अन्तर्क्रिया और समान मनोव त्तियों सभी की कुछ न कुछ भूमिका दिखाई देती है।

समूह निर्माण के कारण:- किसी संगठन के समूहों का निर्माण कई कारणों से होता है। जहां तक औपचारिक समूहों का प्रश्न है, उनका निर्माण संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए किसी समस्या का समाधान करने, किसी मुद्दे पर निर्णय लेने आदि कारणों से ऐसे समूहों का निर्माण हो सकता है। लेकिन औपचारिक समूहों के बहुत से कारण हो सकते है। हमने विभिन्न विचारधाराओं का अवलोकन किया, उसे ध्यान में रखते हुए हम यहां अनौपचारिक समूहों के निर्माण के तीन मुख्य कारणों की विवेचना करेंगे:-

1. **सानिध्य एवं सादृश्य** :- एक ही स्थान पर कार्य करने वाले व्यक्ति एक दूसरे के निकट आ जाते है। इसी तरह से वह व्यक्ति जो एक ही किस्म का कार्य करते है और जिनकी समान आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक प ष्ठभूमि होती है, एक दूसरे से मिलते है, वे सभी अनौपचारिक समूह बना लेते हैं।
2. **आवश्यकताओं की संतुष्टि** :- लोगों की बहुत सारी आवश्यकताएं होती हैं जिन्हें वे यथासम्भव पूरा करना चाहते है। समूह लोगों की बहुत सी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। समूह के माध्यम से लोगों की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक सुरक्षा की आवश्यकता पूरी होती है। समूह उनकी चिन्ता और अनिश्चितता को घटाता है। समूह के माध्यम से उनकी सामाजिक सम्बद्धता की आवश्यकता, अहम संबंधी आवश्यकताएं तथा आत्म विकास की आवश्यकताएं पूरी होती है।
3. **सदस्यों के हितों की रक्षा** :- बहुत से अनौपचारिक समूह प्रत्यक्ष रूप से सदस्यों के आर्थिक या अन्य हितों की रक्षा करने के उद्देश्य से बनते है। ऐसे समूहों का निर्माण भी हो सकता है जो सदस्यों को साहित्यिक, कलात्मक या पेशेवर लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग दें।

अनौपचारिक समूह और अनौपचारिक संगठन
(Informal Groups and Informal Organisation)

हम पूर्व में अनौपचारिक संगठन के बारे में विस्त त जानकारी प्राप्त कर चुके है। यद्यपि कुछ लेखक अनौपचारिक समूह और अनौपचारिक संगठन में अन्तर नहीं करते लेकिन इन दोनों के बीच अन्तर किया जा सकता है। यह अन्तर इन दोनों अवधारणाओं को सुस्पष्ट ढ़ंग से समझने में सहायक है। अनौपचारिक समूह अनौपचारिक संगठन का केन्द्रक है। वस्तुतः अनौपचारिक संगठन बहुत से अनौपचारिक समूहों का एक तन्त्र होता है। दूसरे शब्दो में अनौपचारिक संगठन एक विस्त त अस्तित्व रखता है। जिसमें बहुत से अनौपचारिक समूह पाए जाते है। चूंकि अनौपचारिक संगठन का आकार काफी बड़ा होता है। इसलिये इसमें सदस्यों के बीच व्यक्तिगत संबंध इतने घनिष्ठा नहीं होते और व्यक्तिगत सम्पर्को की मात्रा क्रम होती है। इस कारण यह स्वाभाविक ही है कि इसमें भावनात्मक पहचान और सम्बद्धता कम होती है। इन अनौपचारिक समूहों का निर्माण एक दूसरे के प्रति आकर्षित हुए व्यक्तियों के द्वारा विभिन्न कारणों से किया जाता है जबकि अनौपचारिक संगठन इस तरह नहीं बनते। अनौपचारिक संगठन एक अद श्यगत बोध है। यह अनौपचारिक संगठन के समान्तर आकस्मिक रूप से विकसित होता है और अनौपचारिक ढाँचे से दूर वास्तविकता में कार्य करता है।

समूहों के प्रकार
(Types of Groups)

समूहों को विभिन्न ढंगों से वर्गीक त किया जा सकता है। इनके कुछ प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैः-

1. **औपचारिक एवं अनौपचारिक समूह** :- औपचारिक समूहों की स्थापना सम्बन्धित संगठन द्वारा विशिष्ट कार्यो को पूरा करने के लिए की जाती है। वास्तव में ये औपचारिक समूह उस संगठनात्मक ढांचे के हिस्से होते हैं इसके सदस्य प्रबन्धकों द्वारा निश्चित किए गए विशिष्ट निष्पादनों के लिए उत्तरदायी होते है। कार्टराइट और लिफिर ने इस प्रकार के तीन औपचारिक समूहों का उल्लेख किया है।

   समादेशन समूह, समितियां और कार्यदल। समादेशन में समूहों के प्रबन्धकों और उनके प्रत्यक्ष नियन्त्रण वाले अधीनस्थों को शामिल किया जाता है। समितियों और कार्यदलों का गठन विशिष्ट कार्यो या क्रियाओं को पूरा करने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए एक शैक्षणिक संस्था में समादेशन समूह के अन्तर्गत उस संस्था का मुखिया (शीर्ष प्रशासक या प्राचार्य) और उसके प्रत्यक्ष नियन्त्रण वाले अधीनस्थों जैसे विभिन्न विभागों के विभागाध्यक्ष शामिल हो सकते है। इसी तरह विभिन्न शैक्षणिक और अन्य क्रियाओं की निगरानी करने पर उन्हे सुचारू ढंग से पूरा करवाने के लिए विभिन्न प्रकार की समितियां बनाई जा सकती है। विशिष्ट क्रियाओं जैसे विद्यार्थियों का चयन करने, पाठयक्रम निर्धारित करने आदि के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यदलों का गठन किया जा सकता है। यहां उल्लेखनीय है कि जहां समादेशन समूहों और समितियों का अस्तित्व स्थायी प्रकार का होता है वहीं कार्यदलों की स्थापना प्रायः विशिष्ट समस्याओं के समाधान के लिए ही होती है। इसके बाद इन्हें भंग कर दिया जाता है।

   किसी संगठन में औपचारिक समूहों का निर्माण उस संगठन के बजाए उसके सदस्यों के द्वारा किया जाता है। इस रूप में हम इन्हें गैर-अधिकारिक समूह कह सकते है। हालांकि ये संगठनात्मक ढांचे के भीतर ही बनाए जाते है। वस्तुतः इस प्रकार के समूहों का निर्माण कार्यस्थल पर सामाजिक जरूरतों को पूरा करने के लिए किया जाता है। कभी-कभी इनका निर्माण इसीलिये भी होता है कि काम-काज अच्छी तरह से किया जा सके और कभी इसीलिये भी होता हैं कि उत्पादन को एक निश्चित स्तर तक बनाए रखा जा सके।

   अनौपचारिक संगठन दो प्रकार के होते है :- मैत्री समूह तथा समान हित रखने वालो का समूह। मैत्री समूह का निर्माण स्वाभाविक रूप से सदस्यों की सामाजिक जुडाव की आवश्यकता को पूरा करने के लिए होता है। समान हितों का समूह उसे कहा जा सकता है जब समान हित व लक्ष्य रखने वाले व्यक्ति अपने हितों की रक्षा करने और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक समूह बनाते है।

2 **सदस्यता और सन्दर्भ समूह** :- सदस्यता समूह वह समूह होता है जिसका कोई व्यक्ति वास्तव में सदस्य होता है। उदाहरण के लिए क्लब, सहकारी समितियां, श्रमिक संगठन इत्यादि सन्दर्भ समूह वह समूह होता है जिसके माध्यम

से व्यक्ति की पहचान होती है या जिसका सदस्य वह बनना चाहता है। उदाहरण के लिए प्रतिष्ठित पेशेवर समूह।

3. **लघु और व हत समूह** :- लघु समूह का आकार छोटा होता है। इसमें व्यक्ति एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुडे होते है। इनके बीच संबंध प्राय व्यक्तिगत ही होते है तथा वे दूसरे पर निर्भर भी होते है। व हत समूह का निर्माण बहुत से छोटे-छोटे समूहों को मिलाकर होता है। व हत समूह में लोगो के बीच अन्तर्व्यक्तिगत संबंध इतने घनिष्ठ नहीं होते है।

4. प्राथमिक एवं द्वितीयक समूह :- प्राथमिक समूह लघु समूह की तरह ही होता है। इसके सदस्यों के बीच घनिष्ठता होती है, प्रत्यक्ष सम्प्रेषण और सहयोग होता है। प्राथमिक समूह के सदस्यों की समान मान्यताएं, रूचियां व लक्ष्य होते है। उनकी एक अलग पहचान होती है। यद्यपि प्राथमिक समूह छोटे होते है तदापि आवश्यक नहीं कि प्रत्येक छोटा समूह प्राथमिक समूह हो। परिवार मैत्री समूह प्राथामिक समूह के उदाहरण है। होथार्न अध्ययन में संगठन में कार्यरत कार्य समूहों की कई विशेषताएं वैसी ही पाई गई है जैसी कि प्राथमिक समूहों की होती। प्राथमिक समूह की विशेषताओं का व्यक्तियों के व्यवहारों पर भारी प्रभाव पड़ता है और इन विशेषताओं के प्रभाव पर वातावरणीय दशाओं व सम्पर्को का असर बहुत ही कम या नहीं भी हो सकता है।

   द्वितीयक समूह तुलनात्मक रूप से बड़ा होता है और बहुत से प्राथमिक समूहों से मिलकर बना है। व हत समूह के समान द्वितीयक समूह में भी अन्तर्व्यक्तिगत सम्बन्ध घनिष्ठ नही होते। एक संगठन, गांव, शहरी समुदाय आदि इसके कुछ उदाहरण है।

5. आंतरिक समूह और बाह्य समूह :- आंतरिक समूह उन व्यक्तियों को समूह को कहते है जो समाज में प्रचलित मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते है या जिन्हें सामाजिक कार्य प्रणाली में प्रमुख स्थान प्राप्त होता है जैसे कि किसी टीम के सदस्यगण या परिवार के सदस्यगण। बाह्य समूह वह समूह होता है जिसके सदस्य भविष्य में अधीनस्थ पद को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे व्यक्ति दूसरे समूह के लोगों के लिए काम करते है, उनका प्रचार करते है। उदाहरण के लिए किसी शल्य चिकित्सक की विशेषताओं का बखान करने वाला पैकार, किसी नव-निर्मित वस्तु के बारे में गली-गली घूमकर सूचना देने वाला आदि। इस लोगों का समूह के लिए बाह्य लोगों का समूह होता है।

अनौपचारिक समूह के कार्य
(Functions of Informal Groups)

अनौपचारिक समूहों का निर्माण इसलिये होता है कि वे अपने सदस्यों के लिए इच्छित कार्यो को निष्पादित करते है। ये अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करते है और उनके मूल्यों को सुरक्षित रखते है। औपचारिक संगठन में समाजीकरण की प्रक्रिया को गतिशील बनाये रखने में ये अपने सदस्यों की मदद करते है। इनके माध्यम से सदस्य उन व्यक्तिगत तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते है जो औपचारिक समूहों के माध्यम से पूरी नहीं हो पाती हैं। इनके माध्यम से सदस्यों को परस्पर विचार-विनिमय करने, सुख-दुख बांटने, अपने आदर्शो व मान्यताओं का मूल्यांकन करने एवं औपचारिक क त्यों से जुड़े हुए उबाऊपन से बचने का उपयुक्त आधार प्राप्त होता है। अनौपचारिक समूह द्वारा अपने सदस्यों के व्यवहार नियन्त्रण रखने तथा उन्हें एकरूपता प्रदान करने के लिए सर्वसम्मति से कुछ निश्चित मानदण्डों की स्थापना की जाती हैं। ये मानदण्ड यह बताते है कि सदस्यों से किस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा की जाती है।

समूह गतिशीलता एवं व्यवहार के आयाम
(Dimensions of Groups Dynamics and Behaviour)

समूह गतिशीलता समूह सदस्यों के व्यवहार एवं अन्तर्क्रियाओं की दर्शाती है। इसमें समूह की सामूहिक क्रियाओं एवं व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। संक्षेप में, समूह व्यवहार एवं गत्यात्मकता के विभिन्न आयामों का विवेचन निम्न प्रकार है:-

1. **समूह भूमिका** :- समूह व्यवहार को समझने के लिए समूह की भूमिका का ज्ञान होना जरूरी है। भूमिका से तात्पर्य किसी पद विशेष को ग्रहण करने वाले सदस्य के 'अपेक्षित व्यवहार' से है। समूह में सदस्यों की भूमिकायें स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकती है। एक औपचारिक समूह में सदस्यों की भूमिका पद तथा कार्य विवरण के द्वारा तय होती है दूसरी ओर अनौपचारिक सदस्यों में भूमिका का आधार यह निर्धारित करता है किसी परिस्थिति विशेष में किसी व्यक्ति को

क्या करना चाहिए। समूह के सदस्यों में विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं जैसे कार्य उन्मुखी भूमिका, सम्बन्ध उन्मुखी भूमिका, आत्मोन्मुखी भूमिका आदि। उल्लेखनीय है कि सदस्यों की भूमिकायें जितनी अधिक स्पष्ट एवं सुसंगत होगी, व्यक्तियों की संतुष्टि की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। अपनी भूमिकाओं के बारे में समूह के सदस्य जैसे विचार रखते है और उनका निर्वाह जैसे करते है, उसके विश्लेषण से भी समूह व्यवहार का ज्ञान हो सकता है।

2. **समूह निर्णयन** :- समूह द्वारा निर्णय लेना और समस्या का समाधान करना भी समूह व्यवहार का एक महत्वपूर्ण पहलू है। कुछ विशेष प्रकार की समस्याओं एवं परिस्थितियों में वैयक्तिक निर्णयों की तुलना में समूह निर्णय ही श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। समूह विचार विमर्श के दौरान समस्या के विभिन्न पहलू प्रकाश में आते है। समूह में नये विचार, नये मत प्रतिपादित होते है जो समस्या के समाधान में महत्वपूर्ण रूप से सहायक हो सकते है। समूह निर्णयन की प्रक्रिया न केवल लोकतान्त्रिक व सहभागी होती है वरन इससे सदस्यों के मनोबल पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। किन्तु समूह निर्णयन को प्रभावशाली बनाने के लिए समूह के बौद्धिक वातावरण को उपयुक्त बनाना होता है। कई बार सामूहिक विचार विमर्श समय-साध्य, अव्यवस्थित, औपचारिक एवं आधा-अधूरा होता है। कई बार सदस्य निर्णयन में न्यूनतम विरोध, हो तो केवल औपचारिक होने का व्यवहार प्रदर्शित करते है। कई बार समूह निर्णय राजनीति से भी प्रेरित होते है अनेक अवसरों पर समूह में अविवेकपूर्ण एवं जोखिमपूर्ण निर्णय भी ले लिये जाते है, क्योंकि सामूहिक उत्तरदायित्व में किसी एक सदस्य को दायी नहीं ठहराया जा सकता हैं।

3. **समूह नेत त्व** :- समूह का नेत त्व औपचारिक होने के साथ-साथ अनौपचारिक भी होता है। औपचारिक नेता नियुक्त किये जाते है तथा समूहगत क्रियाओं के लिए उपयुक्त सत्ता प्रदान की जाती है। औपचारिक नेता आम सहमति एवं अपने व्यक्तित्व के आधार पर उभरते है। वे अपनी व्यक्तिगत योग्यता एवं कला के आधार पर सदस्यों का विश्वास प्राप्त करते है। ऐसे नेता अपने व्यक्तिगत प्रभाव कौशल से समूह में अपना नेत त्व कायम कर लेते है। समूह में एक से अधिक व्यक्ति नेत त्व सम्भाल सकते हैं। समूह का नेत त्व भिन्न-भिन्न कार्यो के लिए भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के हाथों में हो सकता हैं।

4. **समूह अन्तर्क्रिया** :- अन्तर्क्रिया समूह की समस्त क्रियाओं की आधारशिला होती है। दूसरे शब्दों में, विभिन्न समूहगत क्रियाओं जैसे कार्य निष्पादन, समन्वयन परिवतनों का क्रियान्वयन, समूह निर्णयन, समस्या समाधान, लक्ष्यों का निर्धारण, समूह संशक्तिशीलता आदि में सदस्यों की आपसी अन्तर्क्रियाओं का अत्यन्त महत्व है। अनौपचारिक समूह में अन्तर्क्रिया की निरन्तरता के कारण सदस्य एक दूसरे को प्रभावित करते है और एक दूसरे से प्रभावित भी होते हैं।

5. **संवहन** :- समूहों में अन्तर्क्रियाओं के निर्बाध प्रवाह के लिए प्रभावी संवहन एक मूलभूत आवश्यकता होती है। संवहन की प्रक्रिया से सदस्यों में सूचना, विचार विनिमय, समझ, आत्माभिव्यक्ति, स जनता, मैत्री, मार्गदर्शन, व्यक्तित्व विकास आदि की आवश्यकताएं पूरी होती है। इससे सदस्यों में अहम की भावना का विकास होता है। अनौपचारिक समूहों में संवहन प्रायः मौखिक एवं अनाधिक त रूप से होता है। यह स्पष्ट, खुला एवं सामाजिक प्रक ति का होता है। इसे अगूरीतता के नाम से भी पुकारा जाता है।

औपचारिक समूहों में संवहन एक मार्गी एवं द्विमार्गी हो सकता है। समूह की प्रभावशीलता के लिए संवहन का द्विमार्गी होना आवश्यक है। समूह में संवहन के प्रवाह की अनेक संरचनाएं होती हैं। संवहन के मार्गो की संरचना समूह की क्रिया शीलता एवं सदस्यों के व्यवहार को प्रभावित करते है। छोटे समूहों में संवहन की संरचना का ताना बाना निम्न चित्रों में से किसी के भी अनुरूप हो सकता है।

संवहन के इस ताने बाने का सदस्यों के व्यवहार, समूह नेत त्व, सदस्य की केन्द्रीय व अधीनस्थ स्थिति, सदस्यों के आपसी सम्बन्धों तथा कार्य संतुष्टि पर प्रभाव पड़ता है। गोलाकार एवं सर्वमार्गी संवहन संरचना में कोई भी सदस्य केन्द्रीय स्थिति में नहीं है, अतः सभी सदस्यों को संवहन के समान अवसर प्राप्त होते है। इस प्रकार की संरचना में नेत त्व किसी के भी पास नहीं होता हैं। इस प्रकार की संवहन संरचनाओं में गलती की सम्भावनाये अधिक रहती है, संगठन में शिथिलता आ जाती है और कुल कार्यवाही में व द्धि हो जाती है। किन्तु इसके बावजूद सदस्यों की संतुष्टि में व द्धि हो जाती है। दूसरी ओर, जिन संवहन संरचनाओं में सदस्य अधीनस्थ स्थिति में होते है, जैसा कि पहिये वाली संरचना में A,B,C,D एवं E है। वहां पर उन्हे नेता पर निर्भर रहना पड़ता हैं। फलस्वरूप, अधीनस्थ स्थिति वाले सदस्यों

की प्रतिष्ठा, सहभागिता तथा आत्माभिव्यक्ति में कमी आ जाती है। संवहन के प्रारूप का चुनाव करते समय इन बातों के अतिरिक्त, संवहन की गति को भी ध्यान में रखना होता है। औपचारिक संवहन तीव्रगामी होता है। किन्तु इसकी अधिक विश्वसनीयता नहीं होती है। इस प्रकार संवहन औपचारिक संवहन में छटी हुई कमियों की पूर्ति करने में काम करता है।

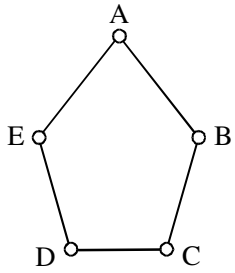

गोलाकार (Circular)

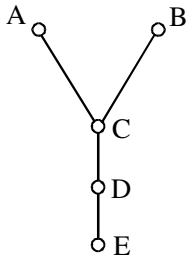

वाई प्रारूप (Y Type)

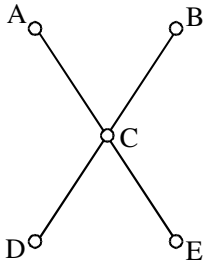

सितारा या पहिया
(Star or Wheel)

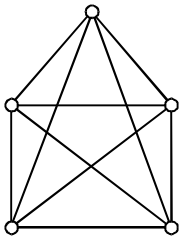
सर्द मार्गी
(All Channel)

6. समूह संशक्तिशीलता :- समूह संशक्तिशीलता से तात्पर्य समूह के सदस्यों के बीच पाई जाने वाली घनिष्ठता एवं आपसी जुडाव से है। यह समूह के सदस्यों के एकजुट होने तथा एक संगठित इकाई होने का परिचायक है। सशक्तिशीलता के कारण समूह के सदस्यों में अपनत्व एवं एकता की भावना जाग त होती है। सशक्तिशीलता से समूह के सदस्यों के आपसी सम्बन्ध सुद ढ़ होते है। तथा वे समूह में बने रहने, समूह के लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा समूह के मूल्यों व संस्क ति को आत्मसात करने के लिए अभिप्रेरित करते है। संशक्तिशीलता के कारण सदस्य समूह की प्रगति में योगदान देते है। संशक्तिशीलता के कारण भीड़ तथा समूह में अन्तर कर सकते है। भीड तो व्यक्तियों का केवल एक समुच्चय होती है तथा सशक्तिशीलता के अभाव में वह समूह का रूप धारण नहीं कर पाती है। समूह की संस्क ति को कुछ घटक प्रभावित करते है ये निम्न प्रकार है:-

(1.) जब सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति समूह के माध्यम से होती है। तो उनका समूह के प्रति लगाव बढ़ जाता है। इस लगाव की भावना से संशक्ति जन्म लेती है।

(2.) जो सदस्य समूह में उच्च पदों पर है तथा जिनकी अधिक प्रतिष्ठा है, उनकी समूह के प्रति अधिक निष्ठा होती है। इस समूह निष्ठा से संशक्तिशीलता में व द्धि होती है।

(3.) जब समूह के सदस्यों में आपसी प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहकारिता की भावना होती है तो इससे सस्क ति के विकास की संभावना बलवती हो जाती है।

(4.) जब समूह के सदस्यों में व्यक्तिगत एवं सामाजिक समानता होती है तो ऐसी समानता से समूह की संस्क ति बढ़ती है।

(5.) बाह्य शक्ति से उत्पन्न भय भी समूह में संस्क ति को बढ़ाता है। भय की आशंका से सदस्य आपस में संगठित रहते है।

संस्क ति से सदस्यों के मध्य न केवल अन्तर्क्रियाएँ. बढ़ती है वरन इससे संवहन की प्रभावशीलता में भी व द्धि हो जाती है। दूसरी ओर, अन्तर्क्रियाओं एवं प्रभावी संवहन की व्यवस्था से समूह की संस्क ति को भी बल मिलता है। इसके अतिरिक्त, जब समूह की सदस्यता में परिर्वतन काफी कम होते हैं। अथवा बिल्कुल नही होते है तो समूह में संस्क ति के विकास की सम्भावनाएँ अधिक बढ़ जाती हैं।

7. **समूह के मानदण्डों का पालन** :- मानदण्ड या प्रतिमान सदस्यों के व्यवहार के स्वीक त प्रमापः है। प्रत्येक समूह के कुछ निश्चित मानदण्ड होते है। मानदण्ड सदस्यों को यह बतलाते है कि उन्हें निश्चित दशाओं में "क्या करना" तथा "क्या नहीं करना" चाहिए। समूह अपने सदस्यों में जिस तरह के व्यवहार और निष्पादन की अपेक्षा करता है उसे ही मानदण्ड कहा जाता है। मानदण्ड़ एक प्रकार से आचार संहिता का कार्य करता है। जिनकी अनुपालना समूह के

सदस्यों के लिए आवश्यक होती है। शैरिफ एवं शैरिफ के अनुसार, "सामाजिक प्रतिमान कार्य करने की विधियां, नियम, आचरण के मानदण्ड, मूल्य आदि सामूहिक अन्तर्क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।" किंग्सले डेविस ने प्रतिमानों को एक प्रकार का नियन्त्रण बताया है।

मानदण्डों की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. समूह मानदण्डों, आदर्श मूल्यों को व्यक्त करते हैं।
2. मानदण्ड सदस्यों के कर्त्तव्यों की व्याख्या करते हैं।
3. विभिन्न समूहों के मानदण्डों में विविधता पायी जाती है।
4. मानदण्ड कार्य करने की विधियों, नियमों, मूल्यों और सामूहिक अन्तर्क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।
5. समूह मानदण्ड सामूहिक निर्णय लेने में सहायक होते हैं।
6. मानदण्ड लिखित, मौखिक या आचरण द्वारा व्यक्त हो सकते हैं।
7. मानदण्ड समूह को स्थिरता, व्यवस्था तथा निश्चयात्मकता प्रदान करते है।
8. औपचारिक मानदण्ड संगठन पुस्तिका में लिखित रूप में होते है जो नियमों तथा प्रक्रियाओं का वर्णन करते है।
9. समूह में अधिकांश मानदण्ड अनौपचारिक होते हैं।

प्रायः समूह के मानदण्ड निम्न तरीकों से विकसित होते हैं।

1. **सदस्यों के कथन** :- जब समूह का कोई विशेष सदस्य या सुपरवाइजर स्पष्ट कथन देता है तो वह मानदण्ड के रूप में स्थापित हो जाता हैं। उदाहरणार्थ, सुपरवाइजर का यह कथन है कि "कार्य की अवधि में कोई भी निजी टेलीफोन नहीं करेगा" धीरे-धीरे एक मानदण्ड या प्रतिमान बन जाता है।
2. **महत्वपूर्ण घटना** :- जब समूह के इतिहास में कोई महत्वपूर्ण घटना हो जाती है तो वह भी मानदण्ड के रूप में विकसित हो जाती है तो ऐसी घटना एक आधारभूत नजीर निर्धारित कर देती है।
3. **प्रथम व्यवहार** :- प्रथम व्यवहार शैली जो समूह में बार-बार उदित होती रहती है समूह प्रत्याशों को निर्धारित कर देती है। वही प्राथमिक व्यवहार मानदण्ड का रूप धारण कर लेता है।
4. **अनुभव** :- भूतकालीन परिस्थितियों से लाया गया अनुभव भी मानदण्ड के रूप में विकसित हो जाता है।

उल्लेखनीय है कि समूह द्वारा निर्धारित सभी मानदण्ड लागू नहीं होते है। केवल वे मानदण्ड ही लागू होते है जो समूह के लिए महत्वपूर्ण समझे जाते है। सामान्यतः समूह द्वारा ऐसे मानदण्ड को पालन करने के लिए महत्वपूर्ण समझा जाता है-

(a) जो समूह का अस्तित्व बनाये रखने में सहायता करता है।

(b) जो समूह में सफलता के अवसर बढ़ाता है।

(c) जो सदस्यों के व्यवहारों की भविष्यवाणी करने में सहायता करता है।

(d) जो समूह सदस्यों की अन्तर्वैयक्तिक समस्याओं की जटिलताओं या घबराहट में कमी करता है।

(e) जो सदस्यों को समूह केन्द्रीय मूल्यों को अभिव्यक्ति करने की अनुमति देता है तथा जो यह स्पष्ट करता है कि समूह की वास्तविक पहचान क्या है।

समूह द्वारा निर्धारित मानदण्ड सकारात्मक एवं नकारात्मक हो सकते है। सकारात्मक मानदण्ड निर्धारित करके समूह द्वारा संगठनात्मक एवं व्यक्तिगत प्रभावशीलता में व द्धि की जा सकती है।

प्रकार- गुडमन एवं शमनिक ने निम्न चार प्रकार बताये है जो कि अधिकांश समूहों में पाये जाते है।

(1) **निष्पादन संबंधी** :- अधिकांश मानदण्ड निष्पादन प्रक्रिया से सम्बन्धित होते है जो कि सदस्यों को बताते है कि उन्हें कैसे कार्य करना है, कितना पारिश्रमिक करना है, तथा उनके उपयुक्त संचार माध्यम क्या है। ये सदस्यों के निष्पादन को अत्याधिक रूप से प्रभावित करते हैं।

(2) **प्रकट घटकों से सम्बद्ध** :- इस श्रेणी में उपयुक्त पोशाक, कार्य समूह के प्रति निष्ठा आदि को शामिल किया जाता है।

(3) **अनौपचारिक सामाजिक समझौते** :- ये मानदण्ड अनौपचारिक सामाजिक समूहों से आते है। ये समूह के भीतर सामाजिक अन्तर्क्रिया को नियंत्रित करते है।

(4) **साधनों के आबंटन से सम्बन्धित** :- ये मानदण्ड संगठन या समूह में उत्पन्न हो सकते हैं इसमें वेतन, जटिल कार्यो का हस्तांकन, नये यन्त्रों, उपकरणों आदि का आबंटन सम्मिलित है।

अनुपालन के कारण :- निम्नलिखित कारणों से सदस्य अपने समूह के मानदण्डों या प्रतिमानों का पालन करते है-

(1) **समूह का नियन्त्रण** :- समूह के नियन्त्रण के कारण प्रत्येक सदस्य मानदण्डों का पालन करता है। वह इस बात को जानता है कि मानदण्डों का पालन न करने पर समूह उसे बहिष्क त या दण्डित कर सकता है।

(2) सामाजीकरण :- व्यक्तिगत समूह के मानदण्डों, नियमों तथा आदर्शो का पालन करके ज्ञान प्राप्त करता है। इससे उसके व्यक्तित्व का विकास होता है।

(3) **निजी हित** :- समूह के मानदण्डों तथा नियमों के पीछे सामूहिक हितों के साथ-साथ व्यक्तिगत स्वार्थो, हितों व लक्ष्यों का भी आधार होता है। प्रतिमानों का पालन करके वह अपने हित की रक्षा कर सकता है।

(4) **भूमिका निर्वाह** :- व्यवहार प्रतिमानों का पालन करके सदस्य अपनी भूमिकाओं का श्रेष्ठ ढंग से निर्वाह कर सकते है।

(5) **समूह की प्रभावशीलता** :- समूह के मानदण्ड समूह की विद्यमानता, विश्वसनीयता एवं प्रभावशीलता के लिए भी आवश्यक होते है।

(6) **अभिप्रेरणा** :- समूह के मानदण्डों के अनुरूप व्यवहार करने पर सदस्यों को पुरस्क त किया जाता है तथा उनके प्रतिकूल आचरण की दशा में सदस्य को दण्डित भी किया जाता है। दण्ड के रूप में भर्त्सना, सामाजिक बहिष्कार, परिहास, अप्रतिष्ठा आदि उपाय शामिल है। कभी-कभी सदस्यों को शारीरिक दण्ड भी दिया जा सकता है।

(7) **समूह के पद सम्बन्ध** :- समूह की गतिशीलता को समझने के लिए पद की अवधारणा को भी समझना आवश्यक है। एक समूह के सदस्यों के सामाजिक क्रम को 'पद' कहा जाता है। यह सामाजिक क्रम व्यक्ति की विशेषताओं, योग्यताओं सदगुणो तथा व्यक्तिगत उपलब्धियों पर आधारित हो सकता है। औपचारिक समूहों में पदों का निर्धारण औपचारिक पदनाम, वेतन, अधिकार, सत्ता, कार्य की प्रगति आदि घटकों के आधार पर किया जाता है। प्रायः सभी प्रकार के समूहों में पद प्रणाली विद्यमान होती है। प्रत्येक समूह में कुछ सदस्य उच्च पद पर आसीन होते है। पदों की भिन्नता के कारण धीरे-धीरे उनके व्यवहार में भी अन्तर होने लगता हैं। औपचारिक समूहो में 'पद' प्रतीकों एवं पदनामों द्वारा व्यक्त किया जाता है। अनौपचारिक समूहों में नेत त्व स्थिति, भूमिकाओं , विशेषाधिकारों, विशिष्ट कार्यो आदि के रूप में पद प्रतीक पाये जाते है।

समूहों में पद प्रणाली अभिप्रेरक के रूप में भी कार्य करती है। यह व्यक्तियों की अहम् सम्बन्धी आवश्यकताओं की संतुष्टि करती है। विकास के अवसर प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि पद-प्रणाली व्यक्तिगत उपलब्धियों, योग्यताओं व कार्य निष्पादनों की क्षमता पर आधारित होनी चाहिए। पदों के माध्यम से भी व्यक्तियों की वास्तविक उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जा सकता है। पद प्रणाली सामाजिक सम्पर्को की जटिलता एवं अव्यवस्था को दूर करती है। यह लोगो में तनाव व निराशा को भी दूर करती है। क्योंकि लोगों के साथ पद के अनुरूप उचित ढंग से व्यवहार किया जा सकता है।

(8) **उत्पादकता** :- समूह के सदस्यों की उत्पादकता एवं कार्यनिष्पादनता के द्वारा भी उनके व्यवहार का आंकलन किया जा सकता है। जब समूह में संशक्तिशीलता होती है तो समूह के सदस्य समूह द्वारा निर्धारित मानकों के अनुरूप उत्पादन करते है किन्तु संशक्ति के अभाव में सदस्य की उत्पादकता शक्ति में विभिन्नता पाई जाती है। अध्ययनों से पता चलता है कि सामान्यतः ऐसे समूहों की उत्पादकता अधिक होती है जिनके सदस्यों में

सहयोग व समन्वय की भावना अधिक होती है। ऐसे समूहों मे अनुपस्थिति की दर भी निम्न रहती है। सदस्यों का कार्य के प्रति अनुकूल द ष्टिकोण रहता है तथा उनके उत्पादन लक्ष्य भी ऊँचे होते है। समूह में सकारात्मक मनोभावनाएं जाग त करने में पर्यवेक्षकों व नेता की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। प्रबन्धकों को समूह की शक्ति को संगठन के लिए एक चुनौती के रूप में नहीं देखना चाहिए अन्यथा समूह में सकारात्मक मनोभाव का निर्माण नहीं हो पाता है। हॉथ्योर्न परीक्षणों के बैक वायरिंग रूम परीक्षण के अन्तर्गत यह पाया जाता है कि ऐसे समूहों में जहां कार्य के मानक स्थापित किये जाते हैं, उत्पादन दर को निबन्धित करने की प्रव त्ति पाई जाती है।

अध्याय–15
नेत त्व
(Leadership)

(Meaning and Definitions of Leadership)

नेत त्व से तात्पर्य किसी, व्यक्ति विशेष के उस गुण से है जिसके माध्यम से वह अपने अनुयायियों का पथ-प्रदर्शन करता है और नेता के रूप में उनकी क्रियाओं का संचालन करता है। एक नेता के पीछे उसके अनुयायियों का एक समूह होता है जो उसके निर्देशन के अनुसार कार्य करता है। वास्तव में नेत त्व वह क्षमता है जिसके द्वारा उसके अनुयायियों के एक समूह से वांछित कार्य स्वेच्छापूर्वक कराएं जाते है। नेत त्व की विचारधारा के अनुसार नेता एवं उसके अनुयायियों का घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोनों का अस्तित्व भी एक दूसरे के साथ होता है। बिना अनुयायियों के नेता नहीं कहला सकता और बिना नेता के अनुयायियों का अस्तित्व ही उत्पन्न नहीं हो सकता। अब प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि 'नेता जन्म लेते है या बनाए जाते है।' इस कथन को स्पष्ट करते हुए यह कहा जा सकता है कि किसी व्यक्ति में नेत त्व सम्बन्धी गुण जन्मजात होते हैं, उन्हें प्राप्त नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर, कुछ विद्वानों का यह मानना है कि नेत त्व के गुण प्राप्त किए जा सकते हैं अर्थात बनाए भी जाते है। इस स्थिति में ओडवे टीड के विचार है नेता जन्मते भी हैं और बनाए भी जाते हैं। जिन व्यक्तियों में यह गुण होते है वे अवसर पाते ही इसका लाभ उठाते हैं और स्वतः प्रकाश में आ जाते हैं।

कीथ डेविस के अनुसार, "नेत त्व एक ऐसा मानवीय गुण है जो किसी समुदाय को संगठित कर लक्ष्यों की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता हैं।"

बर्नार्ड के अनुसार, "नेत त्व से आशय व्यक्ति के उस व्यवहारिक गुण से है जिसके द्वारा वह अन्य लोगों का संगठित प्रयास से संबंधित कार्य करने में मार्ग दर्शन करता है।"

टैरी के शब्दों में, "नेत त्व व्यक्तियों को पारस्परिक उद्देश्यों के लिए स्वैच्छिक प्रयत्न करने हेतु प्रभावित करने की योग्यता है।

अल्फर्ड तथा बीटी के शब्दो में, "नेत त्व वह गुण है जिसमें अनुयायियों के एक समूह से वांछित कार्य स्वेच्छापूर्वक एवं बिना किसी दबाव के कराए जाते हैं।

नेत त्व की विशेषताएं अथवा लक्षण
(Characteristics of Leadership)

1. **अनुयायी** (followers) :- नेता के साथ-साथ उसके अनुयायियों का होना भी बहुत जरूरी है, क्योंकि बिना अनुयायियों के नेत त्व किसका किया जाएगा। जितने अधिक उसके अनुयायी होंगें, नेता का महत्व उतना ही बढ़ जाएगा।
2. **आदर्श आचरण** (Ideal Conduct) :- नेता अपने आचरण से ही अनुयायियों को प्रभावित करता है। एक व्यक्ति जो स्वयं कार्य पर देर से आता है, अपने अधीनस्थों से ठीक समय पर आने की आशा नहीं कर सकता। उनके अनुयायी यह चाहते है कि उनका नेता केवल नेता ही न हो, बल्कि एक आदर्श पुरूष भी हो, ताकि वे उसके द्वारा दर्शाये गए मार्ग पर चल सकें।
3. **नेत त्व एक गतिशील प्रक्रिया** (Leadership is a Dynamic Process) :- नेत त्व की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

इसकी आवश्यकता केवल कार्य को प्रारम्भ करते समय ही नहीं वरन् बाद में भी निरंतर बनी रहती है। कुशल नेता नई-नई तकनीकों को अपनाते है तथा अधीनस्थों को इन तकनीकों की सूचना, निर्देशन व प्रशिक्षण देते रहते है।

4. **हितों की एकता** (Harmony of Interests) :- किसी संगठन में प्रभावी नेत त्व उसी समय कहा जा सकता है जबकि नेता और अनुयायी एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य करें। उनके हित परस्पर एक श्र ंखला में बंधे रहने चाहिए, अन्यथा हितों में विरोध होने से रस्साकशी की आशंका रहती है एवं नेत त्व भी दुर्बल तथा प्रभावहीन हो जाएगा।

5. **सामान्य लक्ष्य** (Common Goal) :- नेत त्व की यह प्रक ति है कि नेता संस्था के सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपने अनुयायियों के प्रयासों को निर्देशित करता है उन्हें निर्धारित लक्ष्यों की जानकारी देता है, परिभाषित करता है और उनके लक्ष्यों की प्राप्ति में आने वाली बाधाओं को दूर करने का प्रयत्न करता है।

6. **दूसरों को प्रभावित करने की योग्यता** (Ability to Influence others) :- समूह के नेता में ऐसी योग्यता भी होनी आवश्यक है जिससे वह व्यक्तियों को अपना अनुसरण करने के लिए प्रभावित कर सके।

7. **उत्तरदायित्व** (Responsibility) :- अनुयायियों द्वारा किए गए कार्यो अथवा त्रुटियों का दायित्व नेता को अपने ऊपर लेना चाहिए। नेता अपने को अनुयायियों के कार्यो से अलग नहीं कर सकता।

नेत त्व कार्य
(Leadership Functions)

किसी नेता से चाहे वह औपचारिक हो या अनौपचारिक उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने दल के लिए कार्य करे। उसे समूह को एक संश्लिष्ट, अनुशासन तथा क्रियात्मक इकाई के रूप में संजोना होता है। अपने दल के सदस्यों में निर्देशन का मान पैदा करना होता है ताकि उनके प्रयासों को सार्थक लक्ष्यों की ओर विकसित, प्रवाहित एवं प्रयुक्त किया जा सके। उन्हें इस प्रकार प्रोत्साहित करना होता है कि वे स्वयं ही काम करने के लिए उत्सुक हो। अपने दल के अन्दर हो रहे विवादों का निदान करना पड़ता है तथा परिवर्तन के प्रति उन्हें समायोजित करना होता है। इनमें प्रमुख कार्य निम्न हैं :-

1. **उद्देश्यों को परिभाषित करना** :- नेत त्व का सबसे पहला काम संगठन के उद्देश्यों को परिभाषित करना है ताकि सदस्य अपने-अपने योगदान को पहचान सके।

2. **निर्देशन करना** (Leading) :- नेता अपने अनुयायियों को मार्गदर्शन प्रदान करते हुए अपने निर्देशानुसार कार्य करवाता हैं। फ्रैंकलिन जी॰ मूरे के अनुसार, "नेत त्व अनुयायियों को नेता की इच्छानुसार क्रियाएँ करने के लिए तैयार करने की योग्यता है। इस प्रकार नेता निर्देशन प्रदान करके कार्य निष्पादन करवाता है।

3. **अभिप्रेरण प्रदान करना** (Inspiring) :- नेत त्व कर्मचारियों की अभिप्रेरणा का स्त्रोत हैं कुशल नेत त्व व्यक्तियों की भावनाओं व इच्छाओं को सन्तुष्ट करके उनमें कार्य करने की प्रेरणा उत्पन्न करता है।

4. **मध्यस्थता करना** (Arbitrating) :- कई संगठनात्मक मामलों को सुलझाने, विवादों को हल करने अथवा कर्मचारियों की असहमति को दूर करने के लिए नेत त्व द्वारा मध्यस्थता की जाती है। नेता सही निर्णय लेने तथा सही कार्यविधि को अपनाने में सहायक होता है। नेता संघर्षो को दूर करके संगठन को गतिशील बनाता है।

5. **परामर्श देना** (Suggesting) :- कार्य करते समय कई बार कर्मचारी दुविधा में फंस जाते है उनके कार्य में रूकावटें आ जाती है। कुशल नेता ऐसे समय में योग्य परामर्श प्रदान करके सभी बाधाओं को दूर करते है।

6. **कार्य-शक्ति प्रदान करना** (Catalyzing) :- प्रत्येक संगठन में एक कार्य प्रेरक शक्ति की आवश्यकता होती है जो संगठन को क्रियाशील बना सके। नेत त्व ही यह शक्ति प्रदान करता है। वह अधीनस्थों में कार्य का उत्साह भरता है।

7. **सुरक्षा प्रदान करना** (Providing Security) :- संगठन में कर्मचारियों के लिए अनेक खतरे, संकट व असुरक्षायें उत्पन्न हो जाती है। नेत त्व आशावादी द ष्टिकोण, उत्साह एवं सकारात्मक अभिव त्ति का निर्माण करके सुरक्षा का वातावरण बना सकता हैं

8. **मनोबल व आत्मविश्वास का निर्माण** (Builds Morale and Confidence) :- कुशल नेत त्व व्यक्तियों में कार्य करने की इच्छा उत्पन्न करता है। टैरी के अनुसार, "नेत त्व शिथिल इच्छाओं को सफलता प्राप्त करने की धधकती उमंग

में परिवर्तित कर देता है।"

9. **प्रतिनिधित्व करना** (Representing) :- नेता अपने अनुयायियों व संस्था का प्रतिनिधत्व भी करता हैं वह उच्चाधिकारी, बाह्य पक्षों व सरकार के समक्ष अपने अधीनस्थों व अपनी संस्था का सही चित्र प्रस्तुत करता हैं।

10. **समूह भावना का विकास** (Develops team spirit) :- नेता अपनी संस्था में एक समूह भावना का विकास करता है। वह लोगों के वैयक्तिक एवं स्वेच्छाचारी व्यवहार को रोक कर उन्हें एक दल के रूप में गठित करता है जिसमें सभी लोग अपने आपको उस समूह का अभिन्न अंग मानने लगते है।

11. **मान्यता देना** (Praising) :- नेता अपने अधीनस्थों के श्रेष्ठ कार्यो व अच्छे निष्पादन को मान्यता प्रदान करता हैं। इससे व्यक्तियों की मानसिक आवश्यकताएं सन्तुष्ट होती है तथा वे अधिक कार्य करने के लिए उत्साहित होते हैं।

नेत त्व व्यवहार एवं शैलियाँ या तकनीक
(Leadership Behaviour & Styles or Techniques)

प्रत्येक नेता या प्रबन्धक अपने अधीनस्थों से काम लेने के लिए विभिन्न प्रकार के चरणों एवं सिद्धान्तों का प्रयोग करता है। अलग-अलग नेताओं के द्वारा अलग-अलग प्रकार से व्यवहार किया जाता है। उनके नेत त्व की शैली अलग-अलग होती है। नेत त्व की शैलियों को अध्ययन की सुविधा की द ष्टि से कई भागों में विभक्त किया जा सकता है। अधिकारों के प्रयोग के आधार पर नेत त्व की शैलियों को मूलतः तीन भागों में बांटा जा सकता है। - तानाशाही नेत त्व, जनतान्त्रिक नेत त्व तथा स्वतन्त्रात्मक नेत त्व। परिणामों की द ष्टि से नेत त्व को दो भागों में बांटा जा सकता है। उत्पादन या कार्य प्रेरित नेत त्व तथा मानवीय संबंध प्रेरित नेत त्व यहाँ इनका संक्षिप्त वर्णन किया जाना आवश्यक है-

तानाशाही नेत त्व
(Autocratic Leadership)

तानाशाही नेत त्व के अन्तर्गत नेता सभी अधिकार अपने हाथ में रखता है और कर्मचारियों को सभी काम उसी प्रकार से करने पड़ते है जैसे कि वह आदेश दे। यदि कोई कर्मचारी इन आदेशों का पालन नहीं करता या अपने काम में लापरवाही करता हैं तो उसे दण्डित किया जा सकता है और यहाँ तक कि नौकरी से भी हटाया जा सकता है। एक तानाशाही नेता के द्वारा सभी निर्णय स्वंय लिये जाते है और उन सभी कि जिम्मेदारी भी वह स्वंय उठाता है। अपने अधीनस्थों से कार्य लेने के लिए वह दण्ड तथा धमकी का प्रयोग करता है। अपने कार्य में कर्मचारियों की ओर से कोई सुझाव, सलाह या हस्तक्षेप उसे बिलकुल पसंद नहीं होता। एक तानाशाही नेत त्व की विशेषताएं निम्न प्रकार है :-

1. नेत त्व की इस शैली में प्रबन्धक यह मानकर चलते है कि कर्मचारी स्वभावतः आलसी व कामचोर होते है, केवल दबाव में काम करते है, धन और नौकरी की सुरक्षा चाहते है तथा निरन्तर व कठोर नियन्त्रण में काम करते है।
2. नेत त्व की इस प्रणाली में प्रत्येक प्रबन्धक अपने पद और अधिकार की सीमा में समस्त निर्णय स्वयं अपनी इच्छा से और बिना किसी अन्य व्यक्ति की सलाह से लेता है।
3. इस प्रकार के नेत त्व में प्रबन्धक अपनी सत्ता औपचारिक संगठन ढांचे से प्राप्त करता है और इसे किसी के साथ बाँधने के लिए तैयार नहीं होता।
4. इस प्रकार के नेत त्व में प्रबन्धक और कर्मचारियों के संबंध औपचारिकता से बँधे रहते हैं - सभी लोग केवल अपने-अपने काम से मतलब रखते हैं।
5. कर्मचारियों के बारे में गलत धारणाओं के कारण इस नेत त्व में धमकी और सजा या आर्थिक लाभ, दो ही अभिप्रेरणाएं प्रयोग की जाती है।
6. साधारणतया इस शैली में कर्मचारियों का व्यवहार तत्काल आज्ञाकारिता तथा नियमपरायणता का होता है।
7. नेत त्व की इस शैली में अधीनस्थों की कार्य-प्रगति पर निरन्तर कड़ी निगरानी रखी जाती है जिसमें उत्पादन के लक्ष्यों को बिना किसी संदेह के प्राप्त किया जा सके।

8. इस प्रणाली में सूचनाओं का आदान-प्रदान केवल ऊपर से नीचे की ओर ही चलता है क्योंकि अधीनस्थों के सुझाव व विचारों को तो सुना ही नहीं जाता।

तानाशाही नेत त्व के लाभ
(Advantages)

1. निर्णय एक ही व्यक्ति के द्वारा स्वयं अपनी समझ से लिये जाते है, ये निर्णय अधिक शीघ्रता और स्पष्टता के साथ लिये जा सकते है।
2. कम योग्य प्रबन्धकों से भी पूरा और सही काम लिया जा सकता है क्योंकि उन्हें कोई अलग से नियोजन, संगठन, निर्णयन नहीं करना होता।
3. इस नेत त्व में कार्मचारियों के काम पर कड़ा नियन्त्रण रखा जा सकता है और कोई भी कर्मचारी अपने काम में लापरवाही नहीं कर सकता।
4. प्रबन्धकों को अपने कार्य से अधिक संतोष मिलता है क्योंकि वे अपना कार्य अपनी इच्छा एवं रूचि के अनुसार करवा सकते हैं और कर्मचारी उनके आदेश, कर्त्तव्य समझ कर पूरा करते हैं।
5. ऐसे व्यक्तियों के लिए जिनका लालन-पालन, शिक्षा व विकास अलग-अलग प्रबन्धकों की कठोर देख-रेख में हुआ है, यही नेत त्व अधिक अच्छा माना जाता हैं।

तानाशाही नेत त्व के दोष
(Disadvantages)

1. नेत त्व की इस शैली में निर्णय के सभी अधिकार केवल कुछ हाथों में केन्द्रित रहते है। अतः नेता खुलकर अपनी मनमानी करता है।
2. इस प्रणाली में कर्मचारियों का मनोबल गिरा रहता है क्योंकि उन्हें डर और धमकी दी जाती है और इसी वातावरण में काम करना पड़ता है।
3. कर्मचारी इस नेत त्व में पूरे जोश और मन से कार्य नहीं करते क्योंकि न तो उनकी सलाह ली जाती है और न ही उन्हें अपने कार्य के बारे में कोई स्वतन्त्रता दी जाती है। फलस्वरूप उनकी उत्पादकता सीमित रहती है।
4. तानाशाही नेत त्व किसी एक नेता के व्यक्तित्व के चारों ओर घूमता है और इसके साये में कोई दूसरा शक्तिशाली व्यक्तित्व नहीं उभरता। फलस्वरूप जब यह व्यक्तित्व नहीं रहता, प्रबन्ध की संपूर्ण व्यवस्था चरमरा जाती है।

जनतान्त्रिक नेत त्व
(Democratic Leadership)

जनतान्त्रिक नेत त्व के अन्तर्गत नेता के द्वारा अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण किया जाता है। यह प्रबन्धक के विभिन्न कार्यो में अपने अधीनस्थों से सलाह-मशवरा करता है। अधीनस्थों को अपनी पहल क्षमता तथा योग्यता को दिखाने का अवसर प्रदान करता है और अभिप्रेरणा के लिए दण्ड और धमकी के स्थान पर विभिन्न सुविधाओं तथा प्रार्थनाओं का प्रयोग करता है। जनतान्त्रिक नेत त्व की प्रमुख विशेषताएँ संक्षिप्त रूप में निम्न प्रकार है -

1. इस प्रणाली में अधीनस्थों को अपने स्तर के निर्णय स्वंय लेने के अधिकार दिए जाते है। प्रबन्धक उनके पथ-प्रदर्शन के लिए सामान्य नीतियाँ ही बनाते हैं।
2. वे विश्वास करते हैं कि कर्मचारी स्वभाव से कार्य करना चाहते हैं, अपने कार्य में रूचि रखते हैं, उत्तरदायित्व स्वीकार करते हैं और स्वंय पहल करके, दिए गये कार्य को अधिक अच्छे ढंग से करने की योग्यता व इच्छा रखते हैं।
3. नेत त्व की इस प्रणाली में प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों के संबंध कम तनावपूर्ण होते हैं, क्योंकि उनके बीच विचारों का आदान-प्रदान निरन्तर चलता रहता है, और वे एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हैं।

4. जनतान्त्रिक नेत त्व में प्रबन्धकों और कर्मचारियों के बीच विचारों व सुझावों का खुला आदान-प्रदान होता हैं।
5. इस प्रणाली में कर्मचारी प्रबन्धकों के साझेदार बन जाते हैं उनके नेत त्व में अधिक उत्साह तथा योग्यता के साथ काम करते हैं।
6. इस नेत त्व में प्रबन्धक उन्हें अपने काम के लिए स्वयं उत्तरदायित्व स्वीकार करना सिखाते हैं। वे उनसे आशा करते हैं कि जहाँ तक हो सके वे अपने लक्ष्य अपने आप तय करें, इसकी पूर्ति की रिपोर्ट स्वयं बनाएँ तथा अपनी प्रगति को उत्तम बनाने के लिए प्रबन्धकों को स्वयं सुझाव दें।
7. इस प्रणाली में कर्मचारियों को आर्थिक अभिप्रेरण जैसे ऊँचा वेतन भी देते हैं और आत्मिक अभिप्रेरण जैसे अधिक स्वतन्त्रता व अधिकार, अधिक मान व सम्मान आदि भी देते हैं।

जनतान्त्रिक नेत त्व को भी कई भागों में बाँटा जा सकता है। लिकर्ठ ने इसे दो भागों में विभाजित किया है। परामर्शात्मक नेत त्व तथा भागीदारी नेत त्व। परामर्शात्मक नेत त्व में कर्मचारियों से सुझाव आमन्त्रित किए जाते है। सही पाने पर उनको प्रयोग में भी लाया जाता है। विचारों का आदान-प्रदान ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर दोनों ओर होता हैं। कर्मचारी प्रबन्ध के कार्य में आंशिक रूप से भाग लेते है तथा कर्मचारियों को प्रेरित करने के लिए दण्ड, धमकी, निवेदन तथा सुविधाएं दोनों प्रकार के तरीकों का प्रयोग किया जाता है। भागीदारी नेत त्व में नेता अपने कर्मचारियों की योग्यता पर जिम्मेदारी और पूर्ण विश्वास रखते हैं। सभी विषयों में उनसे राय लेते हैं तथा मिलकर निर्णय करते हैं। अभिप्रेरण के लिए आर्थिक तथा अनार्थिक पुरस्कारों का प्रयोग किया जाता हैं। विचारों का आदान-प्रदान अनौपचारिक भी होता हैं। कर्मचारियों को प्रबन्ध के कार्य में भाग लेने का पूरा-पूरा अवसर दिया जाता हैं।

जनतान्त्रिक नेत त्व के लाभ
(Advantages)

1. इस प्रणाली में प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों, दोनों का उत्साह ऊँचा होता हैं क्योंकि दोनों एक-दूसरे का सहयोग करते हैं और दोनों को ही अपने-अपने कार्य से अधिक सन्तोष मिलता हैं।
2. इसमें कुशलता अधिक होती हैं क्योंकि कर्मचारी प्रबन्धकों के निर्देशों तथा उद्देश्यों को अधिक अच्छे ढंग से समझ जाते हैं और उन्हें अधिक उत्साह के साथ पूरा भी करते हैं।
3. जनतान्त्रिक नेत त्व में कर्मचारियों के सक्रिय सहयोग और अधिकारों के व्यापक वितरण के कारण उच्च प्रबन्धकों का कार्य-भार हलका हो जाता हैं और वे अपनी बची हुई शक्ति को संस्था के विकास और विस्तार में लगा सकते हैं।
4. प्रबन्ध के कार्य में सक्रिय रूप से सहायक होने के कारण ये कर्मचारी प्रबन्ध की जटिलताओं को अधिक निकट से समझ लेते हैं। कर्मचारियों में इन प्रतिभाओं के विकास के कारण, संस्था में स्थिरता बढ़ती हैं क्योंकि किसी एक शक्तिशाली नेता के चले जाने से संस्था पंगु नहीं बनती।
5. एक संस्था में समय-समय पर तकनीकी, व्यावसायिक या बाजार संबंधी परिवर्तनों के कारण उत्पादन तथा बिक्री की नीतियों, प्रणालियों व कार्य-विधियों में कई परिवर्तन करने पड़ते हैं, जिन्हें कर्मचारी आसानी से स्वीकार नहीं करते क्योंकि वे उन्हें शक की निगाह से देखते है। लेकिन जनतान्त्रिक नेत त्व में ऐसा नहीं होता क्योंकि कर्मचारी और प्रबन्धक एक-दूसरे की मजबूरियों तथा भावनाओं को अच्छी तरह समझते हैं।

जनतान्त्रिक नेत त्व के दोष
(Disadvantages)

1. कई बार जनतान्त्रिक नेत त्व में निर्णय शीघ्रता से नहीं लिए जा सकते क्योंकि अधीनस्थों की सलाह लेना आवश्यक हैं और वे स्पष्ट नहीं होते, या एक मत नही होते।
2. प्रबन्धक अधीनस्थों को कठिन निर्णयों में शामिल करके, अपनी जिम्मेदारी से यह कहकर बचने लगते हैं कि ये निर्णय अधीनस्थों के निर्णय थे उनके नहीं।

3. कई बार अनेक अधीनस्थ चाहते है कि उन्हें सभी आदेश स्पष्ट रूप से दिए जाएं और उन पर कुछ नहीं छोड़ा जाए जिससे वे उनकी जिम्मेदारी से बच सकें। ऐसी स्थिति में जनतान्त्रिक नेत त्व संभव नहीं।
4. जनतान्त्रिक नेत त्व के लिए आवश्यक हैं कि अधीनस्थ अत्यन्त समझदार हों और अपने उत्तरदायित्व को समझें क्योंकि तभी वे प्रबन्ध की समस्याओं को हल करने में अपना योगदान दे सकेंगे।

स्वतन्त्रात्मक नेत त्व
(Free-Rein Leadership)

नेत त्व की इस प्रणाली के अन्तर्गत नेता प्रबन्धक के द्वारा अपने उद्देश्यों की व्याख्या अधीनस्थों को करा दी जाती हैं और उसके बाद अधीनस्थों को बिलकुल स्वतन्त्र छोड़ दिया जाता है। अधीनस्थ अपने विचार के अनुसार योजना बनाते हैं, उसे लागू करते हैं। प्रबन्धक उनको सभी साधन प्रदान करा देता हैं, उनकी प्रगति की जानकारी रखता हैं तथा विभिन्न कर्मचारियों के कार्यो में आवश्यक ताल-मेल और समन्वय स्थापित करता हैं, लेकिन अधीनस्थ निर्णय स्वंय लेते हैं और स्वंय ही क्रियान्वित करते हैं। स्वतन्त्रात्मक नेत त्व की मुख्य विशेषताएं संक्षेप में निम्नलिखित हैं-

1. इस नेत त्व में प्रबन्धक संपूर्ण संगठन में अधिकारों का व्यापक वितरण कर देते हैं जिससे प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने क्षेत्र में अपने लक्ष्य चुनने, उन्हें पूरा करने की योजना बनाने और इस योजना को क्रियान्वित करने के व्यापक अधिकार मिल जाते हैं।
2. प्रबन्धक इस पद्धति में अपने अधीनस्थों को पूर्णतया योग्य, सक्रिय साहसी तथा उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्ति समझते हैं और उनमें पूरा विश्वास रखते हैं।
3. नेत त्व की इस शैली में प्रबन्धक अधीनस्थों को बराबर के साझेदार समझते हैं। जिन्हें पूरे अधिकार तथा दायित्व सौंपे जाएं।
4. इस प्रणाली में प्रबन्धक से संबधित निर्णय अधीनस्थों के द्वारा स्वयं एक-दूसरे की सलाह से लिए जाते हैं। प्रबन्धक केवल इसमें सलाह देते हैं।
5. उच्च प्रबन्धक केवल समन्वय, निर्देशन तथा सामान्य नियन्त्रण का काम करते हैं।
6. नेत त्व की इस प्रणाली में अधीनस्थ कर्मचारियों का पर्यवेक्षण व नियन्त्रण प्रबन्धकों के द्वारा नहीं बल्कि कर्मचारियों के द्वारा स्वयं किया जाता हैं।
7. इस नेत त्व में अधीनस्थ अपनी-अपनी जिम्मेदारी को कुशलता के साथ पूरा करने के लिए आपस में निरन्तर नियमित विचार-विनिमय कायम रखते हैं। यही नहीं प्रबन्धकों तथा अधीनस्थों के बीच विचारों का आदान-प्रदान खुले रूप में चलता रहता हैं।

स्वतन्त्रात्मक नेत त्व के लाभ
(Advantages)

1. उच्च स्तर के प्रबन्धकों तथा पेशेवर लोगों का अभिप्रेरण करने में यह प्रणाली बहुत सहायक सिद्ध होती हैं क्योंकि उन्हें रूचिकर काम भी मिलता हैं और इस काम को इच्छा के अनुसार बढ़िया करने की स्वतन्त्रता भी होती है।
2. इस नेत त्व में भी संस्था के विकास और विस्तार की अनेक संभावनाएं बन जाती हैं। क्योंकि प्रबन्धक अधीनस्थों की चिन्ता से मुक्त होकर अपना अधिक से अधिक समय इन्हीं कामों में लगा सकते हैं।
3. स्वतन्त्र नेत त्व में अधीनस्थ कर्मचारी अपना काम स्वयं नियोजित व संगठित करते हैं। फलस्वरूप प्रबन्धकों पर उनकी निर्भरता बहुत कम हो जाती हैं।

स्वतन्त्रात्मक नेत त्व के दोष
(Disadvantages)

1. अधीनस्थों के स्वतन्त्र हो जाने पर प्रबन्धकों को इनके कार्यो में तालमेल बैठाना बहुत कठिन हो जाता हैं। क्योंकि कभी-कभी ये व्यक्ति अपने लक्ष्यों की कुशल-पूर्ति के लिए दूसरे व्यक्तियों की लक्ष्य पूर्ति में बाधक बन जाते हैं।
2. इस प्रणाली में प्रबन्धक की स्थिति बेईमानों जैसी हो जाती हैं क्योंकि न तो वह योजना बनाता हैं और न ही कोई नियन्त्रण करता है। उनका काम तो केवल अधीनस्थों की पुकार पर उनका सहायक बनकर खड़े हो जाना है।
3. नेत त्व की यह शैली उच्च स्तर के प्रबन्धकों या पेशेवर लोगों के नेत त्व में तो प्रभावशाली सिद्ध होती है, निम्न स्तर के कर्मचारियों के नेत त्व में नहीं।

उत्पादन प्रेरित नेत त्व
(Production Oriented Leadership)

उत्पादन प्रेरित नेत त्व की यह प्रणाली फीलडर ने प्रस्तुत की। इस प्रणाली के अन्तर्गत काम तथा उत्पादन को अधिक महत्व दिया जाता हैं। उत्पादन बढ़ाने की द ष्टि से सभी आवश्यक कार्य किये जाते हैं। यद्यपि इस प्रणाली में कर्मचारियों को कुछ सुविधाएं भी दी जाती हैं, लेकिन उनका उद्देश्य उत्पादकता एवं उत्पादन बढ़ाना होता हैं। उत्पादन प्रेरित नेत त्व की मुख्य विशेषताएं संक्षेप में निम्नलिखित हैं-

1. नेत त्व की इस शैली में प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों के संबंध संगठन ढाँचे में ढले संबंधों तक सीमित रहते हैं। विचारों व आदेशों का आदान-प्रदान भी उसी श्रंखला में किया जाता हैं, और काम को करने के नियम भी पहले से तय होते हैं।
2. उत्पादन की विधि को सरल तथा प्रमापित बनाया जाता है, काम करने के निश्चित मापदण्ड स्थापित किये जाते हैं, काम करने की दशाओं में सुधार किया जाता हैं और कर्मचारियों को अधिक उत्साह के साथ काम करने के लिए अधिक पारिश्रमिक का लालच भी दिया जाता है।
3. कर्मचारियों की उत्पादकता ऊँची होती है लेकिन उनका मनोबल इतना ऊँचा नहीं होता क्योंकि वे अपने आपको न तो उपक्रम के साथ जोड़ पाते हैं और न प्रबन्धक के साथ।

मानवीय संबंध प्रेरित नेत त्व
(Human Relations Oriented Leadership)

मानवीय संबंध प्रेरित नेत त्व की प्रणाली के अन्तर्गत प्रबन्धक अधीनस्थों का नेत त्व और निर्देशन करते हैं। उसकी सुविधाओं का पूरा ध्यान रखते हैं। उनके सुझावों और विचारों को भी सुना जाता हैं तथा उनकी प्रतिभाओं के विकास के लिए प्रयास किया जाता है। इस नेत त्व की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. इस प्रणाली में कर्मचारियों को, न केवल वर्तमान कार्य से अधिक से अधिक कुशलता के साथ काम करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, अवसर भी दिया जाता हैं।
2. इस शैली में प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को पुरस्कार के लालच से अभिप्रेरित करता है, दण्ड के भय से नहीं। अतः इस प्रणाली में दण्ड़ का भय नहीं होता बल्कि पुरस्कार का लालच अवश्य होता हैं। साथ ही कर्मचारियों के उत्साह और सहयोग को अधिक बनाने के लिए प्रबन्धक उन्हें प्रबन्ध संबंधी निर्णयों में सलाहकार भी बनाता है उनके सुझावों तथा विचारों को ध्यान से सुनता है।
3. इस प्रणाली में कर्मचारियों के साथ मानवोचित व्यवहार करने का सुझाव दिया जाता हैं। इसमें कर्मचारियों की व्यक्तिगत भिन्नताओं को भी समझा जाता है और उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर भी ध्यान दिया जाता है।

प्रबन्धकीय ग्रिड अथवा ढाँचा
(Managerial Grid)

ओहिया स्टेट, मिशिगन तथा लिकॅर्ट के नेत त्व में दो महत्वपूर्ण अवधारणाएं प्रकट हुई थीं- प्रथम, कार्य निष्पादन पर बल तथा द्वितीय वैयक्तिक सम्बन्धों का विकास। रोबर्ट ब्लैक तथा जेन माउटन (Robert R. Blake and Jane S. Mouton) ने इन दोनों विचारों के आधार पर एक प्रबन्धकीय ग्रिड का निर्माण किया है। इस प्रबन्धकीय ग्रिड में निम्न दो घटकों के आधार पर पाँच प्रकार की नेत त्व शैलियों का प्रतिपादन किया गया है-

(a) **उत्पादन (कार्य) पर बल** (Concern for Production or task), **एवं**

(b) **व्यक्तियों (सम्बन्धों) पर बल** (Concern for people or relationships) **।**

इस प्रबन्धकीय ग्रिड को निम्न चित्र दर्शाया गया है।

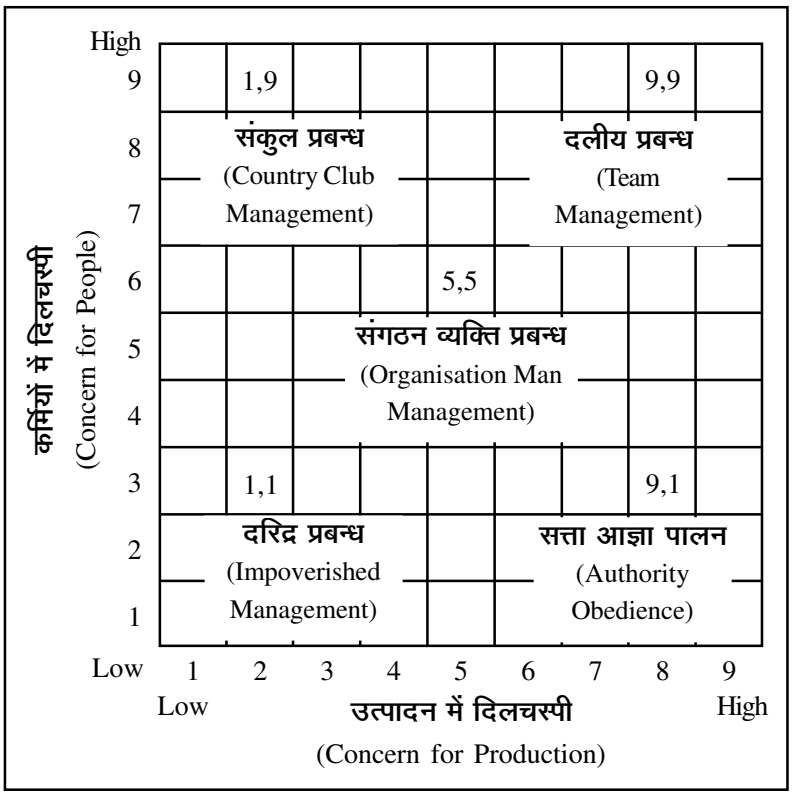

चित्र : ब्लैक एवं माउटन का प्रबन्धकीय ग्रिड

इस प्रबन्धकीय ग्रिड में 'उत्पादन पर बल' को क्षैतिज धुरी पर दर्शाया गया हैं तथा 'व्यक्तियों पर बल' को लम्बवत् रूप में बतलाया गया है। दोनों घटकों के संयोजन से निम्न पाँच प्रकार की नेत त्व शैलियाँ प्रकट होती हैं-

1,1 **दरिद्र प्रबन्ध** (Impoverished Management) - इस नेत त्व शैली में प्रबन्धक व्यक्तियों एवं उत्पादन दोनों पर ही बहुत कम ध्यान देता हैं। वह उत्पादन व द्धि तथा सम्बन्ध विकास के लिए न्यूनतम प्रयास करता है।

9,1 **सत्ता-आज्ञापालन** (Authority-Obedience) - इस नेत त्व शैली में आदेशों व निर्देशों का पालन करवा कर उत्पादन कार्यो में कार्यकुशलता प्राप्त कर ली जाती है, किन्तु मानवीय तत्वों पर न्यूनतम ध्यान दिया जाता हैं। कार्यकुशलता के लिए वैयक्तिक सम्बन्धों की उपेक्षा की जाती है।

1,9 **संकुल प्रबन्ध** (Country Club Management) - इस नेत त्व शैली में प्रबन्धक अपने अधीनस्थों के साथ बहुत ही मित्रवत् सहृदय, मिलनसार, सुखी एवं निश्चित ढंग से रहता है तथा उत्पादन व कार्य-निष्पादन से न्यूनतम सम्बन्ध रखता है। वह अपने कर्मचारियों की आवश्यकताओं पर पूर्ण ध्यान देता है।

5,5 **संगठन व्यक्ति प्रबन्ध** (Organisation Man Management) - इस नेत त्व शैली में प्रबन्धक उत्पादन व कार्य तथा कर्मचारी मनोबल व सन्तुष्टि में एक सन्तुलन बनाये रखता है। वह समझौतावादी (Compromiser) होता हैं, तथा कार्य एवं सम्बन्धों के बीच मध्यम मार्ग अपनाता है।

9,9 **दलीय प्रबन्ध** (Team Management) - इस नेत त्व शैली में प्रबन्धक समर्पित एवं प्रतिबद्ध (Committed) कर्मचारियों के द्वारा उच्चतम उत्पादन के लिए प्रयास करता हैं। यह पारस्परिक विश्वास, आदर तथा अन्तर्निर्भरता की द ष्टि को ध्यान में रखकर अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता हैं।

ब्लैक एवं माउटन अन्तिम नेत त्व शैली, "दलीय प्रबन्ध" को सबसे ज्यादा प्रभावी मानते हैं, क्योंकि इसमें प्रबन्धक उत्पादन एवं सम्बन्ध दोनों ही घटकों पर अधिकतम ध्यान देता है। इस नेत त्व शैली के द्वारा निष्पादन में सुधार, उत्पादन में व द्धि, अनुपस्थिति में कमी, मनोबल व सन्तुष्टि में व द्धि आदि लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। प्रबन्धकीय ग्रिड की विचारधारा का विकास 1960 में किया गया था। संगठन एवं प्रबन्ध विकास कार्यक्रमों, प्रशिक्षण सेमिनारों आदि में इसका बहुत अधिक प्रयोग किया जाता है।

उल्लेखनीय है कि प्रबन्धकीय ग्रिड विचारधारा मनोव त्तिमूलक आयाम (Attitudinal Dimension) प्रस्तुत करती है, जबकि ओहिओ स्टेट मॉडल व्यवहारात्मक विचार (Behavioural concepts) तथा अभिव त्तिमूलक द ष्टि दोनों को ही सम्मिलित करता है।

लिकर्ट की प्रबन्ध नेत त्व प्रणालियाँ अथवा 'नेत त्व प्रक्रिया मॉडल (Likert's Four Systems of Management Leadership or Leadership Process Model) -रेन्सिस लिकर्ट ने अपने पहले किये गये मिशिगन अध्ययनों को आधार बनाते हुए प्रबन्ध नेत त्व के सम्बन्ध में कुछ और विस्त त अध्ययन किये थे। उनका उद्देश्य उच्च उत्पादनशील प्रबन्धकों के नेत त्व के सामान्य प्रारूप का पता लगाना था। लिकर्ट (Likert) ने अपने अध्ययनों में पाया कि संगठनात्मक नेत त्व अथवा प्रबन्ध की शैलियों को अग्र 'चार आधारभूत प्रणालियों में वर्गीक त किया जा सकता है-

(i) **प्रणाली एक-शोषणकारी निरंकुश नेत त्व** (System 1- Exploitive Autocratic Leadership) -शोषणकारी निरंकुश नेत त्व शैली को अपनाने वाले प्रबन्धक के निम्न लक्षण होते हैं-

(a) वह अधीनस्थों में विश्वास एवं भरोसा नहीं रखता हैं।

(b) अधीनस्थों को अपनी कार्य समस्याओं के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने की कोई स्वतन्त्रता नहीं होती है।

(c) वह अपने अधीनस्थों के विचार, राय या सुझाव कभी-कभार (Seldom) ही प्राप्त करता हैं।

(d) लक्ष्यों का निर्धारण एवं निर्णयन केवल उच्च स्तर पर होता हैं।

(e) डर, दण्ड, चेतावनी तथा कभी-कभी शारीरिक एवं सुरक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति के आधार पर अधीनस्थों को कार्य करने के लिए विवश किया जाता है।

(f) नियन्त्रण प्रक्रिया का केन्द्रीयकरण होता है।

(g) ऐसे प्रबन्धक के विरोध में प्रायः अनौपचारिक संगठन विकसित हो जाता है।

(ii) **प्रणाली दो-हितकारी निरंकुश नेत त्व** (System 2-Benevolent Autocratic Leadership)- हितकरी निरंकुश नेत त्व की निम्न प्रमुख विशेषताएँ होती हैं-

(a) प्रबन्धक अपने अधीनस्थों पर केवल क पापूर्वक भरोसा (Condescending trust) करता हैं, जैसे मालिक नौकर पर करता है।

(b) अधीनस्थों को विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता नहीं होती, यद्यपि कभी-कभी प्रबन्धक, स्वयं अपने विचार जान लेता हैं।

(c) अधिकांश निर्णय तो उच्च स्तर पर ही लिये जाते हैं, किन्तु कुछ निर्णय निम्न स्तरों पर भी लेने दिये जाते हैं।

(d) पुरस्कार, वास्तविक दण्ड या भय अभिप्रेरण के साधन होते हैं।

(e) अनौपचारिक समूह भी बनते हैं, किन्तु ये सदैव संगठनात्मक लक्ष्यों के विरोध में नहीं होते।

(iii) **प्रणाली तीन-परामर्शक या सहभागी नेतृत्व** (System 3-Consultative or Participative Leadership)- इस प्रबन्ध प्रणाली के प्रमुख तत्व निम्न हैं-

(a) प्रबन्धक अधीनस्थों पर पर्याप्त भरोसा करता है, किन्तु पूर्ण नहीं। वह निर्णयों पर भी नियन्त्रण रखता है।

(b) कुछ सीमा तक अधीनस्थों को विचार-विमर्श की स्वतन्त्रता होती है। प्रबन्धक अक्सर (Usually) उनकी राय लेता है।

(c) सामान्य नीति एवं निर्णय उच्च स्तर पर लिये जाते हैं जबकि विशिष्ट निर्णयों को लेने की स्वतन्त्रता निचलें स्तरों पर होती है।

(d) सम्प्रेषण एवं अन्तर्व्यवहार द्वितरफा होता है।

(e) अनौपचारिक संगठन या तो प्रबन्ध को सहयोग देते हैं अथवा सीमित विरोध करते हैं।

(iv) **प्रणाली चार-जनतन्त्रीय नेतृत्व** (System 4 -Democratic Leadership)- लिकर्ट के अनुसार जनतन्त्रीय प्रबन्ध में निम्न बातों पर बल दिया जाता है-

(a) प्रबन्धक समस्त मामलों में पूर्ण भरोसा करता है।

(b) अधीनस्थों को विचार-विमर्श की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है।

(c) प्रबन्धक सदैव अपने अधीनस्थों का परामर्श लेकर कार्य करता है।

(d) निर्णयन सम्पूर्ण संगठन में फैला होता है।

(e) सम्प्रेषण क्षैतिज (Sideways) एवं विकर्णीय (Diagonal) भी होता है।

(f) सहभागिता, प्रगाढ़ संबंध, मान्यता, आत्म-विकास के अवसर, मौद्रिक पुरस्कार आदि अभिप्रेरण के साधन होते हैं।

(g) नियन्त्रण का उत्तरदायित्व व्यापक होता है, जिनमें निम्न इकाइयाँ भी सम्मिलित होती हैं।

(h) औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन प्रायः एक ही एवं समरूप होता है।

संक्षेप में, प्रणाली 1 कार्य-अभिमुखी, उच्च रूप से संरचित (Highly Structured) तथा निरंकुश प्रबन्ध शैली है। दूसरी ओर प्रणाली 4 सम्बन्ध-अभिमुखी शैली हैं जो कि पारस्परिक विश्वास, दलीय भावना एवं सन्तुष्टि पर आधारित हैं। इन दोनों अतियों के मध्य प्रणाली 3 व 4 आती हैं जो कि लगभग 'एक्स' एवं 'वाई' विचारधारा के समरूप हैं। रेन्सिस लिकर्ट की प्रणालियों के सातत्य-क्रम (Continuum) को निम्न चित्र के द्वारा समझा जा सकता हैं-

प्रणाली 1	प्रणाली 2	प्रणाली 3	प्रणाली 4
शोषणकारी निरंकुश	हितकारी निरंकुश	परामर्शक जनतंत्रीय	भागीदारी जनतंत्रीय
↓	↓	↓	↓
कार्य-अभिमुखी	'एक्स' विचारधारा	'वाई' विचारधारा	सम्बन्ध-अभिमुखी

चित्र : लिकर्ट की प्रणालियाँ (Likert's System)

लिकर्ट ने यह पाया कि जब नेत त्व शैली प्रबन्ध प्रणाली 4 अथवा 3 के समरूप होती है तो संगठन अत्यन्त प्रभावशाली होता हैं किन्तु जब नेत त्व शैली 1 या 2 प्रबन्ध प्रणाली से मिलती-जुलती होती है तो इकाई का उत्पादन एवं निष्पादन निम्न स्तरीय होता है।

रेन्सिस लिकर्ट ने नेत त्व प्रक्रिया के सम्बन्ध में एक मॉडल भी सुझाया है उनका मत है कि "एक जटिल संगठन में नेत त्व तथा निष्पादन के बीच सम्बन्ध को चल घटकों की तीन व्यापक श्रेणियाँ प्रभावित करती हैं।" ये चल घटक (Variables) निम्नलिखित हैं -

(1) **नेत त्व घटक** (Leadership Variables) - लिकर्ट ने इनको आकस्मिक (Casual) एवं स्वतन्त्र घटक माना है। यद्यपि इनमें संगठन संरचना, प्रबन्ध नीतियाँ, निर्णय आदि शामिल हैं। उन्होंने अपनी प्रबन्ध प्रणालियों में प्रणाली 4 नेता को श्रेष्ठ माना हैं। अतः उनके अनुसार इस नेता प्रबन्धक को निम्न नेत त्व व्यवहार का प्रदर्शन करना चाहिए-

(i) **समर्थनकारी व्यवहार** (Supportive Behaviour) - इसमें कर्मचारियों को समझना, मान्यता देना, प्रशंसा करना तथा उन्हें नवीनतम जानकारी देना शामिल है।

(ii) **पर्यवेक्षण की समूह विधियाँ** (Group Methods of Supervision) - लिकर्ट का मत है कि प्रभावी नेत त्व 'एक-पर-एक' (One-on-One) सम्बन्धों पर आधारित न होकर "समूह-अभिमुखी" होता है।

(iii) **उच्च निष्पादन लक्ष्य** (High Performance Goals) - प्रभावी समूह निष्पादन के लिए एक नेता अपने समूह को उच्च किन्तु यथार्थपूर्ण लक्ष्यों के निर्धारण के लिए प्रेरित करता है।

(iv) **'सम्बद्धकारी पिन कार्य** (Linking Pin Functions) - इस भूमिका में प्रबन्धक सूचनाओं का संग्रहण, सम्प्रेषण एवं समन्वय करते हैं तथा संगठनात्मक इकाइयों को सम्प्रेषण, प्रगाढ़ता (Cohesiveness) एवं श्रेष्ठ निर्णयन के लिए प्रभावित करते हैं।

(2) **मध्यवर्ती घटक** (Intervening Variables) - ये घटक संगठन के आन्तरिक वातावरण को दर्शाते हैं। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं-

i नेता के प्रति अनुकूल अभिव त्तियाँ,

ii स्वतन्त्र सम्प्रेषण, समूह प्रगाढ़ता एवं सहयोग,

iii उच्च अधीनस्थ अभिप्रेरणा,

iv निष्पादन लक्ष्य, निष्ठा, द ष्टिकोण, अवबोध,

v अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध एवं पारस्परिक प्रभाव।

(3) **अन्तिम-परिणाम** (End-Result Variables) - ये निर्भर घटक हैं तथा संगठन के परिणाम हैं। इनमें उच्च उत्पादकता, उच्च कार्य-किस्म, उच्च सेवा व आय तथा निम्न लागत, निम्न आवर्तन दर व अनुपस्थिति तथा निम्न शिकायत दर शामिल हैं।

लिकर्ट का मत हैं कि नेत त्व शैली (आकस्मिक घटक) तथा श्रेष्ठ निष्पादन (अन्तिम परिणाम घटक) में सीधा कोई कारण एवं प्रभाव का सम्बन्ध नहीं हैं। मध्यवर्ती घटकों पर भी विचार किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, प्रबन्ध प्रणाली 1 को अपनाने से लाभों में व द्धि हो सकती है, किन्तु इससे मध्यवर्ती घटकों, जैसे मनोव त्ति, निष्ठा, आदि में गिरावट आती है। कुछ समय पश्चात् इन घटकों के कारण लाभों में कमी आ सकती है। इस प्रकार ऊपरी तौर पर यह लगता है कि प्रणाली 1 के कारण लाभ हो रहे हैं किन्तु इसके दुष्प्रभावों (लाभों में कमी) को प्रकट होने में समय लग सकता है। अतः लिकर्ट के मॉडल में हस्तक्षेप तथा अन्तिम परिणामों पर उसके प्रभाव के बीच जो "समय अन्तराल" (Time Lag) है, वह बहुत महत्वपूर्ण हैं। इस मॉडल को निम्न चित्र के द्वारा समझा जा सकता है-

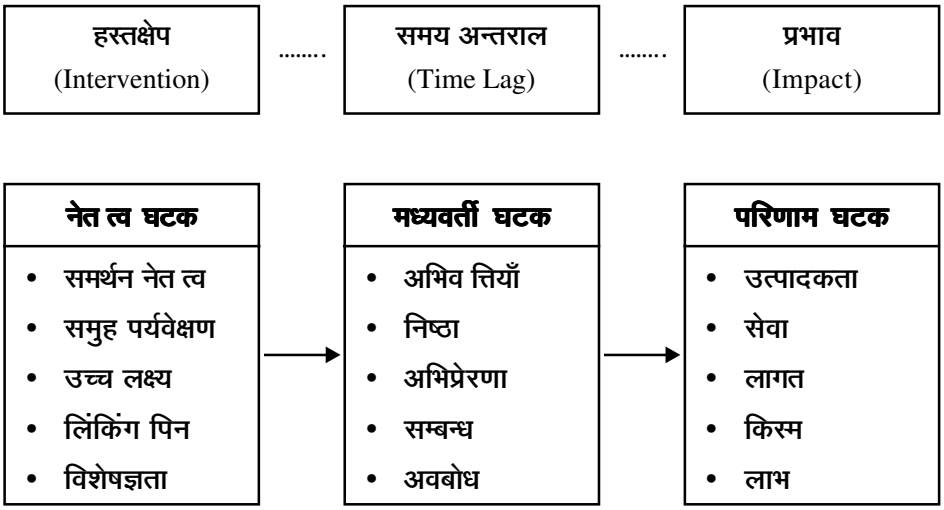

चित्र : लिकर्ट का नेत त्व प्रक्रिया मॉडल

नेत त्व की विचारधाराएं

अथवा

नेत त्व के सिद्धान्त

(Theories or Approaches of Leadership)
or
(Principle of Leadership)

प्रबन्ध में नेत त्व के महत्व को देखकर यह जानना जरूरी है कि संगठन में नेत त्व को कैसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है।इस संबंध में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ लोगों के अनुसार नेत त्व की सफलता उन परिस्थितियों पर निर्भर करती है जिसमें नेत त्व किया जाता है। इसके विपरीत कुछ अन्य विद्वान इसे अनुयायियों की आवश्यकताओं पर आधारित बताते हैं जबकि कुछ अन्य विद्वान इसे नेता के व्यक्तिगत गुण एवं परिस्थितियों का परिणाम बताते हैं। इसमें से कुछ विचारधाराएँ इस प्रकार हैं:-

1. **नेत त्व का गुण मूलक सिद्धान्त (Trait Theory of Leadership)** - 1949 से पूर्व नेत त्व के सभी अध्ययन बड़ी मात्रा में उन चातुर्यो को पहचानने के प्रयास मात्र रहे जो एक नेता में होते हैं। महान व्यक्ति की विचारधारा (नेता जन्म-जात होते हैं, उनको बनाया नहीं जाता) से प्रेरित होकर, प्राचीन ग्रीक एवं रोमन व्यक्तियों ने भूतकाल में यह विश्वास विकसित किया तथा विभिन्न नेताओं के शारीरिक, मानसिक एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेष गुणों के बारे में जांच-पड़ताल की। यह "महान व्यक्ति" की विचारधारा का सिद्धान्त मनोविज्ञान की व्यवहारात्मक शाखा के प्रभाव के बढ़ने के साथ-साथ इसकी मान्यता समाप्त होती गई। व्यवहारात्मक शाखा इस बात पर बल देती थी, कि व्यक्ति जन्मजात प्रतिभा के धनी नहीं होते, उनको उत्तराधिकार में केवल शारीरिक गुण या अच्छे स्वास्थ्य की प्रव त्तियाँ ही मिल पाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार नेत त्व में सफलता प्राप्त करने के लिए एक नेता में अनेक व्यक्तिगत गुणों का होना आवश्यक हैं और जिस व्यक्ति में ये गुण होंगे वह सदैव एक सफल नेता सिद्ध होगा। आर्डवे टीड (Ordway Tead) तथा चेस्टर बर्नार्ड (Chestar Bernard) इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रवर्तक रहे हैं। इन विद्वानों के मतानुसार नेत त्व वास्तव में एक कला है और एक नेता के रूप में सफलता, कुछ गुण एवं विशेषताएँ रखने का परिणाम है। उदाहरणार्थ, टीड़ के मतानुसार नेता वही व्यक्ति हो सकता हैं जिसमें निम्न दस लक्ष्य हैं: (1) शारीरिक शक्ति, (2) उद्देश्य के प्रति

निष्ठा, (3) अपूर्व साहस व लगन, (4) स्नेह व मैत्रीपूर्ण व्यवहार, (5) व्यक्तित्व, (6) तकनीकी दक्षता, (7) शीघ्र निर्णय करने की दक्षता, (8) योग्यता, (9) सिखाने की क्षमता, (10) विश्वास।

चेस्टर बर्नार्ड ने एक सफल नेता में निम्न गुण बताए हैं-

(1) **निर्णायकता** (Decisiveness),

(2) **उत्तरदायित्व** (Responsibility),

(3) **अनुभूति** (Persuasiveness),

(4) **बौद्धिक क्षमता** (Intellectual Capacity),

(5) **स्फूर्ति एवं सहनशीलता** (Vitality and Endurance),

(6) **सामाजिक चेतना** (Social Consciousness),

(7) **अच्छा व्यक्तित्व** (Good Personality)

पीटरसन तथा प्याउमैन (Peterson and Plowman) ने नेत त्व के गुणों को बड़े ही सुन्दर ढंग से निम्न तीन भागों में विभाजित किया है-

(1) **शारीरिक गुण** (Physical Qualities)

(2) **बौद्धिक गुण** (Intellectual Qualities)

(3) **मनोवैज्ञानिक गुण** (Psychological Qualities)

आधुनिक काल में भी इस प्रकार के अध्ययन किए गये हैं। स्टोगडिल (Stogdil) ने पाया कि नेत त्व सम्बन्धी पांच शारीरिक गुण जैसे शक्ति, व्यक्तित्व एवं ऊँचाई, बद्धिमानी एवं योग्यता के चार गुण, व्यक्तित्व सम्बन्धी 6 गुण, जैसे ग्राह्यता, आक्रामकतापूर्ण रूख, उत्साहपूर्णता तथा आत्मसंयम, कार्य सम्बन्धित 6 लक्ष्य, जैसे प्राप्ति की चाह, निरन्तरता एवं पहल करने की भावना तथा 9 सामाजिक लक्ष्य जैसे सहयोगिता, अन्तः व्यक्तिगत चातुर्य तथा प्रशासनीय योग्यता आदि का विभिन्न शोध परिचय कराते हैं।

आलोचना (Criticism) - सामान्यतः नेत त्व की विवेचना में नेता के व्यक्तिगत गुणों का अध्ययन विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ है। सभी नेता सभी गुणों एवं चातुर्य के धनी नहीं होते तथा अनेक व्यक्ति नेता गुणों से विहीन होते हैं। गुण मूलक नेत त्व का सिद्धान्त, न तो नेत त्व के गुणों की कोई पूर्ण और अधिक त सूची प्रदान करता हैं क्योंकि भिन्न-भिन्न लेखक भिन्न-भिन्न गुणों का वर्णन करते हैं और न ही उनके आधार को वैज्ञानिक मान्यता प्रदान करते, क्योंकि नेत त्व के गुणों की पहचान के लिए भिन्न-भिन्न लेखकों ने भिन्न-भिन्न नेताओं का आधार चुना है और उनके गुणों का अपनी बुद्धि से मनमाना विश्लेषण किया है। यह आवश्यक नहीं हैं कि नेत त्व के गुण केवल नेता में ही पाए जाएं। यह भी सम्भव हैं कि बहुत से दूसरे व्यक्ति भी इन गुणों में समान रूप से धनी हों लेकिन अवसर के अभाव में नेता न बन पाए हों। यदि एक बार मान लिया जाए कि नेत त्व की सफलता के लिए कुछ व्यक्तिगत गुण अनिवार्य हैं तो नेत त्व का यह सिद्धान्त यह स्पष्ट नहीं करता कि नेत त्व में सफलता के लिए एक नेता में ये गुण किस-किस मात्रा में उपलब्ध होनें चाहिए।

2. **नेत त्व का परिस्थिति मूलक सिद्धान्त** (Situational Theory of Leadership) - अनेक अध्ययन इस विश्वास को लेकर चले हैं, कि नेत त्व पर उन परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव पड़ता हैं, जिनमें एक नेता उभरा है और जिन परिस्थितियों में उसको संचालन करना पड़ता है। उन परिस्थितियों में उनकी यह विचारधारा सही ही जान पड़ती हैं जिसकी पुष्टि में कुछ उदाहरण हैं, जैसे 1930 के दशक में जर्मनी में हिटलर का उदय हुआ, इससे भी पूर्व इटली में मुसोलनी, नेता के रूप में उभरा तथा 1930 की आर्थिक मन्दी में रूजवेल्ट अमरीका में उदय हुआ और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की अवधि में चीन में माओत-से-तुंग का उदय हुआ। कीथ डेविस (Keith Devis) के शब्दों में, "नेत त्व परिस्थिति-मूलक होता हैं। भिन्न समस्याएं, भिन्न समुदाय एक ही समुदाय में भिन्न-भिन्न विचार, केवल कुछ ऐसे प्रभाव हैं जो भिन्न -भिन्न नेत त्व की माँग करते हैं। एक परिस्थिति में गुणों का यह योग 'ए' (A) में सर्वश्रेष्ठ हो सकता है और दूसरी परिस्थिति में गुणों का यह योग 'बी' (B) में अधिक श्रेष्ठ हो जाता है। कीथ डेविस के अनुसार नेत त्व के चार परिस्थिति

सम्बन्धी चल तत्व हैं- (1) नेता के गुण, (2) अनुयायियों की आवश्यकताएं, (3) समुदाय के उद्देश्य जिनकी प्राप्ति के लिए नेत त्व चाहिए, तथा (4) कार्य का वातावरण जिसमें रहकर काम किया जाएगा।

ओहियो स्टेट विश्वविद्यालय शोध केन्द्र के अनुसार नेत त्व चार परिस्थिति सम्बन्धी तत्वों पर निर्भर करता है-

(1) **सांस्क तिक वातावरण** (Cultural Environment) - अर्थात् समुदाय में काम करने वाले लोगों के द्वारा स्वीकार किए गए सामाजिक व सामान्य विश्वास, मूल्य तथा विचार जो तार्किक विचारों को अव्यावहारिक बना दें।

(2) **भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के बीच अन्तर** (Differences between individuals) - भिन्न-भिन्न उन्मुखताएँ (aptitudes) व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताएँ, शारीरिक विशेषताएँ, रूचियाँ और अभिप्रेरणाएँ, शिक्षा, अनुभव व प्रशिक्षण आदि, भिन्न-भिन्न किस्म के व्यक्ति नेत त्व की माँग कर सकते हैं।

(3) **कार्यो की विभिन्नता** (Differences between Jobs) - भिन्न-भिन्न कार्यो की दशाएँ नेत त्व की भिन्न-भिन्न शैलियों की माँग करती हैं।

(4) **संगठनों की विभिन्नता** (Differences between Organisation) - संगठन अपने आकार, प्रकार, स्वरूप, उद्देश्य, प्रबन्ध प्रणाली के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं और उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के नेत त्व की आवश्यकता पाई जा सकती हैं जैसे एक सैनिक या सरकारी संगठन में व्यावसायिक संगठन में भिन्न प्रकार का नेत त्व आवश्यक होता है।

आलोचना (Criticism) - नेत त्व का परिस्थिति मूलक सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि कार्य प्रेरित या कर्मचारी-संतुष्टि प्रेरित नेत त्व शैलियों में कुछ भी 'सर्वमान्य या सर्वश्रेष्ठ' नहीं हैं। नेत त्व की प्रभावोत्पादकता सामूहिक वातावरण के विभिन्न घटकों पर निर्भर करती हैं। लेकिन यह भी निर्धारित करना सम्भव नहीं हैं कि किस परिस्थिति में कौन-सी नेत त्व की शैली अपनाई जाए, कि सफलता मिल जाए। प्रत्येक व्यक्ति अपने संगठन की आन्तरिक परिस्थितियों से बहुत अधिक सीमा तक प्रभावित होता हैं जो प्रत्येक संगठन में भिन्न-भिन्न हो सकती हैं।

3. **नेत त्व का आकस्मिकता सिद्धान्त** (Contingency Theory of Leadership) - नेत त्व के परिस्थिति मूलक सिद्धान्त से यह निष्कर्ष निकलता हैं कि नेत त्व में कोई भी शैली (Style) सभी परिस्थितियों में सफल नहीं हो सकती। इस द ष्टिकोण के आधर पर फीडलर (Feidler) ने आकस्मिकता की विचारधारा का सुझाव दिया। फीडलर के अनुसार नेत त्व की प्रभावशीलता न केवल नेता के व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करती है बल्कि संगठन में नेत त्व के बने वातावरण पर भी बहुत कुछ निर्भर करती है। समुदाय की कार्य सफलता नेत त्व शैली और नेता के लिए सामूहिक परिस्थिति के अनुकूल स्थिति के उचित मिलान पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में नेत त्व एक प्रक्रिया हैं जिसमें नेता के प्रभाव का प्रयोग करने की योग्यता, सामूहिक कार्यगत परिस्थितियों में निर्भर होती हैं तथा नेता की अपनी शैली, व्यक्तिगत और द ष्टि समूह को क्रियाशील रखती है। इस द ष्टि से हमें नेता की शैली और विभिन्न स्थिति की जानकारी होनी चाहिए।

फीडलर ने नेत त्व की शैलियों को दो वर्गो में बाँटा हैं- उत्पादन-प्रेरित शैली तथा मानवीय सम्बन्ध प्रेरित शैली। उत्पादन प्रेरित शैली के अन्तर्गत अधीनस्थों के काम का संरक्षण व निर्देशन इस प्रकार से किया जाता हैं जिससे कार्य तथा द ष्टिकोण को अधिक महत्व मिलता हैं, जबकि मानवीय सम्बन्ध प्रेरित शैली में मानवीय व्यवहार पर अधिक ध्यान दिया जाता हैं। प्रबन्धक कर्मचारियों को अभिप्रेरित करता है उनका सहयोग और विश्वास प्राप्त करता हैं।

फीडलर ने नेत त्व की परिस्थितियों को प्रभावित करने वाले निम्न तीन तत्व बताए हैं-

(1) **पद की शक्ति** (Position Power) - पद की शक्ति किसी नेता को उस पद पर आसीन होने के कारण संगठनात्मक अधिकार के अन्तर्गत प्राप्त होती है। इस शक्ति के आधार पर एक नेता अपने अनुयायियों को निश्चित निर्देशों के अनुसार कार्य करने के लिए विवश एवं बाध्य कर सकता है।

(2) **कार्य संरचना** (Task Structure) - फीडलर के अनुसार कार्य संरचना सुनिश्चित तथा अनिश्चित हो सकती है। सुनिश्चित कार्य संरचना में कार्य का वर्गीकरण व विभाजन स्पष्ट तथा आसानी से होता है जबकि अनिश्चित कार्य संरचना के कार्य का वर्गीकरण स्पष्ट नहीं होता, जिसके कारण किसी निश्चित व्यक्ति को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

(3) **नेता-सदस्य सम्बन्ध** (Leader- member relations) - नेता तथा सदस्यों के बीच सहयोग, विश्वास और समझ की क्या स्थिति हैं ? यह तथ्य परिस्थिति को प्रभावित करता है और कार्य-शैली पर भी इसका प्रभाव पड़ता हैं।

(4) **नेतृत्व का व्यवहारिक सिद्धान्त** (The Behavioural Approach) - नेतृत्व की इस विचारधारा के प्रवर्त्तक आर॰ ए॰ किलियन (Ray. A. Killian) हैं। उनके अनुसार, "एक नेता मूल रूप से चाहे निर्णय लेने वाला हो, समस्याओं का समाधान करने वाला हो, परामर्शदाता हो, सूचना प्रदान करने वाला हो या नियोजक हो, उसे अपने अनुयायियों के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। आदर्श आचरण अर्थात् अच्छे व्यवहार के अभाव में वह कभी भी सफल नेता नहीं बन सकता। अतः यह विचारधारा नेता के आचरण या व्यवहार को सबसे अधिक महत्व देती है। यदि नेता स्वयं अनुशासन में नहीं रहता और वह अपने अनुयायियों से अनुशासन में रहने की आशा करता है तो उसकी यह आशा व्यर्थ है। उदाहरणार्थ, यदि एक व्यक्ति स्वयं शराबी है और वह अपने अनुयायियों से यह आशा करे कि वे शराब का सेवन न करें तो उसकी यह आशा निराधार होगी। अतः किसी नेता का सफलता की मूल्यांकन उसके व्यवहार का विश्लेषण करके किया जा सकता है।

अध्याय–16
संगठनात्मक संघर्ष
(Organisational Conflict)

संघर्ष, मतभेद एवं विवाद प्रत्येक संगठन का हिस्सा होते हैं। कोई भी संस्था संघर्षो का पूर्णतः निराकरण नहीं कर सकती। किन्तु आधुनिक प्रबन्धकों का संघर्ष के प्रति द ष्टिकोण बदलता जा रहा है। परम्परावादी प्रबन्धक संघर्ष को संगठन के लिए घातक एवं विनाशकारी मानते थे लेकिन आधुनिक प्रबन्धकों का द ष्टिकोण यह है कि संगठन में संघर्ष को टालने या दबाने से कोई समस्या हल नहीं होती है। उनकी मान्यता हैं कि संगठनात्मक संघर्ष को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करके उसका रचनात्मक उपयोग किया जाना चाहिए।

संघर्ष संगठन के अस्तित्व के साथ जुड़े हैं। मनोवैज्ञानिकों का मत हैं कि जो शक्ति संघर्षो के निपटारे में व्यय होती है, उससे तो संघर्षो का सकारात्मक उपयोग करके वातावरण को स्वस्थ बनाया जा सकता है। संगठन में परिवर्तन, अन्तर्व्यवहार एवं सक्रियता की द ष्टि से भी संघर्षात्मक स्थिति को एक सीमा तक स्वीकार किया जाने लगा हैं।

संगठनात्मक संघर्ष का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and definition of Organisational Conflict)

संघर्ष दो पक्षकारों के मध्य हितों, विचारों एवं द ष्टिकोण की टकराहट हैं। संघर्ष एक विवाद की स्थिति है, जिसके फलस्वरूप अन्तर्वैयक्तिक व्यवहारों में परिवर्तन आ जाता है। संघर्ष विरोधी विचारों मूल्यों, हितों या लक्ष्यों के कारण उत्पन्न होता हैं। यह व्यक्तियों, समूहों अथवा संगठन में पाये जाने वाले विरोध, तनाव, मनमुटाव विघ्न, टकराव की स्थिति है। स्वार्थ, स्वहित तथा हितों की भिन्नता संघर्ष का मूल कारण है।

संघर्ष के साथ सकारात्मक और नकारात्मक पहलू जुड़े हुए होते हैं। जब संघर्ष संगठनात्मक लक्ष्यों एवं कार्य निष्पादन में सुधार लाने के पक्ष में होता हैं तो इसे सकारात्मक संघर्ष कहते हैं। किन्तु यदि संघर्ष के कारण संगठनात्मक लक्ष्यों में बाधा आती है तो इसे अस्वस्थ संघर्ष कहते हैं।

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार, "संघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न व्यक्ति अथवा समूह अपने विरोधियों को अपने शक्ति परीक्षण अथवा हिंसा द्वारा अथवा हिंसा की धमकी देकर स्व-लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।"

जोसेफ रिट्ज (H. Joseph Ritz) के अनुसार, "एक संगठन के अन्दर संघर्ष को सामान्य कार्य-संचालन में बाधा, रूकावट एवं व्यवधान के रूप में वर्णित किया जाता है, जिसके फलस्वरूप, व्यक्तियों एवं समूहों को सामूहिक रूप से कार्य करने में कठिनाई अनुभव होती है।"

डेविड आर॰ हैम्पटन (David R.. Hampton) के शब्दों में, "संघर्ष हम उस व्यवहार को कहते हैं जो दो या दो से अधिक पक्षकारों के इस कारण से विरोधी स्थिति ग्रहण करने पर उत्पन्न होता है कि एक पक्षकार की कार्यवाही में दूसरा पक्षकार अपने आपको तुलनात्मक वचन की स्थिति में अनुभव करता है।"

संघर्ष के प्रकार या रूप
(Types or Forms of Conflict)

संघर्ष की उत्पत्ति विभिन्न स्तरों और विभिन्न रूपों में हो सकती हैं। संघर्ष की निम्न श्रेणियाँ पाई जा सकती हैं-

1. **व्यक्ति के भीतर संघर्ष** (Conflict within an Individual) - व्यक्ति के भीतर संघर्ष को व्यक्तिपरक संघर्ष (Intra personal Conflict) भी कहते हैं। यह एक व्यक्ति के भीतर चलने वाला उसके अन्तर्मन का संघर्ष है। मूल रूप से इसकी उत्पत्ति स्वयं के लिए लक्ष्य का चुनाव करने और प्रत्याशित भूमिका का निर्वाह करने को लेकर हो सकती है। इसके निम्न दो प्रमुख प्रकार हैं:-

   (अ) **लक्ष्य संघर्ष** (Goal Conflict) - व्यक्ति के भीतर लक्ष्य संघर्ष तब उत्पन्न होता हैं जब उसके सामने दो या दो से अधिक लक्ष्यों में से किसी एक को चुनने की समस्या होती है। ये लक्ष्य परस्पर विरोधी प्रक ति के किन्तु लगभग समान प्रभाव उत्पन्न करने वाले होते हैं। लक्ष्य से सम्बन्धित संघर्ष के तीन रूप हो सकते है:-

   (a) **साद श्य-साद श्य संघर्ष** :- जब किसी व्यक्ति को दो या दो से अधिक सकारात्मक लक्ष्यों में से किसी एक का चयन करना पड़ता है तब इस प्रकार का संघर्ष उत्पन्न होता है क्योंकि उसे एक लक्ष्य की पूर्ति के लिए दूसरे लक्ष्य का परित्याग करना पड़ता है।

   (b) **साद श्य-परिवर्जन संघर्ष** :- इसमें यद्यपि लक्ष्य तो एक ही होता हैं, लेकिन उसके साथ सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू जुड़े रहते हैं। जैसे एक व्यक्ति पदोन्नति का विकल्प स्वीकार करना चाहता है लेकिन वह इसके लिए दूसरे स्थान पर जाने का इच्छुक नहीं होता। ये स्थिति उसके भीतर संघर्ष उत्पन्न कर देती है।

   (c) **परिवर्जन-परिवर्जन स्थिति** :- इस स्थिति में व्यक्ति को दो प्रतिकूल विकल्पों में से किसी एक का चुनाव करना पड़ता है। जैसे शोरगुल वाले संयंत्र में कार्य करने अथवा कम्पनी के अत्याधिक दूर स्थित संयंत्र में कार्य करने के विकल्प में से किसी एक का चयन करना।

   (ब) **भूमिका संघर्ष** (Role Conflict) - जब व्यक्ति का व्यवहार उसकी भूमिका से जुड़ी अपेक्षाओं के अनुरूप न हो तो व्यक्ति के भीतर भूमिका को लेकर संघर्ष उत्पन्न हो जाता हैं। इस संघर्ष के निम्न कारण होते हैं।

   (i) व्यक्ति को अपने कार्यो एवं उत्तरदायित्वों के बारे में स्पष्ट ज्ञान न होना।

   (ii) संगठन में किसी पद विशेष से परस्पर विरोधी अपेक्षाएँ रखना।

   (iii) व्यक्ति का महत्वाकांक्षी अथवा भावुक व्यक्तित्व।

   (iv) व्यक्ति को अपनी योग्यता एवं गुणों के अनुरूप कार्य न मिलना।

   (v) अपनी रूचि व पसन्द के अनुसार कार्य न मिलना।

   (vi) कार्य वितरण, अधिकार-सत्ता व उत्तरदायित्वों को लेकर उत्पन्न होने वाली असन्तुष्टि।

   लक्ष्य एवं भूमिका रूपी संघर्ष के अतिरिक्त भी यदि कर्मचारी संस्था की नीतियों विशेषतः सेविवर्गीय नीतियों से असन्तुष्ट है तो व्यक्ति आन्तरिक संघर्ष का शिकार हो जाता है।

2. **व्यक्तियों के बीच संघर्ष** (Interpersonal Conflict) - इसे अन्तर्वैयक्तिक संघर्ष कहा जाता है। ये संघर्ष दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य होने वाली अन्तःक्रियाओं के कारण होते हैं। यह संघर्ष उच्चाधिकारी व अधीनस्थों, क्रियात्मक विशेषज्ञों, पेशेवर कार्मिकों के बीच होने वाले अन्तर्व्यवहार से सम्बन्धित हैं। चूंकि एक संगठन में विभिन्न व्यक्तियों के बीच लम्बवत् समतलीय तथा विकर्णीय सम्बन्ध पाये जाते हैं और इसी रूप में उनके बीच अन्तःक्रियाएँ चलती हैं अतः इन संघर्षो को निम्न श्रेणियों में रख सकते हैं:-

   i **लम्बवत् संघर्ष** - ये उच्चाधिकारी एवं अधीनस्थों के बीच चलते हैं।

ii **समतलीय संघर्ष** - ये समान संगठनात्मक स्तर पर कार्यरत व्यक्तियों के बीच होते हैं।

iii **विकर्णीय संघर्ष** - ये दो भिन्न स्तरों पर कार्यरत व्यक्तियों के बीच होते हैं, लेकिन इनके बीच प्रत्यक्षतः उच्चाधिकारी अधीनस्थ सम्बन्ध नहीं पाये जाते हैं। ऐसे संघर्ष व्यक्तियों की प्रक ति एवं संगठनात्मक स्थितियों के कारण उत्पन्न होते हैं।

अन्तर्वैयक्तिक संघर्ष के प्रमुख कारण निम्न हैः-

(i) अन्तर्व्यवहार में व्यक्तियों की भावनाएँ आहत होना।

(ii) व्यक्तियों की प्रतिष्ठा एवं आत्म-सम्मान को धक्का पहुँचना।

(iii) व्यक्तियों के स्वभावों में विरोध पाया जाना।

(iv) भिन्न-भिन्न अहम् स्थितियों से अन्तर्व्यवहार होना।

(v) मूल्यों, उद्देश्यों, विश्वासों एवं सामाजिक-सांस्क तिक प ष्ठभूमि की भिन्नता।

(vi) व्यक्तियों के सोचने समझने एवं व्यवहार करने के ढंग में अन्तर होना।

3. **व्यक्ति और समूह के बीच संघर्ष** (Conflict between an Individual and a Group) - किसी व्यक्ति और समह के बीच संघर्ष तब उत्पन्न होते हैं जब वह व्यक्ति अपने समूह के मानदण्डों को पूरा करने में असमर्थ रहता है। जब कोई व्यक्ति समूहगत उत्पादकता के मानदण्ड़ों से अधिक या कम निष्पादन करता है तब उस पर समूह का दबाव पड़ता है। मानदण्डों से कम उत्पादन करने पर समूह व्यक्ति को दण्ड़ित भी कर सकता है। ऐसी दशा में समूह और व्यक्ति के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त समूह के लक्ष्यों, आदर्शों, निश्चित नियमों, कार्य-अपेक्षाओं आदि की अवहेलना की दशा में भी समूह और व्यक्ति के बीच संघर्ष चलता रहता है।

4. **समूहों के बीच संघर्ष** (Conflict between Groups) - जब एक ही समूह में विभिन्न व्यक्तियों के मध्य संघर्ष होता हैं तो वह दो प्रकार का होता है- प्रथम - एक ही समूह में विभिन्न व्यक्तियों के मध्य संघर्ष, इसे अन्तर्वैयक्तिक संघर्ष कहते हैं। द्वितीय - विभिन्न समूहों के बीच संघर्ष होना, जिसे अन्तर्समूह संघर्ष कहा जाता है। समूहगत संघर्ष निम्न कारणों से हो सकता हैः-

i समूहों के लक्ष्यों व साधनों में भिन्नता एवं अस्पष्टता।

ii सीमित साधनों व पारितोषिकों के लिए प्रतिस्पर्धा।

iii समूहों के नियमों व आदर्शो की भिन्नता।

iv समूहों के कार्यो में परस्पर निर्भरता।

v समूहों के वातावरणों, सदस्य-आदतों, जीवन-शैलियों आदि में तीव्र भिन्नता।

vi व्यक्तिगत पसन्द, ईर्ष्या-द्वेष, अहंकार आदि।

vii अधिकार सत्ताओं, भूमिकाओं व सम्प्रेषण प्रतिमानों में विसंगतियाँ।

5. **संगठनात्मक संघर्ष** (Organisational Conflict) - व्यक्तियों व समूहों के बीच होने वाले संघर्ष तथा व्यक्ति व समूहों के संघर्ष एवं अन्तर्समूहों के संघर्ष को संगठनात्मक संघर्ष के नाम से जाना जाता है। एक संगठन में व्यक्तियों पर कई संगठनात्मक संघर्षो का दबाव पड़ता है। संगठनात्मक संघर्ष को संरचना की द ष्टि से निम्न पाँच श्रेणियों में बाँटा जा सकता हैः-

i **पदानुक्रम संघर्ष** (Hierarchical Conflict) :- इस प्रकार के संघर्ष किसी संगठन के विभिन्न स्तरों के बीच पाये जाते हैं, जैसे संचालक मण्डल और उच्च प्रबन्ध के बीच संघर्ष, मध्य-स्तरीय प्रबन्ध और निम्न-स्तरीय प्रबन्ध के बीच संघर्ष, प्रबन्धकों एवं श्रमिकों के बीच संघर्ष आदि।

ii **कार्यात्मक संघर्ष** (Functional Conflict) :- यह संघर्ष विभिन्न विभागों आदि के बीच चलता है।

iii **रेखा-स्टाफ संघर्ष** (Line-Staff Conflict) :- ऐसा संघर्ष जो रेखा व विशेषज्ञों के बीच पद, प्रतिष्ठा अधिकार,

भूमिकाओं, सत्ता व संगठन स्थिति आदि मुद्दों को लेकर उत्पन्न होता है। यह संघर्ष उनकी भूमिकाओं व द ष्टिकोण में आपसी टकराव के कारण उत्पन्न होता है।

iv **औपचारिक-अनौपचारिक संघर्ष** (Formal-Informal Conflict) :- संगठन में जो संघर्ष औपचारिक व अनौपचारिक समूहों के बीच पाया जाता है जो निष्पादन मानदण्ड़ों लक्ष्यों, कार्यशैलियों आदि में मेल न होने के कारण होता है।

v **संगठनों के बीच संघर्ष** (Conflict between Organisations) :- विभिन्न संगठनों के बीच आर्थिक, तकनीकी प्रबन्धकीय एवं अन्य मुद्दों को लेकर टकराव हो जाता है। प्रायः ऐसा संघर्ष प्रतियोगिता की वजह से होता है। यह संघर्ष निर्बाध अर्थव्यवस्था का अनिवार्य परिणाम है। संगठनों के बीच प्रतियोगिता रूपी संघर्ष होने के कारण नई-नई वस्तुओं किस्म, डिजाइनों आदि की खोज होती है, प्रौद्योगिकी का विकास होता है, कीमतों में कमी आती है तथा मानवीय व अन्य संसाधनों का श्रेष्ठतर उपयोग सम्भव होता है।

संघर्ष के स्त्रोत या कारण
(Sources of Conflict)

संघर्ष कई कारणों से उत्पन्न होता है जिनका वर्णन इस प्रकार हैः-

1 **सीमित साधनों के लिए प्रतियोगिता** - संगठन में साधन सीमित होते हैं। विशिष्ट ज्ञान की आपूर्ति भी दुर्लभ होती है। संगठन में कार्यरत सभी व्यक्ति एवं विभाग इन साधनों की माँग करते हैं और उसके लिए प्रबन्ध पर दबाव बनाते है। ये दबाव ही धीरे-धीरे संघर्ष का रूप धारण कर लेते हैं। यह अन्तर्समूह संघर्ष कहलाता है।

2 **क्रियाओं की अन्तर्निर्भरता** - आधुनिक संगठन की प्रक ति एवं कार्य प्रणाली अत्यन्त जटिल होती है। बड़ी संख्या में कर्मचारियों के कार्यरत रहने तथा विभिन्न विभागों के एक दूसरे पर निर्भर होने के कारण वे एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। यह परस्पराश्रितता की स्थिति ही विभागों व व्यक्तियों के बीच संघर्ष को प्रेरित करती है। थामसन ने संगठन मे तीन अन्तर्निर्भरताओं का उल्लेख किया है- सामूहिक अन्तर्निर्भरता, क्रमिक अन्तर्निर्भरता, एवं पारस्परिक अन्तर्निर्भरता, इसके कारण संस्था में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है।

3 **लक्ष्यों में अन्तर होना** - व्यक्तियों उनके समूहों, विभागों तथा संगठन के लक्ष्यों में अन्तर होता है। हितों की यह भिन्नता संघर्ष को जन्म देती है। लक्ष्यों की भिन्नता के कारण उत्पन्न होने वाला संघर्ष बुरी प्रक ति का होता है व न केवल कर्मचारियों अपितु ग्राहकों व बाहरी पक्षों पर भी पड़ता है।

4 **मूल्यों व धारणाओं की भिन्नता** - संगठन में कार्यरत व्यक्तियों व प्रबन्धकों के मूल्य, विश्वास, मत व द ष्टिकोण में अन्तर पाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी मान्यताएँ व धारणाएँ होती हैं जिससे दूसरों की उपेक्षा करने से संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए, प्रथम पंक्ति पर्यवेक्षक सामाजिक एवं लोचपूर्ण नीति को चाहते हैं जबकि अन्य प्रबन्धक दीर्घकालीन नीति को प्राथमिकता देते हैं। इंजीनियरिंग विभाग वस्तु की किस्म एवं डिजाइन को महत्व देता है, जबकि उत्पादन विभाग लागत पर बल देता है। युवा प्रबन्धक नैत्यक कार्य सौंपे जाने पर असन्तोष व्यक्त करते हैं जबकि अनुभवी प्रबन्धक ऐसे कार्यो को भी उनके प्रशिक्षण का एक भाग मानते हैं।

5 **पद-प्रतिष्ठा सम्बन्धी भिन्नताएँ** - संगठन संरचना में प्रत्येक व्यक्ति की पद स्थिति अलग होती है। इस पद स्थिति के अनुसार ही कर्मचारियों को उनके अधिकार, दायित्व, सम्मान व सुविधाएं प्रदान की जाती हैं, उनमें भिन्नता भी कभी-कभी संघर्ष का कारण बन जाती हैं।

6 **गुणों व नेत त्व शैली की भिन्नता** - व्यक्तिक गुणों एवं कार्यशैलियों में भिन्नता भी संघर्ष का कारण बनती है। जैसे जो व्यक्ति स्वायत्तता, पहलपन एवं जनतान्त्रिक मूल्यों में विश्वास रखते हैं उनकी टकराहट अधिनायक नेत त्व शैली में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों से होती है। स्व-मान्यताएँ भी संघर्ष का कारण हैं। कुछ व्यक्ति संघर्ष का आनन्द लेते हैं और जब इन्हें नियन्त्रण में रखा जाता है तो हल्का विवाद संगठन सदस्यों को प्रोत्साहित करता है और उनके निष्पादन को उन्नत बनाता है। सामान्यतः अन्तर्समूह संघर्ष की सम्भावनायें उस समय सर्वोच्च रहती हैं जब समूह-सदस्य कार्य-प्रव त्तियों, उम्र एवं शिक्षा सम्बन्धी मामलों में भिन्नताएं लिये होते हैं।

7 **भिन्न क्षेत्राधिकार** - संगठन में व्यक्तियों प्रबन्धकों एवं कार्यात्मक विभागों के क्षेत्राधिकार भिन्न-भिन्न होते हैं। इनकी टकराहट से अन्तर्विभागीय संघर्ष उत्पन्न हो जाता है।

8 **दोषपूर्ण सम्प्रेषण** - जब संचार की व्यवस्था अपर्याप्त एवं दोषपूर्ण होती है तो समन्वय की समस्या उत्पन्न हो जाती है। गलत सम्प्रेषण से भ्रम, सन्देह एवं विवाद उत्पन्न हो जाते है जो कि संघर्ष का कारण बन जाते हैं।

9 **कार्य के लक्षणों एवं प्रक ति में अन्तर** - विभिन्न कार्यो की विशिष्टताओं के कारण उनकी प्रक्रिया एवं प्रक ति भिन्न हो जाती है। जिससे उनकी निष्पादन कार्यदशाओं एवं कार्यप्रणाली में अन्तर होता हैं। इससे भी अनेक अवसरों पर टकराहट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

10 **संगठन संरचना की अस्पष्टता** - संगठन में कार्यो का उचित बँटवारा न होने, सत्ता सम्बन्धों को परिभाषित न करने, क्षेत्राधिकार, दायित्वों, भूमिकाओं एवं नियन्त्रण के क्षेत्र को ठीक से निर्धारित न करने, कार्य की जरूरत अनुसार केन्द्रीयकरण व विकेन्द्रीयकरण न करने, नियन्त्रण का विस्तार अधिक होने, विभागीयकरण संरचना दूषित होने आदि के कारण भी संघर्षो की उत्पत्ति होती है।

11 **स्वाभाविक तत्व** - कुछ सीमा तक संघर्ष संगठनात्मक ताने - बाने का अनिवार्य हिस्सा होता है। मानवीय स्वभाव, कार्य निष्पादन की स्वाभाविक प्रक्रिया आदि के कारण भी संगठन में संघर्ष एक सहज एवं प्राक तिक क्रिया के रूप में उत्पन्न होता रहता है। बिना मतभेद, विवाद व टकराहट के किसी भी प्रणाली का संचालन नहीं होता।

संघर्ष की प्रक्रिया एवं स्तर
(Process and Levels of Conflict)

संगठन में संघर्ष कई रूपों में पाया जाता हैं। कभी संघर्ष सूक्ष्म रूप में तो कभी गम्भीर रूप में देखने को मिलता है। प्रत्येक संघर्ष बीज के रूप में अंकुरित होकर धीरे-धीरे व क्ष बनकर सामने आता है। संघर्ष के उत्पन्न होने से लेकर उसकी समाप्ति तक की विभिन्न अवस्थाएँ 'संघर्ष की प्रक्रिया' के नाम से जानी जाती हैं। संक्षेप में इनका वर्णन इस प्रकार है:-

1. **अव्यक्त संघर्ष** (Latent Conflict) :- संघर्ष प्रक्रिया का प्रथम चरण अव्यक्त होता है। इस अवस्था में सम्बद्ध व्यक्तियों, समूहों अथवा विभागों के बीच भ्रामक धारणाएँ घर कर जाती हैं। दोनो पक्ष अविश्वासपूर्ण और विरोधी व्यवहार संरचनायें अपनाने लगते है। संघर्ष के इस स्तर पर वर्तमान संघर्ष से पहले यदि कोई संघर्ष हुआ हो तो उसके परिणाम भी प्रभाव डालते हैं। इस अवस्था में संघर्ष बीज रूप में होता है। अतः यदि प्रबन्धक या दोनों पक्ष स्पष्ट संचार एवं प्रत्यक्ष भेंट कर पारस्परिक गलत फहमियों को दूर करने का प्रयास करें तो ऐसे संघर्ष को तुरन्त दूर किया जा सकता है।

2. **संघर्ष की अनुभूति** (Perceiving Conflict) :- इस चरण में संघर्ष व्यक्ति के मस्तिष्क तक सीमित होता है। इसमें संघर्ष में अन्तर्ग्रस्त पक्षकार संघर्ष का स्पष्ट आभास कर लेते हैं। वे स्व-हितों की रक्षा के लिए संघर्ष के कारणों, प्रभावों एवं परिणामों पर विचार करने लगते हैं। उनके मस्तिष्क में संघर्ष के उपाय एवं समाधान के प्रेरक चक्कर काटने लगते हैं। इस स्तर पर संघर्ष को कम या समाप्त करने के लिए समझौते और विवेक का प्रयोग वांछनीय माना जाता है।

3. **व्यवहार में अनुभव करना** (Feeling Conflict in Behaviour) :- इस चरण में संघर्ष मस्तिष्क से आगे बढ़कर व्यवहार एवं आचरण में अनुभव होने लगता है। अन्तर्ग्रस्त पक्षकार यह अनुभव करने लगता है कि उसके हितों, पद-प्रतिष्ठा, कार्य-सुविधाओं आदि पर चोट की जा रही है। इस चरण में पक्षकारों का व्यवहार परस्पर आक्रामक हो जाता है। वे संघर्ष की तीव्रता एवं उसके प्रभावों को महसूस करने लगते है। इस अवस्था में भी सकारात्मक द ष्टिकोण अपना कर संघर्ष के नकारात्मक प्रभावों को उत्पन्न होने से रोका जा सकता है।

4. **संघर्ष व्यक्त हो जाना** (Manifesting Conflict) :- इस अवस्था में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। पक्षकार स्व-उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एक-दूसरे को हानि पहुँचाने का प्रयास करते हैं। मौखिक, लिखित बल प्रयोग, अथवा विक त व्यवहार के रूप में 'संघर्ष' भावनाओं एवं व्यवहारों से प्रकट होने लगता है। उदाहरणार्थ हड़ताल, तोड़फोड़, घेराव, हिंसा, वेतन कटौती, दुर्भावनापूर्ण छँटनी निष्कासन, अनुशासनात्मक कार्यवाही आदि संघर्ष की अभिव्यक्तियाँ हैं। इस अवस्था में तीसरे पक्षकार की सहायता या सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से संघर्ष के समाधान का प्रयास किया जाता हैं।

5. **संघर्ष परिणाम** (Conflict After math) :- यह संघर्ष प्रक्रिया का अन्तिम चरण है। इस चरण में यदि संघर्ष को दबा दिया जाता हैं तो यह समाप्त नहीं होता, वरन् आगामी संघर्ष की प ष्ठभूमि तैयार कर देता है। इसके विपरीत, यदि संघर्ष को आपसी समझौते द्वारा सुलझा लिया जाता है तो संघर्ष की स्थिति आपसी सहयोग एवं सामंजस्य में बदल जाती हैं। दोनों पक्षकार निर्भार होकर शान्ति अनुभव करने लगते हैं।

संघर्ष समाधान की तकनीकें/उपाय
(Techniques/ Measures of Conflict Resolution)

संघर्ष समाधान के लिए प्रयुक्त विभिन्न तकनीकों में से कुछ निम्नलिखित हैं:-

1. **समस्या का मुकाबला** :- इस तकनीक में समस्या का मुकाबला करके उसका हल निकाला जा सकता है। इसमें एक-दूसरें के द ष्टिकोण में समायोजन लाने के स्थान पर समस्या पर सीधे चोट की जाती है। इसमे इस बात पर विचार नहीं किया जाता कि कौन पक्षकार सही है व कौन गलत, किसकी हार होगी और किसकी जीत। वास्तव में इसमें तथ्यों का विश्लेषण करके यह कोशिश की जाती है कि संघर्ष को समाप्त किया जाए व उसका स्थायी हल खोजा जाए।

2. **साधनों का विस्तार** (Expansion of Resources) :- कई बार संघर्ष का कारण सीमित साधनों के लिए प्रतियोगिता होता हैं। अतः ऐसी दशा में साधनों व सुविधाओं का विस्तार करके संघर्ष को समाप्त किया जा सकता है।

3. **परिवर्जन** (Avoidance) :- कई बार गम्भीर एवं खतरनाक संघर्षो को टालने की नीति के द्वारा समाप्त किया जा सकता है किन्तु यह संघर्ष को समाप्त करने का कारगर साधन नहीं है।

4. **शान्त करना** (Smoothing) :- इस विधि में दोनों पक्षकारों के समक्ष सामान्य हित की बातों को उभारा जाता है और मतभेद के बिन्दुओं को दबाने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार सामान्य हित के बिन्दुओं पर कोई न कोई समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

5. **समझौता करना** (Compromising) :- संघर्ष के पक्षकारों द्वारा स्वयं या बाह्य हस्तक्षेप या दबाव अथवा पंचनिर्णय या सौदेबाजी के माध्यम से समझौता किया जाता है। समझौते में प्रत्येक पक्षकार को कुछ न कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर समर्पण करना पड़ता है। इसमें हार-जीत नहीं होती।

6. **सत्तावादी निर्देशन** (Authoritative order) :- एक उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को आदेश-निर्देश प्रदान करके संघर्ष को हल कर सकता है। यद्यपि इस विधि के द्वारा भी समस्याओं का निपटारा नहीं होता है, केवल कुछ समय के लिए ही समस्याएँ टल जाती है।

7. **मानसिक परिवर्तन** (Mental Change) :- कई बार प्रबन्धक संघर्ष के पक्षकारों के विचारों, द ष्टिकोण, मान्यताओं, विश्वास व मूल्यों में परिवर्तन करके भी संघर्ष को हल कर सकते है।

8. **संगठन संरचना में परिवर्तन** (Change in Organisational Structure) :- कभी-कभी संरचनात्मक तत्व में दोष होने के कारण भी संघर्ष उत्पन्न होते है। अतः संगठन संरचना में सुधार करके जैसे अधिक सत्ता प्रदान करके, उत्तरदायित्व का निर्धारण करके, कार्य स्वायत्तता प्रदान करके अथवा विकेन्द्रीयकरण, उपयुक्त प्रत्यायोजन, कार्यो व भूमिकाओं की व्याख्या, क्षेत्राधिकार के निर्धारण, विभागीय सीमाओं का स्पष्टीकरण आदि के द्वारा भी अन्तर्समूह संघर्ष को समाप्त किया जा सकता है।

9. **परमकोटिक लक्ष्यों का निर्धारण** (Setting superordinate goals) :- परमकोटिक लक्ष्य ऐसे अतिमूल्यवान लक्ष्य हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए विभिन्न पक्षों के समर्थन और सहयोग की आवश्यकता पड़ती है, जैसे संगठन के अस्तित्व का प्रश्न। यह उद्देश्य सर्वमान्य एवं अन्तर्निर्भरता से जुड़ा हुआ है अतः जब संगठन में अस्तित्व का प्रश्न अहम बन जाता है तो संगठन में हड़ताल उत्पादन बाधा, काम रोको जैसी घटनाएं आमतौर पर वापिस ले ली जाती हैं क्योंकि संगठन की रक्षा करना सभी संघर्षरत पक्षकारों का परमकोटि लक्ष्य होता है अतः कर्मचारियों को उनके परमकोटि लक्ष्यों का बोध करवाकर भी संघर्ष को रोका जा सकता है।

10. **अन्य विधियाँ** (Other Methods) :- संघर्ष समाधान की कुछ विधियाँ निम्न प्रकार की हैः-
    (i) वैयक्तिक एवं सामूहिक सम्बन्धों के विकास के लिए उपयुक्त शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
    (ii) सूचना व सम्प्रेषण प्रणाली मे सुधार करना।
    (iii) निष्पादन के लिए उच्च स्तरीय लक्ष्यों का निर्धारण करना।
    (iv) रचनात्मक एवं नये विचारों को प्रोत्साहन देना।
    (v) विशेषज्ञों से परामर्श एवं सेवाएं लेना।
    (vi) कार्य नियमों, नीतियों एवं सामान्य कानूनों का निर्धारण करना।

संघर्ष समाधान के अभिगम
(Approaches to conflict Relationship)

संगठन में संघर्ष को सदैव के लिए समाप्त कर पाना सम्भव नहीं है। प्रबन्धको को किसी न किसी संघर्ष का सामना अवश्य करना पड़ता है। यदि संघर्ष समाधान की दिशा में प्रबन्धक संघर्ष का उपयुक्त वर्गीकरण एवं विश्लेषण कर लें तो उसका रचनात्मक हल खोज लेना आसान होता है। प्रबन्धक संघर्ष को हल करने के लिए विभिन्न अभिगमों (Approaches) का एक मैट्रिक्स (Matrix) द्वारा विश्लेषण करके समाधान का उचित मार्ग निर्धारित कर सकते हैं। यह मैट्रिक्स निम्नलिखित दो प्रश्नों के आधार पर तैयार की जा सकती हैः-

(i) क्या संघर्ष के पक्षकारों में क्रिया विधि से प्राप्त होने वाले उद्देश्यों के सम्बन्ध में सहमति है या असहमति ?

(ii) क्रिया विधि से प्राप्त परिणामों के सम्बन्ध में निश्चितता या अनिश्चितता कितनी है।

उपर्युक्त दोनो का निर्धारण निम्न मैट्रिक्स की सहायता से करके उपयुक्त हल का चयन किया जा सकता हैं। संघर्ष का समाधान करने के लिए निम्न अभिगमों एवं स्थितियों का विश्लेषण किया जा सकता हैः-

1. **कार्यक्रम** :- जब संघर्ष के पक्षकार किसी क्रिया-विधि से प्राप्त होने वाले उद्देश्यों के सम्बनध में सहमत हो और साथ-साथ जब क्रिया विधि से प्राप्त होने वाले परिणाम भी निश्चित हों तो ऐसी दशा में संघर्ष का समाधान सुगमता से खोजा जा सकता है। इस स्थिति में यह माना जा सकता हैं कि सारा संघर्ष किसी गलतफहमी के कारण उत्पन्न हुआ है। अतः सही तथ्य पक्षकारों के सामने प्रस्तुत करने पर पक्षकार उचित बात को स्वीकार कर सकते हैं। ऐसी दशा में एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार संघर्ष का समाधान खोजा जा सकता है।

2. **विवेक प्रयोग** :- दूसरी स्थिति वह है कि जिसमें संघर्ष के पक्षकार उद्देश्यों के सम्बन्ध में सहमत तो होते है लेकिन क्रिया-विधि से प्राप्त होने वाले परिणामों के सम्बन्ध में अनिश्चितता की स्थिति है। यह प्रथम से थोड़ी जटिल स्थिति है। यहाँ पक्षकार विवेकी तो अवश्य है परन्तु उनमें इस बात के सम्बन्ध में सहमति नहीं है कि विभिन्न उपलब्ध विकल्पों में से कौन सा विकल्प श्रेष्ठ रहेगा।

   अतः इस दशा में उपलब्ध विकल्पों का ठीक से मूल्यांकन करके परीक्षण के तौर पर किसी एक विकल्प का चयन किया जा सकता है। इसके बाद उपलब्ध परिणामों तथा अनुभव के आधार पर किसी श्रेष्ठतम विकल्प का चयन किया जा सकता है। यहाँ विवेक के आधार पर समाधान की खोज की जाती है। आवश्यक होने पर विशेषज्ञो से परामर्श प्राप्त किया जा सकता है।

3. **सौदेबाजी** :- तीसरी स्थिति में संघर्ष के पक्षकार उद्देश्यों के सम्बन्ध में असहमति रखते है लेकिन क्रिया-विधि से प्राप्त होने वाले परिणामों के सम्बन्ध में निश्चितता है। इस प्रकार के संघर्ष काफी जटिल होते हैं। प्रबन्ध एवं श्रम-संघों के विचार सामान्यतः इसी श्रेणी में आते हैं। दोनों ही पक्षकार यह जानते हैं कि माँग पत्र में वर्णित माँगों के स्वीकार करने के परिणाम क्या होगें। उनमें उद्देश्यों के सम्बन्ध में असहमति होती है। इस स्थिति में सघंर्ष को सौदेबाजी या पंचनिर्णय के द्वारा ही हल किया जा सकता है।

4. **किसी तरह पार लगाना** :- यह स्थिति सबसे जटिल होती है। यह पूर्णतः अव्यवस्था की स्थिति है। इसमें न उद्देश्यों

के सम्बन्ध में सहमति होती है और न ही परिणामों की निश्चितता। इस प्रकार के संघर्षों में किसी प्रकार से पार लगने का प्रयास किया जाता है। इस स्थिति में एक विकल्प पर थोड़ा कार्य किया जाता है, परिणामों का विश्लेषण किया जाता है। और फिर यदि आशानुकूल स्थिति न रहे तो उसे बीच में ही छोड़कर दूसरे विकल्प की ओर बढ़ना पड़ सकता है। यह स्थिति अंधेरे में रास्ता तलाश करने जैसी है, वह भी ऐसी दशा में जब उन्हें न तो अपने गन्तव्य का पता होता है न ही यह मालूम होता है कि कौन - सा रास्ता कहाँ ले जाता है।

संघर्ष की विचारधाराएँ अथवा विभिन्न दर्शन
(Different Theories of Philosophies of Conflict)

संघर्ष के सम्बन्ध में अलग-अलग समय पर अलग-अलग विचारधाराएँ प्रचलित रही हैं। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अनुसार इन्हें क्रमशः परम्परावादी, व्यवहारवादी और अन्तर्क्रियावादी विचारधाराओं के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक की विवेचना निम्न प्रकार हैः-

1. **परम्परावादी विचारधारा** (Traditional Philosophy) :- इस विचारधारा का प्रचलन 1890 से लेकर 1940 के मध्य रहा। इस समय में उद्योगों में वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन का गहन प्रभाव था। इस अवधारणा के कारण उद्योगों में उत्पादकता व श्रमिकों की कार्यकुशलता को बढ़ाने पर जोर दिया जा रहा था। कार्य प्रमापों, कार्य-समय, कार्य-नियम व कार्य-तकनीकों के निर्धारण पर विशेष बल दिया जा रहा था। श्रमिकों की वैज्ञानिक भर्ती, चयन एवं कार्य के वैज्ञानिक मानदण्डों के निर्धारण पर विशेष जोर दिया गया था। प्रबन्धक केवल उत्पादन बढाने में उत्सुक थे। वे श्रमिकों के हितो को गौण मानते थे। वे श्रमिकों के कार्य, लक्ष्यों, उपकरणों, कार्यप्रणाली पर कड़ा नियन्त्रण रखते थे। स्वभावतः प्रबन्धकों व श्रमिकों के बीच संघर्ष बढ़ता गया।

   मान्यताएँ:- संघर्ष के सम्बन्ध में इस विचारधारा की प्रमुख मान्यताएँ निम्न हैं -

   (i) 'संघर्ष' संगठन के हित की द ष्टि से अवांछनीय, विघ्नकारी एवं हानिकारक होता है। अतः संघर्ष को येन-केन-प्रकारेण समाप्त करने पर बल दिया जाता है।

   (ii) यह विचारधारा 'संघर्ष' को नकारात्मक द ष्टि से देखती है और इसे हिंसा, अशान्ति, उपद्रव, विनाश, उत्पादन में बाधा एवं सम्बन्धों के बिगाड़ के रूप में देखती है।

   (iii) संघर्ष इस बात का सूचक होता है कि संघर्ष की कार्यप्रणाली या कर्मचारियों में कहीं कोई कमी है। प्रबन्धक कर्मचारियों और संगठन के हितों को जोड़ने में असफल रहे है। वे कर्मचारियों को यह समझाने में असफल रहे हैं कि उनके तथा संगठन के हितों में समानता है।

   (iv) प्रत्यायोजन का अभाव, सत्ता का अस्पष्ट विभाजन, लक्ष्यों, कार्यो व भूमिकाओं की अस्पष्टता, कार्मिकों की अकार्यकुशलता, कार्यो का सही वितरण न होना, कार्य नियोजन का अभाव आदि 'संघर्ष' के प्रमुख कारण माने जाते है।

   (v) प्रबन्धक यदि संगठन के दोषों को दूर कर लें तथा अपनी कमियों में सुधार कर ले तो संघर्ष की उत्पत्ति नहीं होगी। जैसा कि वैज्ञानिक प्रबन्ध के जनक टेलर का मानना था कि यदि वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों को समुचित ढंग से लागू किया जाए तो श्रमिकों व प्रबन्धकों के बीच संघर्ष स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे।

   (vi) इस विचारधारा के अनुसार संघर्ष को सरल तरीकों से समाप्त किया जा सकता है। तरीके हैं- उपयुक्त कार्मिकों का चयन, कार्य का सही वितरण, प्रशिक्षण, कार्मिकों की योग्यता व कुशलता में व द्धि, सविस्तार कार्य-वितरण, सत्ता का समुचित प्रत्यायोजन, पुरस्कार व दण्ड व्यवस्था आदि।

   (vii) यह विचारधारा सकारात्मक और नकारात्मक संघर्षो के बीच कोई अन्तर नहीं करती है।

2. **व्यवहारवादी विचारधारा** (Behavioural Philosophy) :- इस विचारधारा का विकास प्रबन्ध में व्यवहारवाद के साथ हुआ। व्यवहारवादी वैज्ञानिक मानते हैं कि चूँकि संगठन व्यक्तियों से मिलकर बनता है और व्यक्तियों के द ष्टिकोण, विश्वास, धारणा, लक्ष्यों व मूल्यों तथा विचारों में सदैव अन्तर होता है, वे एक-जैसे नहीं होते। अतः संघर्ष की उत्पत्ति

स्वाभाविक है। जैसे विभिन्न विभागीय प्रबन्धकों में लक्ष्यों की प्राथमिकता या संसाधनों के आबंटन के बारे में विरोधी विचार हो सकते है। इसी प्रकार अधीनस्थों एवं उच्चाधिकारियों के बीच भी सत्ता वितरण, कार्य आबंटन, या किसी प्रस्तावित परियोजना को लेकर विवाद हो सकता है। यह विचारधारा 1930 से लेकर 1980 तक के वर्षो में अधिक प्रभावशील रही थी।

मान्यताएँ- इस विचारधारा की निम्न मान्यताएँ हैं :

(i) इस विचारधारा की मान्यता है कि संघर्ष की उत्पत्ति स्वाभाविक और तर्कसंगत घटना है। संघर्ष प्रत्येक संगठन के अपरिहार्य अंग होते हैं जो उसके ताने-बाने में बुने रहते है। अतः इन्हें स्वीकार किया जाना चाहिए।

(ii) संघर्ष सदैव हानिप्रद नहीं होता।

(iii) संघर्ष कुछ मामलों में समस्याओं को उजागर भी करता है और उनका समुचित हल ढूँढने की प्रेरणा देता है।

(iv) इस विचारधारा के अनुसार यद्यपि संघर्ष की भूमिका किन्हीं दशाओं में रचनात्मक हो सकती है और इससे सदैव ही हानि हो यह जरूरी नहीं है, तथापि यह संघर्ष को नकारात्मक द ष्टि से ही देखती है। कुल मिलाकर यह विचारधारा संघर्ष को हानिकारक ही मानती है।

(v) इस विचारधारा के अनुसार व्यक्ति वास्तव में अच्छे होते हैं और वे समुचित प्रकार से सहयोग भी देना चाहते हैं, लेकिन दोषपूर्ण नीतियों, त्रुटिपूर्ण संगठन संरचना एवं सम्प्रेषण व्यवस्था के दोषों के कारण लोगों में विक त समझ एवं आक्रामकता उत्पन्न होती हैं और संघर्ष जाग त होता है।

(vi) जैसे ही संघर्षो का उदय होता है, इन्हें दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

परम्परावादी और व्यवहारवादी दोनों ही दर्शनों की एक बड़ी कमी यह रही हैं कि वे संगठन के हित में सकारात्मक संघर्ष की उपयोगिता को नहीं पहचान सके। पिछले कुछ दशकों से संगठनात्मक संघर्ष के सम्बन्ध में प्रबन्धशास्त्रियों के द ष्टिकोण में परिवर्तन आया है। संघर्ष के प्रति इस बदलते हुए द ष्टिकोण के कारण एक नई विचारधारा का विकास हुआ हैं जिसे अन्तर्क्रियावादी विचारधारा के नाम से जाना जाता है।

3. **अन्तर्क्रियावादी विचारधारा** (Interactionist Philosophy) :- संघर्ष की यह विचारधारा एक आधुनिक विचारधारा है। यह संघर्ष की अन्य विचारधाराओं से पूर्णतः भिन्न है।

मान्यताएँ- इसकी मुख्य मान्यताएँ निम्नांकित हैं-

(i) किसी भी संगठन में क्रियात्मक संघर्ष नितान्त आवश्यक होता है।

(ii) इसे संगठन में स्वीकार ही नहीं, वरन् प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया जाना चाहिए।

(iii) संघर्षो का उचित प्रकार से नियमन होना चाहिए ताकि वे नियन्त्रण के परे न हो जाएं, अन्यथा उनके घातक दुष्परिणाम निकल सकते है।

(iv) संघर्ष के प्रबन्ध में संघर्ष के निराकरण एवं प्रोत्साहन दोनो पर ही ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

(v) इस विचारधारा के अनुसार लोगों में आक्रामकता और प्रतियोगिता की भावना सहज रूप में होती है और संगठनात्मक पारितोषिकों जैसे पद, उत्तरदायित्व, सत्ता आदि की सीमितता होती हैं, अतः संगठनात्मक संघर्ष उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

(vi) समूहों को सक्रिय रखने तथा उन्हें नव परिवर्तनों का सामना करने के योग्य बनाने के लिए संघर्ष का एक न्यूनतम स्तर बनाये रखना आवश्यक होता है।

(vii) इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध का उद्देश्य प्रभावपूर्ण ढंग से लक्ष्यों की प्राप्ति है न कि शान्तिपूर्ण या सहयोगात्मक वातावरण का स जन करना। अतः प्रबन्ध का कार्य, किसी कार्य को घटाना या इसे समाप्त करना नहीं है, बल्कि इसे तरह से प्रबन्धित करना है जिससे कि इसके साथ जुड़े लाभकारी परिणामों को अधिकतम किया जा सके और हानिप्रद परिणामों को न्यूनतम किया जा सके।

(viii) यह विचारधारा मानती हैं कि जब संगठन में संघर्ष के अभाव में रचनात्मकता और नवप्रवर्तनशीलता का मार्ग

अवरूद्ध हो जाए एवं इसके कारण अनुकूलतम निष्पादन-स्तर की प्राप्ति कठिन हो जाए तो संघर्ष को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

(ix) इस विचारधारा के अनुसार संघर्ष परिवर्तनों को जन्म देता है और परिवर्तन के कारण संगठन का रूपान्तर होता हैं जिससे उत्तरजीविता (Survival) की प्राप्ति होती है।

(x) 'उत्तरजीविता' प्रत्येक संगठन का मुख्य ध्येय होता और इस प्रकार संघर्ष को किसी भी संगठन के जीवन का आवश्यक अंग माना जाना चाहिए।

(xi) संघर्ष का प्रबन्ध करना सभी स्तर के प्रबन्धकों का प्रमुख उत्तरदायित्व होता है।

इस विचारधारा को निम्न चित्र के द्वारा समझा जा सकता हैं :

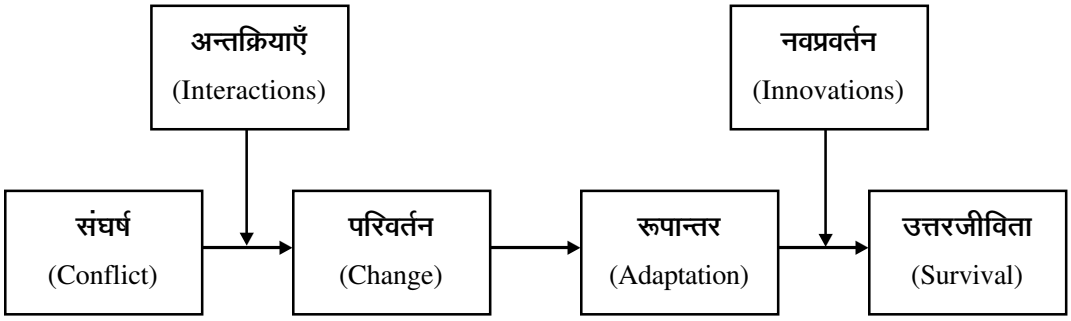

संघर्ष की अन्तर्क्रियावादी विचारधारा

इस विचारधारा के अनुसार 'संघर्ष' अन्तर्क्रियाओं को बढ़ाता है। इससे नये मत, नये विचार एवं नये परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। परिवर्तन के कारण संगठन में रूपान्तर, समायोजन एवं नवप्रवर्तनों की शक्ति आती है और इससे संगठन की उत्तरजीविता बढ़ती है।

संघर्ष के बारे में पुरातन एवं नवीन विचार :

जेम्स स्टोनर एवं चार्ल्स वेंकल ने संघर्ष के पुरातन एवं नवीन दर्शन को निम्न प्रकार प्रकट किया है-

पुरातन विचार	आधुनिक विचार
1. संघर्ष से बचना चाहिए। यह हानिप्रद है।	1. संघर्ष अपरिहार्य है।
2. संगठनात्मक संरचना की रूपरेखा बनाने में और संगठन को प्रबन्धित करने में दोषों के कारण संघर्ष उत्पन्न होते हैं।	2. संघर्ष की उत्पत्ति कई कारणों से होती है, जैसे संगठनात्मक संरचना में त्रुटि, लक्ष्यों में भिन्नता, लोगों के विचार व बोध में भिन्नता।
3. संघर्ष संगठन को अस्त-व्यस्त कर देता है, और अनुकूलतम निष्पादन के मार्ग में बाधाएँ खड़ी करता है।	3. संघर्ष के कारण संगठनात्मक निष्पादन के मार्ग में सदैव बाधा खड़ी नहीं होती। कुछ मामलों में इसके कारण निष्पादन सुधरता भी है।
4. प्रबन्ध का कार्य संघर्ष को दूर करना, इसे समाप्त करना है।	4. प्रबन्ध का कार्य संघर्ष के स्तर को प्रबन्धित करना है जिससे कि अनुकूलतम निष्पादन की प्राप्ति हो सके।
5. संगठन में अनुकूलतम निष्पादन के लिए संघर्षो की समाप्ति आवश्यक है।	5. संगठन में अनुकूलतम निष्पादन के लिए संघर्षो का सन्तुलित स्तर बनाए रखना आवश्यक हैं।

संघर्ष के क्रियागत एवं दुष्क्रियागत पहलू (Functional and dyfunctional aspects) :- आधुनिक अवधारणा के अनुसार संघर्ष संगठन के लिए कई प्रकार से उपयोगी हैं। यह संगठन का एक स्वाभाविक एवं अनिवार्य हिस्सा है। किन्तु एक लम्बे समय से संघर्ष को संगठन के लिए अवांछनीय, विध्वंसकारी और अराजकता फैलाने वाला माना जाता रहा है। यह मान्यता रही हैं संघर्षो लोगों के व्यवहार को आक्रामक एवं विक त बनाता है, लोगों में कुण्ठा, नैराश्य एवं टकराव को जन्म देता है, यह लोगों के बोध, समझ एवं विचारों को विक त करता है और उनके बीच विचार-विनिमय में बाधा खड़ी करता है। इससे कर्मचारियों के बीच सामाजिक दूरी व तनाव बढ़ता है। संशय, अविश्वास एवं असहयोग का वातावरण बनता है। फलतः लोगों का व्यवहार एवं गतिविधियाँ विनाशकारी हो सकती हैं। इस प्रकार संघर्ष समूचे संगठन में अव्यवस्था, अराजकता, लक्ष्य विचलन एवं निम्न उत्पादकता का कारण बन जाता है।

लेकिन दूसरी ओर, संघर्ष के कुछ सकारात्मक पहलू भी है। अन्तर्क्रियावादी विचारकों ने सर्वप्रथम संघर्ष के सकारात्मक एवं क्रियात्मक पहलुओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है। उनके अनुसार संघर्ष व्यक्ति, समूह तथा सम्पूर्ण संगठन के लिए एक उपयोगी साधन भी बन सकता है। संघर्ष के कुछ रचनात्मक पहलू निम्नांकित हैं :

(i) संघर्ष व्यक्तियों को अपने व्यवहार का पुनर्मूल्यांकन करने एवं उसमें सुधार करने का अवसर देता है।

(ii) यह व्यक्तियों को परिवर्तनों व चुनौतियों को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है।

(iii) यह संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक सन्तुलित स्तर पर आवश्यक होता है।

(iv) यह व्यक्तियों को अपनी कुशलताओं, क्षमताओं व योग्यताओं के दुरूपयोग के प्रति जागरूक बनाता है।

(v) यह संगठन में आपसी टकराव के नये मतों, विचारों, द ष्टिकोणों की उत्पत्ति होने में सहायक होता है।

(vi) यह परिवर्तनों को प्रेरित करता है।

(vii) यह संगठन की समायोजन क्षमता, अनुकूलन योग्यता एवं उत्तरजीविता में व द्धि करता है।

अध्याय–17
अन्तर्वैयक्तिक एवं संगठनात्मक सम्प्रेषण
(Interpersonal and Organisational Communication)

प्रबन्ध का कार्य प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों को कार्यान्वित करवाना है। 'प्रबन्ध' उपक्रम की वह जीवनदायिनी शक्ति है जो संगठन को शक्ति प्रदान करती हैं, संचालित करती है तथा उसे नियन्त्रण में रखती है। अतः सम्प्रेषण के माध्यम से प्रबन्ध अपने सभी कार्यो को पूरा करवाती है। चेस्टर बर्नार्ड लिखते हैं कि "प्रबन्धक का प्रथम कार्य एक सम्प्रेषण प्रणाली का विकास करना तथा उसे बनाए रखना है।" प्रत्येक प्रबन्धक को एक सम्प्रेषक होना चाहिए क्योंकि प्रबन्धक अपने समय का 90 प्रतिशत अंश सम्प्रेषण करने में ही व्यतीत करते हैं। उनका प्रत्येक दिन आदेशों, निर्देशों, वार्तालाप, निवेदन, प्रतिवेदन, विवेचन, सभाओं, अफवाहों आदि से भरा होता है। अतः कार्य के सुचारू संचालन के लिए सम्प्रेषण अनिवार्य हो जाता है। सम्प्रेषण प्रत्येक संगठन के अस्तित्व का आधार है। जब तक प्रबन्ध, प्रशासकों की नीतियों को संगठन के उस तन्त्र तक न पहुंचाए जो उनको वास्तव में कार्यान्वित करेगा तब तक नियत लक्ष्यों की प्राप्ति करना असम्भव है। जिस प्रकार बिना विद्युत शक्ति के बिजली के पंखे, ट्यूब लाईट आदि सब व्यर्थ हैं उसी प्रकार बिना सन्देशवाहन के सामग्री, मशीन, श्रमिक आदि सभी निष्क्रय रहते हैं। सन्देशवाहन की महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं :-

1. चार्ल्स ई॰ रेडफील्ड के अनुसार, "सन्देशवाहन से तात्पर्य उस व्यापक क्षेत्र से है जिसके माध्यम से मानव तथ्यों एवं सम्पत्तियों का आदान-प्रदान करते हैं। टेलीफोन, तार, रेडियो अथवा इसी प्रकार के तकनीकी साधन सन्देशवाहन नहीं है।"
2. मैगिनसन के शब्दों में, "सम्प्रेषण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को विचारों अथवा सूचना के रूप में 'अर्थ' प्रेषित करने की प्रक्रिया है।"
3. कीथ डेविस के अनुसार, "सम्प्रेषण प्रक्रिया है जिसमें सन्देश और समझ को एक से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाया जाता है।"
4. फ्रेड जी॰ मायर के अनुसार, "सन्देशवाहन शब्दों, पत्रों अथवा सूचना, विचारों, सम्पत्तियों का आदान-प्रदान करने का समागमन है।"
5. विलियम ग्लूक के अनुसार, "संगठनात्मक सम्प्रेषण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रबन्धक संगठन के भीतर व्यक्तियों को तथा संगठन के बाहर वांछनीय व्यक्तियों व संस्थाओं को व्यवस्थित रूप से सूचना देते हैं तथा 'अर्थ' का संचरण करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कह सकते हैं कि सम्प्रेषण एक सतत् एवं गतिशील प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक व्यक्ति अपने विचारों, भावनाओं, सूचनाओं व तथ्यों के साथ-साथ समान अर्थ व समझ का विनिमय करते हैं।

सम्प्रेषण की प्रक ति या विशेषताएँ
(Nature or Characteristics of Communication)

1. सम्प्रेषण का अर्थ दो व्यक्तियों के बीच विचारों, सन्देशों, मतों, आदेशों या अपेक्षाओं का विचार-विनिमय करना है।
2. यह मानवीय अन्तर्व्यवहार की एक व्यवस्थित, सतत् एवं गतिशील प्रक्रिया है।

3. सम्प्रेषण के लिए दो व्यक्तियों का होना आवश्यक है, क्योंकि कोई एक व्यक्ति अपने आपसे सम्प्रेषण नहीं कर सकता।
4. यह दो मस्तिष्कों के बीच समझ का पुल है।
5. प्रायः सम्प्रेषण लिखित अथा मौखिक शब्दों में ही किया जाता है, लेकिन यह सांकेतिक भी हो सकता है जैसे प्रबन्धक के द्वारा मेज में लगी घण्टी बजाकर बाहर बैठे चपरासी को बुलाना।
6. सम्प्रेषण स्मरण शक्तियों की प्रतिध्वनि, प्रत्युत्तर तथा दोहराने की एक प्रक्रिया है।
7. यह बहुआयामी है।
8. सम्प्रेषण प्रबन्धकीय कार्यो का आधार तथा संगठन के अस्तित्व का सार तत्व है।
9. सम्प्रेषण विचारों का प्रतिरोपण है।

सन्देशवाहन के तत्व या अंग
(Elements of Components of Communication)

सम्प्रेषण को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है। यह प्रक्रिया अनेक तत्वों से मिलकर बनती है। सम्प्रेषण के मुख्य तत्व निम्न प्रकार हैं :-

1. **प्रेषक या सन्देशवाहक** (Sender) :- सन्देशवाहन की प्रक्रिया में कम से कम दो व्यक्ति अवश्य होने चाहिए। सम्प्रेषक वह व्यक्ति है जिसके द्वारा सन्देश या आदेश दिया जाता है एक व्यक्ति जो बोलता है, लिखता है अथवा कुछ उपदेश देता है वह उस सन्देश का प्रेषक होता है। इसका उद्देश्य सन्देश प्रापक को अपने विचार बतलाना, उसमें उनकी समझ पैदा करना, और उसके व्यवहार को अनुकूल दिशा में मोड़ना है।
2. **सन्देश** (Message) :- स्त्रोत (व्यक्ति) के द्वारा अर्थ को संदेश के रूप में लिपिबद्ध किया जाता है। संदेश सम्प्रेषण की विषय-सामग्री होती है। यदि कोई सन्देश न हो तो कोई सम्प्रेषक नहीं हो सकता। यह किसी विचार, सूचना या संवाद के रूप में होता है जो संदेश प्राप्तकर्ता को भेजा जाता है। सन्देश बहुत स्पष्ट होना चाहिए ताकि यह ग्रहणकर्ता के द्वारा सही ढंग से समझा जा सके क्योंकि उसी ने इसके अनुसार कार्य करना है। यह कथित या लिखित शब्दों, संकेत या अंकित आदि के रूप में हो सकता है।
3. **सन्देश प्रापक** (Receiver of message) :- सन्देश प्राप्त करने वाला व्यक्ति सन्देश प्रापक कहलाता है। सम्प्रेषक प्रक्रिया तब पूरी होती है जब सन्देश प्रेषक द्वारा प्रेषित सन्देश, सन्देश प्रापक को प्राप्त हो जाता है।
4. **सन्देशवाहन मार्ग या श्रंखला** (Communication channel) :- वह व्यक्ति जो सन्देशवाहन करने का इच्छुक होता है, उसे आवश्यक सूचना या विचारों को भेजने के लिए किसी श्रंखला का चुनाव करना पड़ता है। इन सूचनाओं को प्राप्तकर्ता के पास किसी विशेष माध्यम के द्वारा सम्प्रेषित किया जाता है। यह मार्ग औपचारिक भी हो सकता है या अनौपचारिक भी। इसके लिए किसी भी माध्यम लिखित, मौखिक टेलीफोन, सूचनापट्ट आदि का प्रयोग किया जा सकता है।
5. **चिन्ह** (Symbol) :- सन्देशवाहन की विषय-वस्तु सैद्धान्तिक तथा अमूर्त होने के कारण इसको आगे भेजने के लिए कुछ चिन्हों जैसे शब्दों, क्रियाओं अथवा चित्रों इत्यादि का प्रयोग करना पड़ता है। विषय वस्तु को इन चिन्हों में परिवर्तित करना सन्देशबद्धता प्रक्रिया है। वह व्यक्ति जो प्रेषक से सन्देश या चिन्ह प्राप्त करता है, उन्हें इस प्रकार से परिवर्तित करता है जिससे वह उसका अर्थ उसी तरह से निकाल सके जिस प्रकार से उसे समझाया गया है। इस क्रिया को सन्देशवाहन (Decoding) कहा जाता है।

सन्देशवाहन की प्रक्रिया
(Process of Communication)

कीथ डेविस (Keith Davis) के अनुसार सम्प्रेषण की प्रक्रिया में 6 अवस्थाएँ शामिल हैं। इन अवस्थाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :-

1. **विचार की स ष्टि** (Ideation) :- सन्देशवाहन की प्रक्रिया का प्रारम्भ किसी ऐसे विचार की उत्पत्ति से होता है जिसे हम दूसरे व्यक्ति को भेजने के इच्छुक हों। इस सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण है कि अपने विचार को सही ढंग से प्रस्तुत करने के लिए सर्वप्रथम सन्देश प्रेषक को उसी समय ही स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए तथा इसकी स्पष्ट, संक्षिप्त रचना कर लेनी चाहिए।

2. **सन्देशबद्धता** (Encoding) :- यह निर्णय हो जाने के बाद कि क्या संदेश दूसरे व्यक्ति को भेजा जाना है, उस संदेश को निश्चित चिन्हों में बदलना पड़ता है। संदेश मौखिक, लिखित या विभिन्न संकेतों के माध्यम से दिया जा सकता है। संकेत कैसे दिए जाएँगे, हमें अपने संदेश को उचित संकेतों या चिन्हों में परिवर्तित कर लेना चाहिए। अनेक संदेश गोपनीय होते हैं। इन सन्देशों को प्रायः सांकेतिक भाषा के माध्यम से देखा जा सकता है।

3. **सन्देश का प्रेषण** (Transmission of Message) :- जब सन्देश को लिपिबद्ध कर सांकेतिक भाषा में परिवर्तित कर लिया जाए तो निश्चित व्यक्ति को संदेश भेजने की व्यवस्था करनी पड़ती है। इसके लिए उचित माध्यम का उपयोग करना पड़ता है। मौखिक तथा लिखित संदेश भेजने के अनेक माध्यम हैं, जैसे टेलीफोन, पत्र, परिपत्र सन्देशवाहक के माध्यम से सन्देश भेजना आदि। सन्देश भेजते समय हमें अपनी आवश्यकता के अनुसार उचित माध्यम तथा समय का चयन कर लेना चाहिए।

4. **सन्देश प्राप्त करना** (Receiving Message) :- सन्देशवाहन की प्रक्रिया में यह व्यवस्था सन्देश प्राप्त करने वाले व्यक्ति से सम्बन्ध रखती है। इसके अन्तर्गत सन्देश प्राप्त करने वाले व्यक्ति के द्वारा सन्देश को ध्यान से सुना या प्राप्त कर लेने के बाद पढ़ना सम्मिलित किया जाता है।

5. **सन्देशवाचन** (Decoding) :- सन्देशवाचन के अन्तर्गत सन्देश का प्राप्तकर्ता उसको पढ़कर समझने का प्रयास करता है। यदि इस सम्बन्ध में कोई सन्देह या अस्पष्टता हो तो तुरन्त ही सन्देश प्रेषक से उसे दूर करा लेनी चाहिए, ताकि बाद में किसी प्रकार की समस्या न आए।

6. **कार्यवाही** (Action) :- सन्देशवाहन की प्रक्रिया में दूसरे व्यक्ति तक सन्देश को पहुँचाना ही शामिल नहीं किया जाता, बल्कि उसे उस समय पूरा माना जाता है जब सन्देश प्राप्तकर्ता उस सन्देश पर उचित कार्यवाही कर दे। इस सन्दर्भ में यह जानने के लिए कि सन्देश प्राप्तकर्ता ने सन्देश का पालन किया या नहीं, इस बात की व्यवस्था की जाती है कि वापसी जानकारी प्राप्त हो जाये। यदि सन्देश का पालन सही प्रकार से नहीं होने की सूचना मिले तो सन्देश प्रेषक को उचित सुधारात्मक कार्यवाही करनी पड़ती है।

सन्देशवाहन की प्रक ति
(Nature of Communication)

सन्देशवाहन की प्रक ति निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट की जा सकती है :-

1. **सन्देशवाहन एक सतत् प्रक्रिया** :- सन्देशवाहन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसमें दो पक्ष होते हैं - एक सन्देश प्रेषित करना है और दूसरा पक्ष सन्देश प्राप्त करने पर अपनी प्रतिक्रिया पुनः सन्देश-प्रापक को सूचित करता है। इस प्रकार यह क्रम निरन्तर चलता रहता है।

2. **सन्देशवाहन एक व्यापक प्रक्रिया** :- सन्देशवाहन में केवल सूचना मात्र ही प्रेषित नहीं होती, अपितु इसमें एक व्यक्ति अपने विचारों से अन्य पक्ष को अवगत कराता है, उनके विचार प्राप्त करता है, परामर्श करता है, अपने विचारों में संशोधन एवं परिवर्तन करता है। इसमें अधिकारी द्वारा अपने अधीनों को आदेश व निर्देश प्रदान किए जाते हैं और कर्मचारी भी अपने सुझाव व कठिनाइयाँ अधिकारियों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार सन्देशवाहन एक व्यापक प्रक्रिया है।

3. **सन्देशवाहन प्रबन्धकीय निर्देश का एक मुख्य अंग** :- बिना निर्देशन के कोई भी प्रबन्धकीय कार्य सम्पन्न नहीं किया जा सकता। निर्देशन कार्य स्वयं अभिप्रेरण एवं कुशल नेत त्व की भाँति सन्देशवाहन के बिना प्रभावपूर्ण ढंग से सम्पन्न नहीं किया जा सकता। अतः सन्देशवाहन निर्देशन कार्य का एक प्रमुख अंग है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

4. **सन्देशवाहन कार्यो के निष्पादन की आधारशिला** :- सन्देशवाहन द्वारा ही व्यक्तियों को कार्य करने के लिए प्रेरित

किया जाता है। इसके द्वारा ही कर्मचारियों को यह ज्ञात होता है कि उन्हें क्या, कब, कहां और कौन सा कार्य करना है। अपने कार्यो की सम्पन्नता का मूल्यांकन कराकर उनमें सुधार लाने की प्रक्रिया के रूप में संदेशवाहन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

5. **सन्देशवाहन की सफलता उससे सम्बन्धित दोनों पक्षों पर निर्भर** :- वास्तव में सन्देशवाहन का आशय दो पक्षों द्वारा एक बात को एक अर्थ में समझने से है। अतः इसके लिए आवश्यक है कि सन्देश-प्रेषक स्वंय अपने विचार के बारे में स्पष्ट हो और उसे दूसरे पक्ष के सम्मुख इस कुशलता से प्रस्तुत करे कि वह उसको सरलता व स्पष्टतापूर्वक उसी अर्थ में समझ सके। सन्देशवाहन की सफलता सन्देश-प्रापक पर भी बहुत निर्भर करती है। सन्देश कितना भी सरल एवं स्पष्ट क्यों न हो यदि सन्देश प्रापक उसको बिना किसी पक्षपात, अज्ञानता एवं द्वेष भाव के सही अर्थ में समझने का प्रयत्न नहीं करता है, तो वह व्यर्थ हो जाता है।

6. **सन्देशवाहन एक प्रशासकीय कार्य** :- जब सन्देशवाहन का प्रयोग व्यावसायिक क्षेत्र में किया जाता है तब समान्यतः इसकी प्रक ति प्रशासकीय हो जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि एक व्यावसायिक संगठन में, जहां बड़ी संख्या में कर्मचारी कार्य-संलग्न होते हैं तथा कार्य विभाजन की द ष्टि से अनेक विभाग होते हैं, उसमें सन्देशवाहन, कर्मचारियों के अधिकारों व उत्तरदायित्वों के निर्धारण हेतु, कार्य-सम्बन्धी आदेश व निर्देश देने हेतु, कार्य व कर्मचारियों पर नियन्त्रण स्थापित करने आदि के लिए आवश्यक होता है। चार्ल्स ई॰ रेडफील्ड के अनुसार, "प्रशासकीय संचार केवल सूचना के विनियम से ही सम्बन्धित नहीं है अपितु प्रशासन से भी सम्बन्धित है। एक संगठन की सम्प्रेषण समस्याओं तथा कर्मचारियों की कार्य-दशाओं, वेतन, पर्यवेक्षण और कार्यपद्धतियों आदि की समस्याओं में कोई अन्तर नहीं है।

सन्देशवाहन का प्रबन्ध में महत्व
(Significance of Communication in Management)

आधुनिक युग में, व्यावसायिक प्रबन्ध में सन्देशवाहन का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान समय में बड़े पैमाने पर उत्पादन, व्यवसाय-व्यवस्था के क्षेत्र में गलाकाट प्रतियोगिता आदि अनेक कारणों से वर्तमान प्रबन्ध में इतनी जटिलता विद्यमान हो गई है कि व्यवसाय का कार्य, बिना सन्देशवाहन के नहीं चल सकता। कीथ डेविस के अनुसार, "सन्देशवाहन व्यवसाय के लिए उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार मनुष्य के लिए रक्तधारा आवश्यक है। इन परिवर्तित परिस्थितियों में, सन्देशवाहन के अभाव में कोई भी व्यवसाय सफल नहीं हो सकता।" थियो हेमैन के शब्दों में, "सभी प्रबन्धकीय कार्यो की सफलता सफल सन्देशवाहन पर निर्भर करती है।" सन्देशवाहन के महत्व को निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर और भी स्पष्ट किया जा सकता है :-

1. **व्यवसाय का सफल संचालन** (Successful operation of business) :- व्यावसायिक क्रियाओं के सफल संचालन के लिए आन्तरिक एवं बाह्य पक्षों में निरन्तर सम्पर्क बनाए रखने के लिए सन्देशवाहन की आवश्यकता होती है। व्यावसायिक क्रियाएँ क्रय-सम्बन्धी हो या विक्रय-सम्बन्धी या वितरण, उत्पादन, विनिमय या वित्त सम्बन्धी सभी में सन्देशवाहन आवश्यक है। हेराल्ड मॉस्किन के शब्दों में, "सन्देशवाहन व्यवस्था व्यवसाय के सफल संचालन में अधिकाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है व्यवसाय में अनेक व्यक्तियों को सूचना देनी होती है, अनेक व्यक्तियों को सूचना सुननी होती है तथा उससे समस्याओं के सुलझाने में सहायता लेनी पड़ती है और अन्य अनेक विषयों के सम्बन्ध में बातचीत करनी होती है।" इस प्रकार सन्देशवाहन व्यवसाय के सफल संचालन में सहायक सिद्ध होता है।

2. **प्रबन्धकीय कार्यो का आधार** (Basis of managerial functions) :- प्रबन्ध के विभिन्न कार्यो के निष्पादन में संदेशवाहन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सन्देशवाहन के अभाव में समस्त प्रबन्धकीय कार्य असफल रहते हैं। इसीलिए संदेशवाहन प्रबन्धकीय कार्यो का आधार माना जाता है। पीटर्स (Peters) के शब्दों में, "अच्छा संदेशवाहन सुद ढ़ प्रबन्ध की नींव है।" प्रबन्ध के मुख्य कार्यो में संदेशवाहन के महत्व को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है :-

   (i) **नियोजन** (Planning) :- नियोजन प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य है। किसी संस्था में जितना महत्व नियोजन का है उससे कहीं अधिक महत्व उसके कार्यान्वयन का है। संदेशवाहन ही ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा निर्धारित की गई योजनाओं की जानकारी प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को देता है और उन्हें लागू करने का प्रयास करता है। संदेशवाहन के अभाव में, योजनाएं केवल कागजी कार्यवाही रह जाती हैं। संदेशवाहन के माध्यम से

क्या करना है, कब करना है और किसे करना है, आदि बातों का निर्णय सरलता से लिया जा सकता है। अतः यह स्पष्ट है कि नियोजन करने और उसके क्रियान्वयन के लिए संदेशवाहन का विशिष्ट स्थान है।

(ii) **संगठन** (Organisation) :- संगठन प्रबन्ध का अन्य महत्वपूर्ण कार्य है जिसके माध्यम से प्रबन्धक संस्था के कार्यों एवं क्रिया-कलापों का निर्धारण करते हैं, उन निर्धारित कार्यों का उपयुक्त विभाजन करते हैं और उन कार्यों के सम्पादन के लिए उत्तरदायित्व के अनुरूप अधिकार सौंपते हैं। इस कार्य में भी सन्देशवाहन की आवश्यकता होती है, क्योंकि संदेशवाहन द्वारा ही व्यक्तियों, विभागों तथा समूहों को उसके कार्य क्षेत्रों और अधिकार क्षेत्रों का ज्ञान हो सकता है। बर्नार्ड के अनुसार भी इसकी पुष्टि इस प्रकार होती है, "संगठन के व्यापक सिद्धान्तों में संदेशवाहन का एक केन्द्रीय स्थान है, क्योंकि संगठन के विस्तार और क्षेत्र का निर्धारण प्रायः सन्देशवाहन की तकनीकों के द्वारा होता है।" अधिकारों के प्रत्यायोजन के लिए सन्देशवाहन आवश्यक होता है। टैरी के शब्दों में "सन्देशवाहन वह साधन है जिसके माध्यम से अधिकार प्रत्यायोजन की क्रिया पूर्ण होती है।"[1] अतः यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि संगठन में भी सन्देशवाहन का महत्वपूर्ण स्थान है।

(iii) **निर्देशन एवं नेत त्व** (Direction and leadership) :- निर्देशन एवं नेत त्व प्रबन्ध के महत्वपूर्ण कार्य हैं जिनके सफल निष्पादन के लिए सन्देशवाहन अत्यंत आवश्यक है। अच्छा नेता वही है जो अधीनस्थों को मानवीय एवं सहयोगी द ष्टि से देखता है। सन्देशवाहन द्वारा नेता और अधीनस्थों के बीच विश्वास की भावना जाग त की जाती है और निदेशित पथ-प्रदर्शन के माध्यम से कार्य सम्पन्न कराया जाता है। इसके माध्यम से ही जहाँ एक ओर, नेता अपना प्रभाव अधीनस्थों पर ड़ाल सकता है, वहाँ दूसरी ओर, अधीनस्थों के सुझाव, विचार आदि प्राप्त करके अपने आदेश व निर्देश को अधिक उपयोगी बना सकता है।

(iv) **अभिप्रेरण** (Motivation) :- अभिप्रेरण द्वारा प्रबन्धक कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने हेतु उनकी इच्छाओं, आदि की जानकारी प्राप्त करते हैं और आवश्यक प्रेरणाओं के उपलब्ध होने की सूचना उन्हें देकर उनके सहयोग को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इस कार्य को भी बिना सन्देशवाहन के नहीं किया जा सकता है।

(v) **समन्वय** (Co-ordination) :- सम्पूर्ण व्यावसायिक क्रियाओं को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए उन्हें अनेक विभागों में विभाजित किया जाता है - जैसे क्रय-विभाग, विक्रय-विभाग, उत्पादन-विभाग, वित्त-विभाग, कर्मचारी-विभाग आदि। इन समस्त विभागों की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने के लिए सन्देशवाहन आवश्यक होता है। मेरी कुशिंग नाइल्स के अनुसार, "समन्वय के लिए अच्छा सन्देशवाहन आवश्यक है। सन्देशवाहन का विनिमय ऊपर की ओर, नीचे की ओर तथा आस-पास दोनों ओर सब स्तरों पर अधिकारियों द्वारा समाचार भेजने, सुझाव प्राप्त करने, नीतियों को अपनाने एवं जानकारियाँ प्राप्त करने तथा मनोबल की व द्धि व पारस्परिक समझ के लिए आवश्यक है।"[2] इसी प्रकार का मत विलियम एच॰ न्यूमैन द्वारा भी इन शब्दों में व्यक्त किया गया है, "अच्छा सन्देशवाहन समन्वय के लिए सहायक है।"[3] यह पूर्णतया स्पष्ट है कि सन्देशवाहन प्रबन्ध-कार्यों की आधारशिला है।

3. **न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन** (Maximum production at the lowest cost) :- प्रत्येक उपक्रम न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन का लक्ष्य रखता है, जिसकी प्राप्ति पर ही उपक्रम का अस्तित्व, तथा सफलता निर्भर करती है। उपक्रम को इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रभावपूर्ण आन्तरिक एवं बाह्य सन्देशवाहन-व्यवस्था की आवश्यकता होती है। आन्तरिक क्षेत्र में, प्रभावी सन्देशवाहन-व्यवस्था, संस्था की भौतिक एवं मानवीय शक्ति के बीच समन्वय स्थापित करती है और प्रचलित मिथ्या धारणाओं आदि को दूर करके, अच्छे मानवीय सम्बन्धों की स्थापना करके, मितव्ययता से उत्पादन-क्रियाओं का संचालन कराकर, न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन की उपलब्धि के लक्ष्य को सम्भव बनाती है।

---

1. "Communication is the means by which the act of delegation is a accomplished." — George R. Terry
2. Good communication are essential to co-ordination. They are necessary upward, downward and sideways through all the leads of authority and advice for transmission interpretation and adoption of policies for sharing of knowledge and information and for the more subtle need of good morale and mutual understanding. — Mary Cushing Niles
3. Good communication aids in coordinating activities — William H.Newman

4. **शीघ्र निर्णय एवं उसका कार्यान्वयन** (Prompt decision and its implementation) :- प्रबन्धकों को पग-पग पर अनेक निर्णय लेने होते हैं जिनके लिए अनेक प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता होती है, जो प्रभावी सन्देशवाहन द्वारा ही सुलभ हो सकती है। इनके लिए नए निर्णयों को उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों तथा विभागों तक पहुँचाने का कार्य भी सन्देशवाहन द्वारा शीघ्रता एवं सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। इस प्रकार शीघ्र निर्णयन एवं कार्यान्वयन से संस्था लाभ के अवसरों का सदुपयोग कर सकती है।

5. **मानवीय सम्बन्धों की स्थापना** (Building human relations) :- प्राचीन समय में मानव को उत्पादन का एक साधन-मात्र ही समझा जाता था और उसके साथ कोई मानवोचित व्यवहार नहीं किया जाता था परन्तु अब आधुनिक विचारधारा के अनुसार उत्पादन व्यवस्था में मानव का अत्याधिक महत्व हो गया है। यदि उससे कार्य लेना है तो उसकी कार्य के प्रति इच्छा जाग त करनी होगी और उसकी कार्य-क्षमता के अनुकूल कार्य करने का आवश्यक वातावरण तैयार करना होगा। सन्देशवाहन-व्यवस्था के माध्यम से प्रबन्धक अपनी नीतियों तथा विचारों को श्रमिकों तक पहुँचाकर उन्हें वास्तविक स्थिति से अवगत कराते हैं और कर्मचारी अपने सुझाव, शिकायतें, विचार आदि प्रबन्धकों तक पहुँचाते हैं, जिससे सेवा-नियोक्ताओं और कर्मचारियों के मध्य मधुर एवं सौहार्दपूर्ण (Cordial relations) सम्बन्धों की स्थापना हो जाती है। इस प्रकार सतत् सन्देशवाहन अच्छे मानवीय सम्बन्धों के निर्माण में सहायक सिद्ध होता है। रॉबर्ट डी॰ बर्थ के इन शब्दों से भी सन्देशवाहन एवं मानवीय सम्बन्धों की घनिष्ठता भली प्रकार स्पष्ट होती है, "बिना सन्देशवाहन के मानवीय सम्बन्धों की स्थापना तथा बिना मानवीय सम्बन्धों की स्थापना के सन्देशवाहन असम्भव है।"

6. **कर्मचारियों के मनोबल में व द्धि** (Increase in employee's morale) :- मनोबल व्यक्तियों की उस भावना का नाम है जिससे प्रेरित होकर वे अपने कार्यो को सुचारू रूप से तथा लगन के साथ करते हैं। वास्तव में, मनोबल मानवीय पहलू का वह तत्व है, जो व्यक्ति को स्वेच्छा से कार्य करने की प्रेरणा देता है। वास्तविकता यह है कि सन्देशवाहन एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा कर्मचारियों और अधिकारियों के बीच विचारों का निरन्तर विनिमय होता रहता है जिससे कर्मचारियों को यह अनुभूति होने लगती है कि वे भी संस्था का एक आवश्यक अंग हैं। इसी प्रकार प्रबन्धकों एवं उच्चाधिकारियों से भी यह उपेक्षा की जाती है कि वे भी कर्मचारियों में मनोबल की व द्धि करने के लिए उनके विचारों को ध्यान से सुनें और उनके सुझावों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करें। अतः यह स्पष्ट है कि प्रभावी सन्देशवाहन कर्मचारियों के मनोबल में व द्धि करने में सहायक सिद्ध होता है।

7. **जनतांत्रिक प्रबन्ध व्यवस्था** (Democratic management) :- सन्देशवाहन कर्मचारियों के विचारों, सुझावों, समितियों, भावनाओं आदि को प्रबन्धकों तक पहुँचाता है और प्रबन्धकीय कार्यो में उन्हें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लाभ लेने का अवसर प्रदान करता है जिससे कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा होता है, संस्था में शान्तिमय वातवरण रहता है, और मधुर श्रम-सम्बन्धों का विकास होता है।

8. **भ्रम-निवारण** (Avoids illusions) :- कभी-कभी कोई सूचना अनेक स्तरों से होकर गुजरने के कारण भ्रान्ति फैलाने वाली हो सकती है और उसके भयंकर दुष्परिणाम हो सकते हैं, जो उपक्रम के लिए अहितकर हो सकते है।। डब्ल्यू॰ एच॰ ह्वाइट के अनुसार, "भ्रम सन्देशवाहन का सबसे बड़ा शत्रु है।" इसी प्रकार चार्ल्स ई॰ रेडफील्ड ने भी अपना मत इन शब्दों में व्यक्त किया है कि, "सन्देशवाहन संगठन को द ढ़ बना सकता है अथवा विनाश कर सकता है। अतः अच्छी सन्देशवाहन-व्यवस्था उपक्रम में कार्यरत कर्मचारियों तथा बाह्य पक्षों को संस्था के प्रति जानकारी प्रदान करती है और यदि कोई गलत धारणा फैल गई है, वो उसको दूर कर सकती है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर कह सकते हैं कि प्रबन्ध द्विमार्गीय यातायात के समान है जो सम्प्रेषण की प्रभावी व्यवस्था पर आधारित है।

सम्प्रेषण की बाधाएँ
(Barriers to Communication)

सम्प्रेषण का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को सही अर्थबोध कराके कार्य के लिए प्रेरित करना है किन्तु कभी-कभी वे संदेश का भिन्न-भिन्न अर्थ लगा लेते हैं तथा सम्प्रेषण का इच्छित उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है। ऐसा सम्प्रेषण की बाधाओं, अवरोधकों

के कारण होता है। सम्प्रेषण की बाधाएँ इस प्रकार हैं :-

1. **संगठनात्मक संरचना** (Organisational structure) :- उपक्रम की संगठन-संरचना सम्प्रेषण की अनेक बाधाओं को जन्म देती है। जिस भी उपक्रम की संगठनात्मक संरचना में जितने अधिक स्तर होंगे, सम्प्रेषण में बाधाएँ उतनी ही ज्यादा होंगी क्योंकि अधिक स्तरों से प्रेषक एवं प्रेषित की दूरियाँ बढ़ जाती हैं। अधिक स्तरों के कारण संदेश के अधिक फिल्टरों से गुजरने से वह विक त होता चला जाता है। सम्प्रेषण श्रंखला के प्रत्येक स्तर पर संदेश में कुछ जोड़े जाने, हटाये जाने, संशोधित किए जाने अथवा परिवर्तन किए जाने की संभावना रहती है। प्रबन्ध की सता व विशिष्टीकरण से भी कभी-कभी भाषा में परिवर्तन आ जाता है।

2. **भाषा सम्बन्धी बाधाएँ** (Language barriers) :- सम्प्रेषण प्रक्रिया में भाषा सम्बन्धी बाधाएँ भी महत्वपूर्ण होती हैं। भाषा के कारण कभी-कभी संवाद को सुनने, समझने व उसके अनुसार काम करना कठिन हो जाता है फलस्वरूप सम्प्रेषण का उद्देश्य ही विफल हो जाता है। भाषा सम्बन्धी बाधाएँ निम्न कारणों से हो सकती हैं :-

   (i) भाषा की भिन्नता

   (ii) शब्दों की जटिलता व क्लिष्टता

   (iii) द्वि-अर्थक वाक्य रचना व दोषपूर्ण अनुवाद

   (iv) गलत शब्दों का चयन अथवा तकनीकी शब्दावली

   (v) विशिष्ट, स्थानीय बोलीगत अथवा स्व-निर्मित शब्दों का प्रयोग

   (vi) सुविधात्मक रूपान्तरण व अनुवाद

   उपर्युक्त भाषा कारणों से संदेश के पहुँचने में बाधा उपस्थित हो जाती है। स्ट्रांग के शब्दों में "संदेश प्राप्तकर्ता अपनी सुविधा, आशय व इच्छा के अनुसार किसी शब्द का अर्थ लगाता है और यह आवश्यक नहीं है कि यह अर्थ संदेश देने वाले व्यक्ति के अर्थ से मिलता ही हो।"

3. **उद्देश्यों की बाधा** :- कभी-कभी सम्प्रेषण का वास्तविक उद्देश्य प्रकट उद्देश्य से भिन्न होता है, सम्प्रेषण के इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो पाती।

4. **स्थिति एवं पद के कारण पक्षपात** :- कभी-कभी व्यक्ति की स्थिति एवं पद के कारण ऊपर एवं नीचे की ओर दोनों के सम्प्रेषण पक्षपातपूर्ण हो जाते हैं।

5. **समयाभाव की कठिनाई** :- कभी-कभी संवाददाता संवाद को समयाभाव के कारण यथासमय संवाद प्राप्तकर्ता को प्रेषित नहीं कर पाते और परिणाम संवाद प्रभावहीन हो जाता है।

6. **वैयक्तिक भिन्नताएँ** :- संगठन में वैयक्तिक भिन्नता पाया जाना स्वभाविक है। व्यक्तियों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान आदि में अन्तर बना रहता है। इसके फलस्वरूप उनकी मानसिक स्थिति में अन्तर पाया जाता है।

   टेनरी एच॰ एक्र्स ने सम्प्रेषण की समस्या को प्रभावित करने वाली निम्नलिखित वैयक्तिक भिन्नताओं का वर्णन किया है :-

   (i) संवेदन घटक - स्वास्थ्य एवं शारीरिक तत्व

   (ii) आयु, लिंग, शैक्षिक स्तर

   (iii) क्षेत्रीय भिन्नताएँ - रहन-सहन, भाषा, रीति-रिवाज, खान-पान

   (iv) स्वभाव, आदतें, धर्म

   (v) आर्थिक स्तर

   (vi) संगठन वैचारिक मतभेद

   (vii) व्यक्तिगत घटक - अनुभव, ज्ञान, विचार, द ष्टिकोण, तौर-तरीके आदि।

   उपर्युक्त समस्त घटक सम्प्रेषण की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करते हैं। अर्ल पी॰ स्ट्रॉन्स के अनुसार, "व्यक्तियों की

भिन्न-भिन्न एवम् मिश्रित मनोवैज्ञानिक प्रव तियां, तर्क, प्रतिक्रियाएं, भावनाएं, विश्वास आदि होते हैं। जब एक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के साथ सम्प्रेषण करता है तो यह सभी भिन्नताएँ सक्रिय हो जाती है तथा सन्देश को उचित रूप से समझने में बाधक बन सकती है।"

7. **ढंग से व विवेक से न सुनना** :- सम्प्रेषण में श्रवण सबसे उपेक्षित तत्व है। यह अर्द्ध-श्रवण गियर को न्युट्रल में डालकर इन्जर को चलाने के समान है। विवेकपूर्ण ढंग से संवाद न सुनने से उसको समझने व क्रियान्वयन में भी कठिनाई होती है। बहुधा सन्देश का प्राप्तकर्ता प्रेषक द्वारा अपनी बात पूरी तरह समाप्त करने के पूर्व ही उसका पूर्वमूल्यांकन कर वार्ता को बीच में ही काट देता है। इससे भी सम्प्रेषण में बाधा उपस्थित हो जाती है।

8. **भौगोलिक दूरी** :- दूर स्थित क्षेत्रों में संवाद भेजना प्रायः कठिन होता है। यद्यपि आधुनिक युग में टेलीफोन व टेलीविजन जैसे साधन उपलब्ध हो गये हैं किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों व अनेक छोटे नगरों में उनका आज भी अभाव है।

9. **भावनात्मक धारणाएँ** :- शारीरिक बनावट, आचरण, खान-पान, वेश-भूषा आदि में अन्तर होता है जिसके परिणामस्वरूप संवाद को समझने व उसके अनुरूप काम करने में कठिनाई पैदा हो सकती है।

10. **पदोन्नति की भावना** :- अधीनस्थों की पदोन्नति की भावना उच्च अधिकारियों तक पूर्ण एवम् सही सूचनाओं के सम्प्रेषण में बाधक सिद्ध हुई है। क्योंकि वे केवल सुनना भी पसन्द नहीं करते कि सही बात है अथवा नहीं।

11. **बुरे मानवीय सम्बन्ध** :- अधिकारियों एवम् कर्मचारियों के मध्य अच्छे सम्बन्धों के अभाव में भी सम्प्रेषण कुप्रभावित होते हैं। अनेक अधीनस्थ अपने बॉस की बात को सुनना भी पसन्द नहीं करते। फलतः सम्प्रेषण का उद्देश्य प्राप्त नहीं हो पाता।

12. **भ्रम** :- भ्रम सम्प्रेषण का सबसे बड़ा शत्रु है। भ्रम के कारण अर्थ का अनर्थ हो सकता है। 'कहे खेत की और सुने खलियान की' स्थिति में सब कुछ चौपट हो जाता है।

13. **तकनीकी बाधाएँ** :- संचार की तकनीकी बाधाएं संचार के साधनों में अभियान्त्रिकी बाधाएं, गलत माध्यमों के चयन अथवा प्रयोग तथा संचार यन्त्रों के गलत ढंग से प्रयोग करने के फलस्वरूप उत्पन्न होती है।

14. **प्रबन्धकीय बाधाएँ** :- प्रबन्ध व्यवस्था की स्थिति, शैलों एवम् प्रारूप के अकुशल होने के कारण भी सम्प्रेषण के मार्ग में बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। प्रबन्धजन्य साधनों की बाधाओं के कुछ कारण इस प्रकार हैं :-

    (i) **अधिनायकवादी प्रबन्ध** :- अधिनायकवादी प्रबन्ध प्रायः आदेश देने, निर्देश जारी करने में विश्वास रखते हैं, वे अपने कर्मचारियों से सुझाव व परामर्श प्राप्त करने अथवा उनकी समस्याओं को जानने के लिए उत्सुक नहीं होते हैं। इस प्रकार के सम्प्रेषण को एक-मार्गीय बनाकर सहभागी व्यवस्था की उपेक्षा करते हैं।

    (ii) **निर्देशन का अभाव** :- कई प्रबन्धकों के विचारों, व्यक्तित्व अथवा चिन्तन में द ढ़ता नहीं होती है तथा उनमें नेत त्व योग्यता का अभाव होता है फलस्वरूप वे निर्देशात्मक सम्प्रेषण नहीं कर पाते हैं।

    (iii) **पूर्ण संचार का अभाव** :- कई बार प्रबन्धक, आलस्यवश, गोपनीयता के कारण जानबूझकर अथवा यह मानते हुए कि 'सबको पता है' पूरी सूचनाओं का प्रसारण नहीं कर पाते हैं। फलतः सम्प्रेषण में कठिनाई उत्पन्न होती है।

    (iv) **अधिकारियों की उपेक्षा** :- कई बार अधिकारी सम्प्रेषण में उपेक्षा की मनोव ति रखते हैं। वे कार्य-निर्देश देने, मार्गदर्शन प्रदान करने, कर्मचारियों की शिकायतों को सुनने, भ्रान्तियों को दूर करने आदि में उपेक्षा भाव बरतते हैं। इससे सम्प्रेषण अपूर्ण व प्रभावहीन हो जाता है।

15. **अन्तर्वैयक्तिक एवं बौद्धिक बाधाएँ** :- सम्प्रेषण की कई बाधाओं में प्रेषक एवं प्रेषिति की बौद्धिक स्थिति तथा उनके अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार से सम्बन्ध रखती है। इस प्रक ति की कतिपय बाधाएँ इस प्रकार हैं :-

    (i) **अस्पष्ट मान्यताएँ** :- अस्पष्ट मान्यताओं के कारण प्रेषक एवम् प्रषिति दोनों संदेश की अपने-अपने द ष्टिकोण से व्याख्या करते हैं जो परस्पर विरोधी हो सकती है। इससे असुविधापूर्ण स्थिति बन जाती है तथा सम्प्रेषण विक त हो जाता है।

    (ii) **अपर्याप्त समायोजनकाल** :- कई विषयों से सम्बन्धित सम्प्रेषण में व्यक्तियों के सोचने एवम् स्वयं को मानसिक

रूप से तैयार करने हेतु समय की आवश्यकता होती है। किन्तु इस समायोजन काल की अपर्याप्तता के कारण सम्प्रेषण अपूर्ण रहता है।

(iii) **अविश्वास** :- जब सम्प्रेषण प्रक्रिया के दोनों पक्षों को एक-दूसरे पर अविश्वास होता है तो वे मूल सन्देश में अपने अनुसार कुछ परिवर्तन कर देते हैं। यह संशोधन सम्प्रेषण के प्रभाव को कम कर देता है। पूर्वाग्रह के फलस्वरूप भी ये परिवर्तन कर लिये जाते हैं।

(iv) **संदर्भ ढांचा** :- एक ही संदेश का अलग-अलग व्यक्ति अपने पूर्व अनुभव के आधार पर भिन्न-भिन्न निवर्चन कर लेते हैं। फलतः संदेश के लिपिकबद्धकरण तथा अनुवाद में अन्तर उत्पन्न हो जाता है।

(v) **चयनात्मक अवबोध** :- चयनात्मक अवबोध के कारण एक व्यक्ति केवल उन्हीं सूचनाओं का अनुमोदन करता है जो उसके विश्वास से मेल खाती है। अर्थात् वह उन सूचनाओं को निरस्त या अवरूद्ध कर देता है जो उसके विचारों के अनुरूप नहीं होती है।

(vi) **मूल्य निर्णय** :- कई बार कुछ प्रबन्धक किन्हीं उद्देश्यों अथवा उनके प्रेषकों के बारे में अपने मूल्य निर्णय, मत या छवि का अपने मस्तिष्क में निर्माण कर लेते हैं। वे पूर्ण संदेश प्राप्त करने से पूर्व ही उसकी उपयोगिता का मूल्यांकन कर लेते हैं। यह पूर्व मत सम्प्रेषण में बाधक होता है।

16. **अर्द्ध-श्रवण** :- प्रेषक या प्रेषिति के द्वारा संदेश को ठीक प्रकार से न सुन पाना भी सम्प्रेषण में बाधा खड़ी करता है। जोसेफ ज्दूहर के शब्दों में, "श्रवण सम्प्रेषण का सबसे अधिक उपेक्षित भाग है। आधी बात सुनना अपने इंजन को निष्क्रिय गति वाली स्थिति में दौड़ने के समान है। इसमें आप गैसोलीन का उपयोग तो करते हैं किन्तु आगे बिल्कुल नहीं बढ़ पाते।"

सम्प्रेषण की श्रेणियाँ या प्रकार
(Categories or Types of Communication)

सम्प्रेषण के अनेक प्रकार हैं। उनका वर्गीकरण निम्न आधारों पर किया जा सकता है :-

1. प्रक ति अथवा अभिगम के आधार पर,
2. सम्बन्धों के आधार पर,
3. प्रवाह के आधार पर,
4. क्षेत्र के आधार पर,
5. माध्यमों के आधार पर।

1. **प्रक ति अथवा अभिगम के आधार पर** (Types on the basis of nature or approach) :- प्रक ति के आधार पर सम्प्रेषण तीन प्रकार का हो सकता है -
   1. सूचनात्मक सम्प्रेषण,
   2. अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण, तथा
   3. संगठनात्मक सम्प्रेषण।

   1. **सूचनात्मक सम्प्रेषण** (Informational communication) :- यह पूर्णतः वैज्ञानिक द ष्टिकोण पर आधारित है। यह प्राथमिक रूप से संचरण पहलुओं (Transmission aspects) से जुड़ा होता है। विशिष्ट रूप से प्रेषक, सन्देश प्राप्तकर्ता, माध्यम, सूचनात्मक सम्प्रेषण के प्रमुख तत्व हैं। इस सम्प्रेषण का उद्देश्य दूसरे पक्ष को केवल सूचना पहुँचाना होता है। यह सांख्यिकीय, गणितीय एवं तर्कयुक्त होता है। यह 'सूचना विचारधारा' (Information theory) तथा सिबरनेटिक्स (Sybernetics) पर आधारित होता है।

   2. **अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण** (Interpersonal communication) :- सूचनात्मक सम्प्रेषण गणितीय-अभिमुखी होता है जबकि अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण व्यवहारात्मक होता है। यह व्यवहार परिवर्तन पर बल देता है। इसमें एक तरफ

भाषा तथा दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें, जैसे अवबोध, अभिप्रेरण, संज्ञान आदि सम्मिलित होती हैं। यह संचेतना श्रवण (listening) तथा गैर-शाब्दिक (non-verbal) तत्त्वों पर बल देता है। इस सम्प्रेषण में प्रतिपुष्टि feedback) का विशेष महत्त्व होता है। यह वैयक्तिक होता है।

3. **संगठनात्मक सम्प्रेषण** (Organisational communication) :- परम्परागत रूप से संगठनात्मक सम्प्रेषण का द ष्टिकोण संरचनात्मक (structural) रहा है। यह संगठन सचंरना में रेखीय सूचना प्रवाहों को दर्शाता है। परम्परागत संगठन संरचनाओं में यह निम्नलिखित को दर्शाता है -

(i) आदेश एवं निर्देश।

(ii) नीतियाँ, कार्यक्रम, लक्ष्य।

(iii) संगठन पुस्तिकायें, नीति पुस्तिकायें।

(iv) स्मरण-पत्र, पत्र-व्यवहार, प्रतिवेदन।

(v) कार्यक्रम पत्रक, कार्यवाही विवरण।

(vi) वार्षिक रिपोर्ट।

(vii) जाँच-पड़ताल, निवेदन।

(viii) कर्मचारी शिकायतें, परिवेदनाएँ आदि।

2. **सम्बन्धों के आधार पर** (Types on the basis of relations) :- संदेश भेजने वाले संदेश प्राप्तकर्ता के बीच सम्बन्धों के आधार पर सम्प्रेषण के दो प्रकार हो सकते हैं :-

(1) औपचारिक सम्प्रेषण, तथा

(2) अनौपचारिक सम्प्रेषण।

(1) **औपचारिक सम्प्रेषण** (Formal communication) :- जब किसी उपक्रम में औपचारिक सम्बन्धों वाले व्यक्तियों के बीच निर्धारित मार्ग व श्र ंखला के अनुसार सन्देश का आदान-प्रदान किया जाता है तो उसे औपचारिक सम्प्रेषण कहा जाता है। इस सम्प्रेषण का मार्ग संगठन के ढांचे में निर्धारित प्रक्रियाओं के अनुसार तय होता है। यह विशेष पद व स्थिति में रहकर किया गया सम्प्रेषण है। यह व्यक्तियों के बीच न होकर पदों के बीच होने वाला सन्देशवाहन है।

यह निरंकुश प्रबन्ध व्यवस्था में एक-मार्गीय (One way) तथा प्रजातांत्रिक प्रबन्ध में द्वि-मार्गीय होता है। अधिकारी अपने अधीनस्थों को आदेश-निर्देश, सूचनाएं, नीतियाँ, नियम, कार्यक्रम, मूल्यांकन आदि के रूप में औपचारिक संदेश देते हैं। दूसरी ओर अधीनस्थ अपने अधिकारियों के पास रिपोर्ट, शिकायतें, आदि औपचारिक रूप से प्रस्तुत करते हैं। औपचारिक संदेश अधिकारियों के अन्तर्गत एवं नियमानुसार ही दिए जाते हैं।

लाभ (Advantages) - औपचारिक सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ होते हैं :-

(i) संदेशों का आदान-प्रदान पूर्व-निर्धारित मार्गो से होता है।

(ii) संदेश के लिए उत्तरदायित्व का निर्धारण सुगम हो जाता है।

(iii) संदेशों का स्वरूप व सीमा पूर्व निर्धारित होने से विक ति की सम्भावना कम हो जाती है।

(iv) इससे विभिन्न पदों के बीच समन्वय आसान हो जाता है।

(v) यह सन्देश पूर्व निर्धारित समय पर स्वतः ही दिए जाने से सूचनाओं में क्रमबद्धता एवं निरन्तरता बनी रहती है।

दोष (Disadvantages) - औपचारिक सन्देशवाहन के कुछ दोष इस प्रकार हैं :-

(i) पूर्व निर्धारित मार्ग के कारण सन्देशों के सामान्य प्रवाह में बाधा उपस्थित होती है।

(ii) इससे कार्य में देरी होती है।

(iii) प्रायः लिखित संदेश भिजवाए जाने के कारण यह प्रक्रिया खर्चीली है।

(iv) विभिन्न स्तरों पर सन्देश के विक त हो जाने की सम्भावना रहती है।

(v) प्रेषक तथा प्रेषित के बीच स्थिति सम्बन्धी अवरोध (Status barrier) से सन्देश का अर्थ प्रभावित होने की सम्भावना रहती है।

2. **अनौपचारिक सम्प्रेषण या जनप्रवाद अथवा अंगूरीलता सम्प्रेषण** (Informal communication or grapevine) :- औपचारिक स्थिति के कारण नहीं, वरन् आपसी सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर सन्देशों का आदान-प्रदान करना अनौपचारिक सम्प्रेषण कहलाता है। यह सम्प्रेषण संगठन की संचार व्यवस्था का एक आवश्यक भाग है तथा संस्था में सामाजिक सम्बन्धों के विकास होने के फलस्वरूप किया जाता है। इसकी श्रंखलाएं (channels) संगठन द्वारा निर्धारित नहीं होती है, वरन् स्वतः ही बनती एवं परिवर्तित होती है।

अनौपचारिक सम्प्रेषण को 'ग्रेपवाइन' 'Grapevine' या जनप्रवाद के नाम से भी पुकारा जाता है। सामान्यतः जनप्रवाद द्वारा कही-सुनी बातों, सुनी-सुनाई सूचनाओं, आपसी चर्चाओं, अनुमानों, विक त सूचनाओं, तोड़े-मरोड़े गए तथ्यों, तीखी-चटपटी खबरें, अर्धसत्यों, मिथ्या प्रचारों, असिद्ध बातों, गुत्थियों (Tangled facts) आदि का प्रसारण हुआ करता है। इसलिए इसे "अफवाहों की मिल" (Rumour-mill) भी कहा जाता है। जनप्रवाद की विश्वसनीयता संदेहपूर्ण होती है। जनप्रवाद तत्कालिक होता है तथा तत्कालिक मार्गो से होकर शीघ्र ही समस्त संस्था में छा जाता है। यह कोहरे के समान होता है जिसमें वास्तविक सत्य गुम हो जाता है। अनौपचारिक सम्प्रेषण की गति बहुत तेज होती है। यह भी आवश्यक नहीं होता है कि जनप्रवाद पूर्णत असत्य ही हो। कई बार यह सत्य के करीब होता है। यह अनाधिक त होता है तथा ऐसे संदेशों का आदान-प्रदान सामाजिक समारोह, दोपहर के भोजन के समय, सामूहिक कार्यक्रम में अथवा आमोद-प्रमोद के क्षणों में होता है।

उद्देश्य- अनौपचारिक सम्प्रेषण के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं :-

(i) वैयक्तिक आवश्यकताओं जैसे मैत्री सम्बन्ध आदि को सन्तुष्ट करना।

(ii) उदासीनता एवं नीरसता के प्रभावों को कम करना।

(iii) दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करना।

(iv) कार्य सम्बन्धी सूचना, जो औपचारिक मार्ग से प्राप्त नहीं होती है, का स्त्रोत होना।

(v) आपसी एवं वैयक्तिक समस्याओं के समाधान ढूंढना।

लाभ (Advantages) - अनौपचारिक सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ होते हैं :-

(i) अनौपचारिक संदेश स्वतन्त्रतापूर्वक प्रेषित किए जा सकते है। इसमें पद एवं स्थिति बाधक नहीं होती है।

(ii) इसमें औपचारिक सम्बन्धों की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

(iii) तत्काल सन्देश के कारण समय व्यर्थ नहीं जाता है।

(iv) यह प्रबन्धकीय निर्णयों व कार्यो में सहायक होता है।

(v) यह संगठनात्मक बाधाओं को दूर करने में सक्षम है।

(vi) यह विचारों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है।

दोष (Disadvantages) - इसके कुछ प्रमुख दोष निम्नानुसार हैं :-

(i) अनौपचारिक सम्प्रेषण का स्त्रोत ढूँढना ही कठिन होता है। अतः उत्तरदायित्व का निर्धारण कठिन होता है।

(ii) इनमें विश्वसनीयता की सीमा निर्धारित करना कठिन होता है।

(iii) ये संदेश अर्द्ध-सत्य व विक त तथ्यों के रूप में हो सकते हैं।

(iv) इन पर नियन्त्रण रखना तथा इनके आधार पर निर्णय लेना कठिन होता है।

(v) ये प्रबन्धकों के लिए भ्रम एवं कठिनाई उत्पन्न करके प्रबन्धकीय कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव डाल सकते हैं।

3. **संदेशों के प्रवाह के आधार पर** (Types on the basis of flow of communication) :- संदशों के प्रवाह के आधार पर सम्प्रेषण को निम्न चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :-

(1) अधोगामी सम्प्रेषण,

(2) ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण,

(3) समतल या पार्श्विक सम्प्रेषण, तथा

(4) विकर्णीय सम्प्रेषण।

(1) **अधोगामी सम्प्रेषण** (Downward communication) :- उच्च अधिकारियों से अधीनस्थों को भेजे जाने वाले सन्देशों को अधोगामी सम्प्रेषण कहा जाता है। ये संदेश औपचारिक पदानुक्रम (Hierarchy) के अनुसार क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर लम्बवत् रूप से चलते हैं। ये प्रबन्धकों तथा अधीनस्थों के मध्य अधिकार-दायित्व सम्बन्धों को दर्शाते हैं। चूँकि इनमें संदेश सामान्य कर्मचारी तक पहुँचाये जाते हैं, अतः इसे "कर्मचारी सम्प्रेषण" (Employee communication) भी कहते हैं। इस प्रकार के सम्प्रेषण में प्रायः निम्न संदेश सम्मिलित होते हैं :-

(i) कार्य के सम्बन्ध में आदेश, निर्देश एवं दायित्व,

(ii) नीतियों, नियमों, कार्यपद्धतियों, लक्ष्यों आदि के बारे में सूचना,

(iii) कार्य सूचनाएँ तथा अन्य कार्यो से सम्बन्ध,

(iv) कार्य निष्पादन के बारे में प्रतिपुष्टि,

(v) संगठन की प्रगति, भावी कार्यक्रमों के बारे में सामान्य सूचना,

(vi) डाँट-फटकार, प्रशंसा, आलोचनाएँ,

(vii) अधीनस्थों से कार्य सम्बन्धी प्रश्न।

अधोगामी सम्प्रेषण लिखित, मौखिक या सांकेति हो सकता है। ये संदेश प्रायः वैयक्तिक निर्देश, निजी भेंट, सभाओं व सम्मेलन, भाषण, विचार-गोष्ठी, पत्र मेमो, आदेश-निर्देश, वार्षिक रिपोर्ट, पत्रिकाओं, सूचना-पट्ट, बुलेटिन, हस्त-संकेत आदि के द्वारा प्रेषित किये जाते हैं। इस सम्प्रेषण को अधीनस्थों द्वारा विशेष महत्त्व दिया जाता है, क्योंकि यह कार्य निष्पादन से सम्बन्धित होता है।

इस सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए प्रबन्धकों को योजना बनाने, अधीनस्थों का विश्वास जीतने, तथयें की जानकारी करने तथा सकारात्मक अभिव त्ति निर्मित करने पर ध्यान देना चाहिए।

(2) **ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण** (Upward communication) :- जब संदेश का प्रवाह निम्न पदों से उच्च पदों की ओर होता है अर्थात् जब संदेश अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा उच्च अधिकारियों को भेजे जाते हैं तो इसे ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण कहा जाता है। इसमें प्रायः निम्न प्रकार के संदेश हो सकते हैं :-

(i) कर्मचारियों के कार्य प्रतिवेदन,

(ii) अधीनस्थों की कार्य समस्यायें,

(iii) अधीनस्थों की प्रतिक्रियाएँ, संशय, प्रश्न आदि,

(iv) आदेशों-निर्देशों पर आपत्तियाँ

(v) कर्मचारियों के विचार, मत व सुझाव,

(vi) कार्य सम्बन्धी कठिनाइयाँ, शिकायतें,

(vii) कार्यो व नीतियों की आलोचनाएँ व सुझाव,

(viii) कर्मचारियों की व्यक्तिगत समस्याएँ,

(ix) भावनाएँ, अभिव त्तियाँ, सहायता हेतु निवेदन, इत्यादि।

संगठनों में ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण की स्वतन्त्रता के लिए प्रबन्ध द्वारा "खुले द्वार" की नीति, परिवेदन प्रणाली, सुझाव पद्धति, अभिव ति सर्वेक्षण, कर्मचारी-प्रबन्ध बैठक, संयुक्त प्रबन्ध समिति, संघ प्रतिनिधि, सहभागिता आदि की व्यवस्था की जाती है। ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण से कर्मचारियों की भावनाओं, समस्याओं व सुझावों का ज्ञान हो जाता है तथा उनके मनोबल एवं उत्पादकता में व द्धि होती है।

(3) **समतल अथवा पार्श्विक सम्प्रेषण** (Horizontal or lateral communication) :- जब समान स्तर के कर्मचारियों, अधिकारियों अथवा विभागाध्यक्षों के बीच संदेशों का आदान-प्रदान होता है तो इसे समतल अथवा पार्श्विक सम्प्रेषण कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, इसमें निम्न प्रकार का सम्प्रेषण शामिल है :

(i) एक ही कार्य-समूह या विभाग में समान स्तर के कर्मचारियों में सम्प्रेषण, तथा

(ii) समान संगठनात्मक स्तर पर कार्यशील विभागों के मध्य अथवा उनके अन्तर्गत समतलीय संदेशवाहन।

यह सम्प्रेषण समन्वयात्मक (Coordinative) प्रक ति का होता है तथा कार्यो के विशिष्टीकरण के कारण इसकी आवश्यकता होती है। यह औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। इसका उद्देश्य विभिन्न कार्यो, विभागों अथवा योजनाओं में सामंजस्य उत्पन्न करना होता है। इससे कार्यो एवं निर्णयों को शीघ्रता से पूरा किया जा सकता है।

संगठन में परियोजना दल (Project Teams), कार्य-बल (Task forces), आव्यूह (Matrix) संगठन, अथवा समितियों का गठन समतल सम्प्रेषण के ही प्रारूप हैं।

(4) **विकर्णीय सम्प्रेषण** (Diagonal communication) :- विकर्णीय सम्प्रेषण वह होता है जो संगठनात्मक पदानुक्रम तथा आदेश श्र ंखला (Chain of command) को काटकर उसके पार निकल जाता है। यह सम्प्रेषण रेखा एवं कर्मचारी विभाग के सम्बन्धों के कारण आवश्यक हो जाता है। रेखा एवं विशेषज्ञ (Staff) कर्मचारियों के मध्य विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध हो सकते हैं, जैसे शुद्ध परामर्शकारी (Purely advisory) अथवा जिनमें विशेषज्ञ (Staff experts) रेखा कर्मचारियों पर सुद ढ़ कार्यकारी सत्ता का उपयोग करते हैं। इस प्रकार कोई भी विशेषज्ञ कार्यात्मक सत्ता होने पर दूसरे विभाग के रेखा कर्मचारी को आदेश-निर्देश दे सकता है। इसे अग्रांकित चित्र के द्वारा समझा जा सकता है।

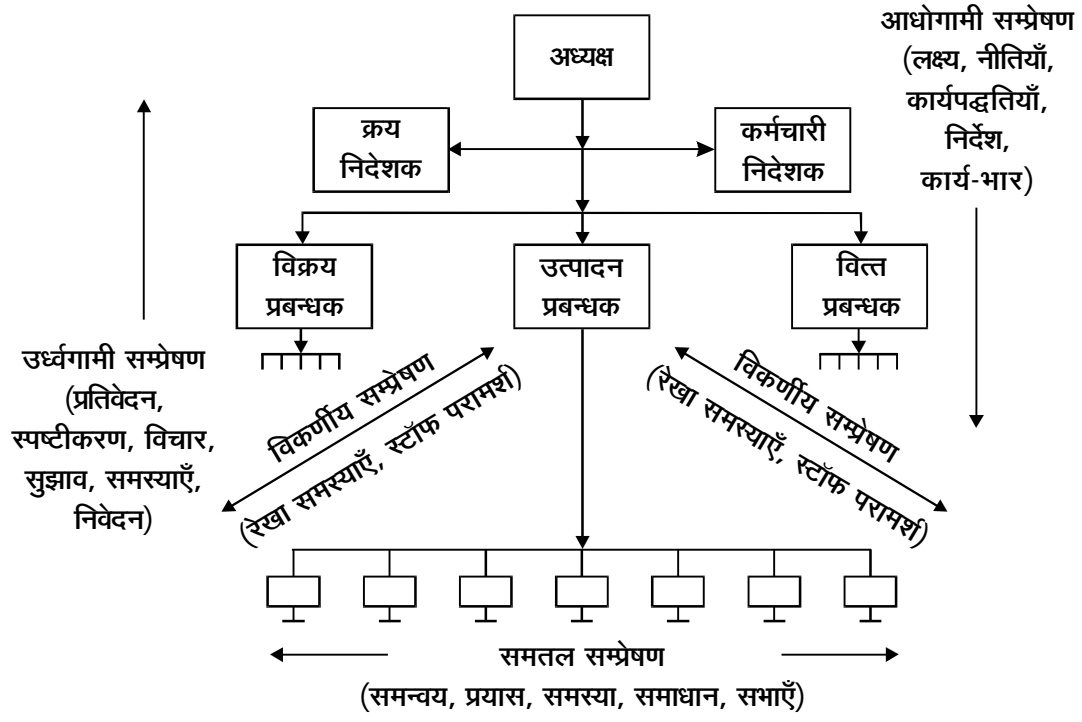

चित्र : प्रवाह के आधार पर सम्प्रेषण

4. **क्षेत्र के आधार पर प्रकार** (Types on the basis of Scope) :- क्षेत्र के आधार पर सम्प्रेषण को दो भागों में बाँटा जाता है :-

(1) आन्तरिक सम्प्रेषण, तथा

(2) बाह्य सम्प्रेषण।

(1) **आन्तरिक सम्प्रेषण** (Internal communication) :- संस्था के भीतर होने वाले अधोगामी, ऊर्ध्वगामी एवं समतल संदेशवाहन को ही आन्तरिक सम्प्रेषण कहा जाता है। यह उच्च अधिकारियों एवं अधीनस्थों के बीच तथा विभिन्न संगठनात्मक स्तरों पर कर्मचारियों व इकाईयों के मध्य किया जाता है। संस्था के संचालन में आन्तरिक सम्प्रेषण का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

आन्तरिक सम्प्रेषण में आदेश-निर्देश, सूचनाएँ, नियम, कार्यपद्धतियाँ, कार्य रिपोर्ट, संगठन चार्ट, अधीनस्थों के विचार, सुझाव, शंकाएँ, शिकायतें, समस्याएँ, निवेदन आदि सम्मिलित हैं।

(2) **बाह्य सम्प्रेषण** (External communication) :- संस्था अपने बाह्य वातावरण से भी जुड़ी हुई होती है। इस वातावरण में अनेक समूह होते हैं जैसे ग्राहक, विनियोजक, व्यापारी, स्थानीय समुदाय, सरकार, दबाव समूह इत्यादि। इन बाह्य समूहों तथा संस्था के बीच होने वाले संदेशों के आदान-प्रदान को ही बाह्य सम्प्रेषण कहा जाता है।

एक व्यावसायिक उपक्रम सम्पूर्ण वातावरण की एक उप-प्रणाली है। बाह्य वातावरण तथा उपक्रम के बीच सूचनाओं एवं संदेशों का निरन्तर आदान-प्रदान होता रहता है। बाह्य सम्प्रेषण में निम्नलिखित संदेशों व कार्यो को शामिल किया जा सकता है :-

(i) बाजार अनुसंधान द्वारा ग्राहकों की आवश्यकताओं का अध्ययन,

(ii) ग्राहकों व व्यापारियों से आदेशों की प्राप्ति,

(iii) विनियोजन प्रव त्तियाँ,

(iv) श्रम-संघों के साथ वार्ताएँ तथा सामूहिक सौदेबाजी,

(v) सरकार, राजनेताओं तथा दबाव समूहों के साथ विचार-विमर्श एवं वार्ता,

(vi) प्रतिस्पर्धी संस्थाओं के साथ समझौते व संयोजन,

(vii) स्थानीय समुदाय की समस्याओं पर विचार,

(viii) यंत्र, उपकरण, कच्ची सामग्री आदि की आपूर्ति के लिए व्यवहार,

(ix) सरकार की नीतियों की समीक्षा व कानूनों का पालन,

(x) बैंको व वित्तीय संस्थाओं के साथ पत्र-व्यवहार,

(xi) आयात-निर्यात, पूंजी नियन्त्रण, लाभ वितरण आदि के सम्बन्ध में बाह्य पक्षों से सम्पर्क।

(xii) बाह्य सम्प्रेषण को प्रभावी बनाकर ख्याति अर्जित की जा सकती है।

5. **माध्यमों के आधार पर प्रकार** (Types on the basis of Media) :- संदेश माध्यमों के आधार पर सम्प्रेषण के निम्न चार प्रकार हैं :-

(1) मौखिक सम्प्रेषण,

(2) लिखित सम्प्रेषण,

(3) सांकेतिक सम्प्रेषण, तथा

(4) द श्य-श्रव्य सम्प्रेषण।

(1) **मौखिक सम्प्रेषण** (Verbal communication) :- जब वाणी अथवा शब्दों के उच्चारण द्वारा पारस्परिक रूप से संदेशों का आदान-प्रदान किया जाता है तो इसे मौखिक सम्प्रेषण कहा जाता है। इसमें प्रेषक व प्रेषिति

आमने-सामने रहकर अथवा वे किसी यंत्र के माध्यम से आपस में संदेशों का विनिमय कर सकते हैं। यह सर्वाधिक प्रचलित एवं प्रभावशाली माध्यम माना जाता है। लॉरेन्स ऐप्पले (Lawrence Appley) का कथन है कि, "मौखिक शब्दों में पारस्परिक सम्प्रेषण करना संदेशवाहन की सर्वोत्तम कला है।"

मौखिक सम्प्रेषण के कई ढंग हैं, जैसे प्रत्यक्ष बातचीत, भेंटवार्ता, संगोष्ठी, सभा, भाषण, विचार-विमर्श, रेडिया वार्ता, साक्षात्कार, सम्मेलन, प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आदि। विभिन्न अनुसंधानों से स्पष्ट हो चुका है कि प्रबन्धक वर्ग अपने कुल सम्प्रेषण समय का 75% समय मौखिक सम्प्रेषणों में ही व्यतीत करते हैं। मौखिक सम्प्रेषण के महत्त्व को निम्न उद्देश्यों द्वारा दर्शाया जा सकता है -

(i) प्रभावशाली नेत त्व की स्थापना करना,

(ii) प्रबन्ध में मानवीय द ष्टिकोण को मान्यता प्रदान करना,

(iii) प्रबन्ध में कर्मचारी भागीदारी को प्रोत्साहित करना,

(iv) परामर्शीय प्रबन्ध को प्रोत्साहित करना,

(v) सत्ता के प्रत्यायोजन एवं कार्य निष्पादन को प्रभावी बनाना,

(vi) व्यवसाय की समस्याओं पर मन्त्रणा करना,

(vii) कर्मचारियों में समूह भावना का विकास करना,

(viii) कार्य का प्रजातान्त्रिक वातावरण तैयार करना।

लाभ (Advantages) - मौखिक सम्प्रेषण में निम्न लाभ हैं :-

(i) हाव-भाव, वाणी, व शब्दों की अभिव्यक्ति के कारण यह सर्वाधिक प्रभावशाली होता है।

(ii) अस्पष्टता का निवारण तत्काल हो सकता है।

(iii) संदेशों को शीघ्र पहुँचाया जा सकता है।

(iv) प्रत्यक्ष सम्पर्क के कारण प्रतिक्रिया की जानकारी हो जाती है।

(v) यह लोचशील है जिसका आवश्यकतानुसार समायोजन सम्भव है।

(vi) भ्रमों, गलतफहमियों आदि का निवारण सुगमता से हो जाता है।

(vii) वाक्-चातुर्य से परस्पर सहयोग बढ़ता है।

(viii) इसमें समय, धन व श्रम की बचत होती है।

दोष (Disadvantages) - इसके कुछ दोष निम्नानुसार हैं :-

(i) इसमें दोनों पक्षों की उपस्थिति आवश्यक होती है।

(ii) इसका सही-सही अभिलेख उपलब्ध न होने पर भावी संदर्भ देना कठिन हो जाता है।

(iii) महत्त्वपूर्ण बिन्दु छूट जाने का भय रहता है।

(iv) लिखित साक्ष्य का अभाव रहता है।

(v) सोचने के लिए अपर्याप्त समय रहता है।

(vi) मौखिक संदेश से जिम्मेदारी की भावना नहीं आ पाती है।

(vii) इस माध्यम से संदेश में व्यक्तित्व एवं भावनात्मक बाधाएँ खड़ी हो जाती हैं।

(viii) सभी कही गयी बातों को सुनना व समझना कठिन होता है।

2. **लिखित सम्प्रेषण** (Written communication) :- लिखित सम्प्रेषण से आशय प्रेषक द्वारा किसी संदेश को लिखित रूप से प्रेषण करने से है। लिखित सम्प्रेषण के लिए पत्र, पत्रिकाएँ, बुलेटिन, प्रतिवेदन, हैण्डबुक, मेन्युअल्स, सुझाव पुस्तिकाएँ, ग्राफ, चित्र, परिपत्र, कार्यव त्तांत आदि का प्रयोग किया जाता है।

लिखित सम्प्रेषण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माध्यम है। अतः इसको तैयार करते समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए। कीथ डेविस (Keith Davis) के अनुसार संवाद को लिखते समय निम्न बातों को ध्यान में रखनी चाहिए -

(i) सरल शब्दों व मुहावरों का प्रयोग करना चाहिए।

(ii) छोटे एवं प्रचलित शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

(iii) व्यक्तिगत सर्वनामों जैसे "तुम" और "वह" का प्रयोग करना चाहिए।

(iv) उदाहरणों, द ष्टान्तों व चार्टों का प्रयोग करना चाहिए।

(v) छोटे-छोटे वाक्यों तथा अनुच्छेदों का प्रयोग करना चाहिए।

(vi) वाक्य संरचना 'एक्टिव वाइस' (Active voice) के प्रयोग पर आधारित होनी चाहिए।

(vii) अलंकारों और विश्लेषणों का न्यूनतम प्रयोग किया जाना चाहिए।

(viii) विचारों की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष एवं तर्कयुक्त होनी चाहिए।

(ix) अनावश्यक शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

लाभ (Advantages) - लिखित सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ हैं :-

(i) संदेशों में स्पष्टता रहती है तथा इनका प्रमाण उपलब्ध रहता है।

(ii) इन्हें भावी संदर्भ के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

(iii) यह विस्त त संदेशों के लिए उपयोगी रहता है।

(iv) इसमें उत्तरदायित्व का निर्धारण आसान होता है।

(v) इसमें अर्थ की समानता रहती है।

(vi) इसमें भाषा, व्यक्तित्व एवं भावनात्मक बाधाओं पर सुगमता से नियन्त्रण किया जा सकता है।

(vii) परस्पर अविश्वास के समय यह उपयुक्त रहता है।

दोष (Disadvantages) - लिखित सम्प्रेषण के दोष निम्नानुसार हैं :-

(i) इसमें समय, धन व श्रम का उपव्यय होता है।

(ii) प्रेषिति की प्रतिक्रियाओं का तत्काल ज्ञान नहीं हो पाता है।

(iii) इसमें गोपनीयता भंग होने का भय रहता है।

(iv) इसमें भ्रमों व संदेहों के निवारण में समय लग जाता है।

(v) लिखित संदेश में अनेक औपचारिकताएँ पूरी की जाती है।

उपरोक्त सब दोषों के उपरान्त भी लिखित सम्प्रेषण बहुत उपयोगी होती है। तकनीकी, औपचारिक एवं वैधानिक प्रक ति के सम्प्रेषण तो लिखित ही होते हैं। अधिक लम्बे, आँकड़ेयुक्त संदेशों के लिए भी लिखित माध्यम ही अपनाना पड़ता है। अनेक वैधानिक सभाओं की नियमावलियाँ, कार्यावली, सूक्ष्म आदि लिखित रूप में ही सम्प्रेषित किये जाते हैं।

3. **सांकेतिक अथवा अमौखिक सम्प्रेषण** (Gestural or non-verbal communication) :- यह सम्प्रेषण संकेतों, हाव-भावों, मौन, शारीरिक मुद्राओं, चेहरे की अभिव्यक्ति आदि के द्वारा किया जाता है। कहावत है कि "हाव-भाव शब्दों की अपेक्षा अधिक दर्शाते हैं (Actions often speak louder than words)।" यह उक्ति सांकेतिक सम्प्रेषण के महत्त्व को प्रकट करती है। सांकेतिक सम्प्रेषण "शरीर की भाषा" (Body language) अथवा "व्यवहार की भाषा" (Language of action) पर आधारित हैं।

शोभना खण्डवाला के अनुसार, "सम्प्रेषण में प्रत्यक्ष रूप में, जाने-अनजाने में प्रेषित शब्दों, प्रव त्तियों, भावनाओं, स्वरों, संकेतों तथा इशारों का योग है। यहाँ तक कि मौन रहना भी सम्प्रेषण का प्रभावपूर्ण रूप है। किसी व्यक्ति

के ललाट पर पड़े हुए बल असहमति की इतनी स्पष्ट अभिव्यक्ति है जो कई सौ शब्दों द्वारा भी प्रकट नहीं की जा सकती है।" सांकेतिक सम्प्रेषण में पीठ थपथपाना, किसी व्यक्ति की ओर मुस्कुराना, उससे हाथ मिलाना, आँख से इशारा करना, टेढ़ी निगाह से देखना, मुँह लटका देना आदि शारीरिक हाव-भाव सम्मिलित है। प्रायः सांकेतिक सम्प्रेषण का उपयोग स्वतंत्र रूप से कम किया जाता है। इसका प्रयोग मौखिक संचार के साथ ही अधिक होता है।

4. **द श्य-श्रव्य सम्प्रेषण** (Audio-visual communication) :- वर्तमान युग में सम्प्रेषण के द श्य-श्रव्य माध्यमों का महत्त्व तेजी से बढ़ता जा रहा है। आजकल उद्योगों में भी अनेक क्रियाओं जैसे प्रशिक्षण, सभाओं व सम्मेलनों, विक्रय अभियानों, सर्वेक्षणों, प्रचार आदि में चित्रों, फिल्मों, वीडियो कैसेट, मूवी कैमरों, टेप-रिकॉर्डरों का उपयोग बहुतायत से किया जा रहा है। तकनीकी उपकरणों के उत्पादन व विक्रय, विज्ञापन, शिक्षण कार्यक्रमों आदि में द श्य-श्रव्य सम्प्रेषण का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है।

सन्देशवाहन की बाधाओं को दूर करने हेतु सुझाव
(Suggestions to Overcome Barriers to Communication)

सन्देशवाहन के मार्ग में अनेक बाधाएं हैं अतः प्रबन्धकों को अच्छा सम्प्रेषक बनने के लिए न केवल अपने संदेशों में सुधार करना चाहिए वरन् सम्प्रेषण के प्रति अपनी समझ व कौशल में भी व द्धि करनी चाहिए। सम्प्रेषण की बाधाओं को दूर करने के कुछ सुझाव निम्नलिखित है :-

1. **सन्देशवाहन योजना** :- सन्देशवाहन की बाधाओं को दूर करने के लिए सर्वप्रथम हमें सम्प्रेषण का कार्य एक निश्चित योजना के अनुसार बनाना चाहिए। योजनाबद्ध सम्प्रेषण से एक ओर जहां उच्च अधिकारियों एंव अधीनस्थों के मध्य सूचनाओं का आदान प्रदान सुगम हो जाएगा वहीं दूसरी ओर अधीनस्थ सही समय पर सूचनाएं प्राप्त होने से कार्य को सफलतापूर्वक करने में सक्षम होंगे साथ ही सूचनाओं की प्राप्ति में होने वाले अतिरिक्त समय की भी बचत सम्भव होगी।
2. **प्रत्यक्ष सम्प्रेषण** :- जहाँ तक सम्भव हो, संदेश सम्बन्धित व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से दिए जाने चाहिएं। प्रत्यक्ष सन्देश से समय बचता है और मूल सन्देश अपरिवर्तित रहता है।
3. **सरल भाषा** :- सम्प्रेषण में ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए जिसे सरलता से समझा जा सके; तकनीकी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए; बहुअर्थय शब्दों का चयन नही किया जाना चाहिए। भाषा समझ उत्पन्न करने वाली होनी चाहिए पहेली नही।
4. **संचार सिद्धान्तों का अनुपालन** :- संदेश के निर्माण, संरचना तथा प्रतिपुष्टि मे सम्प्रेषण के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए।
5. **उद्देश्यों की स्पष्टता** :- सम्प्रेषण के लक्ष्य स्पष्ट होने चाहिएं 'वास्तविक एवं प्रकट' दोनों प्रकार के उद्देश्यों में एकसमानता रहनी चाहिए।
6. **अनौपचारिक एवं व्यक्तिगत संदेशवाहन का प्रयोग** :- सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए यह जरूरी है कि उसमें औपचारिक संपर्को के साथ-साथ अनौपचारिक संपर्को का भी इस्तेमाल किया जाए।
7. **उपयुक्त माध्यम** :- सन्देश की प्रकृति, तीव्रता एवं अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए संचार के उपयुक्त माध्यम का चुनाव करना चाहिए।
8. **न्यूनतम प्रबन्ध स्तर** :- कुशल सम्प्रेषण के लिए संगठन संरचना में प्रबन्ध के स्तर भी यथासम्भव न्यूनतम रहने चाहिए ताकि सन्देश शीघ्रता से कर्मचारियों को प्राप्त हो सकें।
9. **पारस्परिक सदभाव एवं विश्वास** :- सन्देशवाहन संदेश देने वाले (उच्च अधिकारियों) और पाने वाले (अधीनस्थ) के बीच पारस्परिक सदभाव एवं विश्वास की भावना उत्पन्न करता है। पारस्परिक अविश्वास एक दूसरे को आवश्यक सूचनाएं प्रदान करने, स्वीकार करने और समझने में बाधा उत्पन्न करती है। व्यावसायिक उपक्रम में पारस्परिक

सद्भाव एवं विश्वास का वातावरण पैदा करने का दायित्व उच्च अधिकारियों का होता है। अच्छे मानवीय सम्बन्ध बनाकर सम्प्रेषण को प्रभावी बनाया जा सकता है।

10. **वैयक्तिक विभिन्नताओं पर ध्यान** :- प्रेषक को वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर ही सूचनाओं का प्रेषण करना चाहिए ताकि उनसे उत्पन्न बाधाओं को दूर किया जा सके।

11. **पदोन्नति नीति** :- पदोन्नति नीति की आकांक्षा से अधीनस्थ अपने अधिकारियों के सम्मुख सही एवं निष्पक्ष बात प्रस्तुत नहीं करते। सदैव वे वही बात करते हैं जिससे उनके अधिकारी खुश हों और यथासम्भव जल्द से जल्द पदोन्नति दें। अतः इस बाधा को दूर करने के लिए संगठन में आवश्यक आदर्श पदोन्नति सम्बन्धी नियम एवं उपनियम बनाए जाएं तथा उनका कठोरता के साथ पालन किया जाए। निष्पक्ष पदोन्नति के लिए यह आवश्यक है कि पदोन्नति का आधार योग्यता, अनुभव, परिश्रम एवं कर्त्तव्यनिष्ठा हो। चापलूस, खुशामदी एवं कामचोर व्यक्तियों की पदोन्नति के लिए योग्यत, अनुभव एवं कर्तव्यनिष्ठा को ओझल नहीं किया जाना चाहिए।

12. **समयानुकूलता** :- सम्प्रेषण में बाधा इसलिए भी जन्म लेती है कि संवाददाता द्वारा सन्देश का प्रेषण ठीक समय पर नही किया जाता। उपयुक्त समय पर भेजी गई सूचना अनेक प्रकार से उपयोगी सिद्ध होती है।

13. **सुनने की आदत का विकास** :- सन्देशवाहन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि संस्था के अधीनस्थों में सन्देशों को सुनने की आदत का विकास किया जाए जिससे वे सन्देश को सुनकर तथा समझकर ही निर्णय लें और ऐसा न हो कि वे पूरा सन्देश सुनने से पहले ही अपना निर्णय ले लें। यदि सुनने सम्बन्धी कोई कमी या बाधा हो तो उसे दूर करने के लिए उपयुक्त यन्त्रों की सहायत ली जानी चाहिए।

14. **वैकल्पिक साधनों का प्रयोग** :- जब संगठन में अनेक स्तर होने के कारण संदेशों के आदान-प्रदान में कठिनाई उत्पन्न होने लगती है तो सम्प्रेषण के लिए वैकल्पिक माध्यमों व साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

15. **अनुगमन एवं प्रतिपुष्टि** :- प्रेषक को इस बात की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए कि संदेश प्राप्तकर्ता ने संदेश का सही एवं वही अर्थ लगाया है जो उसके मस्तिष्क में है। प्रेषिति की प्रतिक्रिया का भी तत्काल ज्ञान किया जाना चाहिए और उसके संशयों व भ्रमों को दूर करना चाहिए।

16. **पुनराव त्ति** :- सही समझ उत्पन्न करने के लिए संदेश की पुनराव त्ति भी की जानी चाहिए।

अध्याय–18
संगठन विकास
(Organisation Development)

संगठन विकास का सम्बन्ध संगठन व्यवहार के व्यापारिक पहलू से माना जाता है। हम निरन्तर परिवर्तन के बीच में रहते हैं। हमारा वातावरण, जीवन परिवेश, संगठनात्मक व्यवहार, हमारी संस्कृति आदि निरन्तर प्रवाहशील हैं। इसी प्रकार प्रत्येक संगठन भी एक बहाव है इसका प्रत्येक घटक प्रवाह में रहता है। परिवर्तन विकास का प्रतीक है। व्यवस्थित, एकीक त एवं नियोजन परिवर्तन के द्वारा संगठन को प्रभावी बनाया जा सकता है। संगठन विकास मुख्यतः जटिल संगठनों में नियोजित परिवर्तन से सम्बन्धित है। संगठन विकास का मुख्य उद्देश्य संगठन के मानवीय संसाधनों का विकास और उनकी कार्यनिष्पादन क्षमता में सुधार करना है। यह संगठन की प्रभावशीलता में व द्धि करने की एक नियोजित प्रक्रिया है। यह व्यक्तियों की अभिव त्तियों, मूल्यों, संगठन की संरचना तथा नीति में समय परिवर्तन लाने की प्रक्रिया है। Fred Luthans तो परिवर्तन के प्रबन्ध तथा मानवीय संसाधनों के विकास को भी संगठन के विकास का एक महत्वपूर्ण अंग मानते हैं। कीथ डेविस ने इसे शिक्षण की एक व्यूहरचना बतलाई है जिसके अन्तर्गत संगठन की सम्पूर्ण संस्कृति पर इस उद्देश्य से ध्यान केन्द्रित किया जाता है कि नियोजित परिवर्तन लाया जा सके। संगठन विकास नियोजन संगठनात्मक विकास की प्रक्रिया का नुस्खा है।यह संगठन में परिवर्तन लाने का एक व्यवहारवादी द ष्टिकोण है। संगठन विकास उपक्रम की समस्या-समाधान एवं नवीनीकरण क्षमता में व द्धि करने की तकनीक है। फ्रेड ल्यूथान्स (Fred Luthans) के अनुसार, "परिवर्तन के प्रबन्ध एवं मानवीय संसाधनों के विकास की आधुनिक अभिगम (Approach) को संगठन विकास के नाम से जाना जाता है।"

वारेन एवं बेनिस के अनुसार, "संगठन विकास एक जटिल शैक्षणिक रणनीति है जिसका प्रयोजन संगठन में व्याप्त विश्वासों, मान्यताओं, धारणाओं एवं मूल्यों में परिवर्तन करना होता है जिससे संगठन नई तकनीकों, बाजारों, चुनौतियों तथा तीव्र गति से होने वाले परिवर्तन के अनुसार अपने आपको ढालने मे सक्षम हो सके।"

रिचर्ड बेकहार्ड के शब्दों में, "संगठन विकास वह परिवर्तन प्रयास है जो नियोजित, संगठन विस्त त तथा उच्च स्तर से सम्बन्धित है, तथा जो व्यवहारवादी विज्ञान के ज्ञान का उपयोग करते हुए संगठन की प्रक्रियाओं में नियोजित हस्तक्षेप के जरिए संगठन की प्रभावशीलता एवं स्वास्थ्य में व द्धि करता है।"

गार्डन लिपिट (Gordon Lippit), "संगठन विकास संगठन में उन मानवीय प्रक्रियाओं को स द ढ़ करना है जो संगठित प्रणाली की कार्यक्षमता में व द्धि करती है ताकि इसके लक्ष्य प्राप्त किए जा सकें।"

अतः यह कह सकते हैं कि संगठन विकास नियोजित परिवर्तन एवं व्यवहारवादी शिक्षण की एक दीर्घकालीन एवं संगठन व्यापी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत संगठन की तकनीकी व मानवीय प्रक्रियाओं, मूल्यों, संस्कृति एवं संरचानाओं में परिवर्तन लाकर संगठनात्मक क्षमता, प्रभावशीलता, गत्यात्मकता एवं परिपक्वता में व द्धि की जाती है।

संगठन विकास के विशिष्ट लक्षण
(Distintive Features of Organisation Development)

संगठन विकास की विचारधारा के प्रमुख लक्षण निम्नानुसार हैं:-

1. **नियोजित विकास**:- संगठन विकास नियोजित परिवर्तनों का द ष्टिकोण हैं। जिसमें परिवर्तनों को अव्यवस्थित एवं आकस्मिक रूप से प्रबन्ध नहीं किया जाता है। यह एक शिक्षक की रणनीति है जिसका प्रयोजन नियोजित परिवर्तन

को सुगम बनाना है। संगठन विकास परिवर्तन के प्रति समंक आधारित द ष्टिकोण है जो उन समस्त तत्वों को शामिल करता है जो कि प्रबन्धकीय नियोजन में शामिल होते हैं। यह लक्ष्य-निर्धारण क्रिया विनियोजन क्रियान्वयन निरीक्षण एवं आवश्यकतानुसार सुधार कार्यवाही को सम्मिलित करता है। यह प्रचलित प्रबन्ध प्रक्रियाओं में एक योजनाबद्ध हस्तक्षेप है जिसका उद्देश्य व्यवहारवादी विज्ञान के ज्ञान, नई प्रौद्योगिकी व नए संसाधनों का प्रयोग करके गतिशील वातावरण में संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करना है।

2. **व्यापक परिवर्तन** (Comprehansive Change) - संगठन विकास के प्रयासों में "संपूर्ण प्रणाली" सम्मिलित होती है। संपूर्ण संगठन स्तर पर परिवर्तन किये जाते हैं। इसमें संपूर्ण संस्था ही अथवा इसके अन्तर्गत कोई निश्चित विभाग विश्लेषण की इकाई होता है।

3. **कार्य समूहों पर बल** (Emphasis on Work Groups) - यद्यपि संगठन विकास के कुछ प्रयासों का उद्देश्य व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक स्तर पर परिवर्तनों को लागू करना हो सकता है, किन्तु वास्तव में संगठन विकास 'समूह अधिमुखी' होता है। इस प्रकार संगठन विकास एक समाजशास्त्रीय द ष्टिकोण है।

4. **दीर्घकालीन प्रयास** (Long-range Change) - संगठन विकास एक दीर्घकालीन कार्यक्रम होता है। उसकी अवधि कुछ महीनों या वर्ष तक हो सकती है। यद्यपि इसमें शीघ्र परिणाम प्राप्त करने का लक्ष्य होता है, किन्तु यह कोई 'अन्तरकालीन या कामचलाऊ' उपाय नहीं है।

5. **परिवर्तन एजेन्ट की सहभागिता** (Participation of a Change Agent) - संगठन विकास में परिवर्तनों को लागू करने के लिए 'परिवर्तन एजेन्ट अथवा उत्प्रेरक' की सहायता ली जाती है। इसमें परिवर्तन के संबंध में 'इसे तुम स्वयं करो' की नीति नहीं अपनाई जाती है। परिवर्तन विशेषज्ञ अथवा अन्य विशेषज्ञ अधिकारी, जिन्हें बाहर से बुलवाया जाता है संगठन विकास की योजनाएँ तैयार करते हैं।

6. **'हस्तक्षेप तथा क्रिया शोध' पर विशेष बल** (Emphasis on Intervention & Action Research) - संगठन विकास की विचारधारा संगठन में चल रही विभिन्न क्रियाओं में 'नियोजित हस्तक्षेप' करने पर जोर देती है। संगठन विकास कार्यक्रमों के दौरान परिवर्तन एजेन्ट तथा ग्राहक संगठन के बीच संयुक्त रूप से कई क्रियाएँ नियोजित एवं क्रियान्वित की जाती हैं। जैसे सूचना संग्रहण, कार्यवाही करना, प्रक्रियाओं का अवलोकन तथा प्रतिपुष्टि करना आदि। संगठन विकास की भाषा में इन्हें 'हस्तक्षेप' कहा जाता है। हस्तक्षेप संगठन विकास के 'कार्यवाही दबाव' होते हैं।

   क्रियाशोध भी संगठन विकास का एक महत्वपूर्ण अंग है। जिसके अन्तर्गत व्यावहारिक समस्याओं के समाधान ढूँढे जाते है। यह व्यावहारिक अनुसंधान से भिन्न है। क्योंकि संगठन विकास में स्वयं परिवर्तन एजेन्ट की परिवर्तन की वास्तविक प्रक्रिया में सम्मिलित होता है।

7. **समस्या-प्रधान** (Problem-Oriented) - संगठन विकास समस्या प्रधान द ष्टिकोण है। इसमें तत्कालिक एवं प थक् की हुई अथवा अस्थायी समस्याओं के बजाय दीर्घकालिक समस्याओं के समाधान खोजे जाते हैं। समस्याओं के समाधान हेतु संगठन विकास में व्यवहारवादी विज्ञान के सिद्धान्तों तथा शोध निष्कर्षों का प्रयोग किया जाता है।

8. **कार्यवाही-प्रधान** (Action-Oriented) - संगठन विकास कार्यवाही प्रधान विचारधारा है। यह अन्य परिवर्तन तकनीकों की भांति केवल यह नहीं बतलाता है कि संगठनात्मक परिवर्तन किस तरह उत्पन्न होते हैं, वरन् यह उपलब्धियों, परिणामों एवं निष्पादन पर बल देता है।

9. **प्रणालीबद्ध द ष्टिकोण** (Systems Approach) - संगठन विकास सुव्यस्थित एवं सर्वांगीय प्रणाली दोनों ही है। यह संगठन की प्रौद्योगिकी, संरचना तथा प्रबन्ध प्रक्रियाओं को मानवीय संसाधनों के साथ घनिष्ठ रूप से संबंध करने का एक ढंग है।

10. **प्रबन्ध-प्रक्रिया का अभिन्न ढंग** (Integral Part of Management Process) - संगठन विकास का कार्य बाहरी संस्थाओं अथवा व्यक्तियों द्वारा नहीं किया जाता है, यद्यपि उनका मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है। यह संगठनात्मक परिवर्तन प्रक्रियाओं का प्रबन्ध करने का कार्यक्रम है।

11. **यह कोई 'तय करो' व्यूहरचना नहीं है** (It is not a "fix-it" strategy) - संगठन विकास संस्था का एक नियमित

कार्यक्रम है। यह किसी विशिष्ट परिवर्तन को क्रियान्वित करने के लिए अस्थायी क्रियाओं की कोई श्रंखला नहीं है। नये परिवर्तनों को संगठन में एक नियमित कार्य-ढंग का स्वरूप धारण करने में समय लगता है।

12. **सुद ढ़ सिद्धान्तों एवं शोध पर आधारित** (Based upon Sound Theory & Research) - संगठन विकास कोई नुमायशी चीज अथवा सनक नहीं है। यह विभिन्न विज्ञानों के सिद्धान्तों, शोध-कार्यों तथा व्यवहारिक अनुभवों पर आधारित द ष्टिकोण है। यह 'सीट-ऑफ-दी-पेन्टस' द ष्टिकोण का विपरीत है।

13. **सुधार पर बल** (Focus on Improvement) - संगठन विकास सुधार व निष्पादन पर बल देने वाला द ष्टिकोण है। यह द ष्टिकोण केवल 'बीमार' संगठनों अथवा 'सम्पन्न' इकाइयों के लिए ही नहीं है वरन् यह प्रत्येक संगठन को लाभान्वित करने का कार्यक्रम है।

14. **निदानात्मक कौशल** (Diagnostic efficiency) - संगठन विकास तथ्यों के आधार पर नियोजन करने पर बल देता है। इसके अन्तर्गत तथ्य संकलन एवं विश्लेषण के द्वारा संगठन में ऐसे कौशल का विकास किया जाता है कि भविष्य में वह स्वतः अपनी समस्याओं का निदान करने में समर्थ हो जाता है।

15. **समायोजन क्षमता** (Adjustment Capacity) - संगठन विकास का मुख्य उद्देश्य संगठन की समस्या समाधान संबंधी क्षमता का विकास है। संगठन विकास के द्वारा संस्था समस्याओं का सक्षम ढंग से सामना करने तथा उसके साथ बेहतर तालमेल स्थापित करने के योग्य हो जाती है।

16. **अन्य विशिष्ट लक्षण** (other Features):

(1) यह एक 'शैक्षिक कार्यक्रम' है जिसके द्वारा व्यक्तियों की प्रव त्तियों व द ष्टिकोण में परिवर्तन लाया जाता है।

(2) यह संगठन की 'वास्तविक समस्याओं' से सम्बद्ध है।

(3) इसमें 'मानवीय मूल्य' एवं व्यवहारवाद महत्वपूर्ण है।

(4) यह संगठन को 'पुनर्जीवन' देने की विधि है।

(5) इसमें 'सहयोगात्मक प्रबन्ध' के द्वारा संगठन का विकास किया जाता है।

(6) इसमें संगठनात्मक एवं 'अन्तर्समूह संस्कृति' में परिवर्तन करने पर जोर दिया जाता है।

(7) यह 'परिस्थितिगत प्रयास' है जो क्रिया शोध एवं समस्या समाधान तकनीकों पर आधारित होता है।

(8) यह संगठन में 'सामाजिक परिवर्तन, मूल्य प्रणाली' में परिवर्तन को दर्शाता है।

(9) इसमें प्रायः 'पेशेवर व्यवहारवादी वैज्ञानिकों', विशेषज्ञों, बाह्य परामर्शदाता आदि की सहायता ली जाती है।

संगठन विकास के मूल्य एवं मान्यताएँ
(Values & Assumptions of Organisation Development)

संगठन विकास के मूल्य एवं मान्यताएँ वे आधार हैं जिन पर संगठन विकास की विचारधारा टिकी हुई है। ये मूल्य एवं मान्यताएँ व्यक्तियों की प्रकृति, समूह संबंधों तथा संगठन की कार्य प्रणाली, मानव व्यवहार आदि से संबंधित हैं। डगलस मैकग्रेगर, केनेथ वेक्सले तथा युकल के अनुसार ये निम्नानुसार हैं:

1. व्यक्ति 'स्व-विकास की स्वाभाविक इच्छा' रखते हैं।
2. अधिकांश व्यक्ति संगठन के लिए योगदान करने की 'अन्तः क्षमता एवं इच्छा' रखते हैं।
3. 'प्रबन्ध प्रणालियों' के उपयुक्त एवं संवर्द्धनकारी न होने के कारण कर्मचारी संगठन में अपना उतना योगदान नहीं कर पाते है जितना कि वे कर सकते हैं।
4. अधिकांश संस्थाओं में समूह सदस्यों के बीच 'अन्तर्वैयक्तिक विश्वास एवं सहयोग' का अभाव पाया जाता है।
5. नेता संपूर्ण 'नेत त्व उत्तरदायित्वों का निष्पादन' करना चाहते हैं जो कि असंभव होता है। इनमें से कुछ उत्तरदायित्वों के निर्वाह में समूह सहायक हो सकते हैं।

6. कर्मचारी दूसरे कार्य-समूह के सदस्यों द्वारा मान्यता प्रदान किये जाने की तीव्र इच्छा रखते हैं। अतः 'समूहों द्वारा सहकारी प्रयास' एक प्रभावशाली कार्य द ष्टिकोण हैं।
7. समूहों को प्रभावशाली बनाने के लिए इनके सदस्यों में 'स्वतन्त्र सम्प्रेषण' को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।
8. कर्मचारी अपनी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति तब तक नहीं कर सकते हैं जब तक वे यह अनुभव न करें कि समूह उनके बारे में 'सकारात्मक भावनाएँ' रखता है।
9. संस्था के किसी 'एक भाग या उप-प्रणाली' (जैसे कर्मचारी या प्रौद्योगिकी) में होने वाले परिवर्तनों से दूसरे भाग भी प्रभावित होंगे।
10. प्रबन्धक अपने तथा दूसरे कार्य समूहों में 'परस्परव्याप्तता' रखता है।
11. संगठनात्मक प्रभावशीलता में 'संघर्ष निराकरण शैलियों' की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मतभेद की वे स्थितियाँ जहाँ एक पक्ष जीतता है तथा दूसरा हारता है (शून्य निष्कर्ष खेल) संगठन के लिए हानिप्रद होती हैं।
12. संगठन विकास की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उपक्रम की सेविवर्गीय-मानव-संसाधन प्रणालियों द्वारा संगठन विकास के 'नियम-निर्देशों को संलित' किया जाना चाहिए।
13. अधिकांश समूह एवं संगठन 'भावनाओं की खुली अभिव्यक्ति' को प्रोत्साहित नहीं करते हैं। भावनाओं को दबाने के कारण कर्मचारियों की समस्याओं को हल करने की क्षमता एवं इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा उनकी कार्य-संतुष्टि एवं निष्पादन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।
14. व्यक्तियों की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को पूरा करना संगठनात्मक जीवन का मुख्य उद्देश्य है। संगठन में 'व्यक्तियों की स्व-संतुष्टि' बहुत आवश्यक है।
15. 'संगठन में शक्ति का समकरण' दीर्घकालीन संगठनात्मक स्वास्थ्य के लिए न केवल वांछनीय, वरन् आवश्यक भी है।
16. मूल रूप से व्यक्ति अच्छे होतें हैं, बुरे नहीं।
17. व्यक्ति सदैव बदल रहे एवं प्रगति कर रहे होते हैं, स्थिर नहीं रहते।
18. संगठन में धोखा देने तथा छल-योजना करने से प्रबन्ध एवं अधीनस्थों में सहयोग घट जाता है।

संगठन विकास की आवश्यकता एवं उद्देश्य
(Need & Objectives of Organisation Development Efforts)

संगठन विकास के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैः

1. संगठन सदस्यों में विश्वास एवं सहयोग का स्तर बढ़ाना।
2. ऐसा वातावरण उत्पन्न करना जिसमें विशिष्ट कौशल एवं ज्ञान के आधार पर सता स्थापित की जा सके।
3. नियोजन एवं क्रियान्वयन में वैयक्तिक एवं सामूहिक उत्तरदायित्व का स्तर बढ़ाना।
4. संगठन सदस्यों में सम्प्रेषण की स्वतन्त्रता बढ़ाना।
5. समस्याओं के सहक्रियात्मक समाधान खोजना, अर्थात स जनात्मक हल खोजना।
6. संगठनात्मक प्रभावशीलता में व द्धि करना।
7. परिवर्तन का सामना करने तथा अनुकूलन करने की विधियाँ खोजना।
8. समूहों के भीतर तथा समूहों के मध्य संगठनात्मक समस्याओं को दबाने के बजाय प्रकट करके निराकरण करना।
9. संगठन में वैयक्तिक उत्साह एवं संतुष्टि के स्तर में व द्धि करना।
10. लाभदायकता, बाजार अंश एवं नवप्रवर्तनता द्वारा मापनीय संगठन निष्पादन में सुधार करना।
11. संगठन को इसके वातावरण के साथ श्रेष्ठ समायोजन करने योग्य बनाना।

12. संगठनात्मक समस्याओं का सामना करने के लिए सदस्यों में इच्छा जाग त करना।
13. आन्तरिक व्यवहार प्रारूप जैसे-अन्तर्वैयक्तिक संबंधों, अन्तर-समूह संबंधों, भूमिकाओं, स्व-धारणा, सम्प्रेषण आदि में व द्धि करना।
14. संगठन में लोचपूर्ण तथा स्व-नवीनीकरणशील प्रणाली का विकास करना।
15. संगठन में प्रतिपुष्टि प्रणाली को विकसित करना तथा उसमें सुधार करना।
16. संगठन के अन्तर्निभर भागों में उच्च भागीदारी एवं निम्न प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करना।
17. अभिव तियों अथवा मूल्यों में परिवर्तन करना, व्यवहार में सुधार करना तथा संरचना तथा नीति में परिवर्तन को प्रेरित करना।
18. मानव संसाधन विकास के संबंध में मानवीय होने तथा संचेतना, भागीदारी एवं प्रभाव उत्पन्न करने के अवसर उपलब्ध करवाना।
19. व्यक्तियों में 'स्व-अन्तर्दष्टि' जाग त करना ताकि तनाव, दबाव तथा अन्तर्वैयक्तिक संघर्ष कम हो सकें।
20. अन्तर्वैयक्तिक कौशल विकसित करना।

संगठन विकास हस्तक्षेप

अथवा

संगठन विकास क्रियाएँ/तकनीकें/व्यूहरचनाएँ

(Organisation Development Interventions)

or

(Organisation Development Activities/Techniques/Strategies)

संगठन विकास उन अवधारणाओं एवं तकनीकों का समूह है जिनके द्वारा संगठन के सदस्य परिवर्तनों की पहल करना, उन्हें स्वीकार करना तथा उनका सामना करना सीखते हैं। संगठन विकास की कई तकनीकें मानव सम्बन्धों की विचारधारा पर आधारित हैं। कई तकनीकें व्यवहारवाद का परिणाम हैं। इन तकनीकों की संख्या बहुत अधिक है। यह विस्तार एवं गहराई की द ष्टि से भी जटिल है। संगठन विकास के उद्देश्यों की विभिन्नता के अनुसार इनकी प्रकृति भी विविध है। हस्तक्षेप (Intervention) संरचित क्रियाओं का एक समूह है जिसमें चयनित संगठनात्मक इकाइयाँ वे कार्य करती हैं जिनका उद्देश्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संगठनात्मक सुधार करना होता है। 'हस्तक्षेप' संगठन विकास कार्यवाही संवर्द्धन (Action thrust) है। इन क्रियाओं को संगठनात्मक पुनरूज्जीवन कार्यक्रम के अन्तर्गत सामूहिक रूप से व्यूहरचना कहा जाता है। संगठन विकास व्यूहरचना से तात्पर्य किसी निश्चित समय में लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न संगठनात्मक सुधार क्रियाओं को एकीक त करने की समग्र योजना है। संगठन विकास कार्यक्रम के लिए अनेक तकनीकों, हस्तक्षेप विधियों , क्रियाओं, व्यूहरचनाओं का प्रयोग किया जाता है। इसमें से कुछ निम्न प्रकार हैः-

1. **अति संवेदनशीलता प्रशिक्षण** (Sensitivity training)
2. **ग्रिड प्रशिक्षण अथवा प्रबन्धकीय ग्रिड** (Grid training or managerial grid)
3. **सिस्टम** 1-4 (System 1-4)
4. 3-D **प्रबन्ध** (3-D Management)
5. **सर्वेक्षण-पुनः निर्देशन** (Survey Feedback)
6. **प्रक्रिया परामर्श** (Process consultation)
7. **त तीय पक्षकारों द्वारा शांति वार्ता** (Third-Party Peacemaking)

8. **टीम-निर्माण** (Team Building)
9. **भूमिका विश्लेषण तकनीक** (Role Analysis Technique)
10. **व्यवहारात्मक विश्लेषण** (Transactional Analysis)
11. **जीवन एवं जीविका नियोजन** (Life & Career Planning)
12. **सामना सभा** (Confrontation Meeting)
13. **निदानात्मक साक्षात्कार** (Diognostic Interviews)
14. **व्यवहार रूपान्तर** (Behaviour Modification)
15. **क्रिया अनुसन्धान** (Action Research)
16. **कार्य विस्तार एवं सम्पन्नीकरण** (Job Enlargement & Job Enrichment)
17. **नियोजन एवं लक्ष्य निर्धारण** (Planning and Goal Setting)
18. **शिक्षा एवं मार्गदर्शन** (Education & Coaching)
19. **उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध** (Management by objectives)
20. **सहभागी प्रबन्ध** (Participative Management)
21. **नियोजित परिवर्तन** (Planned Change)

1. **अतिसंवेदनशीलता प्रशिक्षण** (Sensitivity Training) - अतिसंवेदनशीलता प्रशिक्षण, समूह गतिशीलता प्रशिक्षण तथा टी-समूह प्रशिक्षण आदि नामों से जाना जाता है। प्रशिक्षण की यह विधि सर्वप्रथम सन् 1946 में आरम्भ की गई थी जबकि New Britain, Connecticut के State Teachers Training College में अति संवेदनशीलता का प्रथम सत्र आरम्भ किया गया था। लेकिन इसका व्यापक रूप से प्रचलन सन् 1947 में National Training Laboratory Bethel के द्वारा किया गया। लेविन (Lewin), बैने (Benne), ब्रेडफोर्ड (Bradford) तथा लिपिट (Lippitt) आदि विद्वानों ने इस प्रशिक्षण के आरम्भ काल में इसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

   अति संवेदनशीलता प्रशिक्षण, प्रशिक्षण की ऐसी विधि है जिसमें 10 से 15 व्यक्तियों का एक समूह प्रशिक्षण के लिए लिया जाता है। इस समूह में एक या दो प्रशिक्षकों को भी सम्मिलित कर लिया जाता है। समूह में सम्मिलित किए जाने वाले व्यक्ति एकदम अपरिचित भी हो सकते हैं या वे किसी एक ही संगठन या संगठन के किसी एक ही विभाग से सम्बन्धित होने के नाते परिचित भी हो सकते हैं। प्रशिक्षणार्थी समूह दो-तीन सप्ताह तक निरन्तर रूप से दिन में एक या दो बार एक स्थान पर एकत्रित होता है। उनका यह प्रतिदिन का सत्र एक या दो घण्टे तक का होता है। आरम्भ में यह समूह बिना किसी विशिष्ट विषय, कार्य नियमावली तथा प्रशिक्षक के निदेशन में अपना कार्य आरम्भ करता है। समूह का सर्वमान्य उद्देश्य यही रहता है कि प्रत्येक व्यक्ति पर अपने स्वयं के व्यक्तित्व तथा समूह के अन्य सदस्यों पर उसके व्यवहार का क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करें और साथ ही उनका यह भी उद्देश्य रहता है कि वे किस प्रकार समूह को अधिक प्रभावपूर्ण बना सकते हैं जिससे कि समूह सदस्यों की आवश्यकताओं की अधिकाधिक सन्तुष्टि हो सके। आरम्भ में समूह सदस्यों के मध्य एक अलगाव की स्थिति बनी रहती है। यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रहती है। धीरे-धीरे समूह सदस्यों के मध्य उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं तथा सम्बन्धों के निर्माण के कारण अलगाव समाप्त होने लगता है। प्रशिक्षक इसे एक मूक दर्शक की भाँति देखता रहता है। वह सम्प्रेषण की समस्याओं, सदस्यों के मध्य उत्पन्न होने वाली गलत फहमियों तथा अन्तर्व्यक्तिगत सम्बन्धों आदि पर विशेष ध्यान देता है। प्रशिक्षण के दूसरे चरण में प्रशिक्षक समूह सदस्यों को अपने अवलोकन-बिन्दुओं से अवगत करता है। प्रशिक्षणार्थी अपने स्वयं के अनुभव की प्रशिक्षक के अवलोकन-बिन्दुओं से तुलना करता है। तत्पश्चात् वह समूह-सदस्यों से पारस्परिक विचार-विनिमय के समय अपने अनुभव, प्रशिक्षक के अवलोकन-बिन्दुओं तथा सदस्यों की सम्मति की तुलना कर अपना विचार स्थिर करता है। इस प्रकार प्रशिक्षणार्थी को शनैः शनैः अपना स्वयं का व्यक्तित्व प्रकट होने लगता है, वह जानने लगता है कि दूसरों पर उसके व्यवहार का क्या प्रभाव पड़ता है और किस प्रकार एक सुद ढ़ समूह की रचना होती है।

इस प्रकार के प्रशिक्षण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षक स्वयं एक योग्य व्यक्ति हो और साथ ही समूह के सदस्यगण पूर्ण स्वतन्त्रता, निष्पक्षता एवं स्पष्टता के साथ अन्य सदस्यों के व्यवहार के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करें। इस प्रकार के प्रशिक्षण से समूह सदस्यों के व्यवहार, मूल्यों और मान्यताओं में परिवर्तन लाया जा सकता है। सदस्यगण जब प्रशिक्षण की समाप्ति के पश्चात् अपने-अपने संगठनों में लौटकर वापिस जायेंगे तो उनका व्यवहार आदि सभी परिष्कृत होंगे और वे एक सुद ढ़ समूह की रचना के लिए एक उत्तम घटक सिद्ध हो सकेंगे।

2. **संगठन विकास ग्रिड** (Grid OD) - अमेरिका के प्रो॰ रॉबर्ट ब्लैक तथा जोन माउटन (Robert Blake and Jone Mouton) ने प्रबन्ध शैली (Managerial Style) तथा नेत त्व एवं पर्यवेक्षीय प्रारूप के निर्धारण हेतु एक प्रबन्धकीय ग्रिड का विकास किया था। उन्होनें प्रबन्धकीय शैली में दो प्रकार के घटकों को शामिल किया है। यह घटक हैं- उत्पादन में दिलचस्पी अथवा सम्बद्धता (concern for production) तथा कार्मिकों में दिलचस्पी अथवा सम्बन्ध (concern for people)। एक प्रबन्धक की पर्यवेक्षण अथवा प्रबन्ध शैली प्रमुखतः उत्पादन अथवा व्यक्तियों से जुड़ी होती है। प्रबन्धक मूलतः उत्पादन कार्यो अथवा कार्मिकों की समस्याओं में उत्सुक हो सकता है। रॉबर्ट तथा माउटन ने एक ग्रिड के माध्यम से इन दोनों प्रकार की अभिमुखता (orientation) को मापने का प्रयास किया था। इसे निम्न चित्र के द्वारा समझा जा सकता हैः

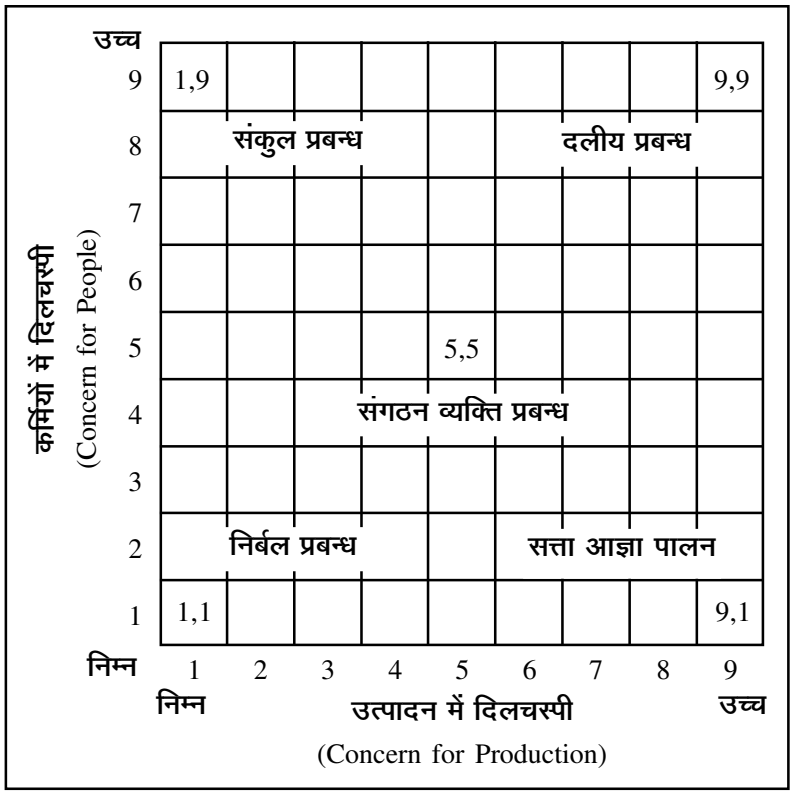

चित्र : प्रबन्धकीय ग्रिड

चित्र में 1, 1 प्रबन्ध अकुशल व निर्बल (Impoverished) प्रबन्ध शैली को दर्शाता है जिसमें प्रबन्धक न तो उत्पादन और न ही कार्मिकों के विकास में उत्सुक होता है, अर्थात् उसकी दिलचस्पी दोनों ही क्षेत्रों में न्यूनतम होती है। 1, 9 संकुल प्रबन्ध (Country Club Management) उत्पादन के प्रति न्यूनतम तथा कार्मिकों के प्रति अधिकतम सम्बद्धता की स्थिति है। 9, 1 प्रबन्ध कार्यकुशलता, सत्ता आदेश पालन तथा उत्पादन के प्रति अधिकतम किन्तु कार्मिकों के प्रति न्यूनतम लगाव की स्थिति है। 9, 9 दलीय प्रबन्ध की स्थिति है जिसमें प्रबन्धक की उत्पादन तथा कार्मिकों दोनों में ही अधिकतम दिलचस्पी होती है। यह एक आदर्श स्थिति है। 5, 5 संगठन व्यक्ति (Organisation Man) प्रबन्ध है जिसमें

दोनों ही घटकों-उत्पाद एवं व्यक्ति पर समान बल दिया जाता है। यह व्यावहारिक स्थिति है। ब्लैक एवं माउटन के अनुसार प्रबन्ध की 9, 9 शैली बहुत प्रभावी है जिसमें उत्पादन एवं सन्तुष्टि की स्थिति उच्चतम होती है तथा जिसके द्वारा एक सुद ढ़, निष्ठायुक्त एवं सुगठित (Cohesive) कार्य समूह का निर्माण किया जा सकता है।

एक संगठन विकास ग्रिड कार्यक्रम की निम्नलिखित छः अवस्थाएँ हैं:

(1) **प्रशिक्षण** (Training) - मुख्य प्रबन्धक ग्रिड विचारधारा के सम्बन्ध में सीखते हैं, अपनी प्रबन्धकीय शैली का मूल्यांकन करते हैं तथा दल विकास, समूह समस्या निराकरण एवं सम्प्रेषण से सम्बन्धित कौशल का विकास करते हैं।

(2) **दल विकास** (Team Development) - प्रशिक्षित प्रबन्धक कार्य स्थिति में एक नयी समझ का प्रयोग करते हैं। प्रबन्धक-अधीनस्थ सम्बन्धों तथा दल प्रभावशीलता को विकसित करने पर बल दिय जाता है।

(3) **अन्तर्समूह विकास** (Intergroup Development) - इस अवस्था में समन्वय तथा सहयोग को विकसित करने, तनावों को दूर करने तथा संयुक्त रूप से समस्याओं को हल करने के लिए कार्य समूहों के मध्य सम्बन्धों को सुधारा जाता है।

(4) **संगठनात्मक लक्ष्य निर्धारण** (Organisational Goal Setting) - उच्च प्रबन्धक संगठन का एक आदर्श मॉडल तैयार करते हैं तथा परीक्षण, मूल्यांकन एवं परिष्करण के लिए लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं।

(5) **लक्ष्य प्राप्ति** (Goal Attainment) - संगठन सदस्य आदर्श मॉडल को वास्तविकता में बदलने का प्रयास करते हैं।

(6) **स्थिरीकरण** (Stabilization) - यह जानने के लिए की संगठन के किन क्षेत्रों में अभी भी सुधार या परिवर्तन की आवश्यकता है, समस्त अवस्थाओं के परिणामों का मूल्यांकन किया जाता है। संगठन में सकारात्मक परिवर्तनों को स्थायी बनाने तथा अवसरों के नये क्षेत्रों का निर्धारण करने के प्रयास किये जाते हैं।

3. **प्रबन्ध पद्धतियाँ 1-4** (Management Systems 1-4) - अमेरिका के मिशीगन (Machigan) विश्वविद्यालय के प्रो॰ रैन्सिस लिकर्ट (Rensis Likert) ने प्रबन्ध की निम्न चार पद्धतियाँ बतलाई हैं:

पद्धति 1 : शोषणात्मक-अधिनायकवादी (Exploitative-authoritative)

पद्धति 2 : कल्याणकारी-अधिनायकवादी (Benevolvent-authoritative)

पद्धति 3 : परामर्शात्मक (Consultative), एवं

पद्धति 4 : भागीदारी (Participative)।

इन्हें निम्न चित्र द्वारा समझाया गया है।

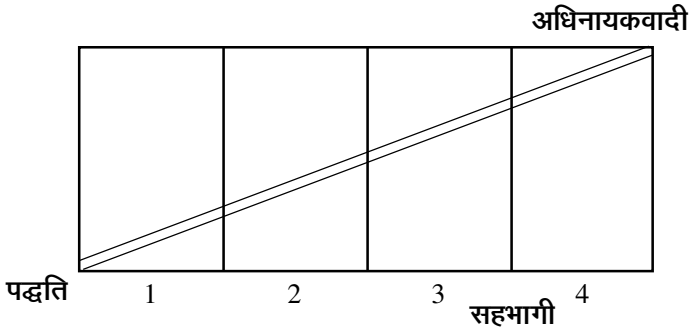

जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है प्रबन्ध पद्धति-1 बहुत अधिक अधिनायकवादी होती है तथा प्रबन्ध पद्धति-4 पूर्णतः सहभागी होती है जिसमें कर्मचारियों को प्रबन्धकीय निर्णयों में भागीदारी प्रदान की जाती है। संगठन विकास कार्यक्रम का लक्ष्य संस्था को अधिकाधिक सहभागी प्रबन्ध पद्धति की ओर ले जाना होता है। प्रबन्ध पद्धति 4 को एक आदर्श

प्रबन्ध व्यवस्था माना जाता है। संगठन विकास कार्यक्रम में सबसे पहले यह जानकारी प्राप्त की जाती है कि संस्था में प्रचलित प्रबन्ध पद्धति लिकर्ट की किस प्रबन्ध पद्धति के अनुरूप है। सर्वेक्षण तथा प्रश्नावली के माध्यम से यह सूचना एकत्रित कर ली जाती है। आदर्श प्रबन्ध पद्धति-4 तथा विद्यमान प्रबन्ध पद्धति के अन्तर को समाप्त करने के लिए संगठन विकास के अन्तर्गत सुधार की व्यूहरचना तैयार की जाती है। सामान्यतः अभिप्रेरण, सम्प्रेषण, निर्णयन, लक्ष्य-निर्धारण, नियंत्रण एवं निष्पादन के क्षेत्र में सुधार के प्रयास करके आदर्श प्रबन्ध पद्धति को प्राप्त किया जाता है।

4. **3-D प्रबन्ध (3-D Management)** - प्रो॰ विलियम जे॰ रैडिन (William J. Reddin) ने प्रबन्ध की इस विधि का विकास किया था। इसे 'त्रि-आयामीय (Three Dimensional) प्रबन्ध' के नाम से जाना जाता है। संगठन विकास कार्यक्रम में इसका बहुत महत्त्व है। यद्यपि त्रि-आयामीय प्रबन्ध का मुख्य आधार तो पूर्व-वर्णित प्रबन्धकीय ग्रिड ही है। प्रबन्धकीय ग्रिड दो आयामों अर्थात उत्पादन तथा कार्मिकों के प्रति अभिरूचि पर आधारित है। प्रो॰ रैडिन ने इसमें एक तीसरे आयाम-'प्रभावशीलता' (Effectiveness) को और जोड़ दिया है। इसका आशय यह हुआ कि प्रबन्धकीय ग्रिड अथवा लिकर्ट द्वारा सुझायी गयी प्रबन्ध पद्धतियों को ज्यों का त्यों स्वीकार न किया जाकर परिस्थिति के संदर्भ मे उनकी जाँच-परख की जानी चाहिए। प्रभावशाली प्रबन्ध पद्धति को अप्रभावशाली प्रबन्ध पद्धति से प थक् किया जाना चाहिए। प्रभावशाली पद्धति वही होती है जो प्रचलित परिस्थितियों में उचित हो। रैडिन के अनुसार चूँकि प्रबन्ध की ये चार पद्धतियाँ प्रभावी अथवा अप्रभावी हो सकती है, अतः उन्होंने प्रबन्धकों के लिए अन्य 8 प्रबन्ध शैलियों को प्रस्तुत किया। 3-D प्रबन्ध इन्हीं आठ शैलियों के विकल्प से संबन्धित है। रेन्सिस लिकर्ट के अनुसार श्रेष्ठ प्रबन्ध पद्धति केवल एक (सहभागी प्रबन्ध) ही है, जबकि रैडिन के अनुसार प्रभावी प्रबन्ध की चार शैलियाँ हैं। इस प्रकार त्रि-आयामीय प्रबन्ध आकस्मिकता अवधारणा के अनुसार ज्यादा व्यावहारिक है। 3-D प्रबन्ध यह बतलाता है कि प्रबन्ध की कोई भी शैली स्वयं में प्रभावी नहीं है। इसकी प्रभावशीलता उस स्थिति पर निर्भर करती है जिसमें इसका प्रयोग किया जाता है। अतः परिस्थितियों तथा वातावरण को ध्यान में रखते हुए जो भी प्रबन्ध पद्धति श्रेयस्कर हो उसे ही अपनाना चाहिए, तभी संगठन विकास के द्वार खुल सकते हैं। संगठन विकास की यह त्रि-आयामीय प्रबन्ध पद्धति परिस्थितियों के अनुरूप प्रबन्धकों का विकास करने पर बल देती है। प्रभाविता के आधार पर प्रबन्ध पद्धति का चयन किया जाना चाहिए। रैडिन की त्रि-आयामीय प्रबन्ध प्रणाली को विस्तारपूर्वक 'नेत त्व' वाले अध्याय में समझाया गया है।

5. **सर्वेक्षण पुनर्निवेशन** (Survey Feedback) - संगठन विकास की इस पद्धति के अन्तर्गत विश्लेषण की जाने वाली इकाई के सम्बन्ध में सर्वेक्षण किया जाता हैं। विश्लेषण की इकाई सम्पूर्ण संगठन, संगठन का एक विभाग विशेष या कोई भी एक कार्य इकाई हो सकती है। सर्वेक्षण के लिए प्रश्नावली के माध्यम से सामग्री एकत्रित की जाती है। साक्षात्कार, अवलोकन एवं अन्य विधियों से भी कुछ और सहायक सामग्री एकत्रित की जाती है। सर्वेक्षणकर्त्ता जो सामान्यतः बाह्य विशेषज्ञ होते हैं, इस समस्त एकत्रित सामग्री का विश्लेषण करते हैं। सर्वेक्षण इकाई को विश्लेषण परिणामों की सूचना देने को पुनर्निदेशन के नाम से जाना जाता है। सर्वेक्षण इकाई को सर्वेक्षण के इस क्रम में अपनी कमियों और कमजोरियों की जानकारी प्राप्त होती है और बाह्य विशेषज्ञ जिन्हें परामर्शदाता की हैसियत से इस कार्यक्रम के लिए नियुक्त किया जाता हैं, संगठन की कमियों या कमजोरियों को दूर करने के लिए कार्यक्रमों का विकास करते हैं।

सर्वेक्षण-पुनर्निवेशन के लिए सामग्री एकत्रित करने हेतु प्रश्नावली या तो उस संगठन विशेष की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उसी समय विकसित कर ली जाती है अथवा अमेरिका की मिशीगन (Michigan) विश्वविद्यालय के सामाजिक अन्वेषण संस्थान (Institute for Social Researches) द्वारा तैयार की गई प्रश्नावली को अपना लिया जाता हैं। इस प्रश्नावली में निम्न विषयों से सम्बन्धित प्रश्नों का समांकलन किया गया है-

(1) **नेत त्व** (Leadership)

(i) प्रबन्धकीय प्रोत्साहन (Managerial Support),

(ii) प्रबन्धकों द्वारा लक्ष्य प्राप्ति पर बल (Managerial Goal Emphasis),

(iii) प्रबन्धकों द्वारा प्रदत्त कार्य-सुविधाएँ (Managerial work Facilitation),

(iv) प्रबन्धकीय-अन्योन्य-प्रक्रिया-सरलीकरण (Managerial Interaction Facilitation),

(v) **अभिजात प्रोत्साहन** (Poor Support),

(vi) **अभिजात लक्ष्य प्राप्ति पर जोर** (Poor goal emphasis),

(vii) **अभिजात-कार्य-सरलीकरण** (Poor work Facilitation),

(viii) **अभिजात अन्योन्यक्रिया सरलीकरण** (Poor Interactaction Facilitation)।

(2) **संगठनात्मक वातावरण** (Organisational Climate)

(i) **कम्पनी की आन्तरिक सम्प्रेषण व्यवस्था** (Communication within Company)

(ii) **अभिप्रेरण** (Motivation),

(iii) **निर्णयन** (Decision-making)

(iv) **कम्पनी में नियंत्रण** (Control within Company),

(v) **विभिन्न विभागों में समन्वय** (Coordination between departments),

(vi) **सामान्य प्रबन्ध** (General Management),

(3) **सन्तुष्टि** (Satisfaction)

(i) **कम्पनी से सन्तुष्टि** (Satisfaction with Company)

(ii) **पर्यवेक्षक से सन्तुष्टि** (Satisfaction with Supervisor)

(iii) **कार्य से सन्तुष्टि** (Satisfaction with Job)

(iv) **वेतन से सन्तुष्टि** (Satisfaction with Pay)

(v) **कार्य-समूह से सन्तुष्टि** (Satisfaction with Work group) **आदि।**

6. **प्रक्रिया परामर्श** (Process Consultation) - इस वाक्य के माध्यम से बाह्य परामर्शदाताओं की सहायता से संगठन की अन्तर्व्यक्तिगत और अन्तर्समूह समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है। प्रक्रिया शब्द का यहां पर विशेष अर्थ में प्रयोग किया गया है। प्रक्रिया का आशय उन मानवीय क्रियाओं से हैं जो सामान्य कार्य-प्रवाह में औपचारिक अथवा अनौपचारिक सभाओं में संगठन के सदस्यों के मध्य मिलन अथवा भेंट से उत्पन्न होती है। इसमें स्वामी के कार्यो और उसके अन्य व्यक्तियों पर पडने वाले प्रभाव पर विशेष बल दिया जाता है। बाह्य परामर्शदाता का यह कार्य होता है कि वह अपने नियोक्ता-संगठन के वातावरण को देखने, समझने और प्रक्रिया के सम्पादन में अपने नियोक्ता की सहायता करे।

ऐडगर एच॰ शीन (Edger H. Schein) जो संगठन विकास की पद्धति के प्रमुख प्रणेता माने जाते हैं, उनके अनुसार इस पद्धति के मुख्य चरण निम्नांकित हैं-

(1) **सम्पर्क का समारम्भ** (Initiate Contact) - नियोक्ता, संगठनात्मक समस्याओं के निपटारे हेतु बाह्य परामर्शदाता से सम्पर्क स्थापित करता है।

(2) **सम्बन्धों को परिभाषित करना** (Define the Relationship) - नियोक्ता एवं परामर्शदाता के मध्य औपचारिक रूप से संबंधो की स्थापना के लिए समझौता किया जाता है जिसमें नियोक्ता अपनी समस्या और अपेक्षित परिणाम तथा परामर्शदाता समस्या के सुलझाने में लगने वाले समय, पारिश्रमिक आदि का उल्लेख करता है। दोनों के मध्य औपचारिक रूप में समझौता होने को सम्बन्धों की स्थापना के नाम से पुकारा गया है।

(3) **व्यवस्थापन एवं विधि चयन** (Select a Setting and Method) - परामर्शदाता द्वारा यह निश्चित करना कि वह कहां और कैसे कार्य करेगा ?

(4) **सामग्री संकलन एवं निदान** (Gather Data and make a diagnosis) - इस चरण में परामर्शदाता द्वारा अपना कार्य आरम्भ कर दिया जाता हैं। वह प्रश्नावली, अवलोकन पद्धति तथा साक्षात्कार आदि के माध्यम से सामग्री एकत्रित करता है।

(5) **हस्तक्षेप करना** (Intervene) - सामग्री संकलन के पश्चात् परामर्शदाता शिक्षण, प्रशिक्षण, परामर्श, पुनर्निवेश आदि के माध्यम से समस्या को सुलझाने का प्रयास करता है। समस्त प्रक्रिया में यह चरण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

(6) **अन्तग्रस्तता को कम करना एवं सम्बन्ध विच्छेद** (Reduce involvement and terminate) - पारस्परिक समझौते के द्वारा परामर्शदाता अपने सम्बन्ध संगठन से विच्छेद कर लेता है लेकिन भविष्य में आवश्यकता पडने पर पुनः सम्बन्धों की स्थापना की जा सकती है।

7. **टीम निर्माण** (Team Building) - प्रक्रिया परामर्श और त तीय पक्षकार द्वारा शांति वार्ता जैसी विधियों में बाह्य परामर्शदाता की आवश्यकता होती है और सारे कार्यक्रम की सफलता-असफलता परामर्शदाता की योग्यता पर आधारित रहती हैं। टीम निर्माण विधि के अन्तर्गत भी परामर्शदाता की नियुक्ति की जाती है लेकिन इस विधि में इसकी भूमिका को वह केन्द्रीय महत्व प्राप्त नही होता जो कि प्रक्रिया परामर्श अथवा त तीय पक्षकरों द्वारा शान्ति वार्ता में उसे प्राप्त होता है। कुर्ट लेबिन (Kurt Lewin) ने टीम-निर्माण प्रक्रिया के निम्नांकित तीन चरण बतलाएँ हैं जो कि परिवर्तन प्रबन्ध की प्रक्रिया से मेल खाते हैं। ये चरण हैं:-

   (1) **अहिमीकरण** (Unfreezing) - इस चरण के अन्तर्गत टीम को परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव कराया जाता है। संगठन मे मुक्त एवं पारस्परिक विश्वास की भावना का वातावरण स्थापित करने का प्रयास किया जाता है।

   (2) **गति प्रदान करना** (Moving) - परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव करने के पश्चात् टीम के सदस्य समस्या का निदान करते हैं और विकास के कार्यक्रम निर्धारित करते हैं अर्थात् वे कहाँ है और उनका लक्ष्य बिन्दु क्या है अन्य शब्दों में वे कहाँ पहुँचना चाहते हैं, यह इस चरण के अन्तर्गत आता है।

   (3) **पुन हिमीकरण** (Refreezing) - विकास कार्यक्रमों के पूरा होने पर टीम के सदस्यों के मध्य सम्बन्धों का स्थिरीकरण हो जाता है और इस प्रकार प्रभावशाली निष्पादन की स्थायी आधारशिला रख दी जाती हैं।

1. निदान चरण के प्रारम्भ में ही इसका प्रयोग किया जाना चाहिए।
2. व्यवहारात्मक विश्लेषण ढाँचे के सतत् प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए नियोजन, कार्यवाही तथा स्थिरीकरण की प्रक्रिया की प्ररचना की जानी चाहिए।
3. संगठन विकास में व्यवहारात्मक विश्लेषण का प्रयोग संगठन विकास की व्यापक प्रक्रिया के अन्तर्गत किया जाना चाहिए।
4. संगठन विकास के अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों तथा सक्रिया परामर्श में व्यवहारात्मक विश्लेषण का सर्वोत्तम प्रयोग होता है।
5. परिवर्तन में व्यवहारात्मक विश्लेषण के प्रयोग का आशय यह नहीं है कि परामर्शदाता में अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य की आवश्यकता नहीं है।

8. **त तीय पक्षकार द्वारा शान्ति वार्ता** (Third-party Peacemaking) - यह तकनीक प्रक्रिया परामर्श का एक विशिष्ट रूप है। इसका उद्देश्य अन्तर्वैयक्तिक तथा अन्तर्समूह संधर्ष का निराकरण करना है। प्रक्रिया परामर्श की भाँति इसमें भी सम्मिलित प्रक्रियाओं का परीक्षण किया जाता है, संघर्षो के कारणों का निदान किया जाता है तथा किसी त तीय पक्ष परामर्शदाता की मध्यस्थता से रचनात्मक विचार-विमर्श करके संघर्ष का निराकरण किया जाता है। यह तकनीक संघर्ष की आधुनिक मान्यताओं पर आधारित है। रिचर्ड वाल्टन (Richard Walton) त तीय पक्षकार शान्ति वार्ता तकनीक से गहन रूप से जुड़े हुए हैं। उनका मत है कि इस तकनीक के द्वारा संघर्ष के रचनात्मक परिणाम निकलते हैं, दोनों पक्षों को अभिप्रेरणा प्राप्त होती है, उनकी स्थितिगत सत्ता में समता उत्पन्न की जा सकती है, उनके सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रयासों में सामंजस्य उत्पन्न किया जा सकता है तथा वार्ता के दौरान सामाजिक समर्थन एवं प्रक्रिया कौशल (expertise) उत्पन्न किया जा सकता है।

   परामर्शदाता की मध्यस्थता सक्रिय अथवा निष्क्रिय हो सकती है। निष्क्रिय मध्यस्थता में परामर्शदाता मुकाबला या

विचार-विमर्श के दौरान केवल उपस्थित रहता है, जबकि सक्रिय मध्यस्थता में वह निम्न कार्यवाही कर सकता है:

(1) संघर्ष या विवाद के प्रमुख पक्षों का साक्षात्कार लेकर वह तर्कसंगत सूचना एकत्रित करता है।

(2) मुकाबला सभा का स्थान, संरचना आदि का चयन करता है।

(3) निम्न कार्यवाही के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करता है:

(i) अन्तर्कार्यवाही प्रक्रिया में मध्यस्थ बनना।

(ii) कार्यावली का समारम्भ करना।

(iii) पुनर्निवेशन में भाग लेना व इसे प्रोत्साहित करना।

(iv) निदान व निराकरण प्रस्तुत करना।

(v) मुकाबला सभा के पश्चात् भावी संभाषण व सम्प्रेषण के लिए नियोक्ताओं को तैयार करना।

यह तकनीक विध्वंसात्मक संघर्ष निवारण को दूर करती है। प्रभावी शान्ति वार्ता के लिए यह भी आवश्यक है कि त तीय पक्षकार (मध्यस्थ) में सामाजिक प्रक्रियाओं, सिद्धातों, मतभेद के कारणों, संघर्ष निवारण प्रक्रिया आदि का अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

9. **भूमिका विश्लेषण तकनीक** (Role Analysis Technique) - यह तकनीक कर्मचारियों की भूमिका प्रत्याशाओं तथा उत्तरदायित्वों के स्पष्टीकरण के लिए अपनायी जाती है ताकि वे संगठनात्मक कार्यो को कुशलतापूर्वक कर सकें। इसमें किसी सहायक की उपस्थिति में एक समूह में वैयक्तिक अपेक्षाओं तथा दायित्वों पर विचार-विमर्श किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की भूमिकाओं के बारे में सहमति प्राप्त कर ली जाती है। इससे अनावश्यक मतभेद कम हो जाते हैं तथा उत्पादकता एवं संशक्तिशीलता में व द्धि होती है। भूमिका विश्लेषण की कई विधियाँ हैं; इनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं-

(1) **भमिका वार्ता तकनीक** (Role Negotiation Technique) - इसका उद्देश्य सदस्यों में भूमिका परिभाषा के कारण उत्पन्न होने वाले संधर्षो को समाप्त करना है।

(2) **भूमिका निर्वाह** (Role Playing) - इसमें प्रत्येक कर्मचारी समूह के सामने उस भूमिका को निभाता है जो वह उचित मानता है। समूह के सदस्य 'भूमिका व्यवहार' का अवलोकन तथा समीक्षा करते हैं।

(3) **भूमिका स्पष्टीकरण** (Role Clasification) - इसमें समूह सदस्य अपने 'भूमिका-व्यवहार' के विभिन्न पहलुओं का विवेचन करते हैं, दूसरों की भूमिकाओं के बारे में अपनी अपेक्षाओं की व्याख्या करते हैं। इस प्रकार भूमिकाओं के बारे में सही समझ उत्पन्न की जा सकती है।

भूमिका विश्लेषण तकनीक के द्वारा व्यवहारवादी द ष्टि को समुन्नत करके अन्तर्वैयक्तिक संबंधो में सुधार लाया जा सकता है।

10. **व्यवहारात्मक विश्लेषण** (Transactional Analysis) - पिछले कुछ वर्षो में संगठन विकास के एक उपकरण के रूप में व्यवहारात्मक विश्लेषण का प्रयोग तीव्र गति से बढ़ा है। Luthans के अनुसार, "यद्यपि व्यवहारात्मक विश्लेषण संगठन विकास की एक सम्पूर्ण 'हस्तक्षेप व्यूहरचना' नहीं है। किन्तु एक उपकरण के रूप में अनेक बड़ी कम्पनियाँ अपने प्रबन्धकीय एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों के लिए व्यवहारात्मक विश्लेषण कार्यक्रम आयोजित करती हैं।" यह एक ऐसी तकनीक है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी तथा दूसरों की अहं स्थितियों, व्यवहारों तथा क्रीड़ाओं के पीछे कार्यशील सिद्धान्तों तथा दूसरों के साथ प्रभावी ढंग से कार्य करने के तरीकों को अच्छी प्रकार से समझ सकता है। व्यवहारात्मक विश्लेषण के द्वारा एक व्यक्ति दूसरों के साथ अर्थपूर्ण आचरण कर सकता है। तथा सामाजिक व्यवहारों, संचारों तथा मानवीय संबंधों को समुन्नत कर सकता है। यह तकनीक बतलाती है कि व्यक्ति परस्पर रूप से किस प्रकार से संबंधित हैं। तथा उनके संबंधों में किस प्रकार सुधार लाया जा सकता है।

इस तकनीक का विकास एरिक बर्न (Eric Berne) ने किया था। बाद में 'थामस हैरिस' तथा 'जेम्स एवं जोंगवर्ड' ने भी इसके विकास में योगदान दिया। परामर्श समूह गतिशीलता, अन्तर्वैयक्तिक संप्रेषण, संघर्ष निराकरण आदि क्षेत्रों में इसका विशेष प्रयोग किया जा रहा है। यह तकनीक अहं स्थितियों, ध्वसात्मक संचार क्रीड़ाओं आदि के विश्लेषण में सहायक होती है ताकि संदेश विकृत न हों तथा परस्पर संबंधों में कटुता न आये। व्यवहारात्मक विश्लेषण तकनीक का प्रयोग संगठन विकास की अन्य विधियों जैसे प्रक्रिया परामर्श, त तीय पक्षकार द्वारा शान्ति स्थापना, दल निर्माण आदि के अन्तर्गत भी किया जाता है।

संगठन विकास की एक तकनीक के रूप में व्यवहारात्मक विश्लेषण के सफल क्रियान्वयन हेतु 'बोवन एवं नाथ' ने अग्र मार्गदर्शक तत्व सुझाये हैं:

(1) निदान चरण के प्रारम्भ में ही इसका प्रयोग किया जाना चाहिए।

(2) व्यवहारात्मक विश्लेषण ढाँचे के सतत् प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए नियोजन, कार्यवाही तथा स्थिरीकरण की प्रक्रिया की प्ररचना की जानी चाहिए।

(3) संगठन विकास में व्यवहारात्मक विश्लेषण का प्रयोग संगठन विकास की व्यापक प्रक्रिया के अन्तर्गत किया जाना चाहिए।

(4) संगठन विकास के अन्तर्वैयक्तिक संबंधों तथा सक्रिया परामर्श में व्यवहारात्मक विश्लेषण का सर्वोत्तत प्रयोग होता है।

(5) परिवर्तन में व्यवहारात्मक विश्लेषण के प्रयोग का आशय यह नहीं है कि परामर्शदाता में अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य की आवश्यकता नहीं है।

11. **जीवन एवं आजीविका नियोजन** (Life & Career Planning) - संगठन के अन्तर्गत कुछ बैठकों का आयोजन करके सदस्यों को अपने जीवन एवं आजीविका की योजनाएँ तैयार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। ये योजनाएँ कम्पनी द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम के अन्तर्गत होती हैं। इस प्रकार के कार्यक्रमों का लक्ष्य प्रत्येक सदस्य को आत्म-संतुष्टि का अधिकतम अवसर उपलब्ध करवाना है। इस प्रकार प्रत्येक कर्मचारी को अपने जीवन तथा पेशेवर कैरियर का अपने संगठन के संदर्भ में विश्लेषण करने का अवसर प्राप्त होता है।

12. **सामना सभा** (Confrontation Meeting) - यह एक अल्पकालीन हस्तक्षेप विधि है। इसमें प्रबन्धकीय स्तर पर की जाने वाली सभाओं की एक श्रंखला शामिल है। जिसका उद्देश्य संगठन के स्वास्थ्य एवं प्रभावशीलता का मापन करना होता है। यह सभा एक पूरे दिन चलती है। इसमें संगठन की प्रमुख समस्याओं तथा उनके कारणों पर विचार किया जाता है। इसमें भावी क्रियान्वयन के लिए कार्य योजनाएँ भी विकसित की जाती हैं। इस तकनीक का प्रयोग किसी आकस्मिकता, संगठनात्मक परिवर्तन, नयी प्रौद्योगिकी आदि की दशा में किया जाता है।

13. **निदानात्मक साक्षात्कार** (Diagnostic Interview) - ये साक्षात्कार प्रायः परिवर्तन अभिकर्त्ता' द्वारा आयोजित किये जाते हैं। इस निदानात्मक साक्षात्कार का उद्देश्य विभिन्न संगठनात्मक इकाइयों के मध्य संबंधों की जाँच करना है तथा निदानात्मक सूचनाओं को एकत्रित करना है। ये साक्षात्कार किसी भी उत्पन्न होने वाली समस्या के बारे में आयोजित कर लिए जाते है।

14. **व्यवहार रूपान्तरण** (Behaviour Modification) - इस तकनीक को संगठनात्मक व्यवहार संशोधन के नाम से भी जाना जाता है। यह तकनीक मूलतः मानवीय संसाधनों के प्रबन्ध से संबंध रखती है। संगठन विकास की द ष्टि से इस तकनीक में उन जटिल व्यवहारों की पहचान की जाती है जिनका निष्पादन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसके बाद उन व्यवहारों का मापन एवं क्रियात्मक विश्लेषण किया जाता है और अन्ततः हस्तक्षेप व्यूहरचना का विकास करके निष्पादन में सुधार किया जाता है।

15. **क्रिया अनुसंधान** (Action Research) - क्रिया अनुसंधान में सूचना के संकलन विश्लेषण के साथ-साथ पुनर्निवेशन (Feedback) प्रक्रिया पर भी बल दिया जाता है। 'कुर्ट लेविन' इस तकनीक के प्रतिपादक माने जाते हैं। उनके अनुसार किसी भी परिवर्तन कार्यक्रम की दिशा एवं तीव्रता उसके संबंध में किए गये अनुसंधान पर आधारित होनी चाहिए।

यह तकनीक सीखने की प्रक्रिया को क्रिया नियोजन के साथ जोड़ती है। कार्यवाही तथा पुनर्निवेशन क्रिया अनुसंधान के दो अतिरिक्त चरण हैं। यह संगठन की वास्तविक समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करती है तथा निष्कर्षो को तब प्रयोग में लाती है जब अनुसंधान प्रगति पर होता है। संगठन विकास की द ष्टि से क्रिया अनुसंधान एक नियोजन एवं निदानात्मक उपकरण के रूप में बहुत महत्वपूर्ण हैं।

16. **कार्य विस्तार एवं कार्य सम द्धिकरण** (Job Enlargement & Job Enrichment) - कार्य विस्तार एक कार्य एक व्यक्ति को सौपने की बजाय व्यक्तियों के समूह को कई कार्य सौंपने से संबंध रखता है। इसी प्रकार 'हर्जबर्ग' ने कार्य सम द्धि को संगठन विकास का एक महत्वपूर्ण उपकरण माना है। उनके अनुसार व्यक्ति को कार्य से तभी संतुष्टि प्राप्त होगी जब उसके कार्य में अधिक दायित्वों, अधिकारों, चुनौतियों एवं अभिप्रेरणात्मक पहलुओं को जोड़कर उसे आकर्षक बनाया जायेगा। संगठन विकास की यह तकनीक नीरसता व ऊब को न्यूनतम करके व्यक्ति को विकास का अवसर प्रदान करता हैं।

17. **नियोजन एवं लक्ष्य निर्धारण** (Planning & Goal Setting) - इस तकनीक के द्वारा व्यक्तियों की वैयक्तिक नियोजन करने तथा लक्ष्य निर्धारण करने की योग्यता में सुधार लाया जाता है।

18. **शिक्षा एवं मार्गदर्शन** (Education & Coaching) - इस तकनीक में संचेतना (sensitivity) कौशल तथा अन्तर्वैयक्तिक कौशल के विकास हेतु प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

19. **उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध** (Management by Objectives) - यह नियोजन एवं समस्या समाधान की एक प्रबन्ध प्रणाली है। इसके द्वारा वैयक्तिक एवं संगठनात्मक लक्ष्यों में एकीकरण स्थापित किया जाता है। अधिकारी एवं अधीनस्थ दल संयुक्त रूप से लक्ष्यों व उत्तरदायित्वों के क्षेत्रों को परिभाषित करते हैं, प्रत्येक क्षेत्र में अपेक्षित परिणामों को निर्धारित करते हैं तथा परिणामों के मूल्यांकन एवं मापन के लिए इन पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को आधार मानते हैं। संगठन विकास की तकनीक के रूप में 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' अन्तर्वैयक्तिक एवं अन्तर्समूह समस्याओं के समाधान का ढाँचा प्रस्तुत करता है। संगठन विकास के संबंध में इसके अन्य लक्ष्य हैं- अर्थपूर्ण सम्प्रेषण, निष्पादन में सुधार तथा निर्णयन में अधिकाधिक सहभागिता।

20. **सहभागी प्रबन्ध** (Participative Management) - इसमें कर्मचारियों को नियोजन व निर्णयन, लक्ष्य निर्धारण तथा अन्य प्रबन्धकीय कार्यो में सहभागिता प्रदान करके संगठनात्मक विकास का मार्ग प्रशस्त किया जाता है।

21. **नियोजन परिवर्तन** (Planned change) - संगठन में अनेक प्रकार के नियोजित परिवर्तन करके इसकी प्रभाविकता एवं निष्पादन में सुधार किया जाता है।

संगठन विकास की प्रक्रिया एवं अवस्थाएँ
(The Process & Phases of Organisation Development)

संगठन विकास एक जटिल प्रक्रिया है जो कई वर्षो तक चलती रह सकती है। यद्यपि संगठन विकास की कई तकनीकें हैं किन्तु उसकी एक निश्चित प्रक्रिया एवं अवस्थायें हैं। 'जॉन पी॰ कोटर तथा वारने' (John P. Kotter & Varney) के अनुसार संगठन की निम्न अवस्थायें हैः

1. **प्रबन्ध द्वारा निर्णय** (Decision by Management) - प्रथम अवस्था में उच्च प्रबन्ध संगठन विकास का निर्णय लेता है तथा इसके पश्चात् परामर्शदाता का चयन करता है। इस प्रकार संगठन विकास का कार्यक्रम प्रारंभ होता है।

2. **प्रारंभिक निदान** (Initial Diagnosis) - इस अवस्था में परामर्शदाता उपक्रम की समस्याओं का निर्धारण करता है। उच्च प्रबन्धक परामर्शदाता से विचार-विमर्श करके संगठन विकास कार्यक्रम का निर्धारण करते हैं।

3. **सूचना संकलन** (Data Collection) - इस अवस्था में संगठनात्मक परिवेश तथा व्यवहारवादी समस्याओं के निर्धारण के लिए सर्वेक्षण किये जाते हैं। परामर्शदाता समूहों से मिलकर सूचनाओं का संग्रह करता है।

4. **सूचना पुनर्निवेशन एवं मुकाबला** (Data Feedback & Confrontation) - परामर्शदाता इन सूचनाओं को समीक्षा के लिए कार्य समूहों को सौंपता है तथा परिवर्तन के लिए प्राथमिकताओं का निर्धारण करता है।

5. **क्रिया नियोजन तथा समस्या समाधान** (Action Planning & Problem Solving) - इस चरण में क्रिया योजनायें तैयार की जाती हैं जिनमें उत्तरदायित्व तथा कार्यवाही समाप्ति की अवधि निश्चित की जाती है। योजनाओं के आध ाार पर समस्या समाधान करने वाले समूह अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं।

6. **दल निर्माण** (Team Building) - परामर्शदाता भूमिका निर्वाह, संचेतना प्रशिक्षण तथा क्रीड़ाओं के द्वारा दलों के संबंधों को सुद ढ़ बनाता है। वह दलों में स्वतन्त्र सम्प्रेषण, विश्वास, पारस्परिक सहयोग के द्वारा उनकी कार्यविधि में सुधार लाता है।

7. **अन्तर्समूह विकास** (Intergroup Development) - परामर्शदाता विभिन्न दलों के मध्य ठोस संबंध एवं बन्धन विकसित करता है ताकि व हत् समूहों का विकास हो सके।

8. **मूल्यांकन एवं अनुवर्तन** (Evaluation & Follow-up) - परामर्शदाता संगठन विकास के लक्ष्यों के आधार पर परिणामों का विश्लेषण करता है तथा आवश्यकता होने पर अतिरिक्त कार्यक्रम बनाता है।

संगठन विकास की प्रक्रिया
(Organisation Development Process)

William Gluck ने अमेरिका के व हत् उपक्रम "जनरल मोटर्स" में अपनायी जाने वाली संगठन विकास की प्रक्रिया का वर्णन किया है।

विभिन्न चरणों का वर्णन इस प्रकार हैः

1. **जानकारी** (Awareness) - संगठन विकास के प्रथम चरण में कई बातों की जानकारी प्राप्त की जाती है, जैसे- संगठनात्मक समस्यायें, उपद्रव, संगठन के विकास का स्तर, उद्देश्य, मानवीय संतुष्टि, मानवीय संसाधनों का उपयोग, संगठनात्मक प्रभाविकता की समस्यायें आदि।

2. **स्वीकृति** (Acceptance) - दूसरे चरण में संगठन की प्रकृति, संगठनात्मक प्रबन्ध के वैकल्पिक ढंगों तथा मानवीय एवं संगठनात्मक संभावनाओं की गहराई एवं विस्तार को स्वीकार किया जाता है।

3. **कार्य के लिए तत्परता एवं वचनबद्धता** (Readiness & Commitment to Act) - परिवर्तन प्रक्रिया के लिए कर्मचारियों में तत्परता एवं वचनबद्धता उत्पन्न की जाती है। प्रबन्ध द्वारा केवल मौखिक समर्थन ही नहीं, वरन् आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराये जाते हैं।

4. **निदान एवं खोज** (Diagnosis & Search) - संगठन की वास्तविक समस्याओं का निदान करके समाधानों की खोज की जाती है। इस चरण में यह जाना जाता है कि समस्या के सही कारण क्या हैं, संगठन कहाँ होना चाहिए तथा संगठन के लक्ष्यों व आवश्यकताओं के अनुरूप सुधार की व्यूहरचना क्या होनी चाहिए ?

5. **नये व्यवहार की क्रियान्विति** (Application of new behaviour) - इस चरण में कार्य के नये तरीकों का प्रयोग करने, संगठनात्मक प्रक्रियाओं में सुधार करने तथा संगठनात्मक लक्ष्यों व वैयक्तिक आवश्यकताओं में एक सुसंगति खोजने की द ष्टि से नये व्यवहार की क्रियान्विति की जाती है।

6. **सुधार का मापन** (Measurement of Improvement) - इस चरण में नये व्यवहार के फलस्वरूप होने वाले सुधार का मापन किया जाता है।

7. **संस्थापन** (Institutionalization) - इस चरण में प्रबन्ध प्रणाली में मानव संसाधन प्रबन्ध के सिद्धान्तों तथा संगठन विकास की व्यूहरचनाओं एवं तकनीक को संस्थापित एवं समाविष्ट किया जाता है।

8. **स्व-पुर्नआरम्भ** (Self-Renewal) - स्व-पुर्नआरम्भ वह प्रणाली है जिसके द्वारा संगठन की समस्याओं की निरन्तर जानकारी बनी रहती है ताकि उनके समाधान के लिए संगठन विकास की प्रक्रिया पुनः प्रारंभ की जा सके। यह स्व-नवीकरण की प्रक्रिया है जिसके द्वारा उपक्रम की निरन्तरता को बनाये रखा जा सकता है।

अध्याय–19
व्यवहारीय विश्लेषण
(Transactional Analysis)

'व्यवहारीय विश्लेषण' मानवीय व्यवहार की एक विचारधारा है। इस विचारधारा के विकास का श्रेय डा॰ एरिक बर्ने को जाता है जिन्होंने सन् 1961 में 'Transactional Analysis in Psychotheraphy' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया जो इस विषय की सर्वप्रथम पुस्तक थी। डा॰ बर्ने एक प्रसिद्ध मनोचिकित्सक रहे हैं और उन्होने इस विषय पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं। इनकी पुस्तकों में Games people play (1964) तथा What do you say after you say hello ? (1932) काफी महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। डा॰ बर्ने की इन पुस्तकों के अतिरिक्त डा॰ योमास ए॰ हैरिस की 'I'M ok you're ok (1967) एम॰ जेम्स की The ok Boss (1975) तथा एम॰ जेम्स व डोरथी जोंगेबार्ड की Born to win (1971) पुस्तकें भी व्यावहारिक विश्लेषण साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

डा॰ बर्ने के अनुसार व्यावहारिक विश्लेषण मानवीय सम्प्रेषण एवं व्यक्तित्व के विश्लेषण की एक विधि हैं। डा॰ बर्ने की मान्यतानुसार प्रत्येक मनुष्य का व्यक्तित्व तीन प्रकार की अहम् स्थितियों (Ego States) से संगठित होता हैं। व्यवहारीय विश्लेषण के माध्यम सें व्यक्ति अहम् स्थिति की जानकारी बड़ी सुविधा से प्राप्त की जा सकती हैं अर्थात् उसके व्यवहारों के विश्लेषण से यह जाना जा सकता हैं कि वह उस अवसर विशेष में किस प्रकार की अहम् स्थिति में हैं। इसके अतिरिक्त अन्त में व्यक्तिगत सम्बन्धों तथा संगठनात्मक विकास के लिए व्यवहारीय विश्लेषण का प्रयोग किया जा सकता है। डा॰ हैरिस इसी बात को और आगे ले जाते हैं उनके अनुसार, "व्यवहारीय विश्लेषण एक ऐसा बौद्धिक उपकरण है जिसके माध्यम से मानवीय व्यवहार एवम् भावनाओं के आधार को समझा जा सकता है।" "Transactional Analysis is an intellectual tool to understand the basis of behaviour and feeling"

इस प्रकार व्यवहारीय विश्लेषण एक ऐसी तकनीक हैं जिसके माध्यम से मानवीय व्यवहार उसके व्यक्तित्व तथा भावनाओं को एवम् उनके आधार को जाना और समझा जा सकता है।

बर्नेट के अनुसार, "व्यवहारात्मक विश्लेषण इस बात से सम्बन्धित हैं कि व्यवहार का विश्लेषण करने हेतु प्रथमतः यह समझना आवश्यक है कि व्यवहार का आधारभूत संघटक अहम् स्थिति (Ego star) हैं। एक अहम् स्थिति को चिन्तन-भावना तथा सम्बद्ध व्यवहार के मिश्रण के रूप में परिभाषित किया जा सकता हैं।"

फ्रांसिस तथा मिलबोर्न के शब्दों में, "व्यवहारात्मक विश्लेषण प्रबन्धकों को मानवीय व्यवहार तथा अनुभूत भूमिका को बेहतर ढंग से समझने में सहायता करता हैं।"

पाल हर्से एवं ब्लैनचार्ड का मत है, "व्यवहारात्मक विश्लेषण मानवीय व्यवहार को समझने एवं विश्लेषण करने की पद्धति है। यह इस बात के विश्लेषण में सहायता करती है कि व्यक्ति व्यवहार क्यों करता है जैसा वह करता है (why people behave as they do)."

ऐरिक बर्ने के अनुसार, "व्यवहारात्मक विश्लेषण का उद्देश्य यह निदान करना है कि किसी अन्वेषित व्यवहार में व्यवहारात्मक उद्दीपन को कौन-सी अहम् स्थितियाँ जन्म देती हैं।"

थामस हैरिस अपनी पुस्तक "I am ok you are ok" में व्यवहारात्मक विश्लेषण को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "यह किसी व्यवहार" जिसमें "मैं तुम्हारे प्रति कुछ करता हूँ और बदले में तुम कुछ करते हो" का परीक्षण करने तथा यह निर्धारित करने

की विधि हैं कि बहुप्रक ति वाले मनुष्य का कौन सा हिस्सा सक्रिय हो गया हैं।

व्यवहारीय विश्लेषण को और भी अच्छी तरह समझने के लिए यह आवश्यक हैं कि हम पहले 'व्यवहार' (Transaction) शब्द को समझें और फिर हम 'विश्लेषण' की विधि और प्रक्रिया पर अपना ध्यान केन्द्रित करें।

बर्ने के अनुसार "व्यवहार" सामाजिक संसर्ग की एक इकाई है। यदि दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी एक सामाजिक संसर्ग की एक इकाई हैं। यदि दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी एक सामाजिक एकत्रीकरण में सम्मिलित हो तो वे कुछ समय के अन्तराल के पश्चात एक दूसरे से बातचीत आरम्भ कर देंगे अथवा उनमें से कोई एक व्यक्ति दूसरे की उपस्थिति को स्वीकार करने का कोई संकेत देगा। इस प्रकार के संकेतों को हम व्यवहारीय उद्दीपन (Transactional Stimulus) के नाम से जानते हैं। दूसरा व्यक्ति, उस उद्दीपन से सम्बन्धित कुछ वार्ता करेगा। उसके इस कार्य को व्यवहारीय अनुक्रिया (Transactional Response) के नाम से जाना जाएगा। साधारण व्यवहारीय विश्लेषण के माध्यम से व्यवहारीय उद्दीपन तथा व्यवहारीय अनुक्रिया में व्यक्ति के अहम् की स्थिति की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

महज भाव में व्यवहारीय विश्लेषण से हमारा प्रयोजन यह है कि जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति कुछ करता है और दूसरा व्यक्ति उसके बदले में पहले व्यक्ति के प्रति कुछ करता है तो हम यह जाने कि वे व्यक्ति किसी अहम् स्थिति से उत्प्रेरित होकर कार्य कर रहे हैं। व्यवहारीय विश्लेषण की तकनीक ने एक ऐसी सर्वमान्य भाषा को जन्म दिया हैं जिसके माध्यम से सभी व्यक्ति, व्यवहारीय विश्लेषण करते समय जानकारी को एक ही रूप और अर्थ में समझ सकने में समर्थ हुए हैं। साथ ही साथ इस तकनीक ने इस बात का भी मार्ग प्रशस्त किया हैं कि हम इस पर एकमत (एक ही अर्थ में) हो सके कि किसी व्यक्ति के व्यवसाय में हमें किस चीज की जाँच (खोज या परख) करनी हैं। अन्तर्व्यक्तिगत व्यवहार को समझने में उक्त वर्णित बातें एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जानी चाहिए। व्यक्ति किसी विशेष प्रकार का व्यवहार क्यों करते हैं इस रहस्य को खोलने में व्यवहारीय विश्लेषण ने एक महत्वपूर्ण कुन्जी का कार्य किया है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया है, व्यवहारीय विश्लेषण एक ऐसा बौद्धिक उपकरण है जो मानवीय व्यवहार एवम् भावनाओं के आधार को समझने में सहायता प्रदान करता है। आधार से प्रयोजन है, व्यवहार एवम् भावनाओं को गति प्रदान करने वाले उत्प्रेरक कारक (Agent)। ये उत्प्रेरक कारक विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं और इन्हीं के सम्मिश्रण से किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

व्यवहारात्मक विश्लेषण के लक्षण
(Characteristics of Transactional Analysis)

1 व्यवहारात्मक विश्लेषण मानवीय व्यवहार की एक विचारधारा है।

2 यह मानवीय सम्प्रेषण, व्यक्तित्व एवं आचरण के विश्लेषण की विधि है।

3 यह मानवीय व्यवहार तथा भावनाओं के आधार को समझने में सहायता प्रदान करता है। 'आधार' से तात्पर्य उन उत्प्रेरक कारकों से हैं जो व्यवहार एवं भावनाओं को उत्प्रेरित करते हैं।

4 यह एक बौद्धिक उपकरण है जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि "व्यक्ति किसी विशेष प्रकार का व्यवहार क्यों करते हैं।"

5 यह व्यक्ति के अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को समझने की विधि है। यह व्यक्ति के स्वयं के व्यवहार तथा उस व्यवहार के दूसरों पर पड़नें वाले प्रभावों को समझने की विधि है।

6 यह समूह चिकित्सा (Group Therapy) की विधि भी है।

7 यह मस्तिष्क की रूपरेखा को दर्शाता है।

8 यह व्यवहारों के विश्लेषण से प्राप्त जानकारी को समान अर्थ वाले शब्दों मे व्यवस्थित करने की विधि है।

व्यवहारात्मक विश्लेषण के विभिन्न क्षेत्र, पक्ष या पहलू
(Various Areas, Facets or Aspects of Transactional Analysis)

व्यवहारात्मक विश्लेषण तकनीक के विभिन्न पहलू, क्षेत्र अथवा पक्ष हैं। दूसरे शब्दों में इसके अन्तर्गत विभिन्न अवधारणाएँ शामिल हैः-

1 **अहम् स्थितियाँ** (Ego States) **या व्यक्तित्व विश्लेषण**

2 **व्यवहार एवं उनका विश्लेषण** (Transactions and their analysis)

3 **जीवन स्थितियाँ** (Life Positions)

4 **प्रहार या संबलन** (Stroking)

5 **खेलों का विश्लेषण** (Games Analysis)

6 **रचना विश्लेषण** (Script Analysis)

व्यक्तित्व विश्लेषण
(Analysis of Individual Personality)

एक बार डॉ॰ बर्ने जो एक मनश्चिकित्सक थे, अपने ग्राहक का साक्षात्कार ले रहे थे। साक्षात्कार के दौरान उनके ग्राहक ने, जो एक ख्याति प्राप्त वकील था, कहा कि मैं एक छोटे बालक की भांति महसूस कर रहा हूँ। डा॰ बर्ने ने ग्राहक के कथन पर ध्यान दिया और स्वयं महसूस किया कि उनका ग्राहक कोई बहानेबाजी नहीं कर रहा है अपितु उसका व्यवहार भी बालक की तरह का है। उस वकील के सामान्य व्यवहार से उसका उस समय का व्यवहार एकदम भिन्न था।

एक वर्ष बाद उसी ग्राहक के साथ डॉ॰ बर्ने का अनुभव सर्वथा भिन्न था। उस समय वह ग्राहक एक वयस्क (Adult) की भांति व्यवहार कर रहा था। उसके सोचने में, भावनाओं में और व्यवहार में दो भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतिरूप स्पष्ट रूप से देखे जा सकते थे। कभी-कभी वह ठीक अपने पिता की भांति व्यवहार करता था जैसा कि उसने (ग्राहक) उन्हें (पिता) अपने बचपन में व्यवहार करते देखा था। इसके विपरीत कभी-कभी वह (ग्राहक) एक मंजे हुए वकील की भांति जो वह स्वयं अपने व्यवसाय से था, व्यवहार कर रहा था।

इस अवलोकन ने डॉ॰ बर्ने को मानवीय व्यवहार के सम्बन्ध में एक अन्तर्द ष्टि प्रदान की । डॉ॰ बर्ने ने इन तीन प्रकार के व्यवहारों को तीन अहम् स्थितियों की संज्ञा प्रदान की है। उनकी शब्दावली में इन्हें Child ego state, Parent ego state तथा Adult ego state के नाम से पुकारा जा सकता है। व्यवहारीय विश्लेषण के साहित्य में ये अहम् स्थितियाँ P,A,C (यहाँ ध्यान रखने की बात यह है कि इन्हें English के Capital letters में दर्शाया जाता है) के नाम से जानी जाती हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में तीनों अहम् स्थितियाँ विद्यमान रहती हैं और समय-समय पर व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती रहती हैं।

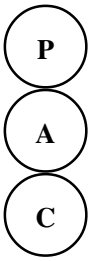

Diagram showing T.A (Transactional Analysis) model of personality structure

डॉ॰ बर्ने की विचारधारा उनके पूर्ववर्ती शल्य चिकित्सक डॉ॰ वाईल्डर पैन फील्ड (1951) के अन्वेषणों से काफी सीमा तक प्रभावित हुई हैं। डॉ॰ पैनफील्ड एक तंत्रिका शल्य चिकित्सक (Neurosurgeon) थे। उन्होंने मानव मस्तिष्क और विशेष तौर से स्मरणशक्ति के क्षेत्र में व्यापक अन्वेषण कार्य किया और स्मरण शक्ति के सम्बन्ध में डॉ॰ पैनफील्ड यह जानना चाहते थे कि मानव मस्तिष्क में स्म ति (Memory) को कैसे बनाए रखा जाता है, क्या उसकी विस्म ति हो सकती है, क्या मानव मस्तिष्क में सभी कुछ विशिष्ट बातें (अनुभव एवम् भावनाएं) ही स्म ति में संचित रहती हैं, क्यों कर कुछ स्म तियाँ (अन्य स्म तियों की तुलना में) आसानी से याद आ जाती हैं, आदि-आदि।

डॉ॰ पैनफील्ड ने अन्वेषणों के आधार पर यह जाना कि मानव के सचेतन ज्ञान (Conscious awareness) की स्थिति में जो कुछ भी होता है, वह उसके मस्तिष्क में पूर्व विवरण के साथ अभिलिखित (Record) होता रहता है और उसका वर्तमान में प्रतिश्रवण (Play Back) किया जा सकता है। डॉ॰ पैनफील्ड की महत्वपूर्ण खोज यह रही है कि न केवल घटनाओं का मानव स्म ति में विस्तार से अंकन होता हैं अपितु घटनाओं के साथ सम्बद्ध भावनाओं का भी अंकन होता रहता हैं। घटनाएं एवम् भावनाएं मानव मस्तिष्क में इस प्रकार से एक-दूसरे के साथ जुड़ (बँध) जाती हैं कि यदि भविष्य में किसी एक का आह्वान किया जाए तो दूसरी स्वतः ही उसके साथ जुड़ी चली आती हैं।

डॉ॰ पैनफील्ड ने मानव मस्तिष्क पर परीक्षण के दौरान मस्तिष्क की स्म ति कोशिकाओं को क त्रिम उद्दीपन प्रदान कर पुरानी घटनाओं (भावनाओं) के आह्वान का कार्य किया। आह्वान के दौरान पुरानी घटनाएं एवम् भावनाएं पुनर्जीवित हो सकती हैं। घटनाक्रम कुछ इस क्रम से चलता हैं कि पहले हम घटनाओं को पुनर्जीवित करते हैं और उसके बाद हमें आपकी याद आती है।

डॉ॰ पैनफील्ड ने क त्रिम उद्दीपन के माध्यम से घटनाओं के पुनर्जीवन एवम् उनकी स्म ति की बात की है। यदि हम मानव के दिन-प्रतिदिन के व्यवहार और घटनाओं पर थोड़ा ध्यान दें तो पाएंगें कि आए दिन ऐसी घटनाएं घटित होती ही रहती हैं जो वास्तविक जीवन में स्वाभाविक उद्दीपन का कार्य करती रहती हैं। जिससे पुरानी घटनाओं का पुनर्जीवन तथा घटनाओं और सम द्ध भावनाओं की स्म ति ताजा होती रहती हैं। घटनाओं और भावनाओं का यह आह्वान एक स्वतः एवम् सतत् क्रिया है। यह क्रिया मानव के वर्तमान व्यवहार को प्रभावित करती है। इसलिए इस कथन में काफी सत्य निहित है कि मानव का वर्तमान व्यवहार उसके भूत से जुड़ा हुआ है तथा उससे प्रभावित होता है।

डॉ॰ बर्ने की व्यक्तित्व सम्बन्धी विचारधारा का आधार भी यही है। उनके अनुसार मानव की बहुप्रक ति (Multiple Nature) उसके बचपन के अनुभवों जो उसके वर्तमान जीवन में पूनर्जीवित होते रहते हैं और जिनका आह्वान होता रहता हैं, के कारण बनती हैं। डॉ॰ बर्ने ने मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाले इन विगत अनुभवों को कुछ उपखण्डों (Compartments) में बांट दिया हैं। ये उपखण्ड़ की अहम् स्थिति (Ego state) के नाम से जाने जाते हैं। डॉ॰ बर्ने के अनुसार प्रत्येक मनुष्य में तीन प्रकार की अहम् स्थितियाँ विद्यमान होती हैं (P-A-C जिसका पूर्व में उल्लेख किया जा चुका हैं।)। ये अहम् स्थितियाँ वर्तमान मानव व्यवहार को प्रभावित करती रहती हैं। जिस अहम् स्थिति की किसी समय विशेष पर प्रधानता होती हैं, मानव व्यवहार उस समय उसी के अनुरूप ढ़ल जाता हैं। अब हम वकील वाले पूर्व आख्यान का पुनः स्मरण कर उसे अच्छी तरह समझने की स्थिति में हैं।

अहम् स्थितियाँ
(Ego States)

मानव व्यक्तित्व को तीन अहम् स्थितियों (या उपखण्डों) में बांटा जा सकता हैं जिन्हें Parent (P), Adult (A) तथा Child (C) के नाम से जाना जाता है। व्यक्तित्व के ये उपखण्ड़ मानव द्वारा निर्वाह की जाने वाली भूमिकाओं के नाम नहीं हैं अपितु ये मनोवैज्ञानिक वास्तविकताएं हैं जो जीवन के घटनाक्रम की वास्तविकताओं पर आधारित होते हैं। ये स्थितियां वास्तविक व्यक्तियों, वास्तविक समय, वास्तविक स्थानों, वास्तविक निर्णयों तथा वास्तविक भावनाओं के मस्तिष्क में अंकित सामग्री के प्रतिश्रवण (Play Back) से उत्पन्न होती हैं। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति की ये वास्तविक घटनाएँ, व्यक्ति, समय, स्थान, निर्णय तथा भावनाएँ आदि के कारण अलग-अलग होती हैं। अतः उसकी P-A-C की अहम् स्थिति किसी भी दूसरे व्यक्ति से अलग ही रहेगी। इसलिए हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि व्यक्तियों के व्यक्तित्व में भिन्नता का पाया जाना एक स्वाभाविक एवम् अनिवार्य लक्षण हैं।

1 पिता अहम् स्थिति
(Parent Ego State)

The Parent बाल्यावस्था में माता-पिता के व्यवहार व आचरण की जो छाप मानव मस्तिष्क में अंकित है उसे Parent की संज्ञा दी गई है। यह छाप जन्म से आरम्भ होकर (जन्म के पूर्व से भी आरम्भ हो सकती है) जीवन के प्रथम पाँच वर्ष की अवधि तक जारी रहती है। Parent से हमारा तात्पर्य वास्तविक माता-पिता या उनकी स्थिति में विद्यमान कहीं भी अन्य व्यक्तियों

से होता हैं। शिशु अवस्था में बालक माता-पिता पर आश्रित रहता है और उसमें उस अवस्था तक बुद्धि का विकास इतना नहीं होता कि वह तर्क की कसौटी पर माता-पिता के व्यवहार व आचार को कस कर केवल ग्राह्य भाग को स्म ति में अंकित करे। यहाँ तो अंकन कार्य बिना किसी प्रकार के संपादन के चलता रहता है।

Parent मानव व्यवहार का सिखाया हुआ (Taught Part) भाग है। Parent को हम जीवन में एक सत्तायुक्त एवम् वरिष्ठ स्थिति में देखते हैं। दूसरे व्यक्तियों, जातियों, धर्मो आदि के प्रति हमारी मान्यताएँ द ष्टिकोण, विश्वास (अंध विश्वास) आदि P ego पर आधारित हैं। मानव व्यवहार में 'करना' और 'न करना' (Do's and Don'ts) से सम्बन्धित मानयताएं भी इसी अहम् स्थिति से उत्पन्न होती हैं। झिड़कना, डांटना, फटकारना, मार्गदर्शन करना, उपदेश शिक्षा या निदेश प्रदान करना, P ego स्थिति के ही भाग हैं। संक्षेप में माता पिता को आत्मसात कर अपने व्यवहार में उतारना ही P ego state है। Parent को निम्नलिखित चित्र की सहायता से समझा जा सकता हैः-

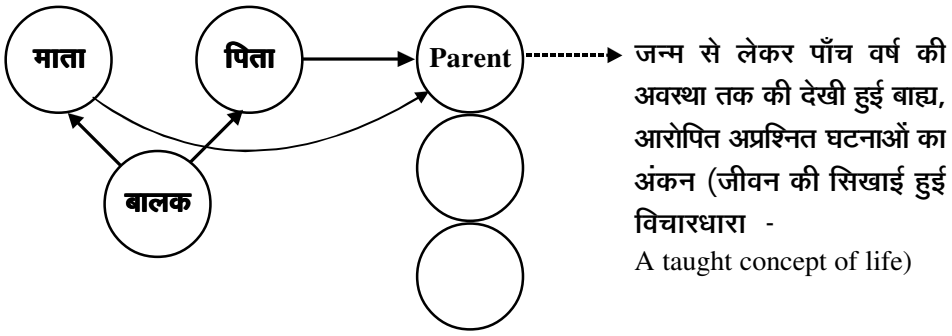

Diagram - The Parent

Parent का अर्थ है बालक द्वारा माता-पिता को जैसा वह उन्हें करता तथा कहता देखे, आत्मसात करना।

Parent ego state का अर्थ है माता-पिता के व्यवहार को अपने जीवन में ढ़ालना और उसके अनुरूप आचरण करना।

Parent ego ऋणात्मक अथवा धनात्मक हो सकती है। आलोचना उसका ऋणात्मक पक्ष है तो पोषण और प्रशिक्षण उसका धनात्मक पक्ष है।

Parent ego को समझने के पश्चात अब आवश्यकता इस बात की है कि हम व्यवहार विश्लेषण करते समय यह कैसे मालूम करे कि व्यक्तित्व में उस समय Parent ego छाई हुई है। Parent ego की पहचान शारीरिक अथवा/और शाब्दिक संकेतों से की जा सकती हैं। भ कुटि का तनना, नाक-मुँह का सिकोड़ना, सिर का स्वीक ति (अस्वीक ति) में हिलाना, तर्जनी अंगुली से संकेत करना, पीठ थपथपाना, हाथों को कमर पर रखने या पैंट की जेब में रखने की हो तो, उन्हीं के आचरण के अनुरूप हाथों को रखना। आर्शीवाद की मुद्रा में हाथ उठाना आदि कुछ ऐसी शारीरिक मुद्राएँ हैं जो P ego को दर्शाती हैं।

P ego की जानकारी व्यक्ति के द्वारा प्रयुक्त भाषा (शब्दावली) से भी की जा सकती है। ऐसे शब्दों का प्रयोग जैसे 'बेटा', 'बच्चों', 'मूर्ख', 'हास्यास्पद', 'दुर्भाग्यपूर्ण', 'करना', (नहीं करना) चाहिए', शब्दावली का प्रयोग भी P ego को दर्शाता है।

शारीरिक मुद्रा तथा शब्दावली उसी तरह की होगी जैसी कि व्यक्ति ने अपने माता-पिता को अपनाते हुए देखा होगा।

2 शिशु अहम् स्थिति (Child Ego)

माता-पिता के व्यवहार के अंकन को जैसे बालक ने देखा और सुना है, हमने Parent के नाम से जाना है। यहाँ मानव मस्तिष्क में एक और Parent का अंकन चल रहा होता है वहीं उसके साथ दूसरा अंकन भी चलता रहता है। Parent अंकन बाह्य घटना क्रम से सम्बन्धित होता है जबकि Child का अंकन बाह्य घटनाओं के फलस्वरूप उत्पन्न हुई भावनाओं से है। इस प्रकार का अंकन आन्तरिक घटनाक्रम से सम्बन्धित होता है। बालक जो देखता है, सुनता है, समझता है, उसकी जो प्रतिक्रिया उस पर

होती है, इसी प्रतिक्रिया को The child के नाम से जाना जाता है। बालक के पास उस अवस्था में शब्दावली का अभाव होता है अतः जो भी उसकी भावनाएँ बनती हैं उसी अंकन को Child ego कहते हैं।

बालक उस अवस्था में अपने आस-पास के वातावरण को जानने-पहचानने, परखने का प्रयास करता है। अतः उत्सुकता, रचनात्मकता, व्याकुलता जैसी प्रव तियाँ अथवा भावनाएँ भी Child ego का भाग हैं। बालक इस अवस्था में असहाय होता है और उसकी क्षमताएँ सीमित होती हैं अतः वह बाह्य वातावरण के समझ अपने आपको अक्षम अनुभव करता है। रोना-चिल्लाना, निराशा या हताश होना, उसकी दिनचर्या का एक अनिवार्य भाग होता है। अतः Child ego में O.k की भावना की तुलना में Not O.K की भावना अधिक बलवती रहती है। (चित्र)

Child का समस्त अंकन भावनाओं पर आधारित है। भावनाएँ, अनुभूति-जनित होती हैं। अतः Child को जीवन की मनोभावना से सम्बन्धित अथवा भावना-जनित विचारधारा की संज्ञा प्रदान की जाती हैं।

शारीरिक संकेत- Child ego की जानकारी दाँतों से नाखून काटना, हीं-हीं करके हंसना, आँसू ढ़रकाना, मुँह लटकाना, कंधे उचकाना, बोलने की अनुमति प्राप्त करने के लिए हाथ ऊँचा करना आदि शारीरिक संकेतों से मिलती है।

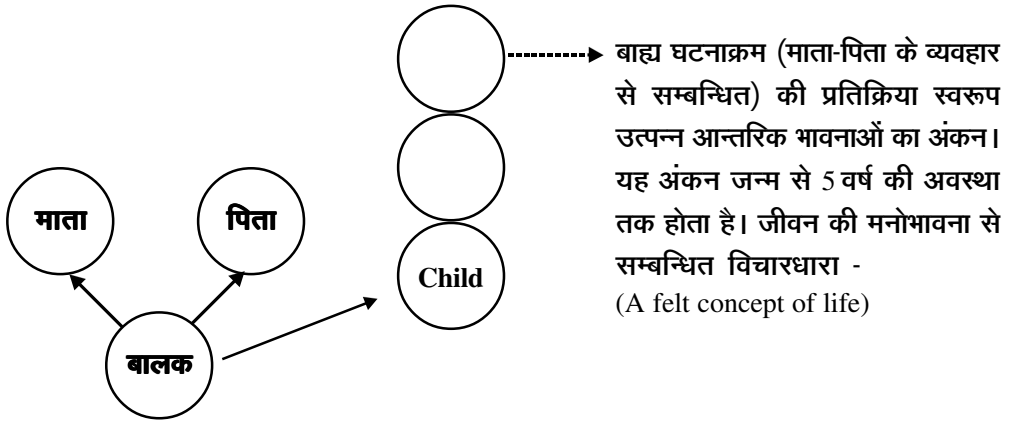

जहाँ तक शब्दावली का प्रश्न है ऐसी शब्दावली का प्रयोग जैसे- जब मैं बड़ा हो जाऊँगा, मैं यह चाहता हूँ कि या बच्चों की सी अपरिपक्व या बेसिर पैर की या परियों की, गुड्डे-गुड्डियों की बात करना आदि भी Child ego व्यक्तित्व की परिचायक हैं।

3 वयस्क अहम् स्थिति (Adult Ego State)

मनोवैज्ञानिकों की यह मान्यता है कि जब बालक करीब दस माह का हो जाता है तो उसमें वस्तुओं और वातावरण को परखने की क्षमता का विकास आरम्भ हो जाता है। बालक वस्तुओं की जांच-परख आदि स्वयं सीखना आरम्भ करता है। शायद इसी संदर्भ में मनोवैज्ञानिक के इस कथन में कुछ सत्यता दिखलाई पड़ती है कि बालक की आत्मानुभूति का शुभारम्भ यहीं से होता है।

बालक जो भी सीखता है, स्म ति में उसका अंकन होता रहता है। व्यवहार विश्लेषण की द ष्टि से Adult एक Computer की भांति है जो सामग्री का एकत्रीकरण करता है और उसकी आवश्यक जाँच-परख करने के उपरान्त उससे निष्कर्ष निकालता हैं।

Parent में जैसा देखा या सुना, उसका अंकन हो गया, Child में मनोभावों (Feelings) का अंकन था जबकि Adult में जो वह सीखता है या विचारता है उसका अंकन है। Parent जीवन का Taught part है, Child - felt part है जबकि Adult-learnt part या thought part है।

Adult का आधार गतिशीलता है। इससे जीवन में बल मिलता है। Adult, parent, child तथा adult में अंकित सामग्री को आधुनिकतम करता है उस सभी एकत्रित सामग्री की जांच-पड़ताल करता रहता है। निष्कर्षो और अनुभवों का अंकन करता रहता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं हैं कि Parent या Child का अंकन Adult की शुरूआत के पश्चात बंद हो जाता है या मिट जाता है। तीनों ही Ego state के अंकन कार्य निरन्तर रूप से चलते रहते हैं। यदि Adult, जाँच पड़ताल के दौरान parent अंकन को सही पाता है तो बालक अपने आपको अधिक निरापद (Secure) पाता है।

Adult को आगे दिए हुए चित्र की सहायता से दर्शाया जा सकता हैः-

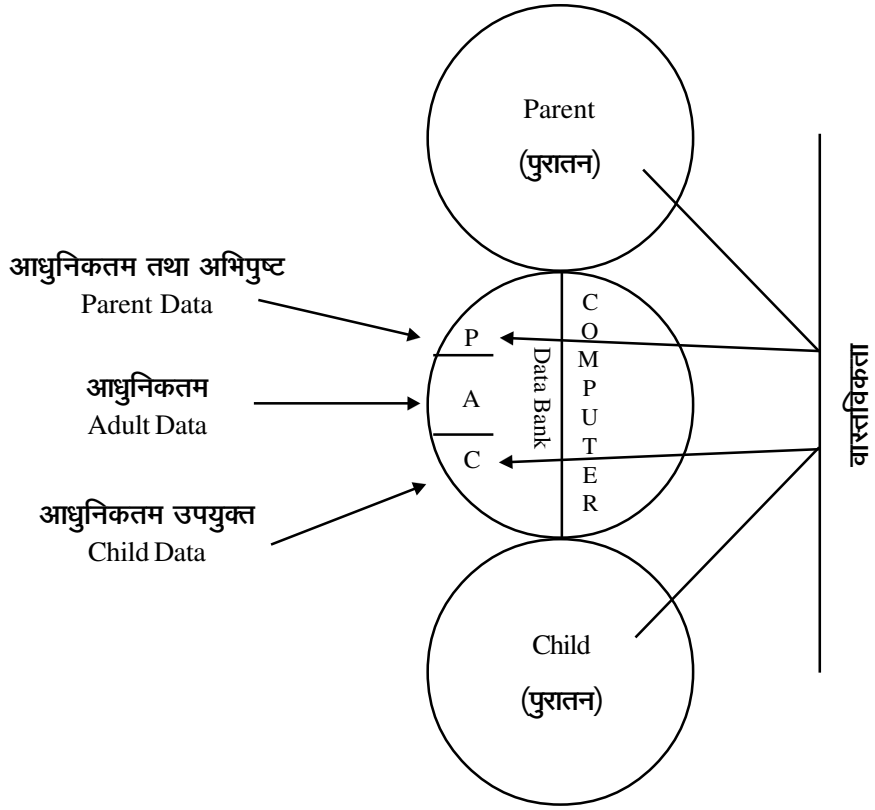

Adult में यदि Parent data की अभिपुष्टि होती रहे (अर्थात् Parent data जाँच-परख के पश्चात् सही पाया जाए) तो जैसा हमने पूर्व में उल्लेख किया बालक अपने आपको निरापद अनुभव करता हैं। इसके विपरीत स्थिति उत्पन्न करने पर (अर्थात् Parent data, adult की जाँच पड़ताल के दौरान सही न पाया जाए) बालक भ्रांति में पड़ जाता हैं।

शारीरिक संकेत - एक चित्त होकर बातों को सुनना, मनन करना, नियंत्रित प्रतिक्रिया (Controlled Responses) आदि।

शाब्दिक संकेत - क्यों, क्या, कैसे, कब, कौन, कहाँ, सत्य, असत्य, मेरे विचार में, मेरी धारणा यह है कि, निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि, ये मेरा मत है (या मेरे मत के अनुसार) आदि-आदि।

प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में Parent, adult और child का सम्मिश्रण होता है। इसका उचित अनुपात में सम्मिश्रण ही व्यक्तित्व को निखार प्रदान करता है। आगे दिया गया अनुच्छेद यही दर्शाता है कि व्यक्तित्व का निर्माण Parent ego, Adult ego, तथा child ego तीनों को मिलाकर होता है।

व्यक्तित्व विश्लेषण का उद्देश्य यह हैं कि व्यक्तित्व के विभिन्न उपखण्डों को समझा जा सके और उसके (Adult) विकास का यथा सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए।

व्यक्तित्व विश्लेषण की परिचर्या को समाप्त करने से पूर्व एक प्रश्न पर और विचार कर लें। प्रश्न है-विभिन्न व्यक्तियों के व्यक्तित्व में अन्तर क्यों पाया जाता है।

व्यक्तित्व में आपसी अन्तर क्यों पाया जाता है ? (Why do we differ)

पिछले कुछ परिच्छेदों में हमने व्यक्तित्व की संरचना के सम्बन्ध में अध्ययन किया है। सभी व्यक्तियों में व्यक्तित्व की संरचना तीन अहम् स्थितियों से होती है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति की ये अहम् स्थितियाँ एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। अतः अहम् स्थितियों से निर्मित व्यक्तित्व में अन्तर होना स्वाभाविक ही है।

व्यवहार एवम् उनका विश्लेषण
(Transactions and their Analysis)

'सामाजिक संसर्ग की एक इकाई' (Unit of Social Intercourse) अथवा किसी 'सामाजिक समूह में क्रिया की एक इकाई' (Unit of action in any Social aggregation) को 'व्यवहार' कहा जाता है। उद्दीपन (Stimulus) एवम् अनुक्रिया (Response) व्यवहार के दो अंग हैं जिनमें व्यवहार का क्रम चलता रहता है। व्यवहार विश्लेषण का उद्देश्य यह जानना है कि उद्दीपन एवम् अनुक्रिया व्यक्तित्व की किन अहम् स्थितियों से उत्पन्न होती हैं। 'व्यवहारों' के विश्लेषण से यह मालूम हो जाता है कि व्यक्ति विशिष्ट रूपों में व्यवहार क्यों करते हैं तथा अक्सर उनके जीवन में विशिष्ट व्यवहार-शैलियों की पुनराव ति क्यों होती है ? इस जानकारी से यह निर्धारित किया जा सकता है कि व्यक्तित्व की कौन सी अहम् स्थिति उद्दीपन और प्रत्युत्तर को प्रभावित कर रही है ? इससे 'व्यक्तित्व निर्माण' में सहायता मिलती है।

प्रायः व्यक्ति तीनों अहम् स्थितियों को प्रदर्शित करते हैं किन्तु एक अहम् स्थिति अन्य दो पर प्रभुत्व जमा लेती है। यह एक सुद ढ़ मान्यता है कि वास्तव में 'शिशु' तथा 'पिता' स्थिति से 'वयस्क' स्थिति श्रेष्ठ होती है। फिर भी, मनोवैज्ञानिक इस बात पर जोर देते हैं कि एक स्वस्थ व्यक्तित्व तथा प्रभावी अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों के लिए तीनों अहम् स्थितियाँ आवश्यक होती हैं। लेकिन अपने आप में अहम् स्थिति से ज्यादा महत्वपूर्ण किसी अन्तर्वैयक्तिक अन्तर्क्रिया में यह तथ्य है कि किस प्रकार एक अहम् स्थिति दूसरी के अनुकूल पड़ती है अथवा संघर्ष करती है।

जेम्स एवम् जोंगेवर्ड (James and jongeward) लिखते हैं कि "व्यक्तियों के मध्य जो कुछ होता है वह उनकी अहम् स्थितियों के मध्य एक व्यवहार है। जब एक व्यक्ति कोई संदेश भेजता है तो दूसरे से उसके प्रत्युत्तर की आशा करता है।"

विश्लेषण की द ष्टि से व्यवहारों को निम्न तीनों भागों में बांटा जा सकता हैः-

1 पूरक व्यवहार (Complementary Transactions)

2 प्रतिकूल व्यवहार (Crossed Transactions)

3 गूढ़ व्यवहार (Ulterior Transactions)

1 पूरक व्यवहार (Complementary Transactions)

पूरक व्यवहार वे होते हैं जिनमें एक व्यक्ति की अहम् स्थिति के द्वारा भेजे गए संदेश तथा प्रदर्शित व्यवहार के अनुकूल ही दूसरे व्यक्ति की अहम् स्थिति से उपयुक्त एवम् प्रत्याशित (Expected) अनुक्रिया प्राप्त होती है। इस प्रकार के व्यवहारों को यदि चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जाए तो उद्दीपन और अनुक्रिया को दर्शाने वाली रेखाएँ, एक दूसरे के समानान्तर रहेंगी। इन व्यवहारों को उदाहरणों तथा निम्न चित्रों द्वारा समझा जा सकता है। इस चित्र में दो व्यक्तियों (अधिकारी और उसके निकटतम अधीनस्थ) के मध्य होने वाले व्यवहार को दर्शाया गया है।

P-C व्यवहार - यह एक ऐसा पूरक व्यवहार है जिसमें एक पक्षकार अपनी Parent अहम् स्थिति से दूसरे पक्षकार की Child अहम् स्थिति को सम्बोधित करता है और दूसरा पक्षकार अपनी child अहम् स्थिति से पहले पक्षकार की Parent अहम् स्थिति को अपनी अनुक्रिया व्यक्त करता है।

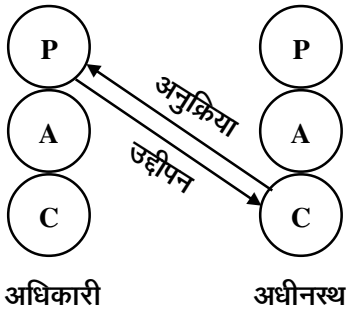

अधिकारी :- राजेश, मैं चाहता हूँ कि तुम छोटी से छोटी दुर्घटना के बारे में भी अपनी रिपोर्ट देने में सतर्क रहो।

अधिकारी :- श्रीमान, मेरे पास कुछ आवश्यक कार्यो के कारण समय कम है। किन्तु आप चाहते हैं तो मै रिपोर्ट देता रहूँगा।

A-A व्यवहार - यह एक ऐसा पूरक व्यवहार है जिसमें दोनों व्यवहारकर्त्ता अपनी Adult अहम् स्थिति से व्यवहार कर रहे हैं। इस व्यवहार में उद्दीपन एवम् अनुक्रिया दोनों ही Adult अहम् स्थिति से प्रभावित हो रहे हैं।

अधिकारी - अरूण, मैं अपने विभाग की कार्यकुशलता बढ़ाने के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट तैयार कर रहा हूँ, मैं चाहता हूँ कि इसमें तुम अपने सुझाव व सूचनाएँ मुझे दो।

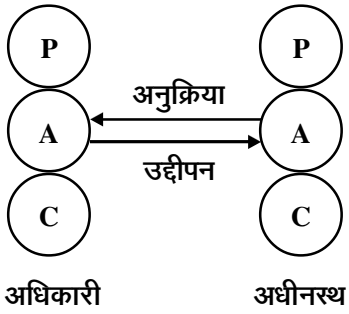

अधीनस्थ - बॉस, मैने पिछले तीन माह के लागत आंकड़े एकत्रित किए हैं। इनके विश्लेषण के बाद मैं आपके साथ बैठकर इन पर विचार-विमर्श करूंगा।

P-C व्यवहार - यह एक ऐसा पूरक व्यवहार है जिसमें एक पक्षकार (अधीनस्थ) अपनी 'Parent' अहम् स्थिति से उद्दीपन भेजता है तथा दूसरा पक्षकार (अधिकारी) अपनी child अहम् स्थिति से प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। यद्यपि इस प्रकार का व्यवहार उपर्युक्त वर्णित व्यवहारों की अपेक्षा कम ही देखने में आता है जिसमें एक छोटा पक्ष 'Parent' अहम् स्थिति से तथा उच्च पक्ष 'Child' अहम् स्थिति से अनुक्रिया व्यक्त करे।

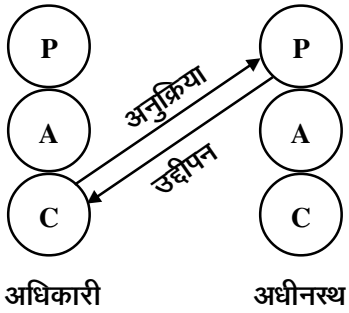

अधीनस्थ :- सर, मैं चाहता हूँ आप हमारी कार्यशाला में अनुरक्षण पर अधिक ध्यान देंगे। आपके उचित सहयोग के बिना मैं अपना कार्य ठीक से नहीं कर सकता हूँ।

अधिकारी :- भाई, तुम मुझसे बार-बार क्या चाहते हों ? अब मैं इससे ज्यादा बर्दाश्त नहीं करूँगा।

C-C व्यवहार - इस पूरक व्यवहार में दोनों पक्षकार 'Child' अहम् स्थिति में रहकर व्यवहार (उद्दीपन एवम् प्रतिक्रिया) करते हैं।

एक पक्षकार - क्या तुम मुझे टैनिस के बारे में कुछ बताओगे ?

दूसरा पक्षकार - आज हम ऑफिस से जल्दी चलेंगे और खेंलेंगे।

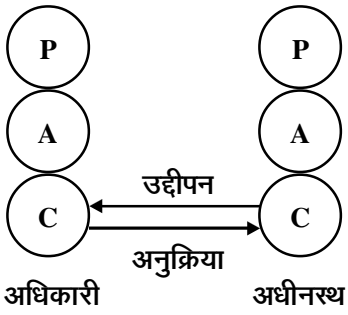

यहां यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि संगठनात्मक अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को अधिक प्रभावी बनाने में 'वयस्क-से-वयस्क' पूरक व्यवहार ज्यादा उपयुक्त रहते हैं, किन्तु 'पिता-शिशु' (Parent-child) पूरक व्यवहारों से भी सम्प्रेषण एवम् समझ में व द्धि की जा सकती है। सामान्यतः पूरक व्यवहारों में सम्प्रेषण निर्बाध गति से चलता रहता है जब तक कि व्यवहार पूरक हैं।

2 प्रतिकूल व्यवहार (Crossed Transactions)

ये वे अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार होते हैं जिनमें उद्‌गम तथा अन्त की अहम् स्थितियाँ एक-सी नहीं होती हैं। दूसरे शब्दों में, जब तक व्यक्ति की अहम् स्थिति से भेजे गए संदेश अथवा प्रदर्शित व्यवहार के उत्तर में दूसरे व्यक्ति की अनुक्रिया (Response) असंगत (Incompatible) एवम् अप्रत्याशित अहम् स्थिति से आती है तो ऐसे व्यवहार को प्रतिकूल व्यवहार कहा जाता है।

प्रतिकूल व्यवहारों के कारण संगठन में अन्तर्वैयक्तिक संघर्ष, मतभेद, तर्क तथा पारस्परिक संचार में बाधाएं उत्पन्न हो जाती हैं। फलस्वरूप, विचारों एवम् अर्थ के विनिमय की सम्भावना समाप्त हो जाती है। ऐसे व्यवहार संगठन में स जनात्मक एवम् स्वतन्त्र चिन्तन तथा सामाजिक अन्तःक्रियाओं को रोकते हैं। इन व्यवहारों से पक्षकारों की भावनाओं को चोट पहुँचती है, निराशा व विवाद फैलते हैं तथा संगठन के लिए अनेक दुष्क्रियाएँ एवम् दुष्परिणाम (Dysfunctional Consequences) उत्पन्न होते हैं। प्रतिकूल व्यवहारों में उद्दीपन एवम् अनुक्रिया रेखाएँ समानान्तर न होकर एक-दूसरे को काटती हैं। नीचे प्रतिकूल व्यवहारों के कुछ उदाहरण दिए गए हैं:-

(P-C) (A-A) व्यवहार - इस प्रतिकूल व्यवहार में अधिकारी अपने अधीनस्थ के साथ एक 'शिशु' जैसा व्यवहार करता है। लेकिन अधीनस्थ 'वयस्क' अहम् स्थिति के आधार पर प्रत्युत्तर देता है जिसकी अपेक्षा अधिकारी को नहीं थी।

अधिकारी - मैने तुम्हें कितनी बार समय पर लागत एवम् किस्म के आंकडे प्रस्तुत करने को कहा है। तुम मेरा कार्य निश्चित समय पर करोगे या किसी कार्य की तलाशी में हो?

अधीनस्थ - मैंने यह महसूस नहीं किया कि आँकड़े समय पर प्रस्तुत करना इतना जरूरी था। अब मुझे कार्य की प्राथमिकताएं बदलनी पड़ेगी।

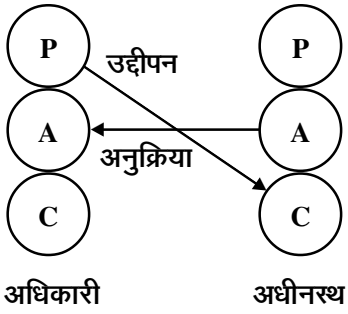

(C-P) (C-P) व्यवहार - इस प्रतिकूल व्यवहार में एक पक्षकार अपनी 'child' अहम् स्थिति से दूसरे पक्षकार को सम्बोधित करता है। तथा दूसरे पक्षकार से Parent अहम् स्थिति से अनुक्रिया की अपेक्षा करता है। किन्तु दूसरा पक्षकार 'Child' अहम् स्थिति से उसका प्रत्युत्तर देता है।

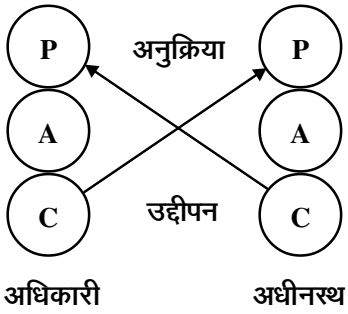

एक पक्षकार - क्या तुम मुझे यह सहायता दे सकते हो?

दूसरा पक्षकार - अरे, मेरी अपनी समस्याएँ ही बहुत हैं।

डॉ॰ ऐरिक बर्ने ने अपनी पुस्तक Games People Play में एक रेखा चित्र दिया है। जिसमें सभी पूरक एवम् प्रतिकूल व्यवहारों को दर्शाया गया है। जो निम्न है-

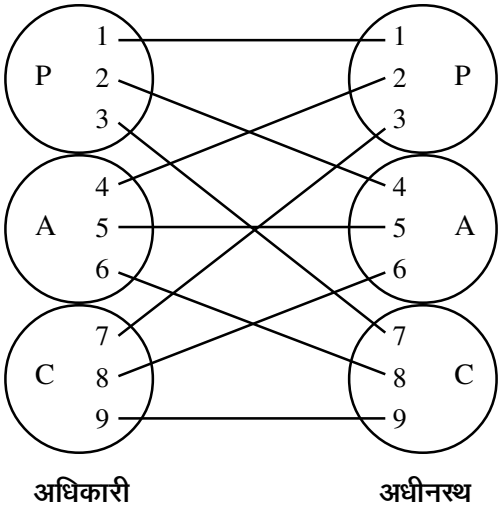

चित्र : पूरक एवम् प्रतिकूल व्यवहार

3 गूढ़ व्यवहार (Ulterior Transactions)

ये व्यवहार जटिल एवम् सूक्ष्म (Subtle) होते हैं। ये भी प्रतिकूल व्यवहारों की भांति अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों के लिए अधिक घातक होते हैं। इन्हें दूरस्थ (Remote) व्यवहार भी कहते हैं। पूरक तथा प्रतिकूल व्यवहार सामाजिक स्तर पर किये जाते हैं। लेकिन गूढ़ व्यवहारों में सामाजिक स्तर के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी व्यवहार चलता रहता है अर्थात् इन व्यवहारों में दो अहम् स्थितियाँ एक साथ कार्य करती हैं। इनमें एक अहम् स्थिति सामाजिक स्तर पर कार्य करती हैं जो कि स्पष्ट एवम् प्रकट रहती है तथा दूसरी अहम् स्थिति मनोवैज्ञानिक स्तर पर गुप्त ढ़ंग से कार्य करती है। सम्भवतः इसीलिए इन व्यवहारों को गूढ़ व्यवहार के रूप में जाना जाता है। ये व्यवहार अचेतन अवस्था, गैर-ईमानदारी व्यंग्य, चालाकी, अप्रत्यक्ष झिड़की, नसीहत अथवा हेर-फेर करने के प्रयासों के सूचक हैं। ये व्यवहार मनोवैज्ञानिक क्रीडाओं के आधार होते हैं। चित्र में सामाजिक स्तर की अहम् स्थिति को मोटी रेखा द्वारा तथा मनोवैज्ञानिक अहम् स्थिति को पतली रेखा द्वारा दर्शाया गया है। गूढ़ व्यवहार को एक उदाहरण की सहायता से समझा जा सकता है। जब एक विक्रेता वस्तु बेचने के उद्देश्य से क्रेता को यह कहता है कि "यह वस्तु अच्छी किस्म की है तथा केवल ऊँचे ग्राहकों के लिए ही है।" तो वह दो बातें कह रहा है-

(1) सामाजिक स्तर पर विक्रेता वस्तु की किस्म के बारे में सूचना देकर क्रेता की Adult अहम् स्थिति को सम्बोधित कर रहा है

(2) किन्तु वास्तव में, वह मनोवैज्ञानिक स्तर पर क्रेता की child अहम् स्थिति को सम्बोधित करके यह कहना चाहता है कि यह वस्तु केवल अमीर ग्राहक ही खरीद सकते हैं और यह तुम्हारी पहुँच के बाहर है। इस गूढ़ व्यवहार को निम्न चित्र की सहायता से प्रदर्शित किया गया हैः-

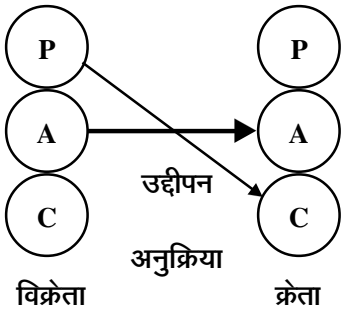

गूढ़ व्यवहार

एक अन्य उदाहरण :- गूढ़ व्यवहार का एक अन्य वार्तालाप निम्न प्रकार है-

अधिकारी :- मेरे द्वार हमेशा खुले हैं। आप आएं ताकि आपकी समस्याओं की अभिव्यक्ति हो सके तथा विचार-विमर्श कर कोई विवेकपूर्ण हल निकाला जा सके।

अधीनस्थ :- सर, कुछ संगठनात्मक समस्याओं को छोड़कर अधिकांश के स जनात्मक हल पारस्परिक सहभागिता से निकल आते हैं। उच्च प्रबन्ध का इसमें महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व होता है।

इस उदाहरण में 'उद्दीपन' के रूप में सामाजिक स्तर पर Adult अहम् स्थिति को दर्शाया गया है, किन्तु मनोवैज्ञानिक स्तर पर Parent अहम् स्थिति के आधार पर अधिकारी यह कह रहा है कि "रिरियाते हुए तुम अपनी कठिनाइयां लेकर मेरे पास मत आओ। स्वयं उनका हल खोजो, उसी के लिए तुम्हें पारिश्रमिक दिया जाता है। इस प्रकार उद्दीपन में दो अहम् स्थितियां क्रियाशील हैं-एक दर्शायी गई तथा एक गुप्त।

उद्दीपन के प्रत्युत्तर में अधीनस्थ कर्मचारी द्वारा जो अनुक्रिया व्यक्त की गई हैं उसमें भी दो अहम् स्थितियाँ क्रियाशील हैं। सामाजिक स्तर पर यह 'Adult to adult' अनुक्रिया हैं जिसमें अधीनस्थ सहभागिता की बात करता है किन्तु वास्तव में वह

मनोवैज्ञानिक स्तर पर अपनी 'Parent' अहम् स्थिति से अपने अधिकारी को यह परामर्श दे रहा है कि "अधिकारी को अनेक जटिल समस्याओं में अपने कर्मचारियों का मार्गदर्शन करना चाहिए तथा अपने अधीनस्थों को सहायता प्रदान करनी चाहिए।"

सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दोनों ही स्तर पर क्रियाशील 'उद्दीपन' एवम् 'अनुक्रिया' को निम्न चित्र में दर्शाया गया है।

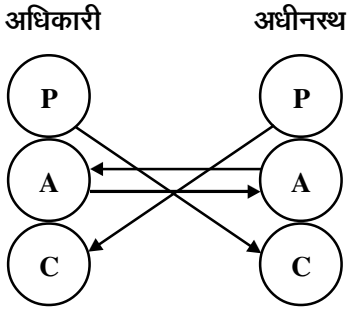

- सामाजिक स्तर पर उद्दीपन एवम् अनुक्रिया
- मनोवैज्ञानिक स्तर पर उद्दीपन एवम् अनुक्रिया

गुढ़ व्यवहार $(A\text{-}A)^2$ तथा $(P\text{-}C)^2$

गूढ़ व्यवहार को निम्न दो भागों में बांटा जा सकता है:-

(1) **कोणात्मक व्यवहार** (Angular Transaction) - इसमें दो व्यक्तियों के मध्य होने वाला व्यवहार त्रिकोणात्मक रूप में होता है। उदाहरण के लिए A द्वारा C को प्रभावित करने के लिए B को कुछ कहना। यद्यपि यहाँ C को प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं कहा जाता हैं। किन्तु वास्तव में यह C को प्रभावित करने के लिए ही कहा जाता है।

एक अन्य उदाहरण में राजेश हरीश से कहता है कि, "तुम व्यर्थ ही परेशान मत होओ। मैं तुम्हारी सहायता करूंगा।" इस व्यवहार में राजेश की आन्तरिक भावना हरीश को स्वयं पर निर्भर बनाने की हो सकती है।

(2) **द्विमुखी अथवा द्विदिश व्यवहार** (DuplexTransaction) - ऐसे व्यवहार दोहरे अर्थ वाले, दो दिशाओं में चलने वाले होते हैं। इनमें तीन से अधिक अहम् स्थिति क्रियाशील होती हैं। ये संकेतात्मक होते है।

इस प्रकार, विभिन्न प्रकार के व्यवहारों के विश्लेषण से विभिन्न अहम् स्थितियों का निर्धारण सम्भव हो जाता है तथा इसमें यह ज्ञान भी हो जाता है कि व्यक्ति ने किस जीवन शैली का चयन कर रखा है तथा उसकी मानसिक अवस्था व चिन्तन क्या है।

जीवन स्थितियाँ
(Life Positions)

बचपन के प्रारम्भिक दिनों से ही एक व्यक्ति अपने को दूसरों से सम्बन्धित करने का एक प्रभावी ढंग (A dominant way of relating to people) विकसित कर लेता है। इसकी यह प्रव ति एवम् दर्शन जीवन-पर्यन्त उसके साथ रहता है जब तक कि इसमें परिवर्तन लाने वाला अन्य कोई बड़ा अनुभव इसे न हो। इसलिए इसे 'जीवन स्थिति' के रूप में जाना जाता है।

यद्यपि व्यक्ति के व्यवहारो को उसकी एक जीवन स्थिति गहन रूप से प्रभावित करती है, किन्तु समय-समय पर विशिष्ट व्यवहारों में वह अन्य जीवन स्थितियों का भी प्रदर्शन कर सकता है। जीवन स्थिति दो विचार-बिन्दुओं के संयोजन से बनती है:- (1) व्यक्ति अपने बारे में क्या विचार रखते हैं? एवम् (2) वे सामान्य रूप से दूसरों के बारे में क्या सोचते हैं ? यह द ष्टिकोण सकारात्मक या नकारात्मक हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप निम्न चार प्रकार की जीवन स्थितियां बन सकती हैं -

जीवन स्थितियां

सकारात्मक (मेरे स्वंय के प्रति द ष्टिकोण)	I'am OK You're not OK	I'am OK You're OK
नकारात्मक	I'am not OK You're not OK	I'am not OK You're OK
	नकारात्मक	**सकारात्मक**

(अन्य के प्रति द ष्टिकोण)

उपर्युक्त चार जीवन स्थितियों का अहम् स्थितियों तथा उनके आयामों के साथ संयोजन करते हुए संक्षेप में वर्णन निम्न प्रकार है :-

(1) **प्रथम स्थिति** (I am not ok, you are ok.) **यह स्थिति व्यक्ति के प्रारम्भिक अनुभवों के आधार पर बनती है। अधिकांश व्यक्ति प्रायः इसी जीवन स्थिति में होते है। बचपन में व्यक्ति अपनी शिशु अवस्था के उन अनुभवों को भूल नहीं पाता है जब वह दूसरों पर निर्भर होता है तथा उसकी आवश्यकता की पूर्ति दूसरों के माध्यम से होती है। इससे उसमें असहाय होने तथा दूसरों से अपने को हीन समझने** (Inferiority) **की भावना का विकास होता है। इस अवस्था में व्यक्ति में अपने को तुच्छ समझने** (Depreciate oneself) **की प्रव ति बन जाती है तथा उसे अपनी योग्यता में विश्वास नहीं रहता है। इस नकारात्मक धारणा के कारण वह निराशा में घिरने लगता है। इस स्थिति में जब व्यक्ति की अन्य के साथ अन्तर्क्रिया से आवश्यक सन्तुष्टि होती है तो वह यह अनुभव करता है कि मैं ठीक नहीं हूँ, आप ठीक हैं। इस स्थिति में उसके अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार की निम्न शैलियाँ देखने को मिलती हैं। :-**

(1) **विरक्त** (Indifferent) - **इस स्थिति में एक प्रबन्धक अपने अधीनस्थों के व्यवहार में सुधार की कोई चिन्ता नहीं करता है। वह नियमों, आदर्शों व मापदण्ड़ों के पूरा होने के प्रति उदासीन रहता है।**

(2) **क पापात्र बनना** (Ingratiating) - **इसमें व्यक्ति दूसरों को खुश रखने, संतुष्ट करने, राजी करने, शान्त करने की शैली अपना लेता है। इससे उसके कामों मे बाधा नहीं आती है।**

(3) **कार्य से दबा हुआ** (Overwhelmed) - **इसमें व्यक्ति सदैव कार्य से दबा हुआ महसूस करता है तथा भ्रमित रहता है। वह कार्य-अभिमुखता से बाहर नहीं हो पाता है तथा अति-व्यस्त अनुभव करता है।**

(4) **निर्भर** (Dependent) - **इसमें प्रबन्धक अपने अधीनस्थों पर निर्भर रहता है। वह अपने सहायकों की इच्छानुसार कार्य करता है। इससे वह अपने को सुरक्षित अनुभव करता है।**

(5) **स्व-दंड़** (Intropunitive) - **इसमें व्यक्ति स्वयं पर आक्रमण करता है। वह कई कार्य न कर पाने तथा अपनी योग्यता में कमी होने के कारण स्वयं पर क्रोध करता है व दुखी होता है। वह स्वयं पर दया करता है।**

(6) **व्यंग्यात्मक** (Satirical) - **इस शैली में व्यक्ति आलोचनात्मक तीक्ष्ण** (Pungent) **एवम् निंदात्मक द ष्टिकोण बना लेता है। लेकिन व्यंग्य करने में वह सदैव संघर्ष से बचता है।**

2 **द्वितीय स्थिति** (I am not OK, you are not OK)

व्यक्ति में यह स्थिति तब विकसित होती है जब विकास के प्रथम कुछ वर्षो के बाद उसे मान्यता (Stroking) **मिलनी**

बन्द हो जाती है। बाल्यकाल में शिशु के सराहनीय प्रयासों के बावजूद जब उसे प्रयाप्त मान्यता, प्यार, प्रोत्साहन, प्रेरणा नहीं मिलती है तो वह जीवन में 'कुछ न होने' का द ष्टिकोण (Losing view of life) अपना लेता है। बच्चे को जब समाज व वातावरण से उपेक्षा, दुख के धक्के का आघात (Bumps and bruises) उतार-चढ़ाव, दुर्घटनाएं आदि दुखय अनुभव मिलते हैं तो वह दुख में घिर जाता है तथा दूसरे से उचित सहयोग न मिल पाने के कारण "मैं ठीक नहीं हूँ, आप भी ठीक नहीं हैं" का द ष्टिकोण बना लेता है। वह न स्वयं पर विश्वास करता है और न ही दूसरों पर। उसे समूचा संसार ही विषाद से भरा हुआ लगता है। यह निराश जीवन की स्थिति होती है। उसे कुछ भी करना अर्थहीन लगता है। वह अपने तथा दूसरों के प्रति सम्मान खो देता है। इस अवस्था में उसके अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार की निम्न शैलियाँ होती हैं :-

(1) **परम्परावादी** (Traditional) :- इस जीवन स्थिति में जीने वाला कर्मचारी न तो अपने में और न ही दूसरों में विश्वास रखता है। वह केवल नियमों व कार्यपद्धतियों का पालन करता है।

(2) **अति क पालु** (Over-Indulgent) :- ऐसा व्यक्ति कई बार दूसरों का अधिक ध्यान रखने लगता है। वह अति क पालु हो जाता है।

(3) **दोषदर्शी** (Cynical) :- ऐसे व्यक्ति का दर्शन निन्दक किस्म का हो जाता है। वह कटु स्वभाव रखकर दूसरों में बुराइयाँ देखने लगता है।

(4) **रूष्ट** (Sulky) :- इस जीवन स्थिति में व्यक्ति का व्यवहार चिड़चिड़ा, रूष्ट, अप्रसन्न, खीज भरा हो जाता है।

(5) **असामाजिक एवम् अन्तर्मुखी** (Withdrawn) :- इस जीवन स्थिति में व्यक्ति असामाजिक होकर अपना क्रोध एवं आक्रामकता प्रकट करने लगता है। वह समाज से प थक् टूटा हुआ एवम् निस्प ह अनुभव करता है।

(6) **विनोदी** (Humorous) :- ऐसे व्यक्ति का हास्यविनोद वास्तविक नहीं होता है यह गलत समय पर (ill-timed) तथा अपने दुखों को कम करने के लिए होता है। यह मात्र उदासी को दूर करने के लिए होता है।

3 **त तीय स्थिति** (I am OK, you're not OK)

इस प्रकार की जीवन स्थिति "मैं तुमसे अधिक पवित्र हूँ" (Holier than thou) के द ष्टिकोण के कारण बनती है। इसमें व्यक्ति दूसरों से श्रेष्ठ दिखने की प्रव त्ति (Superiority) एवं भावना रखता है। जब छोटी अवस्था में व्यक्ति को समूह के द्वारा उपेक्षित किया जाता है या दुख दिए जाते हैं या गम्भीर चोटें पहुंचाई जाती हैं तो जैसे-जैसे वह स्वस्थ होने लगता है उसमें "I am OK" की भावना उत्पन्न होने लगती है। जो कष्ट उसने उठाये हैं उसके विपरीत वह आराम की अनुभूति करने लगता है।

इस जीवन स्थिति में जीने वाले लोग अन्य व्यक्तियों पर कड़ी नजर रखने तथा अन्य पर विश्वास न करने की प्रव त्ति विकसित कर लेते हैं। ऐसे व्यक्तियों पर उनकी 'पिता' अहम् स्थिति का प्रभुत्व रहता है। व्यवहारात्मक विश्लेषण की द ष्टि से यह जीवन स्थिति अविश्वास की स्थिति मानी जाती है। इस प्रकार की स्थिति में व्यक्ति की व्यवहार शैलियां निम्न प्रकार की होती हैं :-

(1) **आदेशात्मक** (Prescriptive) :- इस जीवन पद्धति को अपनाने वाला प्रबन्धक अपने अधीनस्थों के लिए नियम, आदर्श एवम् प्रमाप निश्चित करता है तथा यह देखता है कि उनका पालन भी किया जा रहा है।

(2) **संरक्षण दाता** (Patronising) :- इसमें व्यक्ति दूसरे को संरक्षण एवम् सहयोग प्रदान करने की भूमिका निभाता है।

(3) **कार्य ग्रस्त** (Task obsessive) :- इस जीवन पद्धति को अपनाने वाला व्यक्ति कार्यो से प्राथमिक सम्बन्ध रखता है तथा वह कार्यो को पूरा करने की सनक में अन्य चीजों की उपेक्षा कर जाता है।

(4) **परिवादी** (Complaining) :- इस प्रकार की जीवन स्थिति में जीने वाला व्यक्ति अपने संगठन, प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों में दोष खोजता है वह यह अनुभव करता है कि जैसी स्थिति के वह योग्य है वैसी वहां पर नहीं है।

(5) **आक्रामक** (Aggressive) :- वह अपने व्यवहार में आक्रामक रहता है।

4 **चतुर्थ स्थिति** ('I am ok'; you are ok') जब व्यक्ति के प्रारम्भिक काल के अनुभव सुखद होते हैं तथा वह मैत्रीपूर्ण वातावरण में पलता है तथा जब उसे सकारात्मक मान्यता प्राप्त होती है तो उसके परिणामस्वरूप व्यक्ति का अपने तथा दूसरों के प्रति श्रेष्ठ द ष्टिकोण बनता है। व्यक्ति की इस जीवन स्थिति को आदर्श स्थिति माना गया है। यह एक विवेकपूर्ण रूप से चुनी हुई स्थिति है। इस स्थिति में रहने वाले व्यक्ति की व्यवहार शैलियां निम्न हैं :-

(1) **आदर्शात्मक** (Normative) - वह आदर्श एवम् लक्ष्य निर्धारित करता है किन्तु इनके निर्माण एवम् क्रियान्वन में अपने अधीनस्थों को सहभागी बनाता है।

(2) **सहयोगात्मक** (Supporitive) - इस जीवन स्थिति में रहने वाला व्यक्ति अपने व्यक्तियों को उनकी समस्याओं के समाधान में पूर्ण सहयोग करता है।

(3) **समस्या समाधानकर्त्ता** (Problem Solving) - इस जीवन पद्धति का व्यक्ति अपने सहयोगियों एवम् अधीनस्थों को सम्मिलित करते हुए उनकी समस्याओं को हल करता है।

(4) **लोचपूर्ण** (Resilient) - ऐसे व्यक्ति की कार्यशैली समायोजनकारी होती है। वह परिस्थितियों का मूल्यांकन करते हुए उनके अनुसार अपने को समायोजित करता है।

(5) **नवप्रर्वतनकारी** (Innovative) - इस शैली को अपनाने वाला व्यक्ति अपनी विद्यमान पद्धति से कभी सन्तुष्ट नहीं होता तथा समस्या के समाधान के नए-नए तरीके खोजता रहता है। इन नई बातों को संगठन में स्थान देता है।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में उपर्युक्त चार जीवन स्थितियों में से एक जीवन स्थिति प्रधान होती है। कीथ डेविस के अनुसार, इन चारों स्थितियों में से सर्वोतम स्थिति "I am ok and you're ok" है जिसमें 'Adult to adult' व्यवहार सम्मिलित होता है। इस स्थिति में स्वयं तथा अन्य व्यक्तियों के प्रति बेहतर द ष्टिकोण अपनाया जाता है। अन्य तीन जीवन-स्थितियाँ मनोवैज्ञानिक ढ़ग से कम परिपक्व एवम् कम प्रभावी हैं। डेविस का मत है कि एक व्यक्ति चाहे किसी भी जीवन स्थिति में क्यो ना हो वह "I am ok & you're ok" की जीवन स्थिति को सीख सकता है। किन्तु या बात इस पर निर्भर करती है कि समाज अन्तर्वैयक्तिक व्यवहारों के लिए सुधार की क्या आशा रखता है।

प्रहार या संबलन
(Stroking)

व्यवहारात्मक विश्लेषण विशेषज्ञों का मानना है कि प्रहार या संबलन की आवश्यकता सभी को होती है। बचपन से लेकर जीवन पर्यन्त एक व्यक्ति को पारस्परिक स्नेह, प्रेम, मान्यता एवम् प्रशंसा की आवश्यकता होती है इसे ही प्रहार या संबलन कहा जाता है। दूसरों के साथ अन्तर्व्यवहार में व्यक्तियों को प्रहार की आवश्यकता होती है। बर्ने प्रहार को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "कोई भी कार्य जो दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति की मान्यता को दर्शाता है वह प्रहार है।"

प्रहार सभी प्रकार की मान्यताओं जैसे भौतिक, मौखिक, द ष्टि सम्पर्क (Eye Contact), पीठ थपथपाना, हाथ मिलाना, मुस्कुराना, नमस्कार करना, प्रशंसा करना आदि को दर्शाता है। प्रहार सकारात्मक, ऋणात्मक अथवा मिश्रित हो सकते है। घनात्मक प्रहार से कर्मचारी की संतुष्टि में व द्धि होती है तथा उसमें "ठीक होने" (Being ok) की भावना उत्पन्न होती है। ऋणात्मक प्रहार व्यक्ति को शारीरिक रूप से तथा भावनात्मक रूप से चोट पहुँचाते हैं तथा स्वस्थ होने का कम बोध जगाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति पर

एक से प्रहार कार्य नहीं करते है। अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग संबलन को प्रयुक्त करने की आवश्यकता होती है। (Different strokes for different falls) लेकिन प्रहार सभी के लिए आवश्यक होते हैं। प्रहारों की प्रकृति की पहचान व्यवहारों के विश्लेषण तथा भावी व्यवहार संरचना के निर्धारण में सहायता करती है। प्रहार की विचारधारा 'पुनर्बलन के सीखने के सिद्धान्त' (learning concept of reinforcement) से गहन रूप से जुड़ी हुई है। सकारात्मक प्रहारों को 'सामाजिक उत्प्रेरक' (Social reinforces) भी कहा जाता है। प्रहार शर्तयुक्त भी हो सकते हैं। जैसे- निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति पर पदोन्नति का वचन देना। शर्तविहीन उत्प्रेरक अथवा प्रहार का व्यक्ति के व्यवहार से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। कार्य प्रेरणा के लिए प्रहार या संबलन का होना आवश्यक होता है।

खेलों का विश्लेषण
(Games Analysis)

यहां खेल से प्रयोजन, हॉकी, फुटबाल या क्रिकेट से नहीं है। व्यवहारिक विश्लेषण के सन्दर्भ में इस शब्दावली का एक विशेष अर्थ है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है खेल पूरक गूढ़ व्यवहारों की ऐसी श्रंखला हैं जिसके निश्चित परिणाम प्राप्त होते है। सरल शब्दों में दफ्तर की राजनीति (Office Politics) को खेल (Game) के नाम से जाना जाता है। हम सब इसी प्रकार के खेल अपने-अपने कार्य क्षेत्र (दफ्तर, कारखाना, विद्यालय आदि) में खेलने के आदि है। डॉ॰ बर्ने ने तो इस प्रकार के खेलों पर (Games People Play) पूरी एक पुस्तक लिखी है। इन खेलों में व्यवहार सामान्य व्यवहारों की भांति ही चलते रहते है। लेकिन प्रत्येक खेल में खेल खेलने वाली एक कूटनीति होती है जिसे वह प्रकट नहीं होने देता।

सभी खेलों में निम्न विशेषताएं पाई जाती हैं :-

1. चारित्रिक कपट
2. प्रत्येक खेल के कुछ सुनिश्चित परिणाम होते है।
3. खेल के कुछ निश्चित नियम होते हैं- नियम भंग होने की दशा में खेल को जारी रखना मुश्किल होता है।

खेल में खिलाड़ियों की तीन प्रमुख भूमिकाएँ होती है। नामतः उत्पीड़क (Persecutor), शिकार (Victim) तथा उद्धारक (Rescuer) । एक खिलाड़ी एक से अधिक भूमिका का निर्वाह कर सकता है। इस प्रकार के खेलों में खिलाड़ी Adult Ego state से खेल खेलते हैं। शिकार child ego state से कार्य करता है। उत्पीड़क एक पूर्वाग्राही की भांति कार्य करता है। जबकि उधारक की भूमिका एक पोषक Nurturing Parent की होती है।

खेल अनेक प्रकार के होते है। इनके नाम बोलचाल की भाषा में रखे गए है। यहां हम कुछ खेलों को उपयुक्त उदाहरणों की सहायता से समझ सकते हैः-

NIGYSOB (Now I have got you son of a Bitch) यह खेल उत्पीड़क के द्वारा आरम्भ किया जाता है और दूसरे खिलाड़ी को फंसाने का प्रयास किया जाता है। उत्पीड़क दूसरे खिलाड़ियों को चारा फेंकता है और यदि अन्य खिलाड़ी उत्पीड़क की चाल को नहीं समझ पाते तो फंस जाते हैं। उत्पीड़क के मन में कपट के होते हुए भी वह खेल के आरम्भ में बड़ा भोला-भाला बना रहता है। जैसे-जैसे ताश के खेल में खिलाड़ी अच्छे पत्तों के आने के बावजूद ऐसा दिखावा करते हैं कि उनके पास कोई खास अच्छे पत्ते नहीं आए जिससे अन्य खिलाड़ी कुछ ऊंची बोली लगा जाए और फिर फंस जाए।

व्यावसायिक जगत में यह खेल कुछ इस प्रकार से खेला जाता है। एक उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ अधिकारी से कहता है कि, "तुम बहुत योग्य हो और मैं चाहता हूँ कि तुम कम्पनी के प्लांट A को जाकर सम्भालो, आजकल प्लांट में कुछ नुकसान हो रहा है और तुम जैसा योग्य प्रबन्धक ही प्लांट की दशा सुधार सकता है। यह मौका तुम्हारे लिए चुनौती है। और भविष्य में तुम्हारी उन्नति का मार्ग प्रस्तुत करेगा"

वस्तु स्थिति यह है कि उच्च अधिकारी, अधीनस्थ की योग्यता से ईर्ष्या करता है और मन ही मन में उसे नीचा दिखाने की चाल सोचता है। प्लांट A में अधीनस्थ का हस्तांतरण उसी चाल का एक भाग है। उच्च अधिकारी जानता है कि प्लांट A की मशीन पुरानी है और माल की मांग बढ़ने की कोई सम्भावना नहीं है।

यदि अधीनस्थ प्लांट 'A' के हस्तांतरण को स्वीकार कर लेता है तो समझिए कि शिकार फंस गया। जैसा कि सुनिश्चित है प्लांट A की हालत में कोई सुधार नहीं आता है। उच्चाधिकारी को अब पूरा मौका मिल जाता है कि वह प्लांट A की बिगड़ती हुई हालत के लिए अधीनस्थ को जिम्मेदार ठहराए और उसकी पदोन्नति के सभी मार्ग बन्द कर दे।

Why don't you-yes-but इस खेल में एक खिलाड़ी अपनी child ego state से कार्य करता हुआ दूसरों के समक्ष अपनी समस्या प्रस्तुत करता है। अन्य खिलाड़ी पहले वाले खिलाड़ी की समस्या का उचित और वास्तविक निराकरण प्रस्तुत करते हैं। पहले वाला खिलाड़ी प्रत्येक समाधान को ठीक तो मानता है लेकिन उसे अवास्तविक या अव्यावहारिक बताकर ठुकरा देता है। इसी प्रकार पहले वाला खिलाड़ी यह दर्शाना चाहता है कि उसकी समस्या वास्तव में इतनी जटिल है कि किसी के पास भी उसका कोई हल नहीं है। इस प्रकार वह अपने आपको विपित अनुभव करता है

वार्तालाप का क्रम कुछ इस प्रकार से चलता है :-

K : " I am bored with this job."

R : "You could take a course in Programming."

K : "Yes, but tution is very expensive."

R : "Why don't you go to school under the company's tution reimbursement plan?"

K : Yes, I could, but I have to work full time in support myself."

संगठनों में खेले जाने वाले अन्य कुछ खेल इस प्रकार हैं :-

1. **आक्रामक खेल** (Games aggression and attack) :- आक्रामक खेल कई प्रकार के हो सकते हैं। निम्नांकित कुछ अधिक प्रचलित हैं :-

   (1) **Repo** :- यह खेल सामान्यतः औरतों द्वारा खेला जाता है। इसमें कार्यालय में कार्यरत महिलाएं पुरूषों को अपनी ओर आकर्षित करके गर्व अनुभव करती हैं।

   (2) **Corner** :- यह खेल 'Double blind' जैसा है। एक ओर तो अधिकारी कर्मचारी की लापरवाही के लिए आलोचना करता है और दूसरी ओर उसे बहुत सा दायित्व का कार्य तुरन्त पूरा करने का आदेश दे देता है।

   (3) **Blemish** :- यह अत्यन्त साधारण खेल है। इसमें अधिकारी कर्मचारी के प्रत्येक कार्य में कुछ न कुछ दोष या कमी निकालता रहता है।

   (4) **Let's you and him fight** :- यह खेल दो या अधिक व्यक्तियों को भिड़ाने का है। यदि आप यह दर्शा सकें कि आप तो उनमें मित्रता कराने के लिए प्रयत्नशील हैं तो फिर क्या कहना।

   (5) **Schlemiel** :- आप जान-बूझकर दूसरे को हानि पहुंचाओं और फिर माफी माँग कर बच निकलो। लोक कष्टक (Nuisance) होते हुए भी न पकड़े जाना - इस खेल के खिलाड़ी की विशेषता है और उपलब्धि है।

2. **दूसरों पर दोषारोपण करना** :- इसमें कुछ खेल निम्न हैं :-

   (1) If it weren't for you/him/them or IWFY :- अपनी कमियों के लिए दूसरों पर दोषारोपण करना। इसलिए उन्नति नहीं कर पाए कि..... हम इसलिए पास नहीं हुए कि..... आदि-आदि।

   (2) Wooden Leg :- हर असफलता के लिए अपनी अक्षमता की दुहाई देना।

   (3) SWYMD (See what you made me do) :- आपसे काम करने में हुई चूक का दोष आप अन्य पर ड़ालें। जैसे-टाइप करते हुए हुई गलती पर आप कहें कि टेलीफोन आने से एकाग्रता गड़बड़ा गई। आप कोई हिसाब लगा रहे हैं और काम में मन नहीं लगता और गलती हो जाती है और बच्चे आपसे कुछ पूछते हैं तो आप उन पर बरसने लगेगें। गलती का इल्जाम आप बच्चों पर ही लगाएंगे।

रचना विश्लेषण
(Script Analysis)

'रचना' से तात्पर्य अचेतन रूप से लिये गए उन निर्णयों को प्रकट एवं क्रियान्वित करने से है जो 'जीवन को कैसे जिया जाए' के सम्बन्ध में लिए जाते हैं। दूसरे शब्दों में रचना वे जीवन योजनाएँ हैं जिन्हें पूरा करने हेतु व्यक्ति प्रयास करते हैं। ये योजनाएँ जब व्यक्ति सात वर्ष का बालक होता है तभी से उसके अचेतन मस्तिष्क में बनने लग जाती हैं। जीवन योजनाएं व्यक्ति की जीवन स्थिति तथा समय-संरचना से गहन रूप से जुड़ी होती हैं। जो व्यक्ति अनेक समस्याओं जैसे बीमारी, पागलपन, दुष्टता, मूर्खता आदि से घिरे रहते हैं उनकी रचनाएँ अनुकूल परिणाम उत्पन्न नहीं कर पाती हैं। व्यवहारात्मक विश्लेषण के द्वारा प्रबन्धक अपने कर्मचारियों को इन जीवन योजनाओं के प्रतिकूल परिणामों से मुक्त कर सकते हैं।